भैरप्पा

छोर

विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच पारस्परिक
आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत प्रकाशित
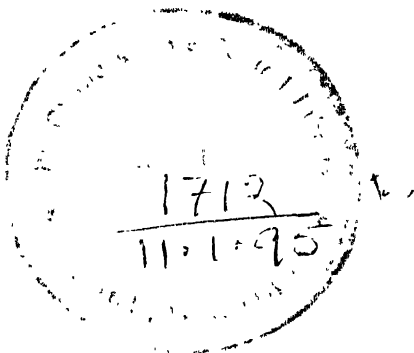
एस० एल० भैरप्पा

अनुवादक
भालचंद्र जयशेट्टी
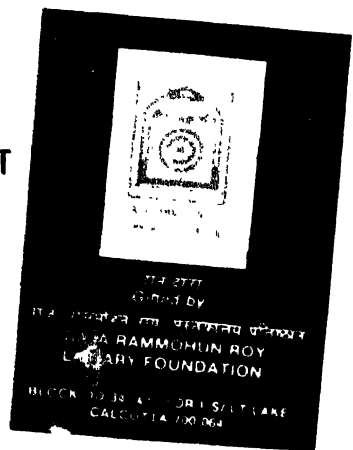
गई इमारत के नए-नए प्रतिमान आदि तैयार करना उस वास्तुकार की प्रतिष्ठा के योग्य ठहरता है जो अपना फलक फैलाये रहता है। किन्तु सोम-शखर पुरानी इमारत की मरम्मत के बारे मे सलाह देना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध नहीं मानता। वैसे मरम्मत का काम लेकर कोई आज तक उसके पास आया भी नहीं था। मैसूर शहर के बाहरी प्रदेश की ललित महल रोड के किनारे की इमारत थी। विशाल कम्पाउंड और मदरासी छत वाली इकतल्ला इमारत जब से बनी है तब से शायद एक-दो बार रंग व रोगन हुआ हो और इसीलिए उजड़ी-उजड़ी-सी नजर आती है। इमारत पुरानी थी, इसलिए निश्चयपूर्वक कहा जा सकता था कि उसके दरवाजे, खिड़की आदि असली सागवान के बने है। इतनी सागवान का उपयोग उन दिनों सम्भव था। सिर उठाकर देखने से पन्द्रह फुट ऊँची छत फाँसी के फंदे के अनुकूल दिखाई पड़ती है। किन्तु उसी छत के बीचों-बीच दो दरारो से आसमान झाँकने लगा था और इसी रास्ते बरसात के दिनो मे आकाश का पानी नीचे उतर आता था। गारे-सुर्खी से बने फर्श पर भी बर-सानी पानी से भीग-भीगकर काई जम गई थी और देखने मे व. भद्दी लगती। गृहस्वामिनी डा० अमृता की कार भी तो पुरानी ही है। बरसात म भीगते, गर्मी में सूखते हुए आयु मे बूढ़ी लगने वाली प्रारम्भिक मॉडल की फिएट कार। फिर भी उस घर की तरह ही मजबूत, अजड़।

"इस चुआन को कैसे रोका जाए? सारे घर मे रंग-रोगन भी करवाना है। दोनो कामों पर कुल कितना खर्च होगा? दोनो काम आपको करने होगे।"

उसने सारा परिकलन करके बताया, "ऊपर जहां कहीं दरारें पड़ी है वहाँ ऊपरी तह तुड़वाकर नई सुर्खी भरवानी पड़ेगी। इसकी [illegible] नौ हजार होगी। सारे घर का पुराना चूना खुरचकर डिस्टेम्पर और रंग चढ़ाने मे तीस हजार लग जाएँगे।"

इतनी राशि सुनकर अमृता के चेहरे का रंग उड़ गया, सोच-विचार करके, "फिर आऊँगी," इतना कहकर जो वह गई तो महीना भर तक आई नही। फिर एक साँझ आकर झिझकते हुए बोली, "फिलहाल रंग का काम रहने दे। आपने छत

पर सुर्खी डलवाने की जो सलाह दी है, उसके नौ हज़ार की रक़म तत्काल जोड़ पाना मेरे लिए ज़रा कठिन है। उससे कम खर्च वाला क्या कोई और तरीका नहीं है? बरसात सिर पर है। मरम्मत निहायत ज़रूरी है। वरना, ऊपर से पानी टपकने लगा तो डर लगने लगता है। इसलिए, फिलहाल···" अपनी आर्थिक स्थिति की विवशता बताते हुए झिझकते हुए उसने बस इतना ही कहा।

सोमशेखर समझ गया। दो-एक पल सोचकर बोला, "एक और तरीका है। जहाँ दरार पड़ी है, उसकी जरा कुटाई करके आर-पार उसमें डामर भरा जा सकता है। उससे केवल एक बरसात की राहत मिल सकती है। अगली गर्मी में जब डामर पिघल जाएगा तब फिर टपकने लगेगा। लगभग चार-पाँच सौ में काम बन जाएगा। घर को रंग के बदले प्राइमर से पुतवा दें तो हज़ार के आसपास खर्च आएगा।"

वह दो-एक पल सोचती रही। फिर बोली, "फिलहाल डामर भरवा दीजिए। एक-दो महीने के बाद प्राइमर पुतवाऊँगी।" सोमशेखर ने राज को बुलवाया, खुद बड़ी नसेनी से चढ़कर काम की निगरानी करके उसके घर की मरम्मत करवाई। वह समझ गया कि परिवार जो कभी मालदार था अब उसके बुरे दिन आ गए हैं। "बिलकुल मामूली-सा काम था। फिर भी आपने बड़ी हमदर्दी के साथ उसे पूरा किया। आपकी फीस कितनी हुई; कृपा करके बताइए।" उसने आग्रह किया।

"अगर बड़ा काम होता तब फ़ीस या पर्सेंटेज की बात थी। अब रहने दीजिए।"—उसने सविनय किन्तु दृढ़ता से कह दिया। सात वर्ष तथा चार वर्ष के दो बेटों की माँ। गोल चेहरा, ऊँचा क़द, सुन्दर महिला। कालेज में कन्नड़ साहित्य की प्रवक्ता। डाक्टरेट की उपाधि-प्राप्त तेज़ बुद्धि वाली, चुस्त आँखों वाली विदुषी। हर काम स्वयं करती है। पता नहीं, पति कहाँ है! उसने इस बारे में कभी ज़बान नहीं खोली। आप पूछे भी कैसे? यह सोचकर चुप रह गया कि उन्हें जिस सहायता की आवश्यकता थी वह तो कर दी। आगे उनसे सम्पर्क भी नहीं रहेगा। फिर भी वह कई दिनों तक याद बनकर दिमाग़ में मँडराती रही।

केवल अमृता ही नहीं, बल्कि वह समूचा घर कभी-कभार उसकी यादों में तैर जाता था। कई बार उसने स्वयं विश्लेषण करके देखा कि उस मद्रासी छत वाले पुराने बँगले में ऐसी क्या विशेषता है जिसे वास्तुकारी की दृष्टि से याद रखा जा सके! एक दिन बात समझ में आ गई। घर की पृष्ठभूमि में आकाश को छूता हुआ चामुंडी पर्वत खड़ा है। चाहे हरियाली हो या न हो, उस पर्वत का एक अपना विशिष्ट अस्तित्व है। निगूढ़ नीलाकाश के साथ सम्पर्क स्थापित करने

का भाव है। जिस घर को ऐसे पर्वत से सटी हुई पृष्ठभूमि प्राप्त हो उस घर को और किस आच्छादन की आवश्यकता होगी भला ! इस दृश्य को मन-ही-मन में सराहने लगा तो बरबस उसे अपने बम्बई वाले व्यावसायिक जीवन की नीरसता याद हो आई। ऐसी विशाल खुली जगह उस शैतानी शहर में तो कहीं नहीं है। अपनी तरह का ऐसा अकेला घर वहाँ पाना सम्भव ही नहीं। जो भी हैं, सभी तल्ले पर तल्ले चढ़े हुए। इन दिनों तो दस, पन्द्रह, बीस तल्लों वाली सभी भावशून्य इमारतें हैं। वहाँ की वास्तुकारी की खूबी यही होती है कि यूरोप और अमरीका में शोध की गई नई-नई सामग्री को यहाँ की तंग सँकरी दुनिया से जोड़ देना। बम्बई के रहन-सहन, वहाँ के व्यवसाय से ऊबकर चार वर्षों के पश्चात् मैसूर आने का विचार आया था उसके मन में। चाहे कुछ न हो, यहाँ छोटी ही सही, अपनी निजी पहचान रखने वाली, अपनी छाप अंकित करने वाली इमारतों के निर्माण की सम्भावना दिखाई देने लगी। भले ही आज मैसूर बढ़ गया हो, भीड़ अधिक हो गई हो; किन्तु गरदन उठाकर देखने पर आज भी निरापद मुक्त आकाश देखा जा सकता है। पुराना कुक्करहल्ली ताल तो आज भी ज्यों का त्यों है। कुछ भागों में पेड़-पौधों की हरियाली भले ही न रही हो, किन्तु चामुंडी पर्वत तो किसी कल-कारखाने का ग्रास नहीं बना है। बचपन की वे यादें जागकर गुदगुदाने लगीं जब साँझ या सवेरे जब कभी मन करता तो अकेला पहाड़ की चोटी पर चढ़कर चारों ओर नजर घुमा शान्त, गौरवशाली, फिर भी अहंकार-हीन होकर सविनय सौन्दर्य से झुके हुए उस व्यापक मैसूर शहर को घण्टों बैठा देखता रहता और पसीना सूख जाने पर नीचे उतर आता। हाल ही में, जब वह नया-नया यहाँ आया था तब अपने काम को छोड़कर कितनी साँझें इसी पर चढ़कर डूबते सूरज की लाल-सफेद किरणों से निर्मित क्षितिज ी दीवार को निहारते बिताई थीं। इसकी याद करके एक बार फिर पहाड़ की चोटी चढ़कर उस घर को ढूंढ निकालने का उसका मन हुआ जिसकी हाल ही में उसने मरम्मत करवाई थी।

उस दिन सोमवार था। शाम के चार बजे उसे अमृता का फ़ोन आया, "आपका समय बर्बाद कर रही हूँ। आगामी इतवार को आपको हमारे यहाँ चाय पर आना होगा। कृपा करके ना मत कहिए।"

यह आवाज़ सुनकर तथा चाय का निमन्त्रण पाकर उसे खुशी हुई। तुरन्त समझ गया कि निःशुल्क काम कर देने के कारण कृतज्ञता दर्शाने के लिए यह चाय की पार्टी दी जा रही है। और परसों खास। पानी भी बरसा था, साल की पहली बारिश। उस बारिश में शायद घर में बरसात का पानी टपका नहीं होगा—यह भी एक कारण हो सकता है ! उसने पूछा, "परसों की बारिश में घर चूआ तो नहीं ?"

"सच बात तो यह है कि इस मरम्मत से टपकना इस क़दर बन्द हो जाएगा, इसका मुझे विश्वास ही नहीं था। एक बूंद भी नहीं टपकी। मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूं! जरूर आइए, इतवार को।"—इन बातों से वह सहसा लजा-सा गया। वह मना करता रहा। किन्तु, अमृता ने उसे मनवाकर ही छोड़ा।

उसमें इस बात की उत्सुकता बढ़ी कि आज से छठे दिन वह अमृता के घर चाय पर जाएगा। उसके सामने बैठकर घण्टों उससे बतियाता रहेगा। फ़ुरसत के समय मन इसी विचार को पगुराता रहा। लेकिन बुधवार की शाम किसी बहाने से उस निमन्त्रण को टाल देने का विचार उसके मन में आया। क्यों? चला भी जाएगा तो कौन-सी आफ़त आ पड़ेगी भला? इस प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिल पाया। फिर भी टाल देने की इच्छा ज़ोर पकड़ने लगी। इतवार के दिन कहीं बाहर जाने का बहाना दूसरे दिन सवेरे निकल आया। बिराजपेट के बोपण्णा नाम के एक सज्जन अपने कॉफ़ी ऐस्टेट में एक नया घर बनवाने के सिलसिले में उसकी सलाह लेने आए। मौक़े का मुआइना उसने जान-बूझकर इतवार को ही रख लिया और मैसूर से शनिवार की शाम को ही निकल जाने की योजना बनाई। शुक्रवार के दिन एक कार्ड उसके पते पर यों पोस्ट किया कि वह उसे ठीक शनिवार के दिन मिल जाए। "कारोबार के सिलसिले में बाहर जाना है। इसलिए कल आपके यहाँ नहीं आ पाऊँगा—खेद है। कृपया क्षमा करें।"—बस, इतनी-सी बात लिख दी। किन्तु, उसे बोपण्णा के कावेरी ऐस्टेट का चक्कर लगाकर जगह का चुनाव, उसकी पृष्ठभूमि, प्रतिवेश, इमारत की लम्बाई-चौड़ाई आदि की नाप-जोख करते समय मन में इस बात का खेद होने लगा कि नाहक मैंने उसके सौहार्दपूर्ण निमन्त्रण को क्यों अस्वीकार किया? आज यदि उसके यहाँ जाकर कल यहाँ आता तो क्या फ़र्क़ पड़ने वाला था? शाम को जब मैसूर के लिए लौट रहा था तब घड़ी की ओर देखकर विचार आया कि इस समय उसके साथ बैठकर गप्पे हाँकी जा सकती है।

मैसूर आकर एक सप्ताह बीत गया था। अमृता का विचार लगभग दिमाग से निकल ही गया था। काम का तनाव भी बढ़ गया था। विराजपेट के ऐस्टेट वाले घर का प्रारूप तैयार करने में मन खासा व्यस्त था। सोमवार दोपहर के एक बजे अमृता का फिर फोन आया। असिस्टेंट नीलकण्ठप्पा अभी-अभी खाने के लिए गया था। उसके लौटने के बाद सोमशेखर जाया करता था, यह रोज़ का सिलसिला था। अमृता ने पूछा, "मिस्टर सोमशेखर हैं?"

"हाँ, मैं बोल रहा हूँ, नमस्कार!"

"मैं डा० अमृता हूँ, नमस्कार! मेरे घर की मरम्मत की बाबत फ़ीस देना रह गयी है। कैसे पहुँचाऊँ? खुद आकर अदा करूँ? या चेक भेज दूं?"

"कैसी फ़ीस ? कौन ऐसा बड़ा काम किया है ? पहले ही आपसे कह दिया है न, उसकी जरूरत नहीं ?"—उसने चौककर कहा।

पल भर के लिए वह चुप रही। फिर बोली, "सुनिए; काम चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका शुल्क अदा करना मेरा कर्त्तव्य है। मित्रों की बात कुछ और होती है।'

"मुझे अपना मित्र ही समझिए, मैडम ?"

"जो व्यक्ति घर आने से और साथ बैठकर चाय पीने से मुकर जाए उसे मित्र कैसे माना जा सकता है ?" उसके इस प्रश्न पर सोमशेखर अवाक् रह गया।

वह बोला, "मुझे तत्काल बाहर जाना पड़ा।"

"हाँ, विराजपेट जाना पड़ा। उसे किसी और दिन के लिए स्थगित किया जा सकता था। कम-से-कम मुझे फोन पर बताया भी जा सकता था कि बात ऐसी है, इतवार के दिन नहीं आ सकेंगे, किसी और दिन आएँगे। लेकिन, इस अंदाज का कार्ड डाक के डिब्बे में फेंककर चले जाना कि 'नहीं आऊँगा', का क्या मतलब होता है ?" उसकी बात खत्म होने पर सोमशेखर को अपनी ग़लती का अहसास हुआ। वह बेचैन हो उठा कि अब क्या बहाना करके बचा जा सकेगा। फिर अमृता ने ही बात जारी रखी, "आपका कार्ड पाकर मुझे क्या लगा, जानते हैं ? मानो मैं बड़ी मुसीबत में हूँ, टपकती छत पर सुर्खी डलवाकर उसकी मरम्मत करवाने की भी मुझमें सामर्थ्य नहीं। इसलिए आपने फीस लेने से इन्कार किया; कृतज्ञता के संकेत-स्वरूप एक उपहार का भी आपने तिरस्कार किया। ठीक है न ?"

"छिः छिः, मेरे मन में ऐसा कोई इरादा नहीं था, मैडम ! [illegible] भी नहीं है। कृपा करके ग़लत मत समझिए। मैं खुद एक दिन आपके घर आकर चाय क्या, खाना खाऊँगा।" क्षमा-याचना के अंदाज में वह बोला।

"ठीक है, कल दोपहर एक बजे खाने पर आ जाइए। चलेगा न ?" अमृता की सलाह को वह तुरन्त मान गया। उसका मन पछताने लगा। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था; वे समझ गई है कि मैंने उद्देश्यपूर्वक उस दिन टाल दिया था। वे समझ रही है कि उनकी माली हालत को देखकर मैंने नजर-अंदाज किया है। फिर, उनकी बातों में उन्मुक्त स्नेह भरा रहता है। [illegible]क मैंने क्यों ऐसे स्नेह का तिरस्कार करने का, उससे वंचित रहने का निर्णय लिया ? इस शहर में अपना कहलाने वाला आख़िर कौन है ? इस विचार से उसका मन हलका हुआ। आकाश की ऊँचाई तक, उसी आकाश के विस्तार तक व्याप्त होने वाली चेतना जाग उठी।

दूसरे दिन दोपहर के ठीक एक बजे वह उस जगह के लिए निकल पड़ा जहाँ

घरों का घना जमाव नहीं, जहाँ भीड़-भाड़ नहीं। दाहिनी ओर पहाड़ जो आकाश की ऊँचाई नापते खड़ा था उस विशाल मैदान वाले पुराने घर के दरवाजे पर वह खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। हेल्मेट उतारकर हाथ में पकड़ लिया और इससे पहले कि वह आगे बढ़कर घण्टी दबाये दरवाजा स्वयं खुल गया और बरामदे की दीवार पर लटकी पुराने जमाने की बड़ी घड़ी ने एक का घण्टा बजाया। "भीतर आइए," मुस्कराते हुए उसने स्वागत किया। भीतर लौंजनुमा भाग में सोमशेखर को ले जाकर एक बड़े किन्तु पुराने और जहाँ-तहाँ फटे सोफ़े पर बिठाया।

"आपका कालेज नहीं है आज?"—सोमशेखर ने बात शुरू की।

"कला विभाग सवेरे साढ़े सात से साढ़े ग्यारह तक चलता है। जब तक अपनी अलग इमारत नहीं बनती मैं पौने बारह बजे ही घर आ जाती हूँ।"—कहते हुए वह सामने वाले सोफ़े पर बैठ गई।

"आपका विषय कन्नड़ साहित्य है न? जब तक मैसूर मे था तब कन्नड़ उपन्यास पढ़ा करता था, कन्नड़ कविताएँ गुनगुनाया करता था। बम्बई की भीड़ में सब छूट गया। कभी-कभी अगर आप पुस्तकें दें तो फ़ुर्सत के समय पढ़ना चाहूँगा। वास्तव में बम्बई छोड़कर मैसूर आने का मेरा यह भी एक उद्देश्य था।" उसने बात जारी रखी। दोनों हँसी-खुशी से आधे घण्टे तक गप-शप कहते रहे। फिर भीतर बड़े पुराने डाइनिंग टेबुल पर खाना लगाकर वह खुद भी सामने बैठ गई। घर में दूसरा कोई नहीं था। सोमशेखर ने समझ लिया कि अमृता के चार और सात वर्ष के बच्चे स्कूल गए हैं। रसम्, सब्जी, पुलाव, फ्रूट-सलाद बनाया था। मना करने पर भी आग्रह करती रही। थाली छिपाने के लिए धरे आड़े हाथों पर उँडेलने का डर दिखाकर सोमशेखर की कटोरी फ्रूट-सलाद से भरती रही। भोजन के बाद पुनः लौंज में आकर सोफ़े पर आमने-सामने बैठ गए। अमृता के जूड़े की चमेली की भीनी-भीनी महक सोमशेखर की नाक में भर रही थी। वह लम्बी किन्तु, हलकी-सी साँस लेकर उन फूलों की महक का मज़ा लेने लगा।

उसे याद हो आया कि अमृता को चमेली बहुत भाता है। उसे हलका रंग बहुत भाता है। उसे याद आया कि फ्रूट-सलाद का रंग भी इतना हलका था कि रंग का आभास मात्र होता था। उसकी साड़ियों का रंग और डिजाइन भी उसी ढंग का रहता है। तमिलों के प्रिय लाल-सुर्ख या जर्द-बसन्ती रंगों से मानो वह डरती हो। उसने अनुमान लगाया कि पंजाबियों का गहरा गुलाबी या लोहित रंग भी शायद वह पसन्द नहीं करती। बिना सोचे-समझे उसने पूछा, "चमेली की महक मालती से भी सुकुमार होती है; इसीलिए आपको चमेली पसन्द है न?" सोमशेखर उसके जूड़े के फूलों की ओर ध्यान दे रहा है, इस बात से अमृता के चेहरे पर लाली-सी छा गई। उस लाली को देखकर सोमशेखर अपने कथन को

एक सामान्य अभिरुचि की बात बनाते हुए बोला, "जो लोग घर बनवाते हैं उनकी रुचि को पहचानकर कह रहा हूँ। अधिक पढ़े-लिखे लोग हलका रंग पसन्द करते हैं। हलकी भीनी-भीनी सुगन्ध उन्हें भाती है। जो कम पढ़े-लिखे होते हैं वे हर चीज़ में तड़क-भड़क चाहते हैं। रंग, गन्ध, स्वाद सभी चीजों में। नाक और जीभ को तिलमिला देने वाली खटाई, नमक, मिर्च, मसाला अनपढ़ लोगों का लक्षण होता है। आपकी रसोई की हर चीज़ में एक नाज़ुकपन, एक सौम्यता थी। ऐसी रसोई बनाने के लिए सुरुचि चाहिए।"

अमृता को अहसास हुआ कि वह पुनः उसकी प्रशंसा कर रहा है। इससे उसका मन खिल उठा। "लगता है आपको भी गहरा रंग, गहरी गन्ध, तेज ज़ायका पसन्द नहीं। इसीलिए आपको यह सब भाने लगा है।"

"तब तो हम दोनों का एक ही वेव-लेंग्थ बन गया।" उत्साहित होकर वह बोला।

साढ़े चार बजे तक वे इसी तरह बतियाते रहे। बीच में ही वह बोला, "पर्वत का पृष्ठभूमि ने आपके घर को बहुत सुन्दर बना दिया है। बड़ा कम्पाउंड भी है। कुछ पेड़-पौधे लगवाइए। सामने वाली पोर्टिको पर मालती की लता चढ़ा देने से इसकी शोभा और बढ़ेगी। घर में फूलों की बागवानी हो तो मन को खुशी होती है। 'उद्यान-कृषि' कार्यालय में मनपसन्द पौधे, कलम, बीज मिलते हैं। अब बरसात भी शुरू होने वाली है। तुरन्त जड़ जमा लेंगे।"

अमृता को यह सलाह बहुत अच्छी लगी। "मैं पहाड़ी इलाके की हूँ। ऐस्टेट वाली हरियाली मुझे बहुत पसन्द है।" वह बोली। सोमशेखर जब जाने के लिए उठा तो अमृता कमरे में गई और चार उपन्यास तथा दो कविता-संग्रह ले आई। उन्हें सोमशेखर के हाथों में थमाते हुए बोली, "फुर्सत से पढ़िए। फ़िलहाल मुझे इनकी जरूरत नहीं है। इनके पढ़ने के बाद और पुस्तकें दूंगी।"

काम के दबाव के कारण उपन्यास पढ़ने का समय तो वह नहीं निकाल पाया, किन्तु फुर्सत के समय कुछ कविताएँ उसने अवश्य पढ़ीं। पर्वतीय पृष्ठभूमि वाले उस मकान से मेल खाने वाले कुछ पेड़, पौधे, कटिंग्स, कलम बीज आदि चुनकर अमृता को लाकर दिए। अमृता ने बड़ी लगन एवं कृतज्ञता के भाव के साथ उन्हें लगवाया। पोर्टिको पर चढ़ने लायक चमेली की लता लगवाई। हर रोज जब वह उसे पानी देने लगती तब अपनी रुचि का खयाल रखने वाले सोमशेखर की याद आए बिना न रहती। अब वे एक महीने में लगभग पन्द्रह बार मिल चुके हैं। दो बार साथ मिलकर अमृता की कार में पहाड़ चढ़कर वहाँ बादलों से घिरे प्रदेश में घूमकर आए हैं। आकाश, बादल, हरियाली, क्षितिज आदि कल्पनाओं का विस्तार करने वाले दृश्यों का 'अवलोकन' करते-करते बातों-बातों में दोनों में परस्पर लगाव बढ़ गया, स्नेह हो गया। सोमशेखर को जब अहसास हुआ कि वह

केवल लगाव या स्नेह नहीं, उसके परे की भावनाएँ है तब वह सहसा वहाँ से लौट पड़ने के लिए बेचैन होने लगा।

बोपण्णा के साथ मैसूर के एक और घर का प्रारूप तैयार करने में सोमशेखर व्यस्त था; फिर भी उसका मन अमृता में अटक गया था। उसके मन को यह ठोस अहसास हुआ कि उसकी अपेक्षा अमृता में प्रेम का स्फुरण अधिक हुआ है। उसके पिछले अनुभव ने इस धारणा की पुष्टि की। उस अनुभव के फलस्वरूप ही वह इस मामले में और आगे क़दम बढ़ाने से हिचक रहा था। लेकिन, मन भीतर-ही-भीतर मधुर भावनाओं का आस्वादन करने लगा था। अमृता से मिलने के लिए मन तड़पने लगता, लेकिन हिचकिचाहट भी होने लगती; मन की बात होंठों पर नहीं आ पाती। फोन किया जा सकता है अथवा स्कूटर से घर तक जाकर भी मिला जा सकता है। दरअसल अपनी क्रिया-शक्ति कार्योन्मुख नहीं हो पा रही है—इसी उधेड़बुन में उसने एक सप्ताह बिताया। एक दिन दोपहर के ढाई बजे जब उसके दफ्तर के फ़ोन की घण्टी बजी तो मन से अमृता का फ़ोन मानकर उसने फ़ोन उठाया। फ़ोन उसी का था—"सुनिए, मेरा खयाल है कि खुद आकर खैर-खबर लेना आपने छोड़ ही दिया है। विश्वास माँगे से नहीं मिलता। फिर ऐसे विश्वास का कोई महत्व भी नही होता। बहरहाल, इस समय फ़ोन करने का मेरा उद्देश्य केवल इतना है कि मेरे घर के पिछवाड़े और आगे के हिस्से में कुत्तों के रहने के जो पुराने माँद है उनकी तुरन्त मरम्मत करवानी है। गाँव के बाहर बना एकाकी घर, पेड़-पौधों से घिरा हुआ, पीछे पहाड़ और छोटे-छोटे दो बच्चों के साथ रहने वाली मैं अकेली औरत। रात में सोते समय अगर कोई चोर-डाकू घर में घुसे तो कम-से-कम जगाने के लिए ही सही, कुत्तों की आवश्यकता को महसूस करके परसों कुत्ते के दो पिल्ले ले आई हूँ। अगर आप चाहें तो मेरा फ़ोन नम्बर नोट कर सकते है; यों कोई जबरदस्ती नहीं।"

बातो के बीच में अमृता की चुभती हुई तानेबाजी और झगड़ालू अंदाज देखकर सोमशेखर को बुरा लगा। फिर भी बातों का सिलसिला बन्द करने का मन नहीं हुआ। वह बोला, "नम्बर मेरे पास है। अभी आधे घण्टे मे पहुँच जाऊँगा।"

"धन्यवाद जैसी औपचारिक बातें मैं नहीं करूँगी। आधा घण्टे का मतलब होता है तीस मिनट। आपकी घड़ी में इस समय दो बजकर इकत्तीस मिनट हुए है न ?"—अमृता बोली।

"हाँ" के साथ उसने बाई कहा। उसे एक नई बात का पता चला कि वह बड़ी उतावली महिला है। आज तक उतावलेपन की बात तो अलग रही, कहीं

तानेबाजी या झगड़ालूपन को उकसाने वाला पैनापन भी नहीं था। जब से नेह की डोर जुड़ी है ये बातें मुखरित होने लगी हैं। क्या यह प्रेम के अनिवार्य अंग हैं ? अथवा उस निराशा के फलस्वरूप उत्पन्न क्षोभ तो नहीं है कि मैं उसके प्रवाह की गति के अनुसार स्वयंस्फुरित होकर प्रतिक्रियाशील नहीं बन पा रहा हूँ ? इसमें अपनी भी ग़लती है। एकदम सहसा सम्पर्क तोड़कर मौन हो जाऊँ तो उसका क्रोधित होना स्वाभाविक है —सोमशेखर ठण्डे दिल से सोचने लगा। यहाँ से स्कूटर पर पहुँचने में ग्यारह-बारह मिनट लगेंगे। पन्द्रह मिनट पहले ही अगर मैं पहुँच गया तो वह खुश हो जायेगी। नीलकण्ठप्पा ने कहा कि वह साढ़े चार तक लौट आएगा। फिर बाहर निकलकर स्कूटर पर सवार हो गया।

जंजीर में बँधे कुत्ते के दो पिल्लों को पकड़े अमृता बाहर ही खड़ी थी। दूर से ही सोमशेखर का स्कूटर देखकर उसने गेट खोला और सीधा स्कूटर भीतर लाने का इशारा किया। उम्र के कम लेकिन चुस्त-तंदुरुस्त और तेज़-तर्रार लगने वाले दोनों अलसेशियन पिल्ले जंजीर पर जोर लगाते हुए भौंकने लगे। जब सोमशेखर भीतर आ गया तो अमृता ने गेट बन्द किया और पिल्लों को चुप कराने लगी। सोमशेखर बोला, "समय से पन्द्रह मिनट पहले आ गया हूँ।"

"जानती हूँ। इसीलिए ठीक समय पर बाट जोहते खड़ी थी।" मुस्कुराते हुए जीत के अंदाज में अमृता बोली।

वह पास आकर कुत्तों को देखता खड़ा रहा। बड़े प्यारे लग रहे थे। उसे उन पर प्यार उमड़ आया। पहचानने से पहले झुककर पीठ सहलाने अगर वह जाएगा तो सम्भवतया काटने दौड़ें। इसलिए चुपचाप खड़ा देखता रहा। उनको दरवाजे के पास बांधकर जब अमृता और सोमशेखर दोनों भीतर लौज में चले गए तब कुत्तों का भौंकना बन्द हो गया। सोमशेखर सोफ़े पर बै[illegible]ग्या। अमृता सामने वाले सोफ़े की ओर बढ़ी तो उसने अपने सोफ़े की बगल की ओर इशारा करके कहा, "इधर बैठिए।"

"क्यों ?" तपाक से उसने पूछा।

"पास रहेंगे तो बतियाने में सुविधा होगी।" वह बोला।

"बतियाने लायक क्या है ?" उसने पूछा।

"अगर मानो तो बहुत है।"

"और अगर न मानूं तो ?"

"न मानने की कोई बात नहीं।"

"मेरे खयाल में मैं मानती ही नहीं।"—वह [illegible]ामने वाले सोफ़े पर ही जाकर बैठी।

"उठकर यहाँ आइए," वह तुनककर बोला।

"मुझ पर हुक्म चलाने का प्रयत्न मत कीजिए। यहाँ हुक्म नहीं चलेगा।"—

वह छूटते ही बोली।

झट से सोमशेखर उसके पास गया और तपाक से अपना हाथ उसके कंधे पर मारा। अमृता के चेहरे पर और आँखों में हैवानी आक्रोश भड़क उठा। उसने भी हाथ उठाया, किन्तु पूरा उठने से पहले ही अपने आपको संभाल कर सिर झुका लिया। सोमशेखर को अपने किए पर पछतावा हुआ। तुरन्त वह बोला, "सॉरी!" अमृता ने अपने झुके हुए सिर को उठाया नहीं। आधा पल के बाद वह पुनः बोला, "सॉरी कहा न! माफ़ कीजिए।" अमृता ने सिर उठाकर उसे देखा। अमृता की आँखों में क्रोध भड़क रहा था। दृष्टि-युद्ध में कोचने के अन्दाज में उसने सोमशेखर के चेहरे पर आँखें गड़ाईं। सोमशेखर की दृष्टि भी अटल हो गई। अपलक वह अमृता को घूरते खड़ा रहा। इस बाजी में न हारने की जिद उसमें पैदा हुई थी। दो-एक पल इसी तरह निगाहों की भिड़ंत के बाद वह बोला, "सॉरी, माफ कीजिए।" अमृता ने देखते-देखते हाथ उठाकर सोमशेखर की बाईं भुजा पर एक जोर की धौल जमा दी। वह मौन खड़ा रहा। सोमशेखर की निगाह को कोंचने वाली अमृता की आँखों मे पानी भर आया। दूसरे ही पल सिसकियाँ भरते हुए पास आकर उसने सोमशेखर के कंधे पर अपना सिर टिका दिया। सोमशेखर ने उसे अपनी मजबूत बाँहों में बाँध लिया।

वह इतना रोई कि कमीज़ की बाँह भीग गई। तब वह बोली, "तुमने 'सॉरी, माफ कीजिए' कहा; इसलिए मैने मारा। फिर कभी ऐसा मत कहना।" अमृता की पीठ पर लम्बी लटकती हुई मोटी वेणी को सोमशेखर निहारता रहा। उसके चमेली के जूड़े की भीनी सुगंध उसकी नाक में प्रवेश कर उसकी चेतना पर छाने लगी। चमेली की सुकुमारता ही नहीं, वरन अपने कानों तक ऊँची अमृता की सारी देह सुकुमार स्पर्श की साकार मूर्ति बनी उसकी देह की टेक लिये खड़ी थी। अमृता की यह निमज्जित भावना उसके मन मे बैठ गई। मुँह खोलने से यह भावाभिव्यक्ति भंग हो जाएगी, इसलिए वह कुछ बोला नहीं।

कुछ समय बाद अमृता हौले से सोमशेखर की भुजाओं से छूटकर रसोई की ओर चली गई। पाँच मिनट में बाहर निकल कर बोली, "अपने कुत्तों की माँद की मरम्मत के लिए शिल्पकार बुलवाया था लेकिन वह घर की मालकिन को ही पिटाई करके गुण्डागिरी करने लगे। अब कहाँ शिकायत दर्ज करे?" उसने शरारत-भरी हँसी बिखेर दी। फिर बोली, "ठीक है, नापने के लिए पट्टी भी तो लाए होंगे?"

सोमशेखर ने [illegible] में हाथ डालकर फीते की पट्टी की डिबिया बाहर निकालते हुए कहा, "इसके बिना अपना कारोबार कैसे चलेगा? बताओ, क्या करना है?"

दूसरे दिन दोपहर के एक बजे जब नीलकण्ठप्पा बाहर गया था, सोमशेखर ने अमृता के घर फ़ोन किया। अमृता ने ही 'हैलो' कहा। "मैं हूँ, पहचाना? या नाम बताना पड़ेगा?"

अमृता बोली, "अपना नाम आप स्वयं बता सकते हैं। मैं बता नहीं पाऊँगी।"

सोमशेखर खुश हुआ।

"कल फ़ोन का नम्बर कहाँ खो गया था?" अमृता ने पूछा।

"नहीं, खोया नहीं! तुम घर पर कब रहोगी, इसका पता नहीं था। अब भी यही लग रहा था कि शायद तुम घर पर नहीं हो।"

"क्यों, निराश हो गए?"

"हाँ, झगड़ालू के हाथ में फँस [illegible]ो गया।"

"फँसे [illegible]दन हो गए। अब सातों जन्म तक छूट नहीं पाओगे। अब फ़ोन पर बातें बघारने की की बजाय सीधे इधर आ जाओ। साथ खाना खाएँगे।"

"नीलकण्ठप्पा खाना खाने गए हैं। उनके आने के बाद ही निकल सकूँगा।"

"तब तो मैं दोनों का खाना लगाकर प्रतीक्षा करती रहूँगी। भूख बर्दाश्त न हुई तो [illegible] मिलाकर एक गिलास पानी पी लूँगी। समझे?"

सोमशेखर गया। दोनों साथ खाने बैठ गए। अमृता बिना किसी छेड़छाड़ के औपचारिक अंदाज में चुप रही। कसमसाहट को सहते हुए सोमशेखर ने चुपचाप खाना खाया—दाल, भात, सब्ज़ी, दही। खाना खाकर, हाथ धोकर वह सोफे पर आ बैठा। कुछ देर बाद अमृता वहाँ आकर बोली, "अगर तुम्हें ऐसा कोई खास काम न हो तो कार में दोनों पहाड़ पर चलें। बच्चों के आने में अभी तीन घंटे का समय है।"

"इस धूप में?" उसने पूछा।

"पहाड़ पर जाने के लिए क्या शाम की ठंडी हवा और रात की दूधिया चाँदनी जरूरी है? धूप में क्यों न जाएँ? तुम जैसे लोगों की सुख [illegible] कामना मुझे पसंद नहीं।" फिर तुरन्त वह बोली, "तुम नहीं चाहते हो तो न [illegible]। तुम्हारे लिए ठण्डा पंखा लगाऊँ?" वह पंखे के रेग्युलेटर की ओर बढ़ी। हवा ठण्डी थी, फिर भी कसमसाहट के कारण सोमशेखर के चेहरे पर बेचैनी दीख पड़ी। अमृता ने इसे भाँप लिया और अपनी तुनकमिजाजी पर खुद शरमा गई। दो-एक पल रेग्युलेटर को ही निहारने के बहाने सोमशेखर की निगाह से अपना चेहरा चुराकर खड़ी थी। फिर उसकी ओर मुड़कर बोली, "अब मैं सच्चे दिल से सॉरी कहती हूँ। माफ़ी चाहती हूँ। गलती के लिए अगर क्षमा नहीं दोगे तो मैं सिर नहीं उठा पाऊँगी।" उसके चेहरे में क्षमायाचना का अपरा[illegible] साफ़ नजर आ रहा था। सोमशेखर के चेहरे की नाराज़गी गायब हो गई। वह [illegible]ते हुए बोला, "चलो, चलते हैं।" अमृता बोली, "इस [illegible] में चलने को इसलिए कह रही हूँ कि दोपहर की धूप में पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर जब हम देखने लगेंगे तब चारों ओर की प्रकृति घुलकर छोर को फैलाती हुई अपने आकार को खोती हुई-सी दिखाई देने लगती है। और अगर लू भी चले तो नीरवता वहाँ जमी रहती है।

उसमें रात की चाँदनी और साँझ की लालिमा से भी अधिक वास्तविकता होती है। पता नहीं, तुमने इसका अनुभव किया है या नहीं !" सोमशेखर ने याद कर लिया—एक बार धूप में उसने शिवगंगा पहाड़ की चोटी से चारों ओर देखा था। अमृता की बात सच लगी। "हाँ! चलो।" पास जाकर अमृता की पीठ पर हाथ रखते हुए वह आगे निकला।

कार बाहर निकलने लगी तो कुत्ते भौंकने लगे। कार बाहर निकालने के बाद सोमशेखर ने भारी, बेरंगी, पुरानी लकड़ी का गेट बन्द करके उस पर सिट-कनी चढ़ाकर कार के बाएँ दरवाज़े से अमृता की बगल में बैठ गया। अमृता ने पूछा, "तुम ड्राइव करोगे ?"

"बम्बई में करता था। अपने दफ्तर की ही कार थी। यहाँ आने के बाद स्टियरिंग छुआ नहीं, तुम ही चलाओ। तुम्हारा ड्राइविंग बड़ा स्मूथ रहता है।"

प्रशंसा की बात पर वह मुस्कुराई। फिर बोली, "संयम खोए बिना अगर तुम निर्देश करते रहोगे तो मेरा ड्राइविंग बड़ा स्मूथ रह सकता है।"

कुछ ही देर में कार पहाड़ की चढ़ाई पर थी। अमृता के चेहरे पर प्रसन्नता खेल रही थी। धीरे-धीरे ड्राइव करते हुए रास्ते को दायें-बायें देखते कहते जा रही थी, "इधर देखो, अरे उधर देखो। मैं तो पहाड़ी प्रदेश की हूँ। वहाँ के उतार-चढ़ाव और वहाँ की हरियाली के सामने यह कुछ भी नहीं है। फिर भी रास्ते की चढ़ाई का स्वभाव कहाँ जाएगा भला ! बाईं ओर देखो, हम कितनी ऊँचाई पर आ गए हैं। इधर बाईं ओर। तुम दाईं ओर ही देखने में लगे हो।" यह सब कहकर वह सोमशेखर का ध्यान आकर्षित करने में लगी थी। वह अमृता के निर्देशों के अनुसार देखता रहा। कुछ और ऊँचाई पर जाने के बाद तनिक समतल जगह देखकर सड़क की बगल में कार रोककर वह बोली, "अब बाईं ओर देखो। जितनी ऊँचाई पर जाओ दृष्टि उतनी ही विशाल होती जाती है और मानो भीतर की आत्मा हमें ऊपर उठाकर कहीं स्थापित करने का प्रयत्न करने लगती है। है न ? क्या यह फ़र्क वास्तविक नहीं लगता ?" अमृता ने इंजन बंद किया और अपने बगलवाला दरवाजा खोलकर उतरने लगी। सोमशेखर भी अपनी तरफ का दरवाजा खोलकर उतर पड़ा। दोनों कुछ दूर चलकर एक चट्टान पर साथ-साथ खड़े हो गए और पूर्व दिशा वाले पठार को निर्निमेष निहारते रहे। सोमशेखर का सिर चिलचिलाती धूप में तप उठा। अमृता को मानो इसकी परवाह ही नहीं थी। अमृता के कहे बिना सोमशेखर अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ। अमृता पठार के उस पार चट्टानों की कतार में उमड़ती हुई लू को टकटकी बाँधे देख रही थी। वह बोली, "उस लू से लगता है कि काले सख्त चट्टान भी मानो पिघलने की स्थिति को पहुँच गए हैं। है न ?" उसने हामी भरी। कुछ

देर बाद वह बोली, "आगे चलेंगे ?" सोमशेखर उसके साथ लौट पड़ा और दरवाजा खोलकर कार में बैठ गया। कुछ दूर जाने के बाद सहसा कार रोककर वह बोली, "उधर देखो, सारा खाड़ी प्रदेश कैसे मात्रिक की त्रिकोणाकृति जैसा दिखाई देने लगा है !" सोमशेखर उत्सुकता दिखाते हुए हामी भरकर स्थिर दृष्टि से देखने लगा। वह बोली, "कितनी बार आई हूँ, मुझे ऐसा कभी दिखाई नहीं पड़ा था।" बात जारी रखते हुए बोली, "इंजन की थरथराहट में नीरवता भंग होती है।" उसने इंजन बन्द किया। कुछ देर कार में बैठे-बैठे उस दृश्य को निहारकर फिर गाड़ी चलाना शुरू किया। और दाएँ-बाएँ के बदलते नज़ारों की ओर सोमशेखर का ध्यान आकर्षित करते हुए खुद भी बच्चों की तरह निहाल होती रही। चढ़ाई के समय वाली घनी हरियाली जब आई तब और अधिक मुखर होने के बदले उसने सहसा चुप्पी साध ली। सोमशेखर को ही कहना पड़ा, "इधर देखो, कैसी घनी हरियाली है !" उसकी बात अनसुनी करके अमृता ने अपनी अनिच्छा का भाव चेहरे पर व्यक्त किया। आधे पल के बाद बोली, "सुनो ! तुम्हें मेरे साथ हमारे कॉफी के बगीचे चलना चाहिए। उसके पास जेनकल गुड्ड नाम का एक पहाड़ है। हम दोनों एक-साथ उस पहाड़ पर चढ़ेंगे। बिसले घाटी में उतरकर कार से वहाँ उस पहाड़ पर चढ़ना पड़ता है। शृंगेरी के उस पार एक तुंगा की पहाड़ी है। हम दोनों उस पर चढ़कर चारों ओर का दृश्य देखेंगे। मुल्लय्य की पहाड़ी और केम्मण्णगुंडी जाकर एक-एक सप्ताह हमें वहाँ रहना चाहिए। चलोगे ? सच ?" कार ड्राइव करते हुए ही उसने अपना दाहिना हाथ इस ओर बढ़ाया। सोमशेखर अपना दाहिना हाथ उसकी हथेली पर रखकर बोला, "हाँ, सच।" उसके चेहरे पर भी उतनी ही उत्सुकता लाकर अमृता के मुँह से बात निकल पड़ी, "एक ही वेद्......" फिर उसने बात काटकर जिह्वा चबा ली।

अमृता वहाँ से कार सीधी मन्दिर के पास ले गई। यह जानते हुए भी कि मन्दिर बंद होगा, उसने पास वाली दुकान से फल-फूल, नारियल, अगरबत्ती हल्दी-सिन्दूर वगैरह एक छोटी-सी चंगेरी में खरीद ली। हल्दी और सिन्दूर की पुड़िया खोलकर पादुका वाले जगत की पूजा की, नारियल फोड़ा, अगरबत्ती जलाकर देवी की दिशा की ओर धूप उतारा। भक्तिभाव से आँखें बन्द करके तीन बार प्रदक्षिणा करके नतमस्तक बैठ गई। फिर बड़ी देर तक आँख बन्द करके ध्यान-मग्न बैठी रही। उसके बाद सिन्दूर की पुड़िया में उँगली डालकर चुटकी-भर सिन्दूर निकाला और सोमशेखर की भौंहों के बीच में लगाया। आँखें बन्द करके उसने चुपचाप लगवा लिया। फिर वह अनजान-सी बनकर खड़ी रह गई। सोमशेखर भी अनजान-सा खड़ा रहा। एक पल, दो पल, और कुछ समय के बाद सहसा अमृता के चेहरे पर मानो आग भड़क उठी। वह बोली, 'सॉरी, हमारा

यहाँ आना ग़लत हुआ।" हतप्रभ-सा सोमशेखर बेचैन हो उठा। उसने पूछा "क्यों ?" वह बोली, "चलो, तुम्हारे दफ्तर तक पहुँचा देती हूँ। लेकिन तुम्हारा स्कूटर तो हमारे कंपाउंड में है। वहीं ले चलती हूँ। अपना स्कूटर लेकर चले जाना।"

सोमशेखर की बेचैनी और बढ़ गई। "वजह बताओगी तो सुधार किया जा सकता है। नाहक गुस्सा करोगी तो कैसे पता चलेगा ?"

"वजह बताकर, आवेदन-पत्र भरकर अनुदान माँगने वाली भिखारिन मैं नहीं हूँ. चलो।"—वह बोली।

"तब मैं नहीं चलूंगा। अपनी कार में आप चली जाना। मै पैदल चलकर आऊँगा अथवा सिटी बस या कोई और साधन मिल जाएगा।"

अमृता सरपट वहाँ से चली गई। फल-फूल, हल्दी-सिन्दूर वाली चंगेरी वहीं पड़ी रही।

सोमशेखर कुछ समझ नहीं पाया। वह इतना-भर समझ पाया कि अमृता में अचानक क्रोध भड़क उठता है। उसे अहसास हुआ कि ऐसी औरत के साथ स्नेह का निर्वाह कठिन है। सीढ़ियों वाले रास्ते से उतरकर मैसूर शहर पहुँचने का मन हुआ। ध्यान आया कि जूते कार में ही रह गए। एक दिन नंगे पाँव चलने से क्या फर्क पड़ने वाला है। दफ्तर पहुँचकर नीलकण्ठप्पा के जरिए स्कूटर मँगवाया जा सकता है। लेकिन उसे अहसास होने लगा कि अदृश्य ने उसे वहाँ इतनी बुरी तरह बाँध दिया है कि एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। झटका देकर अगर वह उस बंधन से छूट निकलेगा तो ? उसे उन शून्य सूचनाओं का आभास होने लगा कि वह बंधन हमेशा के लिए टूट जाएँगे और वह पुनः उनसे संबंध स्थापित नहीं कर पाएगा। उसे खोलने के लिए उसकी मानसिक शक्ति जाग नहीं रही थी। वह वहीं फलफूलों वाली चंगेरी के सामने चुपचाप बैठ गया। मक्खियाँ भिन्नाने लगीं। अमृता द्वारा चढ़ाए गए नारियल के टुकड़ों पर अपना रूमाल ढाँककर वह मौन वहीं बैठा रहा। इसी अवस्था में लगभग आधा घण्टा बीत गया। एक बेतुका प्रश्न उसे सताने लगा, 'वह चली गई है; मैं भला क्यों यहाँ बैठा हूँ ?' फिर भी, उठकर जाने का मनोबल डूब चुका था। यह कैसी दुविधा में फँस गया ? लेटने के लिए खुली जगह के सिवा कुछ नहीं है। पेंट पहने एक ही मुद्रा में बैठकर रीढ़ की हड्डी पिराने लगी है। फिर भी उठकर चल देने का पक्का इरादा नहीं बन पा रहा है।

सहसा उसने अमृता को वहाँ खड़े देखा। उसके चेहरे से पछतावा और हार की भावना टपक रही थी। उसके चेहरे की स्वाभाविक लाली सफेदी में बदल गई थी। करीब आकर खड़े खड़े ही वह बोली, "तुम्हारा कहना बिलकुल सच है, वजह बता दी जाए तो सुधारा जा सकता है। नाहक गुस्सा करने से कैसे पता

चलेगा ? अब तक तुम्हें पता चल गया होगा कि मैं तुनकमिज़ाज हूँ । फिर भी माँगकर पाने के स्थान पर स्वयं-प्रेरणा से जो प्राप्त होता है, वह एक खास अर्थ रखता है। है न ?"

अमृता के लौटने से सोमशेखर को मानो नई राहत मिल गई थी। अब तक वह जिस बेचैनी और उलझन में था मानो वह अनायास गायब हो गयी हो। उसने पूछा, "बताओ, क्या बात है ?"

"मैंने तुम्हारे माथे पर सिन्दूर का टीका लगाया। उसी तरह मेरे माथे पर भी टीका लगाने का विचार तुम्हारे मन मे क्यों नहीं आया ?"

"ओह !" वास्तव में सोमशेखर लज्जित हुआ। तुरंत झुककर उसने पुड़िया से चुटकी भर सिन्दूर लिया और अमृता के माथे पर लगाया। अमृता का चेहरा खिल उठा। सोमशेखर की भावनाओं को मानो नया आयाम मिल गया। वह बोला, "मुझे माफ करना।"

"माफी माँगोगे तो मार खानी पड़ेगी।" अमृता ने हाथ उठाया, फिर तुरत हाथ नीचे लेकर दबी जबान में बोली, "यह मन्दिर है, आम लोगों की जगह। लोग देखेंगे, इसलिए तुम्हारी हड्डियाँ टूटने से बच गई।" सोमशेखर का मन और भी हलका हो गया। दोनों बाहर निकले। दोनों साथ-साथ चलते पास वाली डाभ की ढेरी के पास पहुँच गए और डाभवाले से डाभ खरीदकर पानी पिया। वहाँ से कार की ओर कदम बढ़ाते समय सोमशेखर की निगाह दाईं ओर दूर पर फूल बेचने वाली बुढ़िया की चंगेरी पर गई। दौड़ कर उसने फूल देखे। चमेली के फूल थे, एक गजरा खरीदकर ले आया। उसे देखकर अमृता का चेहरा खिल उठा। हाथ बढ़ाकर ले लिया। जब दोनों कार मे बैठ गए तब बोली, "ऐसी होनी चाहिए अंत प्रेरणा।" अमृता कार स्टार्ट करने लगी तभी सोमशेखर ने बगल मे रखे फूलों का गजरा उठाकर अमृता के जूड़े में पहना दिया। सुकुमार सुगंध वाली, सुकुमार सुषमा से भरी चमेली अमृता के जूड़े में सटकर बैठ गई। इंजन स्टार्ट करके कार को रोककर अमृता अपने खुले पलकों को बंद करके भाव-विभोर कुछ क्षण बैठी रही और फिर बोली, "जहाँ से अपना घर दिखाई देता है उधर चलें ?" सोमशेखर बोला, "मै भी यही कहने जा रहा था।"

"सच ?"

"हाँ, सच।"

"तब तो तुम्हारी वेवलेंग्थ वाली थिएरी प्रूव करने मे तुम्हें सुविधा हुई।" मनमोहक शरारती नजर से उसकी ओर देखकर अमृता ने स्टीयरिंग से धीरे-धीरे पाँव हटाया।

ललितमहल प्रदेश की ओर यानी पहाड़ के उत्तरी पार्श्व में पूर्व-पश्चिम की दिशा में जाने वाली सड़क पर कार एक पेड़ के नीचे रुक गई। इसी पेड़ के नीचे

वह पहले भी आठ-दस बार कार रोककर अपने इस घर को निहारते खड़ी रही थी। इस रास्ते से गुजरते समय नीचे का प्रपात, उत्तर की ओर फैला हुआ मैसूर शहर, हरे-भरे खेत, श्रीरंगपट्टण, संगम आदि को निहारते पहले भी अकसर खड़ी रह जाती थी। अपनी इतनी प्यारी पहाड़ की तलहटी में ही अपना पुश्तैनी घर पाकर वह बहुत खुश हुई थी। दोनों जब अपनी-अपनी बगल वाले दरवाज़े से उतर पड़े तब अमृता सोमशेखर के पास आकर बोली, "उधर देखो, तीस फीट नीचे एक सपाट काला शिलाखण्ड दिखाई पड़ता है न ? यहाँ से ठीक नज़र नहीं आता। जंगली आम की ओट में है। चलो, वहाँ चलते हैं। बैठने के लिए बढ़िया जगह है।" कीकर की झाड़ी के बीच से रास्ता बनाकर दोनों उतर पड़े।

काला शिला-खण्ड साफ़-सुथरा, मानो खास बैठने के लिए ही बना था। जंगली आम के दो पेड़ आपस में उलझे हुए धूप से बचाने के लिए सिर पर छॉवन बनकर और रास्ते की ओर हरी टट्टी का आकार लिये खड़े थे। "बढिया जगह खोज निकाली है," कहते हुए सोमशेखर रुक गया। उसकी दायीं ओर खड़ी होती हुई अमृता बोली, "देखूं तो, हमारे घर को पहचानो एक सेकेंड में, क्विक् !"

"मैं भी उसी को खोज रहा हूँ। उधर देखो, वहाँ, उस ओर!" उसने निशाना लगाकर उँगली से निर्देश किया।

"मुझे तुम्हारा स्कूटर नजर आ रहा है।" अमृता बोली।

"तुम्हारी आँखें मुझसे भी तेज हैं, मानता हूँ। लेकिन, स्कूटर इतनी ऊँचाई से दिखाई नहीं देता।" कहते हुए सोमशेखर ने उसका मुँह देखा।

"अगली बार दूरबीन लानी होगी।" कहते हुए वह शिला-खण्ड पर बैठ गई। सोमशेखर उसकी बगल में बैठा। एक-दूसरे के कंधे सटे हुए थे। चमेली की हलकी भीनी-सी महक सोमशेखर की नाक में समा रही थी। वे जिस शिला-खण्ड पर बैठे थे उसके बाहर की चिलचिलाती धूप ने पथरीले तालाब पहाड़ की ढलान, नीचे के घर, गाँव, गली आदि सभी को तप्त कर रखा था। उसी को निहारती अमृता ने कुछ देर रुककर उससे पूछा, "ऐसी धूप में ताप से पिघलती सृष्टि को देखकर तुम्हें कैसा लगता है ?"

"इससे तेज धूप देखी है मैंने। मैंने नागपुर, औरंगाबाद, राजस्थान आदि के मैदानों में काम किया है।"

"मैंने तुम्हारा अनुभव नहीं पूछा। तुम्हें क्या लगता है, यही पूछा है।"

'देखता रहूँ तो मायूसी छाने लगती है।"

"एक्ज़ैक्ट्ली!" अपना बायाँ हाथ सोमशेखर के दाएँ घुटने के गिर्द रखकर बोली, "मुझमें जो भावनाएँ उठती हैं, अगर वही भावनाएँ तुम्हारे मन में भी उठने लगें तो मेरे मन को सांत्वना मिलती है, राहत मिलती है। वास्तव में मुझे क्या लगता है, जानते हो ? सारी सृष्टि, पेड़-पौधे, नदी, सागर, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र-

मंडल से भरा विशाल आकाश सारे-के-सारे दु:ख के ताप में मानो पिघलते जा रहे हैं ।"

"यह बुद्ध देव की बात हुई ।" तपाक से सोमशेखर बोला ।

इससे अमृता को चोट लगी । चोट की ध्वनि नाराजगी में व्यक्त हुई, "बुद्ध देव ने पहले कहा था, इसका मतलब यह तो नहीं कि मेरी अनुभूति मिथ्या है । तुम्हें इतना तिरस्कार क्यों है ?"

"तिरस्कार नहीं," अमृता का हाथ अपने घुटने से हटाकर अपने हाथ में लेकर वह बोला, "सोचा कि शायद तुम दार्शनिक पहलू पर बोल रही हो, इसलिए कहा।"

"मैं कभी दूसरों की दार्शनिकता की बात नहीं करती । मेरे पास अपनी दु:खद अनुभूतियों का इतना भण्डार है कि आज तक दर्शन पर बड़ी-बड़ी बातें करने वाले जितने भी दार्शनिक हुए हैं, उन सबको मैं सामग्री दे सकती हूँ," शून्याकाश में धधकते हुए अदृश्य ताप को अर्धनिमीलित आँखों से निहारते हुए वह बोली । सोमशेखर के मन में अमृता के प्रति और अधिक निकटता का भाव उपजा । बिना बोले वह उसी आकाश के अति ताप के कारण नीलिमा में बदलते हुए रंगों की ओर टकटकी लगाए बैठा रहा । अमृता का हाथ उसकी दाहिनी हथेली में ही था । अमृता पूरी तरह अन्तर्मुखी बन गई थी । कुछ देर बाद अपना बायाँ हाथ सोमशेखर के दाएँ हाथ में उलझाकर वह बोली, "सुनो, मुझे लगता है कि हम आपस में एक-दूसरे के सामने अपने-अपने अन्तर्मन की सच्चाई को उघाड़ लें । उसे जाने बिना स्नेह को आगे बढ़ने नहीं देना चाहिए ।"

"अन्तर्मन की सच्चाई से क्या मतलब ? अब हमारे मन में जो भावनाएँ हैं क्या वही ?" सोमशेखर ने गम्भीर होकर पूछा ।

"दोनों जानते हैं कि इस समय कैसी भावनाएँ भरी हुई हैं । बताने की आवश्यकता नहीं । मेरी इच्छा है कि बिना किसी दु:ख के हम अपने-अपने मन की बातें कह लें । मैं खुद अपनी बात पहले बताऊँगी । सुनो ! अभी-अभी मैंने कहा था न कि बड़े-बड़े दार्शनिकों को भी सामग्री देने लायक मेरे पास दुखानुभूतियों का भण्डार है । वह सदा मेरे साथ रहने वाला है और वही मेरे अन्तर्मन की सच्चाई है । कई बार खयाल आता है कि जीने का कोई अर्थ नहीं : मर जाने से शरीर को पीड़ा से तो मुक्ति मिल जाती है । केवल खयाल ही नहीं, वरन् बाढ़ की तरह बहा ले जाने वाली भावना उमड़ पड़ती है ।"

"ऐसा क्यों ?" सोमशेखर ने व्याकुल होकर पूछा । "मैं नहीं जानती । शायद कोई साधारण कारण भी होगा । लेकिन जीवन की बुनियादी प्रवृत्ति के लिए कारण-वारण सब गौण होते हैं । फिर कभी उनके बारे में बताऊँगी । लेकिन तुम्हें यह कहकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि कई लोगों के जीवन में ऐसा सब कुछ होता रहता है, उसके लिए क्यों परेशान होती हो ! ठीक

है, अब तुम बताओ कि तुम्हारे अंतर्मन की सच्चाई क्या है ?"

सोमशेखर कुछ देर बैठा आत्मविश्लेषण करता रहा। अंतर्मन की सच्चाई किसे कहे ? पढ़ाई-लिखाई ? नौकरी ? बम्बई में मित्र के साथ किया हुआ अपना निजी कारोबार ? बम्बई से ऊबकर मैसूर आने की बात ? क्या ये सारी बातें अंतर्मन की सच्चाई कहलाएँगी ? अपने आपको तौलते हुए वह नीचे की गहराई निहारने लगा। कुछ देर बाद अमृता बोली, "बताने को मन नहीं करता हो तो छोड़ो। किसी भी बात में जबरदस्ती अच्छी नहीं होती।" सोमशेखर का दायाँ हाथ अमृता की दोनों हथेलियों की गरम पकड़ में था।

"मेरा ब्याह हुआ था और एक बच्चा भी था। चार वर्ष पहले दोनों मर गए," वह बोला।

"मैं जानती हूँ। यह बात ऐसी है जिसे हर कोई जान सकता है"—अमृता बोली।

"एक बात है—जिसे कोई नहीं जानता, कोई नहीं। अपने मित्र, बिजनेस-पार्टनर शाह को भी नहीं बताया। अब तुम से कहने को जी चाह रहा है। बम्बई में मुझे एक महिला से स्नेह हुआ था। यह उन दिनों की बात है जब मेरी पत्नी अभी जीवित थी। हम दोनों दो वर्षों से भी अधिक समय तक सप्ताह मे दो बार और हर बार पाँच-छह घंटों तक अकेले में रहा करते थे। अकेला का मतलब खिड़की-दरवाजे सब बन्द करके, निरातंक होकर, दैहिक संपर्क में। जब तक साथ रहती थी तब तक वह ग़जल की पंक्ति-दर-पंक्ति का उद्धरण देते हुए प्रणय-भावना की अभिव्यक्ति करती रहती थी। हम दोनों कितनी ही महफिलों मे साथ-साथ गए थे। मेरा खयाल था कि जीवन का अभिप्रेत इसी प्रकार के प्रणय और उन्माद की लहरों पर तैरते हुए यात्रा तय करना है। उन दो वर्षों में उसने मुझे भरपूर दैहिक तथा भावनात्मक सुख दिया। सुख का मतलब है मज़ा। और फिर सहसा एक दिन सम्बन्ध टूट गया।"

इन बातों को सुनते समय अमृता ने जो सोमशेखर का दाहिना हाथ पकड़ रखा था, वह पकड़ ढीली पड़ गई। इस ओर सोमशेखर का ध्यान नहीं गया। अपनी अजानी उद्विग्नता के दबाव में उसने इतना सारा कह दिया।

"क्यों टूट गया ?"—अमृता ने शान्त किन्तु भावहीन आवाज़ में पूछा।

"एक दिन उनके घर गया। शाम के सात बजे। मोहार का दरवाज़ा बन्द था। बाहर जूते उतारकर दरवाज़ा खोलकर मैं भीतर चला गया। वह खुद संगीत सीख रही थी। मैं जानता था कि तबला-मास्टर के साथ वह रियाज़ किया करती थी। उस दिन वे दोनों एक-दूसरे की बाँहों में बँधे थे। जीविका के लिए आए हुए तबलची की बाँहों में। व्हिस्की की गंध भी आ रही थी। मुझे उसने देख लिया। उसकी अवस्था, यानी कि बाँहों में, केवल आलिंगन में, उससे आगे वाली मंजिल

पर नहीं, मैंने देख लिया। मैं खुद सरपट लौट पड़ा। फिर मैंने उनसे संपर्क करने की चेष्टा नही की। उसने भी मुझसे संपर्क नहीं किया।"

"यानी कि जिसे नाचने वाली कहते हैं, उसी वर्ग की थी वह ?" अब अमृता के हाथो ने सोमशेखर के हाथ पूरी तरह छोड़ दिए थे।

"नहीं, मद्रासी महिला थी वह। मेरी ही आयु की। तब उन दिनों पैंतीस की रही होगी। तीन लड़कियों की माँ। पति केन्द्र सरकार के बड़े ओहदे पर थे। उसने अमरीका से पी-एच० डी० की थी और स्नातकोत्तर विभाग में रीडर थी।"

अमृता ने अधिक कुछ पूछा नहीं। अगर अमृता पूछ लेती तो सोमशेखर सारी बातें कहकर जी हल्का कर लेने की लहर में था। लेकिन, अमृता की चुप्पी के कारण सोमशेखर उधेड़-बुन मे पड़ा रहा कि वह अपनी बात कैसे आगे बढ़ाये। इतने में अमृता का हाथ उससे दूर हट गया था। वह ताड़ गया कि इस घटना को सुनने के बाद अमृता से जिस नाराजगी की प्रत्याशा थी वह टल गई। उसे ऐसा लगा कि जिस आम के पेड़ के नीचे वे बैठे थे, उसकी टहनियों की छाया के उस पार की नीरव धूप सब कुछ दूर करती जा रही है। वह चुपचाप बैठा था। उस मौन की गम्भीरता को बढ़ाने के अंदाज में अमृता धूप भरे आकाश की ओर एकटक देखे जा रही थी। कुछ देर बाद वह उठ खड़ी हुई और बोली, "मैं चलती हूँ। अगर तुम्हें भी चलना है तो साथ ले चलूँगी।"

सोमशेखर नाराज हुआ—"तुम अकेली जाना चाहो तो जा सकती हो।" अमृता ने अपनी धधकती आँखों से उसकी ओर मुड़कर देखा। लेकिन सोमशेखर ने उसका सामना नही किया। सामना करने या किए जाने की क्षमता अमृता में नही है—इस अंदाज में वह धूप की लू में भुनती हुई कीकर-कँटीली ढलान की ओर देखने लगा। एकाध पल के बाद वह बोली, "बस !" सोमशेखर उसकी ओर मुड़ा। जूड़े में पहने हुए चमेली के फूलों का गजरा अपने दोनों हाथो से निकाल कर अमृता ने सोमशेखर के सामने वाली धूप में तपी सपाट शिला पर फेंक दिया और उसके चेहरे की ओर ताकने लगी। सोमशेखर कुछ नही बोला, फिर वह क्रोध में फुफकारती हुई-सी पीछे मुड पड़ी और जहाँ कार रोकी थी उस ओर कँटीली झाड़ी के बीच सावधानी से रास्ता बनाकर चलने के बदले सरपट आगे बढ़ने लगी। साड़ी का छोर कीकर से उलझकर टर्र के साथ फटने की आवाज सोमशेखर तक सुनाई दी। अमृता ने चढ़ने का क्रम रोका नहीं। उलझे हुए साड़ी के छोर को छुड़ाने की चेष्टा भी उसने नहीं की। उसकी ओर देखने के लिए सोमशेखर ने जो अपनी गर्दन घुमाई थी उसे फिर से मोड़कर धूप से कुम्हलाते हुए पठार की ओर देखने लगा। करीब तीन-चार मिनट में फट के साथ कार का दरवाजा बंद होने की आवाज सुनाई दी और इसके साथ-ही-साथ कार के स्टार्ट होने

की ओर आगे बढ़ने की आवाज़ भी सुनाई दी। यह औरत तुनकमिज़ाज है, गुस्सैल नहीं, मनमौजी किस्म की—सोमशेखर ने मन-ही-मन में सोचा। उसके मन में आया, वह फिर कभी उसका चेहरा नहीं देखेगा। ऐसी औरत के आकर्षण में आने का खेद, एक ग्लानि-सी मन में भर गयी—वास्तव में मैं दूर ही चला गया था। वह खुद पीछे पड़ गई और घर बुलाया। अब मेरे द्वारा पहनाए गए फूलों को निकालकर निर्ममता से फेंक कर चली गई। उसके मन की गहराई में एक कसक-सी होने लगी है। क्या यह तिरस्कार की कोई वेदना है ?—कुछ देर बाद यह प्रश्न उसके मन में उभरा। उसके तिरस्कार से अपने को क्यों वेदना होने लगे, भला ? उसने अपने मन को समझाया। कुछ देर वह वहाँ यों ही बैठा रहा। लेकिन उसे लगा कि अब और बैठ पाना असम्भव है। अकेलापन उसे खलने लगा। उठ खड़ा हुआ। नीचे, वहाँ कुछ दूरी पर उसका घर दिखाई दे रहा है। कंपाउंड में जिस स्कूटर को अमृता देख पायी थी वहाँ अपना स्कूटर खड़ा होगा—इन विचारों में डूबा हुआ वह सावधानी से झाड़ी मे रास्ता बनाकर ऊपर के रास्ते तक चढ़ आया। वहाँ से चाहे किसी भी रास्ते से जाए उस चिलचिलाती धूप में मैसूर पहुँचने के लिए तीन-चार मील की दूरी तय करनी पड़ेगी। इस बात के अहसास के साथ अमृता के कंपाउंड में रखा अपना स्कूटर याद आए बिना न रहा। जल्दी कोई ऑटो या बस पकड़कर चला जाए और चाभी देकर नीलकण्ठप्पा के ज़रिए स्कूटर मँगवाया जाए—यह विचार उसके मन में आया और वह ढलती धूप में पहाड़ के ढलानवाली सीढ़ियों की ओर बढ़ा।

ऑटो में जाकर नीलकण्ठप्पा स्कूटर ले आया। "सर, दो कुत्ते पाल रखे हैं। साँखल छुड़ाकर मुझे काटने दौड़ पड़े। मैडम ने आकर उन्हें पकड़ लिया और स्कूटर लेने दिया"—नीलकण्ठप्पा ने बताया। मन हुआ कि पूछे, 'और कुछ कहा ?' फिर सोचा कि अगर कहती तो क्या नीलकण्ठप्पा स्वयं न बताता ? अमृता के कुछ कहने या न कहने से अपना क्या मतलब ! इस उपेक्षा-भाव से वह अपने कामों में व्यस्त होने की चेष्टा करने लगा। रात में बड़ी देर तक उसे नींद नहीं आई। अपने मन को सांत्वना दी कि ऐसी घटनाओं से जब मन विक्षुब्ध होता है तो इस प्रकार का अहसास होना स्वाभाविक है। साथ ही वह इस बात से चौंक भी गया कि वह व्यर्थ ही इस लगाव में क्यों पड़ गया ! घर की मरम्मत करवा दी। कुछ परिचय बढ़ा; बातों-बातों में यों ही कुछ छेड़छाड़ हुई होगी। बस ! इतनी-सी बात के लिए मैं परेशान क्यों होऊँ भला ?—बुद्धि ने दलील दी। फिर भी नींद कोसों दूर रही। इस तरह दो दिन तड़प-तड़पाकर, जब तीसरे दिन सोया तो, कुछ ही देर में नींद आ गई। पौ फटने तक गहरी नींद सोया। मन हलका हो उठा। जागकर जब चुस्त होकर बिस्तर पर लेटा था तब अपने-आप कह लिया : 'अंतर्मन की सच्चाई बताने का अनुरोध उसने किया था। आज

तक जो किसी के सामने मुँह नहीं खोला था, और भविष्य में किसी के जान सकने की सम्भावना भी नहीं थी, ऐसी घटना उसके सामने क्यों भला कहने गया ?' गलती अपनी ही लगी। फिर दो पल बाद उसके मन में प्रश्न उठा कि सच कहे जाने के सन्दर्भ मे अगर सच्चाई छिपाई जाती तो क्या वह मिथ्या नहीं बनता ? जो कहा था वह उसे ठीक ही लगा। लेकिन जिसका जिक्र किसी के सामने नहीं किया था उसे अमृता के सामने कहने की ऐसी कौन-सी प्रेरणा अपने में उत्पन्न हुई ? इस प्रश्न पर वह स्वयं चौंक उठा।

विराजपेट वाले बोपण्णा के घर की योजना उनकी रुचि के अनुरूप सम्पन्न हुई थी। केवल योजना ही नहीं, वरन् तामीरात की देखरेख भी उसी की थी। जब से पहाड़ पर अमृता उससे रूठकर चली गई तब से अपने कारोबार में मन लगा पाना सोमशेखर के लिए कठिन हो गया था। सात-आठ दिनों में कारोबार मे पूरी तरह डूब तो गया, फिर भी अमृता से तिरस्कृत होने की टीस उसे सालती रही।

धूप मे पहाड़ पर आने-जाते बीस दिन बीत गए थे। दोपहर डेढ़ बजे दफ्तर मे उसकी मेज पर रखी फोन की घंटी बज उठी। चोगा उठाकर 'हैलो' कहते ही उधर से आवाज आई, "सुनो, ऐसा मत समझो कि कितनी बेशरम है, पुनः फोन करने लगी है ! तुमने क्यों फोन नही किया ? क्या तुम जानते नहीं कि मैं तुनक-मिजाज हूँ और गुस्से मे पागल होकर भला-बुरा कुछ भी कर बैठती हूँ ? क्या तुम्हें ऐसा नही लगा कि आगे चलकर कभी माफ़ भी किया जा सकता है ?" अमृता की आवाज़ और बाते सुनकर उसका दिल हलका हुआ और साथ ही गुस्सा भी आया। जवाब में वह कुछ नही बोला। एकाध पल प्र[illegible]क्षा की। वह 'हैलो, हैलो' कहती रही। सोमशेखर के 'हाँ' कहने पर बोली, "शायद वहाँ नीलकण्ठप्पा होंगे। तुम्हें बातें करने में हिचक हो रही होगी। मुझे तुमसे बात करनी है। तुम्हें मेरे यहाँ आना ही होगा। अगर नहीं आओगे तो मैं खुद तुम्हारे दफ्तर आऊँगी और सभी के सामने तुम्हारे पाँव पकड़कर बैठ जाऊँगी। बोलो, कब आओगे ? बहुत सारी बातें करनी हैं। सबसे पहले तुमसे माफी माँगनी है।"

नीलकण्ठप्पा वास्तव मे वहाँ नही था; वह खाने के लिए [illegible] था। सोमशेखर को यह समझने में देर नहीं लगी कि भोजन का समय जानकर ही अमृता ने फोन किया था। वह बोला, "मैडम, मैं बहुत व्यस्त हूँ। यह दफ़्तर है। यहाँ आकर पाँव पकड़ने जैसा कोई सीन मत कीजिए। माफ़ करने के लिए मेरे मन मे कुछ बचा ही नहीं है। गुड् बाय् !" उसने चोंगा रख दिया। लेकिन दस-पंद्रह सैकेंड मे फोन फिर बजा। अमृता का ही फोन है, इस मे कोई शक नही था। एक मिनट

तक उसने चोंगा नहीं उठाया। फिर खयाल आया कि चोंगा उठाकर संपर्क काट दे और उसे अलग रख दे ताकि दुबारा वह फोन न कर सके। लेकिन सहसा दिल पसीज गया। चोंगा उठाकर वह बोला, "हैलो !"

वह बोली, 'मुझे सज़ा देने का पूरा अधिकार तुम्हें है। लेकिन मेरी उपेक्षा मत करो। जब तक तुम यहाँ नहीं आओगे मैं खाना नहीं खाऊँगी। अब की बात नहीं, तुम आकर जब तक मेरी माफ़ी स्वीकार नहीं करोगे तब तक एक घूंट पानी भी नहीं पियूंगी। मुझे अपनी जान की कोई परवाह नहीं। तुम्हें धमकी देने के लिए मैं नहीं कह रही हूँ; अपनी मनोस्थिति बता रही हूँ।" इतना कहकर उसने फोन रख दिया।

सोमशेखर को एक कसमसाहट-सी हुई जो धीरे-धीरे सारे मन मे फैलने-सी लगी। उसके मन में उधेड़बुन हुई कि एक खलबली-सी मच गई। 'अमृता में और अपने में कोई नाता नहीं है, फिर दोनो का पुनः सम्पर्क होने की सम्भावना भी नहीं'—कुछ समय पूर्व मन में आया यह विचार उच्च ताप से पिघल जाने वाली प्लास्टिक की गाँठ की तरह पिघल गया। मुझसे बाते करनी है, अपने अह्-कार के प्रति खेद व्यक्त करते हुए फिर से स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने को जी चाहता है, कहीं यह कोई नाटक तो नहीं है ?—सोमशेखर के मन में एक आशंका ने जन्म लिया। आशंका के इस अंकुर के साथ उस का मन कठोर होने लगा।

कुछ देर बाद नीलकण्ठप्पा खाना खाकर आ गया। अब वह निकल सकता है। अपना दोपहर का खाना दो इडली या दो ब्रेड स्लाइस और कॉफ़ी। लंच के लिए 'वेलकम केफे' जाने के इरादे से स्कूटर स्टार्ट किया तो बरबस अमृता से मिलने की चाह जागी। जाए या न जाए, इस दुविधा की स्थिति को मौका न देकर वह सीधा ललितमहल की ओर चल पड़ा। दायी ओर दीवार बनकर खड़े हरे-नीले पहाड़ को आकाश की पृष्ठभूमि में देखकर उसका मन कुछ हल्का हुआ। उसके मन में विचार आया कि किसी के साथ मन कड़ुआ करके उसके सम्पर्क से दूर रहने की अपेक्षा सौहार्द का भाव बनाए रखने से जीवन महनीय बन जाता है। आज तक यों तो किसी से बोल-चाल बन्द नही की है—उन बम्बई वाली के सिवा। यह याद आते ही उसे लगा कि जब स्नेह था तब एकवचन में सम्बोधन करता था और अब दूर होकर यादो में भी बहुवचन का प्रयोग करने लगा है। ऐसे लोगों के साथ कड़ुआहट के दूर हो जाने पर भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हर्गिज सम्भव ही नहीं है। यही सब सोचते वह चला जा रहा था कि इतने में दायीं ओर पूरा पहाड़ आ गया। मन मे विचार आया कि आज से बीस दिन पहले अमृता के साथ जिस जंगली आम वाले शिलाखण्ड पर वह बैठा था वह स्थान यहां से दिखाई पड़ेगा भी या नहीं। उसने उस ओर निगाह दौड़ाई; पता नहीं लग सका। स्कूटर रोककर देखा। पहाड़ी रास्ते से लगभग बीस-तीस फीट नीचे उतरना

पड़ता है। बस, उसी सीध में नज़र दौड़ाकर देखा; हाँ, बिलकुल वैसी ही जगह दिखाई पड़ती है। वहाँ से अमृता के घर की दिशा ठीक वही है; उसे यकीन हो गया कि यह वही जगह थी। इसके साथ ही उसे वह सारी घटना याद आने लगी —उस जगह पर जो बातें हुई थीं, आरम्भिक संभाषण छिड़ा था, उसने क्या कहा था, अमृता का रवैया क्या था···आदि। स्कूटर का इंजन चालू था। स्कूटर तुरन्त घुमाकर लौट आने का मन हुआ। फिर तय किया कि कड़ुआहट ठीक नहीं। इस निर्णय के साथ आगे बढ़ा कि न कड़ुआहट ही चाहिए और न घनिष्ठता ही; आज एक बार मिल लेना काफ़ी रहेगा।

अमृता प्रतीक्षा करते दरवाजे पर ही खड़ी थी। सोमशेखर के आने का उसे पूरा विश्वास था। सोमशेखर के मन में इस बात की हीनभावना जागी कि अमृता की प्रत्याशा के अनुसार वह वहाँ क्यों चला आया, लेकिन रक्तहीन पीलिया के रोगी की तरह उतरा हुआ उसका चेहरा देखते ही सोमशेखर की कठोरता काफूर हो गई। स्कूटर की गड़गड़ाहट सुनकर कुत्तों ने भौंकना शुरू कर दिया। स्कूटर सीधे भीतर ले जाकर खड़ा किया। गेट बन्द करती हुई अमृता की ओर जब उसने मुड़कर देखा तो गेट की बगल में तीन ओर लोहे की सलाखें जोड़कर मरम्मत की हुई कुत्तों की बड़ी माँद दिखाई पड़ी। साफ़ जाहिर था कि किसी और के जरिए इतनी जल्दी मरम्मत करवाई गई है। अर्थात उसकी उपेक्षा की गई है। इस अहसास के साथ मन कटने-सा लगा। इतने में पास आकर अमृता ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "मेरी शर्मिन्दगी की निशानी यह और पिछवाड़े की माँद मरम्मत होकर खड़ी है। उन्हें तुड़वाकर सपाट बना देने का विचार आने लगा है। लेकिन, सवेरे उठते ही अपनी मूर्खता, तुनकमिजाजी की निशानी अगर नज़र आती रहेगी तो फिर कभी ऐसी ग़लती न करने की सतर्कता मन में बनी रहेगी, इस विचार से तुड़वाया नहीं। चलो, बताती हूँ।" भीतर घुसने से पहले उसने दर-वाजा बन्द किया और लाउंज में सोफे पर उसे बैठाकर खुद उसकी बगल में उससे सटकर बैठ गई। उसके दोनों हाथ पकड़कर बोली "तुम जानते हो कि मेरा स्वभाव जिद्दी है। कोई बात मन में आ गई तो उसे पूरा किए बिना चैन नहीं पड़ता। मैंने खुद ठेकेदार को बुलवाया और लोहे की सलाखें, सीमेन्ट, आदि मँगवाकर इनकी मरम्मत करवाई। सच कहती हूँ, मरम्मत करवाते समय तुम पर काफ़ी गुस्सा भी था। गुस्सा उतर जाने पर अब शर्म आने लगी है; सही मायने में शर्म। सुनो, इधर मेरा चेहरा देखो, ठीक से देखो।" अपनी दोनों हथे-लियों में सोमशेखर का चेहरा भरकर अपनी ओर घुमा लिया। फिर उसकी नजर से अपनी नज़र मिलाते समय अमृता की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। बाँध टूट चुका था। सारा चेहरा मिट्टी के लौंदे-सा हो गया। सोमशेखर ने उसका चेहरा अपने वक्ष से चिपका लिया।

सोमशेखर की बगल वाली कुर्सी पर बैठकर खाना खाते हुए वह बोली, "अपनी गलती का अहसास हुए दस दिन बीत गए। मैं सही थी या ग़लत—इस विश्लेषण में मैं नहीं पड़ना चाहती। भाड़ मे जाए यह विश्लेषण। तुम्हारे स्नेह के बिना जी नहीं सकूंगी, इस अहसास को जन्मे आज दस दिन हो गए। सनकी की तरह भला-बुरा कहने के बाद अब मुझमें तुम्हें बुलवा लेने की शक्ति ही कहाँ रही ? भीतर-ही-भीतर कमज़ोर हो गई थी। दिल की इस फाँस के कारण मैं मर ही जाती। मेरी एक बात पर यकीन करो—मरना मेरे लिए तनिक भी कठिन नहीं है, बड़ा आसान है। मेरी पक्की मान्यता है कि छुटकारे का वह एक द्वार है। किसी-न-किसी दिन उसकी चौखट तक चली जाती। खैर, छोड़ो इन बातों को। दस दिन से खाना छोड़ रखा था। पेट में जब बेहद बेचैनी होने लगती तो मुट्ठी भर चिड़वा भिगोकर नमक या गुड़ से खा लेती और ऊपर से एक प्याला कॉफी पी लेती थी। आज तुम्हें हर हालत में बुलाने की ठानकर तुम्हारे लिए खाना पकाया है। अगर तुम नहीं आते तो यह दाल, भात, सब्जी वगैरह—खैर जाने दो। क्या तुम्हें एक दिन भी मेरी याद नहीं आई ? अगर आई हो तो कैसी याद, बताओ ? कहीं यह तो नहीं मान लिया कि शनि ने प्रारम्भ में ही अपना प्रकोप दिखा दिया ?"

सोमशेखर कुछ नहीं बोला। अमृता की मौत और छुटकारे के द्वार वाली बातों में ही उसका मन उलझ गया था। अमृता ने दुबारा पूछा, "क्या तुम्हें एक बार भी मेरी याद नहीं आई ?" जब सोमशेखर ने उसकी याद में झुलसे जाने की, दिन में काम करते समय बेचैनी महसूस होने की, सारी रातें कोरी आँखो मे बिताने की बातों का ज़िक्र किया तब अमृता के चेहरे पर कुछ तसल्ली-सी नजर आई।

खाने के बाद जब दोनों आकर लाउंज में सोफ़े पर बैठे तब सोमशेखर के दोनों हाथो को अपने हाथों में लेकर उसने पूछा, "सुनो, उस दिन मैंने गुस्सा किया। तुमने कितने प्यार से मुझे गजरा पहनाया था और मैंने उन्हें नोचकर फेंक दिया। सच मानो, उस दिन से आज तक मैंने कभी फूल नहीं पहने। अगर तुम खुद लाकर पहना दो तो सम्भव है फिर पहनना शुरू कर दूं! मैंने तनिक भी खयाल नहीं किया कि तुम उस तपती धूप में गाँव कैसे पहुँच पाओगे, वहाँ दूसरा कोई साधन भी तो नही था। मैं अपनी धुन में कार में बैठकर सीधे निकल आई। मानती हूँ कि उस दिन मैंने बहुत गुस्सा किया। लेकिन उस गुस्से के लिए कोई-न-कोई, छोटी-सी ही सही, वजह तो जरूर रही ही होगी ! क्या तुमने कभी सोचा है कि मुझे गुस्सा क्यों आया ?"

"हम जिस व्यक्ति से प्यार करते हैं और पता चलता है कि उस व्यक्ति का किसी और के साथ सम्बन्ध था तो कोई उसे बर्दाश्त नहीं कर पाता। 'अमुक

व्यक्ति मेरे लिए है' वाली भावना को जब ठेस पहुँचे तब गुस्सा आना स्वाभाविक है," वह इतमीनान से बोला।

"तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन, इतनी-सी वजह के लिए मुझे गुस्सा नहीं आता। याद कर लो, तुमने क्या कहा था! तुम्हारी बातों में मुझे कहीं ओछापन दिखाई पड़ा था। सुनो, अपने-अपने अन्तर्मन की एक-दूसरे के सामने कह लेने का मतलब था कि सच्चाई के ठोस धरातल पर हमारा सम्बन्ध मजबूत बन जाए—यही मैं चाहती थी। इसलिए, मेरे मन में जो आशंका आई है उसे कहे देती हूँ। हो सकता है, मेरी आशंका गलत हो। लेकिन आशंकित हुई थी—इसमें कोई शक नहीं है। अगर मेरे सोच में गलती हो तो तुम उसे सुधारो। लेकिन यह बात तुमसे कह रही हूँ, इसीलिए नाराज़ हो उठकर चले मत जाना। कहीं तुम चले न जाओ, इसलिए देखो, मैं तुम्हारे दोनों हाथ पकड़कर बैठी हूँ।" अमृता ने उसके हाथों को और कसकर पकड़ लिया।

"नहीं, बोलो। मुझमें अगर भूल हुई हो तो उसे सुधार लूँगा", साफ दिल से सोमशेखर बोला।

"अपने अन्तर्मन की सच्चाई बताने के लिए कहा तो, पता है तुमने कैसी बात बताई? बम्बई में तुम्हारी कोई स्नेही थी। दो वर्षों तक लगातार उसके साथ सप्ताह में दो बार और हर बार पाँच-छह घण्टों तक अकेले में रहते थे। उससे तुमको यह अनुभव मिला करता था कि जीवन का मतलब प्रणय और उन्माद की लहरों पर तैरते रहना है। उन दो वर्षों तक उसने तुम्हें निरन्तर दैहिक तथा भावनात्मक सुख दिया। सुख का मतलब है भौतिक आनन्द। ठीक है न? यही तो तुमने बताया था न?"

उसने सिर हिलाकर हामी भरी।

"फिर तुमने कहा—वह विवाहित थी; गृहिणी; तीन बच्चों की माँ; पी-एच० डी० करके स्नातकोत्तर विभाग में रीडर थी। यह सारी बातें मुझसे क्यों कहीं? मैं भी तो विवाहिता हूँ, गृहिणी हूँ, दो बच्चों की माँ हूँ। मेरा पति भी अच्छी-खासी सरकारी नौकरी में हैं। मैंने भी पी-एच० डी० की है। उसी की भाँति कॉलेज में अध्यापिका हूँ। मतलब यह कि उसी प्रकार का सम्बन्ध तुम मुझसे चाहते हो, इसी ओर तुम्हारा इशारा था। प्रणय और उन्माद पर तुम्हें तैराने वाली लहर बनना होगा मुझे। तुम्हारा संकेत स्पष्ट था कि मैं तुम्हें दैहिक और भावनात्मक सुख अर्थात शारीरिक सुख दूँ। मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध के बारे में अपने अन्तर्मन की कामना की सच्चाई को तुमने स्पष्ट किया। जब मैं तुमसे एक श्रेष्ठ स्तर के स्नेह की प्रत्याशा कर रही थी तब तुमने किस स्तर पर मेरी कल्पना कर ली? बताओ, क्या मेरा बोध ग़लत था? ऐसे व्यक्ति के फूल अपने जूड़े से निकाल फेंकना क्या ग़लत था?"

यह बात कहते समय अमृता की नजर सोमशेखर के चेहरे के भावों को पढ़ने की चेष्टा कर रही थी। सोमशेखर के चेहरे और मस्तक पर ही नही, वरन उसकी गर्दन पर भी पसीने की बूंदे नज़र आ रही थीं। वह पूर्णतः अन्तर्मुखी हो गया था। कण्ठ इस बुरी तरह अवरुद्ध हो गया था कि उसके मुंह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे। अमृता ने अपना प्रश्न पुनः दोहराया। हकलाते हुए वह प्रयत्नपूर्वक बोला, "भगवान की क़सम, सच कहता हूँ, ऐसा कोई उद्देश्य मेरे मन में नहीं था और आज भी नहीं है।"

"तुम्हारे मन में नहीं था। लेकिन तुम्हारे अन्तर्मन में जो समाहित था उसने अनजाने में तुमसे ऐसी बात कहलवाई होगी। वरना, अन्तर्मन की पहली सच्चाई के रूप में वही बात, भला, क्यों निकली ? ऐसी महत्त्वाकांक्षा की बात क्यों नहीं निकली कि जगत्-विख्यात ताजमहल जैसी इमारत का वास्तुकार बनने की तुम्हारी चाह है ? खैर, जाने दो; अब सच बताओ, क्या तुम भगवान में विश्वास करते हो ?"

"भगवान नामक व्यक्ति या शक्ति के अस्तित्व के बारे में निश्चयपूर्वक मैं कुछ नहीं जानता।" इस जिरह की कैंची से बच निकलने का विषय पाकर सोमशेखर ने इत्मीनान से जवाब दिया।

"तब जिसका अस्तित्व ही नहीं उस भगवान की कसम क्यों खाते हो ?" इस प्रश्न से उसे और अधिक धारदार कैंची में फंस जाने का अहसास हुआ। पसीने की नन्हीं बूंदों ने अब उसके चेहरे, माथे और गर्दन पर बड़ी-बड़ी बूंदों का आकार ले लिया और टपकने लगीं। "सोमु !" सोमशेखर का हाथ छोडकर अमृता ने अपनी महीन रेशम की साड़ी के आँचल से उसका चेहरा, गर्दन आदि पोंछते हुए कहा, "तुमसे जिरह करके तुम्हें फँसाने की चेष्टा कर रही हूँ, ऐसा मत समझो। तुम्हारे सिवा मेरा अपना कोई नहीं है। इसीलिए मैं चाहती हूँ कि हम दोनों का सम्बन्ध पवित्र सच्चाई की धरातल पर विकसित हो। इसीलिए कोंच-कोंचकर पूछा। मुझसे भी तुम इसी तरह के प्रश्न पूछो। अच्छा, जरा इधर तो आओ।" खुद सोफे की एक सिरे की ओर सरक गई और सोमशेखर का कन्धा पकड़कर उसका सिर अपनी जाँघों पर लेकर अमृता सहलाने लगी। फिर बोली, "सकोच होने लगा है ? ऐसा कैसे चलेगा ! या गुस्सा आया ? सोमु, तुम्हें इसी तरह अपने बच्चे की भांति लिटाकर थपकी दे-देकर लाड़ से सुलाते रहने को जी चाहता है। तुम इसी तरह लेटे-लेटे बातें करते रहो—हमेशा-हमेशा। देखो, अच्छी तरह पाँव फैलाकर लेट जाओ।" झुककर अमृता ने उसके जूतों के फीते खोल कर जूते उतार दिए, मोज़े उतारकर नीचे रखे और अपने आँचल से स्नेहपूर्वक दुबारा उसका चेहरा पोंछा। कुछ समय बाद सोमशेखर के चेहरे पर विश्वास एवं तसल्ली का भाव स्थिर हो गया।

सोमशेखर अब हर रोज दोपहर डेढ़ बजे नीलकण्ठप्पा के खाना खाकर लौट आने के बाद अमृता के घर खाने के लिए जाता है और खाना खाकर शाम के चार-साढ़े चार तक अमृता के साथ गप-शप करता है। फिर अपने दफ्तर आकर रात के आठ बजे तक काम करता है। रात के खाने के लिए भी अमृता आग्रह करती है किन्तु, संकोच के कारण अथवा अमृता के दो बच्चों की उपस्थिति में दोनों का खुलकर बातें कर पाना असम्भव जानकर वह नहीं जाता। दफ्तर का काम निपटाकर वेलकम कैफे में खाना खा लेता है; फिर जय-लक्ष्मीपुरम् के अपने किराए के घर में जाकर सो जाता है। जब दोपहर के समय जाता है तब उस विशाल कम्पाउंड वाले बड़े घर में सिर्फ़ वे दोनों ही होते हैं। बतियाते समय कभी-कभी एक-दूसरे की टेक लगाकर सोफे पर बैठे रहते हैं या कभी-कभी तो एक-दूसरे की जाँघों पर सिर टिकाए भी लेटे रहते हैं। कभी-कभी एक-दूसरे से लिपटकर बेंत की पुरानी दीवान पर सो भी जाते हैं। अमृता के कोमल किन्तु सुडौल मांसल शरीर के स्पर्श से सोमशेखर का शरीर कभी-कभार उत्तेजित भी हो जाता है, लेकिन उसने तो उसके साथ शारीरिक सम्पर्क की अभिलाषा न रखने का निश्चय कर रखा था। इसलिए किसी भी रूप में अपनी कामना को अभिव्यक्त न करते हुए वह बड़े संयम के साथ सहज बातचीत में ही लगा रहता है। यह बात नहीं कि अमृता में ऐसी कोई अभिलाषा नहीं थी। कभी-कभार बातें मधुर ध्वनि की ओर, मधुर इशारों की ओर मोड़ने से वह चूकती नहीं थी। लेकिन, दोनों ने मौन समझौते से आपस में जो सीमाएँ बाँध ली थीं उन्हें लाँघने में दोनों को हिचक हो रही थी।

एक दिन सोमशेखर की बाँहों में लेटे-लेटे अमृता ने पूछा, "उस बम्बई वाली से तुम कहाँ मिलते थे?" सोमशेखर ने जवाब नहीं दिया चेहरे पर एक उलझन-सी दिखाई पड़ी। अमृता ने अपना प्रश्न दुहराया तो उसने कहा कि "अब उन बातों से क्या लेना-देना है?" "अगर तुम्हें बुरा लगता है तो मत बताओ। इस प्रसंग में मैं तुम्हारे साथ बड़ी बुरी तरह पेश आई हूँ। उसकी शर्मिन्दगी मुझे आज भी है। फिर भी उसने तुम्हें दो वर्षों तक कितना सुख दिया है! उसके प्रति मुझे कृतज्ञ होना चाहिए। मैं जिस चीज से प्यार करती हूँ, उस चीज को सुख-सन्तोष देने वाले हर किसी के प्रति कृतज्ञ होना मेरा कर्तव्य है। इन दिनों वह कृतज्ञता की भावना अधिक तीव्र हुई है। नहीं बताओगे? अगर नहीं बताओगे तो समझूँगी कि तुमने मुझे माफ़ नहीं किया है।"—कहते हुए अमृता सोमशेखर से लिपटकर उसके बालों में उँगलियाँ फेरती हुई उसे मनाने लगी। "वास्तव में मुझे उससे जलन है। वह मुझसे भी अच्छी तुम्हारी देखभाल करती थी न, इसलिए। तुम लाख छिपाने की कोशिश करो; लेकिन, उसका जिक्र निकलते ही तुम्हारी आँखों में खुशी चमक उठती है। अब भी खुशी के मारे तुम्हारा चेहरा जो खिल उठा है उसे

छिपा पाना तुमसे सम्भव नहीं हो पा रहा है। बताओ न।" वह पीठ सहलाने लगी।

"क्या बताऊँ ?" सोमशेखर ने कहा।

"यही कि तुम दोनों कहाँ मिलते थे ?"

"उसकी सहेली के फ्लैट में। सहेली सवेरे नौ से लेकर शाम के साढ़े छह-सात तक बैंक में काम पर जाती। एक बड़े बैंक की मैनेजर थी। फ्लैट की डुप्लिकेट चाभी इसके पास रहती थी। बीस मंजिली इमारत की सोलहवीं मंजिल पर वह फ्लैट था। लिफ्ट में जाना पड़ता था। ऐसा एकाकी फ्लैट कि सभी लोग एक-दूसरे के लिए अजनबी थे। किसी को कभी हमने न लिफ्ट में देखा और न गलियारे में।"

"तुम दोनों का वहाँ मिलना क्या चाभी देने वाली वह सहेली जानती थी ?"

"लगता है, जानती थी। एक दिन मैंने उससे पूछा तो बोली कि यह सहेलियों के बीच की व्यवस्था है, इस बारे में तुम्हें सिर खपाने की क्या जरूरत है ? मैंने दुबारा नहीं पूछा। वास्तव में मैंने कभी उस सहेली को देखा ही नहीं। इसने भी कभी उससे मिलवाने की बात नहीं की और न कभी उसके बारे में कुछ बताया।"

'उसका और तुम्हारा परिचय कैसे हुआ ? फिर, परिचय इस हद तक कैसे पहुँचा ?"

सोमशेखर को कहने में संकोच हुआ, "गड़े मुर्दे उखाड़ने का क्या प्रयोजन ?"

"अगर तुम्हें बुरा लगता हो तो न सही। तुम्हारे जीवन की सारी बातें जानने का मन करता है।" अमृता के चेहरे पर प्रामाणिकता साफ मुखरित थी।

"एक पार्टी में हम दोनों मिले थे। बड़े कल्पनाशील वास्तुकार के रूप में उससे जब मेरा परिचय कराया गया तब वह मुझसे हाथ मिलाते हुए बोली— 'मुझे केवल कल्पनाशील व्यक्ति ही भाते हैं। कल्पनाहीन, नीरस बुद्धिवादियों की कंपनी मैं दो-पल के लिए भी बर्दाश्त नहीं कर सकती।' बड़ी सावधानी से मेकअप किया था उसने। सैंतीस की उम्र; आँखों में एक मादक चमक थी। वहाँ अधिक बातें नहीं हुईं। पार्टी की बात तुम जानती हो न; हैलो, हैलो कहने वाले लोगों की भीड़-भाड़। फिर उसको अधिक-से-अधिक लोगों से मिलने की ललक भी थी। बड़ी चुस्त महिला थी। अपना कार्ड उसे दिया था। चौथे या पाँचवें दिन मेरे दफ्तर फोन करके बोली, 'याद है ? पार्टी में मिली हुई मिसेज···। क्या आज शाम मिलेंगे ? दोपहर के तीन बजे, राजाभाय टावर के पास। मैं गुलाबी रंग की साड़ी पहने रहूँगी ताकि मुझे पहचानने में आपको कठिनाई न हो। आप मेष

बदलकर भी आएँगे तो मैं पहचान लूँगी।' मेरा कारोबार पार्टनरशिप में था। तामीरात के ठिकानों पर भी आना-जाना रहता था। बहाना बनाकर निकल पड़ा और निश्चित स्थान पर पहुँच गया। उसने मुस्कुराकर अपने हाथ में मेरा हाथ पकड़कर मेरा स्वागत किया। हम दोनों जब साथ-साथ चल रहे थे तो उसने पूछा, 'उस दिन मुझे देखकर आपको क्या लगा? बताइए।' भला मैं क्या बताता? 'कुछ नहीं लगा? पहली मुलाकात में अगर कुछ न लगे तो भविष्य में कभी कुछ नहीं लगेगा। उस दिन अगर कुछ नहीं लगा तो फिर अब क्यों आए?' मात करने के अंदाज में वह हँस पड़ी। 'जानते हो तुम कितने हैंडसम हो? शायद इसीलिए घमंड है।' कहते हुए मेरी बाँह पकड़कर उसने मुझे अपनी ओर खींच लिया और मेरे चेहरे पर अपनी आँखें गड़ा दीं। कुछ समय बाद उसने एक टैक्सी रोकी और मुझे अपने घर ले गई। घर में दूसरा कोई नहीं था। एक औरत के साथ जो इतनी पढ़ी-लिखी हो, जिसे किसी तरह की कोई आर्थिक कठिनाई न हो, खुद की अच्छी नौकरी हो और पति भी अच्छे ओहदे पर हो—इतनी जल्दी दैहिक सम्बन्ध और वह भी मुक्त उन्माद से भरा हुआ, ऐसी कल्पना भी मेरे लिए असंभव थी। उसके बाद दो दिन हम उन्हीं के घर में मिलते रहे। दो बार उसने सलाह दी, 'इस घर में नहीं; किसी अन्य सुरक्षित जगह की व्यवस्था करना पुरुष का कर्तव्य है।' मैं कहाँ से व्यवस्था कर पाता? बम्बई के होटल क्या सस्ते होते हैं? फिर उसने निश्चय के साथ कहा कि वह होटल नहीं आएगी। इसलिए दो सप्ताह तक मिलना सभव नहीं हो सका। आखिर सहेली के फ्लैट की चाभी की व्यवस्था उसने खुद की और मुझे फोन पर बता दिया। मैंने इस व्यवस्था के बारे में उससे पूछताछ की चेष्टा की तो वह बोली कि 'तुम जैसे पुरुष की अपेक्षा मैं नारी होकर भी अधिक रिसोर्सफुल हूँ; ज्यादा जिज्ञासा ठीक नहीं'।"

अमृता की आँखें बता रही थीं कि वह तन्मयता से बातें सुनकर अपने मन में एक काल्पनिक चित्र बना रही है। अब उसकी आँखें सोमशेखर का चेहरा निहार रही थीं। अब बिना किसी हिचक या कसक के अमृता से आँख मिलाकर बोलने का सलीका सोमशेखर में आ गया था। दो-एक पल के बाद अमृता ने पूछा, "क्या वह बहुत चालाक थी?"

"सिर्फ चालाक ही नहीं, पूरी तन्मयता के साथ बाहरी दुनिया को भूल कर पूर्णरूपेण डूब जाने की मनोवृत्ति रखनेवाली औरत थी वह। 'सोम, एक बार अगर तुम किसी औरत के हृदय में बस जाते हो तो जन्म-जन्मांतरों तक वह तुम्हारी दासी बनकर जन्म लेने की प्रार्थना हर दिन प्रणय-देवता से करने लगती है।'—इसी प्रकार तरह-तरह की बातें करते हुए वह मुझे प्रेरित किया करती थी। वास्तव में चाहे कैसा भी पुरुष हो, अगर एक बार उसकी संगति कर जाए तो वह

उसका बिना मोल का गुलाम बन जाए—ऐसा अभूतपूर्व अनुभव करानेवाली कल्पना शील औरत थी। उसी दिन उसने यह भी बताया था कि वह बड़ी अच्छी गजल गाती है; गजल अर्थात प्रणय-गीत। ग़ज़ल के अर्थों के परतों को उघाड़कर गाने की कल्पनाशीलता उसकी प्रणयवाली क्रिया में अभिव्यक्त होती थी। बीच-बीच में गज़ल की भाषा में ही बातें करती। रति को ताना और मन्मथ को बाना बनाकर तन, मन और भावनाओं को उद्दीप्त करने वाली एक रंग-बिरंगी दुनिया बुन देती थी। जीवन से तात्पर्य इस प्रकार की उत्कटता, इस प्रकार का उन्माद, इस प्रकार का सुख होता है; इसके अतिरिक्त कोई और विचार करना मूर्खता है—इस अर्थ मे वह समय को बाँध देती थी।"

"क्या तुम उससे इतना प्यार करते थे ?'

अमृता की बात का विश्लेषण करने के अंदाज मे सोमशेखर पल-भर के लिए अन्तर्मुखी हुआ। फिर धीरे से बोला, "कह नही सकता कि वह प्यार था; और यह भी नहीं कहता कि प्यार नहीं था। कवि और दार्शनिको की बातें मैंने पढ़ी हैं। उन्होने कहा है कि प्यार में दर्द अवश्य होता है। व्याकुलता प्रेम की मूल श्रुति होती है। जहाँ व्याकुलता होती है वहाँ आतंक-वेदना का होना अनिवार्य है न ! लेकिन हम दोनो के समागम मे, या विदाई में कभी व्याकुलता या वेदना नही रही। जब मिल जाते तब चार-पाँच घण्टों तक सुखपान करते। पुनः तीन-चार दिनो के पश्चात् मिलना सुनिश्चित रहता ही था। उसी खुशी मे विदा होते थे। बीच में चार सप्ताह के लिए वह अपने घर मद्रास गई थीं। उन दिनो केवल रति-कामना सताती रही; विरह की वेदना या व्याकुलता ने कभी नहीं तड़पाया। उसने मद्रास से तीन चिट्ठियाँ लिखी थीं। उन चिट्ठियो मे भी, 'प्रिय, जल्दी ही आऊँगी; तुम्हारी फौलादी मर्द बाँहों में पिसकर रस बहाकर शात होने के लिए आऊँगी'—इसी प्रकार की रति का स्मरण दिलाने वाली बातें उन पत्रो मे थीं।"

इस बात के पहले दो वाक्यो मे अमृता का ध्यान उलझ गया। जो सोयी थी वह झट उठकर बैठ गई। सोमशेखर के अंतिम वाक्य पूरा करने से पहले उसके सिरहाने पालथी मारकर बैठ गई और उसका सिर उठाकर अपनी जाँघो पर लेते हुए लिपटकर बोली, "सोम, कितना अच्छा बताया तुमने ! मैंने साहित्य मे पी-एच० डी० की है। लेकिन तुम्हारी तरह प्यार के रहस्य को बताने का ढंग में नहीं जानती थी। प्यार में वेदना होती है, व्याकुलता प्रेम की मूल श्रुति होती है। व्याकुलता में आतंक और वेदना रहती है। सोमु ! हमारे प्यार में वेदना का स्पंदन है। मैं सनकी बनकर पागल की तरह नाहक गुस्सा करके तुम्हें वेदना नहीं पहुँचाती। तुम्हारे आने में अगर दस मिनट की भी देरी होती है तो मैं छटपटाने लगती हूँ कि अभी क्यो नहीं आए; स्कूटर पर आते समय कहीं किसी

गाड़ी से टकराकर कोई अनर्थ तो नहीं हो गया ? मृगालय के पास बायीं ओर का जो मोड़ है, वहाँ ट्रक और कार के चालक दायीं बगल में ही घूमकर निकलते हैं। तुम बायीं ओर होते हो। हे भगवान्, अभी क्यों नहीं आए ? इस आतंक में क्षण-क्षण घड़ी देखा करती हूँ !" इस बात के साथ अमृता की आँखों में पानी उमड़कर सोमशेखर के चेहरे पर टपक पड़ा। सोमशेखर जो बम्बई वाली सहेली की यादों में डूबा था, उसका मन तौलने लगा कि उसने कभी इस तरह अपने से लिपटकर, अपने लिए, अपनी रक्षा के लिए आँसू नहीं बहाए। वेदना और व्याकुलता मानो उसकी मनोभूमि में ही नहीं थी—इस बात के अहसास के साथ उसे लगा कि एक की तुलना दूसरे से करना ग़लत है।

कुछ समय बाद अमृता ने पूछा, "मेरी सुरक्षा के बारे में क्या तुम्हें भी ऐसी ही व्याकुलता रहती है ? सच बताओ। मैं जानती हूँ कि तुम कभी सिर्फ़ मुझे खुश करने के लिए झूठ नहीं बोलते ! फिर भी सच-सच बताओ।"

सोमशेखर ताड़ गया कि वह अब 'आप' से 'तुम' की सहज भाषा पर उतर आई है। अब यही सहज सम्बोधन लगा। उसे चेताने वाली किसी टीका-टिप्पणी, प्रस्तावना या सम्मति के बिना उसने भी प्रतिस्पंदित किया, "शहर के इस बाहरी इलाके में, जहाँ बसावट बहुत कम है, घर एक-दूसरे से इतनी दूर हैं कि आवाज एक-दूसरे तक नहीं पहुँच पाती; दो बच्चों को लेकर तुम अकेली यहाँ रहती हो इस बात का अहसास होने लगता है तो भय और आशंकाओं से कभी-कभी रातों की नींद हराम हो जाती है।"

"सच ?"

"तुम्हारी सौगंध।"

"तब तुरन्त स्कूटर पर सवार होकर यहाँ आ जाया करो। इसी तरह जाँघों पर सुलाकर थपकी दे-देकर सुला दूँगी।" अमृता की आँखें दुबारा भर आईं।

घर में बैठे-बैठे उकताहट होने लगती है, इसलिए जल्दी खाना खाकर अकसर वे दो-तीन घंटे कार में घूमने निकल पड़ते थे। अमृता की आर्थिक तंगी को ताड़-कर सोमशेखर ने तीन बार सलाह दी कि कार की अपेक्षा अपने स्कूटर पर जाने से खर्च कम आएगा। इस सलाह से अमृता पहले तो सहमत हो गई, लेकिन इसलिए मना किया कि दोनों का साथ-साथ स्कूटर पर बैठना एकदम खुला प्रदर्शन होगा। एक बार कार में पेट्रोल भरवाते समय सोमशेखर पैसे देने आगे बढ़ा। "सोमु, मैं धनी नहीं हूँ, यह सच है। लेकिन, इस बहाने तुम्हें मेरा अपमान नहीं करना चाहिए।" पेट्रोल भरने वाले लड़के के सामने ही वह बोल पड़ी। उसी दिन से सोमशेखर ने दुबारा ऐसा नहीं किया।

पहाड़, तिरुमकूडल संगम, वृंदावन या ऐसी ही किसी जगह जाकर किसी

घने पेड़ की छाया में कहीं शिला पर बैठकर आकाश, बादल, हरियाली निहारते, हवा के झोंके से तैरते सफेद बादलों की तरह बातें करना दोनों की प्यारी आदत-सी बन गई थी। बाहर घूमकर आने से दोनों के मन को अच्छा लगता था। इसका मतलब यह नहीं कि जब कभी बाहर जाते तब शुद्ध संतोष का जश्न हुआ करता था। कई बार अमृता के मन की लहर अचानक म्लान हो जाती थी। बिना वजह आग-बबूला हो उठती थी। सोमशेखर अगर मनाने की चेष्टा करना तो वह स्वयं उस गुस्से का निशाना बन जाता। कई बार तो कार से उतरती बाद में थी, गरम पहले हो जाती थी। अगर सोमशेखर कहता कि "तुम्हारा मूड ठीक नहीं, आज कहीं नहीं चलेंगे," तब वह कहती, "वास्तव में न चलने का तुम्हें कोई बहाना चाहिए था, उसे मेरे मूड पर थोप रहे हो। तुम अपनी इस चाल से मुझे घोंट-घोंटकर मारने के बदले मेरे सीने में कटार भोंक कर मार क्यों नहीं डालते? कम-से-कम सच्चे तो बने रहते।" ऐसे में सोमशेखर की बोलती बंद हो जाती और हक्का-बक्का-सा खड़ा रह जाता। वह छेड़ने के अंदाज में बोलती, "मिस्टर सोमशेखर, क्या आपको कार में बैठाने के लिए आपकी आरती उतारनी होगी?" जब वह आदरसूचक ऐसे किसी बहुवचन पर उतर आती तो सोमशेखर समझ लेता कि वह क्रोध के दूसरे उबाल तक पहुँच चुकी है। अमृता का क्रोध कितनी देर तक रहेगा, इसका पता सोमशेखर को नहीं रहता था। अमृता के मूड का पता पाना संभव ही नहीं था। मुँह पर ताला लगाकर कार आठ-दस मील भागती। बीच में कभी-कभी अमृता खुद बोलती, "क्यों जी! बिना बोले इस खामोशी में मेरा दम घोंटकर मुझे मार डालने का इरादा है क्या?" जब सोमशेखर खेद के साथ कहता, "खामोश तुम बैठी हो, मैं नहीं।" तब वह घूर-घूरकर उसे देखने लगती। "कार चला रही हो, रास्ते की ओर ध्यान रखो," वह चेताता। "मरने से डरते हो! डरपोक कहीं के!" वह छेड़ती। "हाँ, तुम्हें छोड़कर अकेला कहीं दूर जाने से बेशक डरता हूँ," वह जवाब देता। "इसका मतलब यह हुआ कि मैं मर जाऊँ? देखते रहो, ऐसा एक्सिडेंट करूँगी कि दोनो साथ-साथ मर जाएँगे"—कहते हुए वह कार की रफ्तार और तेज कर देती। यभभीत सोमशेखर अपने मन के डर को व्यक्त न करके चुपचाप बैठ जाता। अचानक रफ्तार कम करके कार को सड़क की बगल में रोककर सोमशेखर की ओर सटकर उससे लिपट जाती और डबडबायी आँखों से कहती, "सोमु; मेरे साथ तुम कितनी सहिष्णुता से पेश आते हो!" इससे सोमशेखर को पता चलता है कि उसके क्रोध का ज्वार उतर गया है, तब उसका भी मन हलका हो जाता है। मन केवल हलका ही नहीं होता बल्कि क्रोध के उफान के बाद दोनों को अहसास होने लगता कि पहले से भी अधिक वे दोनों एक-दूसरे के मन में रस-बस गए हैं। "सोमु, मेरा क्रोध केवल कड़वा ही नहीं होता। हम दोनों को और अधिक मजबूती के साथ जोड़ने वाली

भट्टी का ताप होता है उसमें; है न यही बात ?" सोमशेखर इस अंदाज मे हामी भरता है, मानो कह रहा हो---शायद।

इतने में बरसात शुरू हो गई थी। बोझिल आकाश की नीरसता को चीरकर मानो बादलों ने उसमे जान डाल दी हो। "बिना बादलों वाली धूप कितनी तेज होती है," सोमशेखर ने कहा। उत्तर मे अमृता ने न केवल स्वीकारोक्ति की बल्कि उसने कहा, "यह बात मुझसे कह रहे हो जो एक पहाड़ी इलाके की रहने वाली है ?" पौन मील ऊँचाई पर जब बादल घिर जाते और पर्वत-शिखर जब किसी रहस्यमय अर्थ का आभास देने लगता तो घर के कंपाउंड मे खड़े होकर आकाश की ओर निहारने में ही उन दोनो को एक अकथ अर्थपूर्ण अनुभूति होने लगती। क्षण-क्षण रूप बदलते बादलों के विविध आकार, उनमे प्रेषित गूढ़ार्थ को अपनी कल्पना-शक्ति के अनुसार ग्रहण करने, परस्पर एक-दूसरे को बताकर एक-दूसरे का समर्थन पाते रहते थे। एक दिन दोपहर के भोजन से पहले जब वे दोनो बादलों से घिरे पहाड़ को निहारते खड़े थे तो अमृता बोली, 'कोई गजल लिखने को मन कर रहा है।"

"कन्नड़ के ढर्रे मे ग़जल कैसे मेल खाएगी ? उसके लिए उर्दू ही माकूल होती है।"

"भाषा मे क्षमता ला देना ही तो साहित्यिक की प्रतिभा है! मै अपने आपको ऐसी प्रतिभावान कवयित्री मानकर यह बात नही कह रही हूँ। उसका तराना अच्छा रहता है और फिर तुम्हारी प्यारी सहेली की याद भी हो आती है। सोमु, सच बोलो, वास्तव मे मुझमें ईर्ष्या नहीं। अपनी उस गर्ल-फ्रेंड को क्या कभी तुम एक चिट्ठी भी नहीं लिखते ? आखिर अपनी खैर-खबर भी नही देते उसे ?"

अमृता की आँखों में शरारत थी। "लिखूं ?" सोमशेखर ने प्रत्युत्तर मे प्रश्न किया। "पुरुष जाति के ये लोग किन-किन दिशाओ में, पता नहीं कैसी-कैसी सुरंग खोदकर सपर्क बनाए रखते है! मैं तो कुछ नहीं जानती," शरारत जारी रखते हुए वह बोली। खाना खाते समय भी वह इसी तरह की छेड़छाड़ की बातें किया करती। खाना खाकर जब वे दोनो दीवान पर परस्पर एक-दूसरे के कन्धे पर बाँह फैलाकर बैठ गए तब उसने पूछा, "सोमु, सच बोलो, उस दिन पहली बार अपने अंतर्मन की सच्चाई कहते समय तुमने जो अपनी बंबई वाली सहेली—न, न, भूतपूर्व सहेली के बारे मे बताया उसकी प्रतिक्रिया में मैं एकदम बड़ी क्रूरता से पेश आई थी। शायद इसीलिए तुमने कभी मेरे साथ शारीरिक संपर्क की कामना व्यक्त नही की, सच है न! शरीर याचना करता रहा, तुमने सकल्प द्वारा उसका निग्रह किया। अस्वाभाविक बात यह है कि इतनी निकटता के बावजूद तुमने कभी मुझे चूमा तक नही। जानते हो, यह

बात कहते हुए मुझे कितना संकोच, कितनी लज्जा हो रही है ! हर काम की शुरुआत पुरुष की ओर से सहज-स्वाभाविक ढंग से होनी चाहिए। ऐसा नहीं कि नारी को इसके लिए निमंत्रण देना पड़े। मुझे सज़ा देने की तुमने ज़िद ठानी है न ?"

"धत् ! कैसी बात करती हो ?" सोमशेखर ने उसके मुँह पर हाथ रखा।

"सुनो ! जब मुझे गुस्सा आता है तो मैं कहकर व्यक्त कर देती हूँ। आग की तरह धू-धू करके जलकर उसे राख कर देती हूँ। लेकिन तुम उसे पीकर मुझे आहिस्ता-आहिस्ता मरने के लिए छोड़ देते हो।"

"मुझ पर आरोप लगाए बिना क्या तुम एक शब्द भी नहीं बोल सकतीं ? अगर निग्रह न करता तो तुम्हें अपने सुख के साधन के रूप में उपयोग किए जाने की बात होती। इसीलिए निग्रह कर लिया है। इसमें तुम्हें सज़ा देने की बात कहाँ है ?"

"निग्रह द्वारा अगर तुम अपने आपको वेदना का शिकार बनाते हो तो क्या उससे मुझे वेदना नहीं होती ?"—कहते हुए अमृता ने अपने दोनो हाथो से सोमशेखर का मुख पकड़कर उसके होठों पर अपने होठ दबाकर गहरा चुंबन लिया। फिर लजाकर उसके सीने में अपना मुँह छिपा लिया। खुद सोमशेखर ने अपने दोनों हाथो से अमृता का मुख ऊपर उठाने की कोशिश की; लेकिन झुकी हुई गर्दन का तनाव ढीला नहीं पड़ा। "आखिर मुझे निर्लज्ज बना दिया। अब तो तुम्हारा अहंकार तृप्त हुआ ?" अमृता की बातों का अंदाज वह समझ चुका था। किंतु यह उसकी बातों का अंदाज था या उसका स्वभाव, इस फर्क को वह ठीक से नहीं समझ पाया। किसी-न-किसी बहाने मुझे अपराधी करार देती है। वास्तव में भले ही वह स्वयं किसी मामले के बारे में कुछ नही जानती हो, ज्ञान, उद्देश्य या प्रेरणा आदि किसी प्रकार की साज़िश भले ही न हो, ऐसी बातों के लिए भी अपने को ही दोषी ठहराना अमृता का तरीका है—इस बात का भली-भाँति अहसास करके भी सोमशेखर ने ठान लिया कि अमृता की बातों का तात्पर्य या उनकी मुख्य ध्वनि को ही स्वीकार करना होगा, न कि उसकी तानेबाजी को। उसने अपने आपको समझा लिया कि ध्वनि और तानेबाज़ी का फर्क संदर्भ और मनोदशा पर निर्भर होता है। कुछ दिनों से अपने मन में जिस विचार ने रूप ग्रहण किया था उसे अपने सीने में मुँह छिपाये हुई अमृता के कानों के पास अपना मुँह लगाकर बताया, "जब शारीरिक आकर्षण प्रधान बन जाता है तब प्यार में पवित्रता नहीं रह जाती, और शरीर-संपर्क किए बिना माधुर्य और मादकता की अनुभूति नहीं होती।"

अमृता कुछ देर चुप रही। फिर सिर उठाकर सोमशेखर का चेहरा घूरते हुए उलाहने के अंदाज में बोली, "तुम्हारा मतलब है कि हमारे संबंधों में माधुर्य

और मादकता सूख गई है ?"

"हर बात में टेढ़ा अर्थ खोजने की चेष्टा होने लगे तो बातें करना ही कठिन हो जाएगा। मैंने एक साधारण बारीकी की बात कही।" डाँटने के अंदाज में सोमशेखर बोला।

"सोमु, तुमने इसे इस हद तक बढ़ने क्यों दिया ? मुझे क्यों बाहर का बाहर ही रखा ? ऊपर प्यार का नाटक करते हुए भीतर-ही-भीतर क्यों तिरस्कार करते रहे हो ?"

"बस करो अपनी ये टेढ़ी-मेढ़ी बातें !" उसने दुबारा डाँट दिया।

"तुम डाँटो, चाहो तो पीटो। लेकिन मेरी बात माननी ही पड़ेगी।" कहते हुए वह उससे लिपट गई।

सोमशेखर ने उसके आलिंगन का न तिरस्कार किया और न उससे स्पंदित हुआ। फिर भी अमृता के गाल, आँखें और होंठों को चूमते हुए प्रणय निवेदन की अपेक्षा अपने अंत:करण को उसकी ओर बहाते हुए धीरे से बोला "अमृता, तुम कहीं भागकर जाने वाली नहीं हो, और मैं भी कहीं नहीं जा रहा हूँ। मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरी हो। लेकिन, जल्दबाजी ठीक नहीं। कल तक धीरज रखेंगे। ऐसा मत समझो कि तुम्हें दोषी ठहराने के लिए मैं यह बात कह रहा हूँ। चलो, कार में पहाड़ पर घूमकर आयें।" यह कहते हुए वह दीवान छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

अमृता ने आगे कोई चुभती बात नहीं कहीं। "सुनो, इसी मौके पर याद आया, इसलिए कह रही हूँ। उस दिन तुमने जो चमेली का गजरा पहनाया था उसे मैंने उतारकर फेंक दिया था; सच है। लेकिन, उसके बाद दुबारा कभी तुमने मुझे गजरा लाकर नहीं दिया। यानी कि तुम्हारा गुस्सा शांत नहीं हुआ है।"

"मुझे क़तई गुस्सा नहीं है।"

"तुम शायद अपने बाहरी मन को जानते हो, मैं भीतरी मन को भी जानती हूँ।" कहते हुए वह उठी, "अरे ओ शिल्पकार महोदय, हमारे घर में एक झूलता खटोला आपको डलवाना होगा; ताकि हम दोनों उस पर बैठकर झूलते रहें। तुम्हें लिटाकर मैं झोंका देती रहूँ। घर के हॉल में ही डलवाएँगे न ? पुरानी छत बहुत ऊँची है। या पिछवाड़े एक लता-मंडप बनवाकर उसमें डलवाना कैसा रहेगा ? सोचकर बताओ," वह बोली।

उस दिन शाम के सात बजे वह अपने दफ्तर में बैठा काम कर रहा था। बंबई से फोन आया। उसका पार्टनर नवीन शाह बोल रहा था। "अरे सोम भाई, बड़ी जल्दी में प्रोग्राम बनाया है। कल सवेरे पौने आठ वाली फ्लाइट से मैं, इंदू और दिगंत, तीनों बेंगलूर पहुँच रहे हैं। तुम कोई टैक्सी लेकर एअरपोर्ट आ

जाना । टैक्सी पाँच दिन तक हमारे साथ रहेगी । इंदू और दिगंत ने बेंगलूर देखा है । सीधा श्रीरंगपट्टन, मैसूर, चामुडी पहाड़, बृन्दावन, ऊटी; फिर कुर्ग, बेलूर, हलेबीड़, श्रवणबेलगोला होते हुए बेंगलूर पहुँचेंगे । छब्बीस तारीख को शाम के प्लेन का वापसी टिकट बुक हुआ है । तुम्हें हमारे साथ चलना होगा । तुम्हारे साथ अलग से रहने का टाइम नहीं है । इंदू ने भी यही कहा है । यात्रा में ही हम कुछ अपने कारोबार की बातें भी करेंगे । अगर तुम्हें कोई और काम हो तो बाद के लिए स्थगित कर देना । एनिथिंग टु आस्क ?"

वास्तव में नवीन भाई से संपर्क करने की बात सोमशेखर स्वयं सोच रहा था । अब वह खुद आ रहा है । पाँच दिन साथ घूमेंगे । इंदूबेन बड़ी सुशील महिला हैं; दिगंत अब चौदह वर्ष का हो गया है; ऊँचा-पूरा कद्दावर हो गया होगा । उसे देखे दो वर्ष बीत गए हैं । इन्हीं विचारों में खोया वह करीब पाँच मिनट चुपचाप बैठा रहा । फिर उसका ध्यान अपने कामों की ओर गया और पाँच दिनों की अपनी अनुपस्थिति में नीलकण्ठप्पा को क्या-क्या काम संभालने होंगे, इसका ब्यौरा देते हुए वह बोला, "कल दोपहर शायद मैं दफ्तर आऊँ । आप दफ्तर में ही रहिए ।" यह कहकर वह सीधा घर गया । पाँच दिनों के लिए आवश्यक कपड़े-लत्ते जोड़कर पहले बस से बेंगलूर जाने के लिए स्टैंड की ओर दौड़ पड़ा ।

बस मंडया पार कर रही थी तब सहमा अमृता को फोन करने की अपनी भूल ध्यान में आई । उसे फोन पर बताना चाहिए था कि बात कुछ ऐसी आ गई है कि मुझे बाहर जाना पड़ रहा है । पाँच दिन तक शहर में नहीं रहूँगा । फिर दूसरी बात मन में आई कि ऐसी बातें नीलकण्ठप्पा के सामने फोन पर बताना ठीक भी नहीं था । नीलकण्ठप्पा जानता था कि वह हर रोज दोपहर तीन घंटे तक दफ्तर से बाहर रहता है । भले ही मैंने उसे बताया नहीं और उसने पूछा भी नहीं कि उस बीच में मैं घर में होता हूँ या नहीं; फिर भी उसे क्या इसकी भनक नहीं लगी होगी ? मैं किसी से डरता नहीं हूँ; लेकिन, नाहक किसी को शक का मौका क्यों दूँ ?—यह सतर्कता उसके मन में आई । यों तो कल मैसूर होकर ही जाना है । वहाँ से भी फोन पर बताया जा सकता है ।

पाँच दिन तक शाह परिवार के साथ घूम-फिरकर छब्बीस तारीख की शाम की फ्लाइट से उन्हें बैठाकर सोमशेखर जब आखिरी बस पकड़कर मैसूर पहुँचा तब रात के साढ़े बारह बज रहे थे । वह बहुत थक गया था, इसलिए घर पहुँचकर जैसे ही बिस्तर झाड़कर लेटा तो तो तुरंत नींद आ गई । सवेरे आँख खुलते ही अमृता के घर जाने का जोश व उत्साह भर गया । फिर भी इस बात का बड़ा खेद हुआ कि उसने अमृता को फोन भी नहीं किया और सूचना भी नहीं दी । आज उसके घर जाने से पहले दोपहर होटल से फोन करना चाहिए, उसने सोचा । फिर

मार्केट जाकर चमेली का गज़रा ढूंढकर साथ ले चलने का इरादा हुआ। छह दिन पहले अमृता के साथ हुई बातें याद करके उसका मन खिल उठा। उसके मन में आया कि अभी स्कूटर पर चढ़कर उसके घर जाये, लेकिन तभी उसे याद आया कि इस समय तो वह कॉलेज जाती है। इस बात से उसका मन निराश हो गया। उसने सोचा, इस समय फोन करने से भी कोई लाभ नहीं। दफ्तर आते ही उन सारे कागज़ातों पर ध्यान लगाया जिन्हें नीलकण्ठप्पा ने उसके परामर्श के लिए एकत्र करके रखे थे। फिर तुरंत किसी इमारत की देख-रेख के लिए चला गया। नीलकण्ठप्पा को ताकीद करके भेजा कि जल्दी खाना खाकर बारह बजे तक लौट आए। इसके बाद उसने अमृता को फोन घुमाया, "देखो, ऐसी-ऐसी बात हुई।" अमृता सारी बातें चुपचाप सुनती रही। "जानता हूँ कि तुम्हें गुस्सा आया होगा। मैंने जान-बूझकर यह सब नहीं किया। अब केवल इतना बताओ कि मैं आऊँ या नहीं?" अमृता ने उल्टा प्रश्न किया, "जब आने का इरादा तुम्हारे मन में नहीं है तब मुझसे क्या पूछते हो?" "ऐसी टेढ़ी बातें मुझसे मत करो। आधा घंटे में पहुँच जाऊँगा।" उसने चोंगा रख दिया तो अहसास हुआ कि अपनी ग़लती न रहने पर भी वह ग़लती का आरोप लगाती है। अगर वास्तव में ग़लती हो भी जाए तो उसे भुलाकर मेरे मन को सांत्वना देने का बड़प्पन उसमें कहाँ से आ पाएगा? इस अहसास के बावजूद भी अमृता की तीखी आलोचना करने को उसका मन नहीं हुआ। नीलकण्ठप्पा के लौटते ही स्कूटर पर सवार होकर मार्केट गया। ढूंढकर एक बाम् चमेली का गज़रा खरीद लिया और ललित-महल क्षेत्र की ओर निकल पड़ा। आज अमृता उसकी प्रतीक्षा में घर के गेट पर नहीं खड़ी थी। खुद गेट को ठेलकर स्कूटर भीतर ले गया। सामने वाली माँद में बैठा छह महीने का कुत्ता जोर से भौंकने लगा। पिछवाड़े वाले कुत्ते ने भी उतनी ही जोर से उसकी आवाज़ में आवाज़ मिलाई। उसके आने की सूचना मिल गई थी, फिर भी उसने आकर दरवाज़ा नहीं खोला। वहीं से ही उल्टे पाँव चले जाने का विचार मन मे आया। पुनः विचार आया कि अमृता में क्रोध पी जाने की शक्ति नहीं है; अगर मैं भी उसी की तरह पेश आऊँ तो फिर फर्क ही क्या रहा? आगे बढ़कर जब कालिंग बेल दबायी तब पता चला कि वह भीतर दरवाजे के पीछे ही खड़ी थी, लेकिन दरवाजा खोला नहीं। सोमशेखर ने खिड़की के काँच से उसे देखा। वह भी इसे देख रही थी। फिर भी दरवाजा नहीं खोला। सोमशेखर ने दुबारा घंटी बजाई। फिर, "सुनतीं नहीं?" काँच को भेदकर आवाज़ भीतर तक पहुँचने की न होने पर भी होंठों की हरकत तो वह जान [illegible]ती, इस इरादे से वह बोला। उसने दरवाजा खोला। जब सोमशेखर भीतर गया तब वह चेतनाहीन मूर्ति-सी खड़ी थी। स्वागत के कोई लक्षण चेहरे पर दिखाई नहीं पड़े। उसका हाथ भी आगे नहीं बढ़ा। लेकिन, उसका चेहरा और शरीर साफ़ बता रहे थे कि उसने

पिछले पाँच-छह दिन से न खाना खाया है और न नींद ली है। दरवाजे की सिटकनी चढ़ाकर उससे लिपटना चाहा तो वह छिटक कर दूर हो गई। सोमशेखर ने लंबे डग भरकर उसे कसकर पकड़ लिया और बोला, "ये अकड़ छोड़ो। मेरी बात सुनो ! मेरी कंपनी का 'शाह एंड शेखर' जो नाम है न, वही नवीन शाह मेरा पार्टनर आया था। हम दोनों ने बंबई में साथ मिलकर कंपनी शुरू की थी। पक्का दोस्त है। अचानक जाना पड़ा। तुम्हें सूचना भी नहीं दे पाया।"

"बंबईवाले मित्रों के रहते मेरी याद कहाँ आएगी तुम्हें ?" अमृता ने अर्थ की दिशा मोड़ दी।

"हर पल याद आती थीं तुम। लेकिन फोन नहीं कर सका। बाहरी गाँव से फोन करना हो तो तुम्हारा नाम, नम्बर सब बताना पड़ता। नवीन सदा मेरे साथ रहता था।" इस अंदाज में बोला मानो अमृता के मोड़े हुए अर्थ की दिशा वह समझ ही न पाया हो।

अमृता उसे रसोईघर में ले गई। जब सोमशेखर का फोन आया था तब फ्रिज से दाल और सब्जियाँ निकालकर गरम करने जा रही थी। चावल का कुकर सीटी बजाने लगा था। "तुमने पाँच दिन से खाना क्यों नहीं खाया, बोलो ?" —सोमशेखर ने पूछा।

"ऐसा प्रश्न पूछने लायक मेरी हालत तो तुमने पहचानी, थैंक्स !" —उसने जवाब दिया। फिर वह अकेले सोमशेखर के लिए खाना परोसने निकली। सोमशेखर ने ज़िद की कि जब तक अमृता नहीं खाएगी वह भी नहीं खाएगा। तब अमृता ने बगल में एक और थाली लगा ली। खाने खाते समय वह खुद बोली, "अपनी सफाई तुमने दे दी। अब मैं अपनी बात कहे देती हूँ। उस दिन हममें क्या-क्या बातें हुई, याद कर लो। उस दिन सारी रात मैं सो नहीं सकी। अकथ उत्साह, प्रतीक्षा, उतावली रही। दूसरे दिन सवेरे जल्दी उठी, स्नान करके भगवान के सामने दिया जलाया; तुम दोपहर को आओगे, इसलिए। यों ना रोज आते थे, वह बात और थी। लेकिन उस दिन की बात याद करो। सवा-बारह बजे गेट के पास जाकर खड़ी हो गई। तुम्हारे आने की दिशा की ओर गर्दन उठा कर, उचककर, टकटकी लगाए-लगाए गर्दन में दर्द हो गया। क्यों नहीं आए, इस भय और आतंक के कारण। हे भगवान, रास्ते में कुछ ऐसा-वैसा ना नहीं हुआ ? मृगालय वाले उस मोड़ से मुझे बड़ा डर लगता है। कार में जाना किसी हद तक सुरक्षित है। टक्कर का पहला आघात इंजन पर होता है। स्कूटर पर सीधा आघात सवार पर होता है। दो बजे के लगभग भीतर आई। हो न हो, एक बार कोशिश तो करें इस इरादे से तुम्हारे दफ्तर को फोन किया, कहा कि मिस्टर सोमशेखर साहब से बात करनी है। नीलकण्ठप्पा ने बताया, "मैडम, वे यहां नहीं हैं। बेंगलूर गए हैं। छब्बीस की रात या सत्ताईस की सुबह लौटेंगे।" यह बात

सुनकर मन को बहुत पीड़ा हुई मानो हजारों काँटे एक साथ चुभ गए हों। फिर भी अपनी भावना को दबाकर बोली, "आते ही उनसे कह दीजिए। अपने कंपाउंड की दीवार पर दो फीट का फैन्सिंग करवाने का विचार है। उस बारे में उनकी सलाह चाहिए थी।" कारोबार की बात बनाकर जब फोन का चोंगा नीचे रखा तो जानते हो मुझे अपने आप से कितनी चिढ़ हुई। तुम्हें भला कैसे पता चलेगा? कुतिया की तरह मैंने खुद पीछे पड़कर इशारा किया। उतावली ठीक नहीं, कल तक सब्र करेंगे कहकर तुम मुल्तवी करके जो गए; भावनाशून्य होकर मुझे फोन तक किए बिना, मित्र के आने की खुशी में उसके साथ निकल गए। मैं एक कुतिया ठहरी, कुतिया की तरह तुम्हारी मनुहार करती गई। तुमने मेरे साथ कुतिया से भी बदतर सलूक किया, इस अहसास के कारण···," सहसा बाहर निकली हुई साँस वहीं रुक गई और वह फूट-फूटकर रोने लगी। सोमशेखर एक दम घबरा गया। अपना बायाँ हाथ बढ़ाकर जब वह अमृता को अपनी बाँहों में लेकर सहलाने लगा तब वह कुछ सँभलकर बोली, "अब मनुहार कर रहे हो. तब तो कुतिया से भी घटिया समझकर छोड़ गए थे।"

सोमशेखर ने उसकी बात काटकर कहा, "मुझे क्यों और किस हालत में जाना पड़ा, यह मैंने बता दिया न तुम्हें!"

"अब बताया। लेकिन उस समय मेरे मन में जो-जो विचार आए वे नाहक तो नहीं थे।"—अमृता ने उलाहना दिया।

"सचाई जान लेने के बाद इस बात का पता चल गया होगा कि वे सारे विचार आवेश से भरी कल्पना मात्र थे। पुनः क्यों उन्हें दोहराती हो?"

"दोहराऊँ नहीं तो तुम तक मेरी बात पहुँचेगी कैसे?"

"निरर्थक विचारों को पहुँचाने की आवश्यकता ही क्या है?"

"मेरे मन की भावनाओं को अगर तुम बाँट लेने के लिए तैयार नहीं हो तो मैं जबान तक नहीं हिलाऊँगी।" तपाक से उठकर कोने वाली सिंक की ओर बढ़ी और नल घुमाकर हाथ धोने लगी।

"यह क्या कर रही हो?" उसके पीछे लपककर सोमशेखर ने उसे रोकते हुए कहा, "तब तो मेरा भी खाना हो गया। हाथ धोता हूँ।" उसने नल के नीचे हाथ बढ़ाया। अमृता चुपचाप खड़ी थी। सोमशेखर कुल्ला करके हाथ पोंछकर लाउंज के सोफे पर जा बैठा। अमृता उस ओर फटकी तक नहीं। दमघोंटू वातावरण में कुचली मनोदशा में सोमशेखर स्पंदनहीन हो गया। सारा घर इतना खामोश था मानो काटने के लिए दौड़ रहा हो। अमृता के चलने-फिरने की भी कोई आहट नहीं थी।

पंद्रह मिनट के बाद सहसा अमृता बाहर निकली और सोमशेखर के सामने खड़ी होकर बोली, "क्या मेरी सज़ा पूरी हो गई?" गर्दन उठाकर सोमशेखर

उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगा तो उसने पूछा, "खाना क्यों छोड़ दिया ?"

"तुमने क्यों छोड़ दिया ?" सोमशेखर ने प्रति प्रश्न किया।

"अगर अब मैं फिर से खाऊँ तो तुम भी खाओगे ?" सोमशेखर ने कोई जवाब नहीं दिया। उसके पास आकर लिपटकर बोली, "सोमु, तुमने वादा किया है कि मैं अगर गुस्सा करूँ भी तो भी तुम सब्र से पेश आओगे, याद है ? अब चलो।" सोमशेखर का माथा, सिर आदि चूमते हुए बाँह पकड़कर उसे ऊपर उठाया। उसके साथ जाकर सोमशेखर ने पुनः डायनिंग टेबुल की ओर देखा। पहलेवाली जूठी थालियाँ हटाकर एक अलग थाली में दही-भात परोसकर रखा गया था। उस पर एक चम्मच भी है और बगल में एक भगोना आइस्क्रीम का भी। "उस दिन तुम्हारे लिए आइस्क्रीम बनाकर रखी थी। बच्चों को खिलाकर बचा हुआ तुम्हारे साथ खाने के इरादे से डीप-फ्रिज में डालकर रख दिया था," सोमशेखर को एक कुर्सी पर बैठाते हुए बोली। उसकी बगल में खुद भी एक कुर्सी सरका कर बैठ गई। चमचे से उसे एक-एक कौर दही-भात खिलाती रही और खुद भी खाती रही।

रूमाल में बंधे चमेली के गजरे पर अमृता की नजर गई। लेकिन उसे देखकर भी उसने कुछ कहा नहीं। भीतर आते ही सोमशेखर ने उसे सोफे पर रख दिया था। भोजन के बाद लाउंज से गजरा लाकर अमृता के जूड़े में पहनाया। वह सिर झुकाए खड़ी रही। आगे क्या बात करे, इस पसोपेश में दो पल खड़ा रहा, फिर उसके दोनों कंधे पकड़कर दबी आवाज़ में फुसफुसाया, "अमृता, तुम्हारी अनुमति के बिना मैं आगे नहीं बढ़ूंगा।" वह कुछ नहीं बोली। सोमशेखर उसकी अनुमति की प्रतीक्षा करने लगा। पल-भर बाद पुनः पूछा, "सुना तुमने ? तुम्हारी अनुमति नहीं है तो न सही।"

अमृता ने गर्दन उठाकर जलती आँखों से उसे एक पल देखा फिर नज़र झुकाकर बोली, "अनुमति, स्वीकृति, कौल-करार आदि सावधानी के साथ आगे बढ़ने वाले लोगों का स्नेह मुझे नहीं चाहिए।" सोमशेखर और आगे कुछ नही बोला। अमृता को बाँहों में भर कर कुछ उठाकर, कुछ चलाते हुए लाउंज में रखे दीवान के पास ले गया और संकोच को उतारकर तथा उतरवाकर एकता के गरम बंधन में डूब गया। प्रथम ऐक्य की उद्विग्नता एवं संवेदना के अन्वेषण से प्राप्त इस मूर्त साक्षात्कार की भावना में तन्मय होने पर भी अमृता का मूक ही सही संपूर्ण प्रज्ञा के साथ समर्पण का भाव जब सोमशेखर के ध्यान में आया तो उसके मन में धन्यता की प्यारी भावना हिलोरें लेने लगी। उसमें अनुभूति का यह परिपूर्ण ज्ञान भी जगाने लगा कि उस संतोष का वह अकेला नहीं वरन् उससे अधिक संतृप्ति के साथ अमृता पान कर रही है। तब सोमशेखर और भी अधिक

उत्तेजित होकर अमृता में प्रति-उत्तेजना जगाने लगा। अमृता का चेहरा और तन, मन इस सार्थक अहसास से स्पंदित हो उठा कि जीवन की सारी खुशी इस रूप में फव्वारा बनकर फूट पड़ी है और वह उस क्रिया की सक्रिय भागीदार बनी हुई है। उसके मन में ऐसी गहरी भावना जागी कि जीवन के मायने संतोष है और संतोष की सांद्रता के बीच, चढ़ती उत्तेजना के बीच दुःख और म्लानता की स्थिति के लिए रंचमात्र भी गुंजाइश नहीं। इसके मध्य में अचानक जो वेदना उत्पन्न होती है उसे भी संतोष में परिवर्तित करने का यांत्रिक गुण जीवन के मूल-स्रोत मे निहित होता है; इस तथ्य की जड़ मे उलझकर वेदना का आह्वान करते, केवल वेदना का आह्वान करते हुए, उस वेदना को संतोष का आह्वान करने वाली संधि मानकर उस अनिर्वचनीय प्रक्रिया मे पूरी तरह डूब गई। जीवन के मर्म को संतोष में निमज्जित करवाकर, घुलवाकर और खुद को घुलाने वाली चरम स्पदन से अमृता झंकृत हो रही थी और सोमशेखर चमेली की सुकुमार सुगंध मे घुलकर जब इस श्रद्धाभाव मे फूला नही समा रहा था कि अब अमृता में कभी दुःख, क्लेश या तनाव के भाव नही जागेंगे तभी अमृता के चेहरे पर ऐसी भावना मुखरित होने लगी मानो उसे घेरकर निस्पंदित किया जा रहा है, मानो वह नीचे रसातल की ओर गिरती जा रही है, चेतना का अवसान होने लगा हो। आँखो की चमक उतर गई और दिग्भ्रांत, उलझी हुई दृष्टि दिखाई पड़ी। आत्मसात करने का खुमार उतरकर सम्मिलन को बाहर ठेल देने वाला चुभता तिरस्कार, तनाव स्पष्ट दिखाई देने लगे। अमृता में मुखरित इन समस्त सूक्ष्म तरंगो के अंतर को सोमशेखर सूक्ष्मता से ग्रहण कर रहा था। किंतु उसने साफ देखा कि उसकी संवेदना इस नए खुमार को आमूलाग्र ग्रहण करने से पहले ही अमृता इतनी दूर खिसक गई थी कि पकड़ मे न आ सके। अँधेरे में टटोलने वालों की तरह उसने 'अमृता-अमृता' की रट लगाई। वह वहाँ नहीं थी। पुनः-पुनः टोककर उसका पता लगाना अपना एकाधिकार मानकर उसने जोर से पुकारा। मदहोशी की भावना में कोमल कंठ से प्रतिध्वनित होने के बदले अमृता तिरस्कार की आग बरसाने लगी, "क्या तुम्हारी हैवानी प्यास अभी नहीं बुझी ?" अचानक बदले हुए इस तेवर से सोमशेखर जिस उलझन में पड़ गया था, उससे संभलने का उपक्रम कर ही रहा था कि उसे ठेलकर करवट लेकर अमृता उठ पड़ी और दीवान के नीचे बिखरे अपने कपड़े-लत्ते उठाकर सरपट अपने बेडरूम में चली गई और पीछे से धड़ाम के साथ दरवाज़ा बन्द करके कुंडी लगा ली। घर मे अचानक गूँजी इस कर्कश आवाज़ से घर के पिछवाड़े और सामने की माँद के दोनों कुत्ते जोर से भौंकने लगे।

अचानक हुए इस आघात से सोमशेखर भौंचक रह गया। कुछ देर बाद उसे लगा, अजीब रूखी औरत है यह ! अपनी तत्कालीन अवस्था को देखकर उसे

लज्जा का अनुभव हुआ। झट उठकर उसने अपने कपड़े पहन लिये। सरपट बाहर निकलकर स्कूटर उठाकर चले जाने का मन हुआ। पुन: कभी इस घर में कदम न रखने की बात मन में आई। यह एक निरे स्वार्थ की मादा मृग है। उसके सामने चित्र उभरा कि एक ही थाली में खाते समय जैसे ही अपना पेट भर जाए तो अपने साथी की परवाह किए बिना थाली उठाकर घूरे पर फेंककर चले जाने वाली चंडी के समान है। सोफे पर बैठकर मौजे और जूते पहनने लगा। विदा लेने का सौजन्य तो दूर, अब मेरा-तुम्हारा कोई संबंध नहीं—इस आशय का क्रोधपूर्ण वाक्य सुनने की क्षमता भी इस जंगली औरत में नही है। जूते पहनकर उठा और लाउंज के फर्श पर दबे पाँव जब दरवाजे पर पहुँचा तो उस शब्द-शून्य घर के किसी भीतरी कोने में सिसकी भर-भर कर रोने की क्षीण आवाज़ सुनाई दी। लगा कि अमृता ही होगी। उसके बेडरूम के बंद दरवाजे पर कान लगाकर खड़ा हो गया। हाँ, वही है। भीतर सिसक-सिसककर रो रही है। कुत्तों का भूँकना बंद हो जाने के कारण नीरवता और गहरी हो गयी थी, इसलिए रोने की आवाज और साफ़ सुनाई दे रही थी। क्यों रो रही है? बात सोमशेखर की समझ में नहीं आई। अब इसको क्या हुआ है? कुछ क्षण बाद याद आया कि उसका गुस्सा सहसा भड़क उठता है; आँसू बनाकर पूरी बह जाने के बाद ही उसका शमन होता है। अब उसका यह रोना क्या गुस्से के शमन का लक्षण है? उसके क्रोध की वजह चाहे कुछ हो या न हो, अकारण गुस्सा करना उसकी आदत भी है। उसके मन में आया कि वह इतना रो रही है, तब सांत्वना की एकाध बात किए बिना चले जाना क्रूरता होगी। तुरंत उसने दरवाजे पर हलकी-सी दस्तक दी, 'अमृता,' अमृता' आवाज लगाई। रोने की आवाज़ थम गई। लेकिन अमृता का जवाब नहीं आया। यकीन न हुआ कि उसने उसकी पुकार सुनी है। दुबारा कहा, "अमृता, दरवाजा खोलो।" फिर भी कोई जवाब नहीं आया। "नहीं खोलोगी तो यहीं खड़ा रहूँगा, चाहे कितनी भी देर क्यों न हो," वह बोला। फिर भी वह नही आई। वह वहीं खड़ा रहा। कुछ ही देर में पाँव दर्द करने लगे। लौटकर लाउंज में बैठने का मन हुआ। फिर याद आया कि चाहे कितनी भी देर हो वही खड़े रहने का निश्चय किया है उसने। यों ही खड़ा रहा। पाँवों का दर्द और बढ़ गया। एक कुर्सी डालकर वहाँ बैठने का उपाय उसे सूझा। लेकिन उसने खड़े रहने की बात कही थी—चाहे कितनी भी देर क्यों न हो। फिर वह दरवाज़े के सामने वैसे ही खड़ा रहा।

अचानक अमृता ने दरवाजा खोला। दरवाजे के बाहर खड़े सोमशेखर का सामना करते हुए वह दरवाजे के भीतर खड़ी रही। अपने कपड़े जो समेटकर ले गई थी उन्हें बेतरतीब पहन रखा था। बाल बिखरे थे। माथे पर सिन्दूर ज्यों का त्यों फैला हुआ था। दरवाजा खोलने के क्षण-भर बाद सोमशेखर को देखकर

सायास क्षीण स्वर में बोली, ' जूते पहनकर तैयार खड़े हो तो जा सकते हो। कुत्तों को बाँध रखा है; काटेंगे नहीं।"

अपने जूते पहने रहने का अपराधी भाव सोमशेखर के मन में पल भर के लिए आया। इसलिए तुरंत कोई जवाब नहीं सूझा, फिर बोला, "दफ्तर के लिए देर हो गई थी।"

"देर हो गई थी तो चले जाना चाहिए था। रुककर मेरा क्या बनाने वाले हो?" मानो थप्पड़ खाने की-सी अवमानना हुई। फिर भी, मुँहतोड़ जवाब देने के लिए सोमशेखर को मामूली प्रतिक्रिया रूपी क्रोध भी नहीं आया। वह यथावत खड़ा रहा। अपनी सारी देह को नियंत्रित क्रोध के कोण में मानो समाहित करके अमृता उसके सामने खड़ी थी। उसे घूरकर भी नहीं देख रही थी। यों ही पाँच मिनट बीत जाने पर बोली, "मिस्टर सोमशेखर, तुम्हारे साथ एक सीरियस बात करनी थी।" सोमशेखर ने कहने का इशारा किया। उसी नियंत्रित अंदाज में खड़ी-खड़ी बोली, "तुमने खुद बताया है कि तुम्हें एक शादीशुदा औरत के साथ खिलवाड़ करने का अनुभव है। अनुभव जितना बढ़ता है संवेदना उतनी ही भोथरी होती है। मुझे बिगाड़ते समय क्या तुम्हारे मन में यह उचित या अनुचित विचार तनिक भी नहीं आया कि यह शादीशुदा है, इस तरह करके मैं उस औरत का अपने पति के सामने सिर ऊँचा करके खड़े रहने का नैतिक अधिकार नष्ट कर रहा हूँ? उसके बच्चों के साथ उसके अधिकारों को नष्ट कर रहा हूँ? अथवा मुझे भी क्या इन सब में अछूती उस बंबई वाली औरत की नस्लवाली समझा?"

सोमशेखर का नैतिक धैर्य और दुर्बल हो गया। अमृता की हर बात सच लगी। एक बार अपनी पवित्रता खो देने के बाद इसे अपने पति के सामने वह नैतिक अधिकार और आत्मविश्वास प्राप्त नहीं हो सकता। इसके नष्ट हो जाने के बाद व्यक्ति में आत्मविश्वास भला कहाँ से आएगा? इस विचार के साथ सोमशेखर को आत्म-ग्लानि हुई। उसका सिर चकराने लगा। उसे लगा कि वह खड़ा न रह पाकर ढह कर वहीं गिर जाएगा। उसने दोनों हाथों से दरवाजे का सहारा लिया। अहसास हुआ कि सिर में कोई अदृश्य वायु साँय-साँय करती भरती जा रही है। इस तरह पता नहीं एक, दो, तीन, चार, कितने क्षण बीत गए। लेकिन कुछ समय बाद सिर हलका होने लगा। याददाश्त साफ़ होने लगी। सारी घटना याद आई। आत्मविश्वास बढ़ गया। लगा कि अब वह चौखट के सहारे के बिना भी खड़ा रह सकता है। सीधे खड़े होकर बोला, "जो कुछ हुआ वह हम दोनों ने मिलकर किया है। मैंने बार-बार कहा कि अगर तुम्हारी अनुमति न हो तो न सही। जब तुमने निश्चयपूर्वक कहा कि अनुमति, अनुबंध, कौल-करार की सावधानी के साथ कदम बढ़ाने वालों का स्नेह तुम्हें नहीं चाहिए, तभी मैं आगे बढ़ा। तुमने भी तो सक्रियता से भाग लिया है। छह दिन पहले

भी मैंने ही कहा था, उतावली ठीक नहीं सब्र करेंगे ! तुमने नहीं कहा था ?"

'लेकिन, क्या इतनी भी तमीज तुममें नहीं कि एक शादीशुदा औरत, उसे मन से भी छूना नहीं चाहिए ?" अमृता ने पुन: सोमशेखर को दोषी ठहराया।

"शादीशुदा होने की तमीज तुम्हें होनी चाहिए, मुझे नहीं ।" गरजने के अंदाज में उसने ऊँची आवाज़ में जवाब दिया।

अमृता स्तब्ध हो गई। चेहरा काला पड़ गया। आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा। भीतर की ओर खुले किवाड़ से टिककर उसने आँखें बंद कर लीं। मन के भीतर एक अनाथ की प्रज्ञा व्यापने लगी कि अपना कोई नहीं है, अपनी जिम्मेदारी ढोने वाला कोई आत्मीय व्यक्ति नहीं है, तनिक भी अपनी हिमायत करने वाला कोई हमसफर नहीं। उसका चेहरा उतर गया था, आँखें बंद थीं। कारण, भीतर की शून्य भावना स्थिर हो गई थी। उसकी हालत देखकर सोम-शेखर को लगा कि शायद उसकी बात ज्यादा कठोर हो गई। लेकिन उसे अपनी बात का समर्थन भी मिला कि जो कुछ हुआ उसके लिए सहसा तेज धारीदार नैतिक आयाम का निर्माण करके उसे अपने ही गले में डालकर जब आरे की तरह चलाने लगी तब उसके बदले में कुछ कहे बिना कोई चारा भी तो नहीं था। एक और समर्थन उसके मन में आया कि उसने सच्चाई का अहसास कराने के अतिरिक्त कोई और बात तो नहीं कही। वह अपनी जगह ही खड़ा था। लौटकर स्कूटर पर चढ़कर चले जाने का विचार आया। लेकिन इस तरह अचानक चले जाने से नैतिक आरोप और हार को स्वीकार कर भाग जाना होगा। मन में यह जिद आई कि अपनी बात के लिए अमृता से हामी भरवाकर ही जाए।

तभी अमृता का चेहरा तमतमाया। किवाड़ का सहारा छोड़कर सीधी खड़ी हो गई। सोमशेखर को उसकी आँखों में ऐसा विचित्र विरक्तिभरा निश्चय उस टिम-टिमाते दीप की तरह दिखाई पड़ा जो प्रकाश को फैलाने के बदले भीतर की ओर समेटता जा रहा था। दबी लेकिन सख्त आवाज़ में वह बोली, "तुम्हें वहीं रुकना होगा। खबरदार जो इस देहलीज को लाँघकर मेरे बेडरूम में आए !" दरवाजा खुला छोड़कर वह बेडरूम के भीतर चली गई। भीतर का गारे का फर्श सोमशेखर को साफ दिखाई दे रहा था। बीचों-बीच दीवार की ओर सिरहाना लगा हुआ, पुराना, मजबूत, शाही ढंग की डबल पलंग था। भीतर जाकर अमृता ने उस पलंग की बगलवाली दराज़ से एक रिवाल्वर निकाली। रिवाल्वर को अपने दाहिने हाथ में पकड़ने के अंदाज से ही सोमशेखर को पता चला कि निशाना लगाने की और अचूक गोली दागने की प्रवीणता उसमें है। घर में रिवाल्वर रखती है, इस बात की कल्पना सोमशेखर को आज तक नहीं थी। रिवाल्वर हाथ में लेकर जब वह पुन: स्थिर गति से उसकी ओर आने लगी तब सोमशेखर के मन मे भय जागा कि अब अपनी जान नहीं बचेगी। झपटकर कमरे का दरवाजा

बंद करके बाहर की कुंडी लगाकर दौड़कर स्कूटर पर···इस प्रकार जान बचाने के उपाय उसके मन में आने लगे। फिर भी भगोड़े जैसे घटिया काम करने से मन के एक छोर ने रोक लगायी। फिर उपेक्षा और निर्लिप्त भाव भीतर से उमड़ा कि अपने मरने से क्या फर्क पड़ने वाला है; लगा कि जीवन और मरण दोनों अर्थहीन प्रक्रियाएँ है। माथे और गर्दन पर हल्के स्वेदकण झलकने लगे। स्थिर गति से पास आकर वह अपनी पहले वाली जगह पर खुले दरवाजे के पास खड़ी होकर सोमशेखर का चेहरा घूरते हुए बोली, "हाँ, तमीज मुझमें होनी चाहिए। तुमने मुझे मेरी, जगह का मेरी हैसियत का अहसास करा दिया। मुझे जीने का कोई अधिकार नहीं। इस चरम सत्य का तुमने मुझे दर्शन करवाया। यह रिवाल्वर मेरा छुटकारा करेगी। तुम किसी से जिक्र किए बिना चुपचाप, बिना पल-भर की देरी किए अपना स्कूटर लेकर यहाँ से निकल जाओ! नमस्कार। आखिरी नमस्कार!" धड़ाम के साथ किवाड़ बंद करके उसने भीतर से कुंडी लगा ली।

एक क्षण पहले सोमशेखर का माथा और गर्दन प्राण-भय से भीग गए थे। अब सहसा सारे शरीर में पसीना छूटकर केवल जाँघिया और बनियान ही नहीं बल्कि शर्ट और पैंट के भीतरी भाग भी चिपकने लगे। रोंगटे खड़े होने लगे। बरबस वह बंद दरवाजे पर थपकी देने लगा। भीतर से उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। पुन: चार-पाँच बार दरवाजा थपथपाया—"अमृता, अमृता, सुनो, मेरी बात सुनो, दरवाजा खोलो। मेरी जो भी ग़लती होगी उसकी हम चर्चा करेंगे, मैं अपनी गलती सुधार लूंगा। दरवाजा खोलो, तुम्हें मेरी क़सम!" वह गिड-गिड़ाते हुए चिल्लाता रहा। अमृता का कोई जवाब नहीं आया। इतने में उसकी थपकी की आवाज सुनकर घर के दोनो ओर से कुत्ते जोर-जोर से भौंकने लगे। कुत्तो की इस आवाज़ ने सोमशेखर के संयम को और अधि तोड़ दिया। पुन: दीनता से "दरवाजा खोलो, मेरी क़सम, भगवान की क़सम, तुम्हारी कसम···" जो बात सूझी उसका सहारा लेकर याचना करने लगा। "सुनो, तुम कुछ अनहोनी मत कर बैठना। अगर तुम जीवित रहीं तो हम हर बात की चर्चा कर सकेंगे। अगर तुम आत्महत्या कर लोगी तो मैं भी जीवित नही बचूंगा। याद रखो। सुन रही हो न?" वह और भी ऊँची आवाज़ में बोला। उसकी प्रतिक्रिया में भी जोर-जोर से भौकने लगे। सोमशेखर का गला ही नहीं सूखा बल्कि आवाज लगाने की, याचना करने, गिड़गिड़ाने की उसकी शक्ति ही मानो सूख गई। उसे अहसास हुआ कि वह ऐसी अवस्था में फँस गया है जिस पर उसका वश नहीं है। मौन हो गया। कुछ देर पूरी तरह मौन छाया रहा। कुत्तों ने भी भौंकना बंद किया। सहसा रोने का मन करने लगा। उसने जिससे प्यार किया था, जिसने कुछ ही क्षण पूर्व चमेली की सुकुमार मादकता के साथ अपने तन-मन के भावों में जीवन-रस भरा था, अमृता नामक वह महिला जो अपने शरीर को रिवाल्वर की गोली दागकर

तिरोहित करने की उतावली में है, उसका स्मरण करके सोमशेखर को अहसास हुआ कि वह उससे कितना प्यार करता है। 'हे भगवान, उसको सद्बुद्धि दे, उसका मन जो ट्रिगर दबाने जा रहा है उसे मोड़ दे, ऐसा कुछ कर दे कि चेंबर में कोई गोली ही न हो; अगर हो भी तो वह निशानी चूककर खिड़की से बाहर चली जाए'—वह दीनभाव से प्रार्थना करके लगा। भगवान के अस्तित्व में बिलकुल विश्वास न रखने का अपनी बौद्धिकता को भुलाकर श्रद्धा एवं विश्वास का स्रोत भीतर से फूट पड़ा। उसके थम जाने के बाद पुनः मौन छा गया। कमरे के भीतर क्या हुआ, इसकी आहट लेने के लिए कान लगाए खड़ा रहा, निश्शब्द। मृत्यु जैसी निश्शब्दता ने सारे घर को जकड़ रखा रहा था। कुत्ते भी चुप थे। किसी भी क्षण भीतर से धम से अमृता के गिरने की आवाज़ आ सकती है—इस कल्पना से उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धकड़ने लगा। धड़कन इतनी बढ़ गई कि उसके कानों को साफ़ सुनाई देने लगी। घड़ी देखी। सैकेंड की सुई पल-पल की परिभाषा करती बढ़ रही थी। किसी भी समय भीतर से धमाके की आवाज़ आ सकती है, इस अहसास के साथ दिल की हर धड़कन रिवाल्वर के धमाके की तरह धक-धक करने लगी।

सहसा उसमें अन्य प्रकार का भय उत्पन्न हुआ। अगर उसने वास्तव में अपनी हत्या कर ली तो पुलिस आएगी। भीतर से कुंडी लगे रहने पर भी मुझे पकड़ लेगी। हर रोज़ इस समय मेरा यहाँ आना उससे छिपा नहीं रह पाएगा। अगर अब मैं स्कूटर लेकर भाग भी जाऊँ तो भी पुलिस मुझ पर शक ज़रूर करेगी। गोली दागकर मरने पर भी शव-परीक्षा के समय इस बात का पता चले बिना नहीं रहेगा कि कुछ देर पहले हमने दैहिक संबध किया था और फिर पुलिस ऐसी बात बना सकती है कि मैंने उस पर बलात्कार किया और उसने अपनी अस्मत की खातिर गोली मारकर आत्महत्या कर ली। मुझ पर मुकद्दमा चलेगा। समाचार-पत्रों में वास्तुकार सोमशेखर का नाम आएगा, हथकड़ी पहने मेरी फोटो छपेगी। मुझे इस अवस्था को पहुँचाने के प्रतिशोध की भावना से ही सही, अगर उसने आत्महत्या कर ली तो? इसके बदले अगर वह खुद मुझे मार देती तो बेडा पार हो जाता। अब स्कूटर पर चढ़कर चले जाने में भी खतरा ही है। अधिक खतरे की आशंका हुई। "अमृता, अमृता, मेरी अपनी अमृता! दरवाजा खोलो, तुम्हें मेरी कसम, मैं यहीं खड़ा हूँ। दरवाज़ा खोलो।" बड़ी आर्तयाचना के साथ उसने गुहार की। दरवाजा थपथपाया नहीं कि कुत्ते भौंके नहीं। जब कुछ करते न बना तो वह भगवान का ध्यान करते हुए वहीं खड़ा रहा। कुछ देर बाद अपनी आहट न लगे, इस इरादे से जूते उतारकर बाहर चला। बड़ी सावधानी से बिना आवाज़ किए मुख्य द्वार खोलकर अहाते के बगीचे की ओर चला। अमृता के बेडरूम की खिड़की के पास आया। उसके मन में आया कि संयोग से अगर खिड़की खुली

हो तो दिखाई दे सकता है कि वह क्या कर रही है अथवा अनुनय-विनय करके द्वार खोलने के लिए कहा जाए तो शायद उसका दिल पिघल जाए, इस संभावना ने उसमें कुछ विश्वास का संचार किया। लेकिन उसके कमरे की खिड़कियाँ मोटे सागौनी किवाड़ों से बंद थीं। धूप में सूखकर उनके रंगों के चकत्ते झड़ गए थे। इतने दिनों में कभी उसने अपने बेडरूम में बुलाया नहीं, और वह आप भी जोर-जबरदस्ती से गया नहीं। जाने का इरादा ग़लती से भी व्यक्त नहीं किया था। याद आया कि आपस में लिपटकर सोए-सोए जो बतियाते रहते थे वह लाउंज के दीवान पर ही। कुछ देर खिड़की के पास खड़ा रहा; फिर उस कमरे के बगल वाली टायलेट की खिड़की की ओर देखा। वह भी बंद थी। उनका निचला आधा हिस्सा लकड़ी का और ऊपरी हिस्सा काँच का था। अपना वहाँ जाना ठीक नहीं। अगर उसे पता चल जाए कि मैं यहाँ आया हूँ तो—सोमशेखर को एक प्रकार की हीनता हुई। दबे पाँव बगीचा पार करके, सामने वाली माँद में गुर्राते हुए कुत्ते की ओर ध्यान न देकर, पुन: घर में प्रवेश किया। सावधानी से दरवाज़ा बंद करके कुंडी चढ़ाई। बेडरूम के पास आकर जूते फिर पहन लिये। एक प्रकार से हौसला बढ़ने लगा। अगर गोली दागनी थी तो अब तक दाग लेनी चाहिए थी। शायद अब क्रोध का आवेग उतर गया है। विश्वास जागा कि अब कोई डर नहीं। इसी तरह कुछ देर और खड़ा रहा। जब खड़े-खड़े थक गया तो दरवाज़े की दीवार से पीठ सटाकर जमीन पर बैठ गया। कुछ तसल्ली हुई। किंचित आश्वस्त मन से सोचने लगा। मुझे कभी बताया ही नहीं कि घर में रिवाल्वर है। 'बिना किसी चौकीदार के नगर के मुख्य भाग से बाहर सुनसान प्रदेश के इस बड़े घर में अकेली रहती हो, क्या कोई ख़तरा नहीं?' मैंने पूछा था तो उसने कहा था, किसी चौकदारी की आवश्यकता नहीं, मुझ में खुद हिम्मत है।' कॉफ़ी बाग़ान वाले जो ठहरी, बंदूक, रिवाल्वर का उपयोग जानती है। निशाना लगाकर गोली दागने का काफी अभ्यास किया होगा। फिर भी ऐसे घर में अकेली! उसी ने बताया था कि बच्चों को अलग कमरे में सुलाती है, कैसे भला रात बिताती होगी! इस पर्वतीय क्षेत्र के कॉफ़ी बाग़ान वालों को क्या अभ्यास के बल पर अकेलेपन से प्यार हो जाता है? मन जब कल्पनाओं में डूब गया तब भय और आतंक का दबाव भी कम हो गया, दिल की धड़कन कुछ शांत हुई। मन ने कहा, अब भय की बात कोई नहीं। फिर भी वह अपनी जगह से हिला नहीं।

कुछ देर बाद भीतर कमरे से एक आहट सुनाई पड़ी। कान लगाकर सुना। कमरे से लगे हुए गुसलखाने से पानी बहने की आवाज़ थी। और ध्यान लगाकर सुना। लगा कि फुहारे से पानी चल रहा है। उठकर सामने का दरवाजा खोलकर बाहर निकला, बगीचा पार करके उस गुसलखाने की खिड़की से कुछ दूर इस तरह खड़े होकर सुनता रहा कि काँच पर कहीं उसकी छाया न दिखाई पड़े।

हाँ, नहा रही है। भीतर के गरम पानी की फुहार से खिड़की के काँच पर भाप जमने लगी है। अब किसी बात का डर नहीं, इस तसल्ली के साथ बिना आहट किए दरवाजा बंद किया और भीतर आकर अपनी पहली जगह पर खड़ा हो गया। अमृता का हर रोज नहाने का यह समय नहीं है। वह जानता है कि जब सवेरे एक बार नहा लेती है तो दुबारा नहीं नहाती। पसीना निकला होगा, इस-लिए नहा रही है? अथवा संगति की घिन को धोने के लिए? सोमशेखर को अहसास हुआ कि वह इस स्नान के द्वारा अपनी तथा अपने संबंध की भावना को धोकर उसका तिरस्कार कर रही है। कानों को उस दिशा में लगाकर अपनी मुद्रा को बदले बिना खड़ा रहा। फुहार की हलकी-हलकी आवाज सुनाई देने लगी है। उसने निश्चय किया, इस कदर तिरस्कृत होकर मुझे दुबारा इस घर की दहलीज पर पाँव नहीं रखना चाहिए। फिर भी तत्काल उठकर बाहर जाना उचित न समझकर प्रतीक्षा में रुका रहा। कुछ देर बाद नहाने की आवाज थम गई। बॉयलर का गरम पानी खत्म हो गया होगा, उसने अनुमान किया। और कुछ देर बाद भीतर का कोई दरवाजा खुलने की आवाज़ आई। शायद वार्ड-रोब होगी। वह यों ही खड़ा था। भीतर की आवाज़ सुनने की जिज्ञासा कम हुई।

दस मिनट में झटके के साथ कमरे का दरवाजा खोलकर अमृता बाहर आई। घने बालों से ढका भीगा सिर। इस्त्री की हुई हलकी हल्दी रंग की साड़ी, साफ़ चेहरा, माथे पर साड़ी के रंग से मेल खाती हुई बिंदी। बाएँ हाथ में वैनिटी बैग। उसने सोमशेखर को घूरकर देखा। सोमशेखर ने उससे आँखें नहीं मिलाईं। "मुझे बच्चों को लिवाने जाना है।" कहते हुए वह मुड़ पड़ी। कुछ जवाब न देकर सोमशेखर उससे आगे बढ़ गया। दरवाजा खोलकर बगीचे में गया। गेट खोल-कर स्कूटर स्टार्ट किया और मुड़कर देखे बिना स्कूटर पर सवार होकर चला गया।

पलंग पर बिछा हुआ मुलायम बिस्तरा। कनपटी पर तनी रिवाल्वर की ठंडी गोल और लंबी नली। दाहिना हाथ रिवाल्वर के हत्थे पर है। तर्जनी अभी ट्रिगर पर नहीं गई है। खिड़कियों के किवाड़ बंद होने पर इतने फिट कि बाहर की कोई आहट भीतर नहीं सुनाई देती। खिड़की से दो फुट नीचे तक लटकता मोटा परदा बची-खुची आहट को भी रोककर भीतर के उस मौन को इस कदर बचाए रखता है जो केवल मात के लिए ही संभव हो सकता है। इस बार की लहर पहले जैसी किसी दुविधापूर्ण नहीं। इस बार, अब, ट्रिगर दबाकर आत्म-हत्या निश्चित है। मरना ही होगा। जीना कितना दर्दनाक होता है! शारीरिक हिंसा सही जा सकती है। कैंसर का दर्द पता नहीं कैसा होता है! शायद उसे भी सहा जा

सकता होगा। लेकिन यह आंतरिक हिंसा, भीतर का दर्द, सहसा, बिना वजह, बिना किसी पूर्व सूचना के आभ्यंतरिक शून्य से उत्पन्न होकर पूर्ण शून्य का निर्माण करने वाले इस दमघोटू दर्द को भला कैसे सहा जाए? ट्रिगर पर उँगली रखकर यों दबा दे तो आधा सेकेण्ड बहुत है; बिना किसी तकलीफ के, तत्काल खत्म कर लेने लायक जगह यानी कनपटी जहाँ से गोली सीधी खोपड़ी को चीरकर भीतर मस्तिष्क को छलनी करते हुए बिना किसी वेदना का अहसास कराए इह-लीला समाप्त हो जाती है। उसके पश्चात् क्या होगा, इसका किसी को तनिक भी पता नहीं होता। पेट, छाती, गला आदि चाहे कहीं भी गोली मार लो—ऐसी वेदना-हीन मौत संभव नहीं, यह चिकित्सकों का ही मत है। इसलिए अब जिस बिंदु को निशाना बनाया है, वह ठीक है। आधे सेकेंड की देरी भी नही करनी चाहिए। जितनी देर करोगे मानसिक वेदना उतनी ही अधिक होती है। मरने से पहले··· हाँ, भूल रही थी, मैं जो इस संसार से उठ जाने वाली हूँ तो मेरे कारण पुलिस को या किसी और को ही, किसी प्रकार की दिक्कत न होने पाए। आत्महत्या से पूर्व के पत्र म इस बात को कितनी बार लिखे भला! अब जो लिख-लिखकर रखा है, क्या वह कम है? फिर भी आत्महत्या का दिनांक और समय महत्वपूर्ण होते हैं। उठकर पैड ले ले; दूर नहीं, रिवाल्वर वाली दराज मे ही है। उठने की भी आवश्यकता नहीं; बैठे-बैठे ही हाथ बढ़ाकर—मेरी मौत के लिए कोई जिम्मेदार नहीं; जीवन से धन्य हो गई हूँ। मैंने खुद अपनी रिवाल्वर से कनपटी पर गोली दागकर—दोपहर के सवा तीन बजे यानी ठीक तीन बजकर साढ़े सत्रह मिनट पर। इस पन्ने के नीचे--पता नहीं ऐसे कितने और पन्ने होंगे? अब गिनने का सब्र नहीं। भला गिनकर करना भी क्या है? एक ही ढंग की वाक्य-रचनाएँ, वही घिसी-पिटी शैली जो आत्महत्या करने वाला हर व्यक्ति लिखता है। नए सिरे से लिखने की आवश्यकता नहीं। पुरानी किसी टिप्पणी के नीचे आज की तारीख और समय दर्ज करना काफ़ी है। मैंने ऐसी सारी पुरानी चिट्ठियाँ फाड़ी क्यों नही? क्यों उन्हें सँजोकर रखा है? किसे चाहिए यह पुराना रिकार्ड? कितने दिनो से कितनी बार अपनी हत्या कर लेने की इच्छा बलवती हुई है। विराट शून्य का अहसास जागा है। इसी बिस्तर पर! दरवाजा तोडकर भीतर घुसते ही पुलिस की नज़र में आ जाये, ऐसी जगह रख दूं। तो यही जगह ठीक है, पैड पर पेन रहेगा। दरवाजा खटखटा रहा है—मुझे जीवन से बाँधकर रखने वाला व्यक्ति जिसने नीति के मारे तार काटकर मेरे लिए मरना अनिवार्य कर दिया है वही अब गिड़गिड़ा रहा है, पुलिस उसके साथ कैसे पेश आएगी, इसी डर के कारण—जिसने अखंड, अद्वितीय, अभूतपूर्व सुख दिया; नहीं, जीवन का सारा रस खुद चूस लिया। अगर पता पता होता कि सुख का उन्माद जितना बढ़ता जाता है शून्य भावना उतना ही पीछा करती है तो इस

पत्र की क्या आवश्यकता थी ! पापी को पुलिस पकड़ ले, हथकड़ी पहना कर फाँसी के फंदे पर चढ़ा दे। अगर वह नहीं होता तो मेरी यह दशा न होती और मुझे मरने की आवश्यकता न होती। सज़ा मिलनी ही चाहिए उसे। दरवाजा खटखटाते हुए गिड़गिड़ा रहा है, कायर, डरपोक ! किसी को कष्ट न होने पाए। प्रेम का नाटक तो खेला है, बेचारा बड़ी मुश्किल में है। चिट्ठी रहने दे। नाहक देर हो रही है। आधा सेकेंड भी नहीं चाहिए उँगली बढ़ाकर ट्रिगर दबाने के लिए। मृत्यु-पत्र लिखे बिना अगर मर गई तो पत्नी की संपत्ति में पति को भी हिस्सा मिलेगा; अगर नहीं भी मिलेगा तो बच्चों के बालिग होने तक पिता को ही अभिभावक बनाकर—यानी कि विजय को अठारह होने में ग्यारह और विकास के लिए चौदह साल अभी बाकी है। तब तक इन खूनचूस लोगों में कौन भला ब्याज भरकर, कर्जा अदा करके बच्चों को कॉफ़ी का बगीचा छुड़वा देगा ? इस विचार के आते ही पुन: रिवाल्वर पकड़ने का मन नहीं हुआ। अपनी संपत्ति को न फूंककर, बच्चों की परवरिश करने वाली कोई संस्था या विश्वसनीय व्यक्ति—सोमशेखर नालायक है जिसने मेरे और मेरे जीवन के बीच के नैतिक तार को काटकर मुझे ट्रिगर दबाकर मर जाने के लिए बाध्य किया है, ऐसा नीच है। फिर भी लेन-देन के बारे में बड़ा साफ़ और बेबाक है। पुन: खटखटा रहा है। इन कुत्तों को क्या साँसत आई है, काल भैरव के वाहन को क्या मृत्यु की निश्चित घड़ी का पता चलता होगा ! कोई मरने वाला यदि संपत्ति का फ़ैसला न भी कर पाये तो भी उसके बच्चों की परवरिश करके उन्हें पढ़ा-लिखा देना है। नालायक को बच्चो से बड़ा प्यार है। बच्चों के मन में यह बात बैठा देगा कि तुम्हारी माँ डायन थी, नालायक थी। फिर खुद आसानी से दूसरा ब्याह, बच्चे, रास्कल···आज अपना अधिकार खोकर दुबारा पा नहीं सकेगा, अब फिसलन भरे शिलाखण्डों से फिसलकर उस प्रपात में जा गिरा है जहाँ से ऊपर आ आना नामुमकिन है। नालायक सोमशेखर दुम दबाकर जेल के फाँसी के तख्ते पर खुद चढ़ गया है। कैंसर के घाव से भी अधिक जानलेवा दर्द को केवल मौत ही दूर कर सकती है। हृदय को कुतर-कुतर कर सालती वेदना को जैसे विस्मृति का इंजेक्शन देकर शमन किया जाता है, उसी तरह आधा सेकेंड से भी कम समय मे यदि ट्रिगर दबा दिया जाए तो उसकी आवाज़ निकलने से पहले ही समस्त वेदना के संपर्क का स्विच कट जाता है। यकीनन वह वेदनाहीन छुटकारे की अवस्था को पहुँच गया होगा जहाँ छटपटाहट की खामोश आवाज भी सुनाई नहीं देती। उन्मादपूर्ण सुख भोगने के पश्चात नीच अपनी शक्ल-सूरत के बच्चे, पैदा करेगा मानो वे मेरे कुछ नहीं होंगे। संपत्ति चाहे उन्हें मिले या जाए भाड़ में, उसे फूंक देने की प्रतीक्षा करेगा। इस वेदना की कराह में उसने सोचा और चाहे कुछ करूँ या न करूँ, लेकिन कानूनगो से मिलकर लिखा-पढ़ी करनी होगी

कि संपत्ति न बच्चों के हिस्से में जाए और न उसके। इतना कर लेने के बाद ट्रिगर दबाकर···हाय भगवान! तुम्हारे अस्तित्व की बात अगर झूठ है तो मुझे क्यों इतनी वेदना होने लगी है, मानो कलेजे में फौलादी काँटे डालकर खींचा जा रहा हो! कहाँ तक सहन करूँ इसे! विवश होकर उसने कसकर पलकें बंद कर लीं। भीतर की पीड़ा से वह पुन: छटपटाने लगी; हाय भगवान! तुम नहीं हो, कोई नहीं है, केवल पीड़ा मात्र है—ऐसी जानलेवा पीड़ा जो जान से मारती है और मरने भी नहीं देती। हाँ, उमड़-उमड़कर आँसुओं के रूप में बहती है। नहीं, रोना नहीं, अगर सोम कहीं बाहर होगा तो सुन लेगा, उसके सामने···! किसी की दया नहीं चाहिए। होंठ चबाकर पक्का इरादा करके किसी की सहानुभूति, प्यार जैसी प्रवंचना की सांत्वना रूपी छल को छोड़कर, मूक रुदन को भाप बनाकर, आँखें बंद करके समाधिस्थ होकर समय की कसमसाहट को मात कर गई।

आज तक सोमशेखर के सामने जिस धैर्य के साथ सिर ऊँचा करके बोला करती थी वह शक्ति अब उसमें नहीं रही। उस शक्ति को पुन: पा लेने की असमर्थता का अहसास करके वह फूट-फूटकर रोने लगी। कहीं सोमशेखर दरवाजे के पास ही हो और रोने की आवाज सुन न ले, इस भय से बिना आहट के वह उठी। रिवाल्वर को बिस्तर पर रखकर टायलेट में गई। दीवार की ओर मुँह किए दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर जी भरकर रोई। रुलाई बाढ़ की तरह फूट पड़ी। सलाख पर रखा तौलिया मुंह में लगाकर सिसक-सिसक कर रोने लगी तो सहसा सफाई का, नहाने का मन हुआ। पल-भर में गरम और ठंडा पानी मिलाकर पहने हुए कपड़ों में ही शावर के नीचे यों खड़ी हो गई कि सिर के बाल भी भीग जाएँ। कुछ देर बाद एक प्रकार की तसल्ली, सान्त्वना, घिनौनेपन से मुक्त होने का भाव, शुचित्व पुन: प्राप्त होने की सांत्वना मिली, गीले कपड़ों को उतारकर मोटी धार वाले शावर के नीचे आँखें बन्द किए अंतर्मुखी होकर जब शून्य को, शून्य की जड़ को खोजने खड़ी रही तो पीड़ा का आवेग कुछ कम लगने लगा। बालों में शेंपू और बदन में साबुन लगाना भी भूलकर वह चुपचाप खड़ी रही। बॉयलर का गरम पानी खत्म हो गया और उसमें से ठंडा पानी बहने लगा। लेकिन गरम और ठंडक के भेद का पता न स्पर्श को चला और न मन या बुद्धि को। वह बहुत देर तक वहीं खड़ी रही। आखिर जब ऊपर की टंकी खाली हो गई और शावर में पानी आना रुक गया तब तौलिया से मुंह, बदन, सिर पोंछकर कमरे में आई। दीवार पर टँगी निश्शब्द चलने वाली बड़ी घड़ी पर उसकी निगाह पड़ी। ओऽफ्! बच्चों को लाने का समय बीत चुका है। जल्दी से कपड़े पहनकर, बालों को मोटे टर्की तौलिया से रगड़-रगड़कर पोंछ लिया।

रिवाल्वर में लॉक लगा कर उसे आत्महत्या वाले पत्रों के साथ पलंग की दराज में रखकर ताला लगा दिया। चाभी अपने गले की माला में लटका ली। ऊँची एड़ी वाले चप्पल पहनकर गारे की उबड़-खाबड़ फर्श पर टप-टप कदम बढ़ाते हुए आकर किवाड़ खोला तो सामने सोमशेखर खड़ा था। दिल के किसी कोने में एक प्रकार की तसल्ली हुई। दूसरी ओर चेहरे पर भड़कता हुआ क्रोध, तिरस्कार का भाव। अपनी नजर झुकाए खड़ा था। 'मुझे बच्चों को लाने जाना है' कहने की देरी नहीं थी कि झट मेरा तिरस्कार करके, ठुकराकर चला गया। यों चला गया मानो तेरा-मेरा कभी किसी प्रकार का कोई नाता ही नहीं था।

कार चलाते हुए दाँत पीसकर अपने आप से कह लिया, 'जाता है तो जाने दे; मेरा जीवन किसी का मोहताज नहीं, किसी पर निर्भर नहीं।' वृंदावन स्कूल तथा बाल-भवन—दोनों विभाग बंद हुए आधा घंटा हो गया था। उसके बंद होने से पहले अगर माँ-बाप आकर अपने बच्चो को नहीं ले जाते तो ऐसे बच्चों को पास ही रहने वाली अध्यापिका सुशीलम्मा अपने घर रोक लिया करती थी।

माँ की कार देखते ही छोटा बच्चा विकास दौड़ता आया। पीछे के दरवाज़े का लॉक खोलने से पहले ही वह उसे खीचने लगा। पुस्तकों का बस्ता लिये विजय इत्मीनान से आकर कार में चढ़कर बैठ गया। बच्चो के नाश्ते के डिब्बे वापिस पहुँचाते हुए सुशीलम्मा ने इस अंदाज में इशारा किया कि आप अपने बच्चों को सुरक्षित लिवा ले जा रही है। जब कार आगे बढ़ी तब चेहरे पर खुशी प्रदर्शित करते हुए अमृता बोली, "मुन्ना राजा ने आज क्या-क्या खेल खेला?"

"माँ, इस समय क्यों सिर से नहायी हो!" विजय ने पूछा।

"सवेरे ही नहायी थी, लेकिन तेल नहीं डाला था।" अमृता की बात सुन कर वह बोला, "सिर की गाँठ अभी भीगी-सी लगती है।"

झूठ बोलकर फँस जाने के कारण अमृता के दिल में कसक सी हुई। "अपना गणित का कोई पाठ कठिन बता रहे थे न, आज मैडम मे पूछ लिया?" तुरत उसने बातों की दिशा बदल दी। घर पहुँचने पर दोनों को अपनी गोदी में बैठा-कर उपमा और आइस्क्रीम खिलाते हुए स्कूल की पढ़ाई, खेल-कूद आदि के बारे में पूछा। फिर दोनों कुत्तों को खुला छोड़कर बच्चों के साथ खेलने लगी। दोनों बच्चे कुत्ते की गेंद अलग-अलग दूर फेंक देते और कुत्ते अपनी-अपनी गेंदों को मुँह में दबाए वापस लाकर देते। दोनों एक जैसे दिखाई पड़ने वाले नर कुत्ते थे। बच्चों से सलाह-मशविरा करके एक का विक्रांत और दूसरे का विश्वास नाम रखा गया था। लाल गेंद विक्रांत ले आता और सफेद विश्वास।

नगर-बाहर के इस विशाल किंतु सुनसान प्रदेश के घर में क्या-क्या असुवि-धाएँ हो सकती हैं, इसका अंदाज अमृता को था। दूरी के कारण रसोई और

चौका-बर्तन करने वालों को लिए आने-जाने में काफ़ी दिक्कत थी। बच्चों के खेल-कूद में साथ देने वाले कोई पास-पड़ोसी नहीं थे। वह अच्छी तरह जानती थी कि सुरक्षा की दृष्टि से बड़े खतरे की जगह है। लेकिन अमृता जो बड़े कॉफ़ी बगीचे-वाले एकाकी घर में पलकर बड़ी हुई थी उसे वह जगह सुनसान नहीं लगी थी। खाना पकनेवाली पुट्टम्मा सबेरे आठ बजे आती; दोपहर और रात का अलग-अलग खाना पकाकर फ्रिज में रख देती। बच्चों के स्कूल के लिए, स्कूल से लौट कर खाने के लिए अलग-अलग चाट तथा सप्ताह मे एक बार सातों दिन के लिए कुछ-न-कुछ खाने की चीजें तलकर रख देती। उसी समय चौका-बर्तन के लिए महादेवम्मा आती। सारे घर का कूड़ा-कर्कट साफ करके पोंछा लगाती, खिड़की दरवाजा, दरीचे आदि पोंछकर साफ करती, कपड़े धोती, अहाता साफ़ करके पेड़-पौधों में पानी देकर चली जाती। घर की एक चाभी पुट्टम्मा के पास रहती थी। अमृता उन्हें दूसरों के मुकाबले ज्यादा मेहनताना देती थी। इसलिए वे लोग मन लगाकर और ईमानदारी से काम करते थे। यों तो पुट्टम्मा बड़ी ईमानदार थी। अकेलापन इन दिनों अमृता के लिए बड़ी प्यारी अवस्था बन गई थी। घर के पीछे आकाश पर जड़ा चौखटा-सा दिखाई पड़नेवाले पहाड़ की पृष्ठभूमि एकाकीपन का गहरा अहसास कराती जो उसे बहुत प्रिय थी। इसलिए इस घर को छोड़कर कहीं और जाना अमृता के लिए संभव नहीं था।

रात का खाना खाने के बाद लाउंज के दीवान पर पालथी मारकर बैठ जाती। दोनों बच्चे उसकी एक-एक जाँघ पर सिर टिकाए कहानी सुनते-सुनते सो जाते। फिर एक-एक को उठाकर उनके कमरे में पलंग पर सुला देती—यह हर दिन का क्रम था। आज रोज़ की तरह जब दीवान पर बैठी और विजय बाईं जाँघ पर तथा विकास दाहिनी जांघ पर सिर टिकाए-टिकाए सो गए तब अमृता का मन अधीर होकर मानो बैठने-सा लगा। पता नहीं क्यों, इस दीवान पर···यहाँ···कोई कहानी सूझ ही नहीं रही है। कहानी का मतलब किसी और की कही हुई या छापी हुई हो, ऐसी बात नहीं। बच्चे जिद करते कि कोई पुरानी कहानी ही दुबारा सुनाए। अथवा अमृता खुद किसी पक्षी, पेड़ या पहाड़ को पात्र बनाकर उसके किसी पहलू की अनुभूति बच्चों की आयु को रुचे, इस अंदाज में भी अगर कहती जाती तो बस बच्चों में तन्मयता आ जाती थी। कहानी को आदि मध्य, मध्य अंत जैसे किसी चौखटे की आवश्यकता नहीं थी। कोई पक्षी चामुंडी पहाड से उड़ान शुरू कर दे और उसके एक पंख पर विजय और दूसरे पर विकास बैठकर नीचे निहारते रहें तब वह पक्षी कन्नंबाडी श्रीरंगपट्टण, सोमनाथ, तलकाडु, नंजनगूडु आदि स्थानों की यात्रा करके मैसूर शहर का चक्कर काटकर शाम को अपने मूल स्थान पर लौटकर आ जाए—इस चौखटे में कहानी सा ढाँचा बना लिया जाए और नीचे क्या था, क्या-क्या दीखा, बीच मे जब धूप

छायी या बादल घिरे तब विजय और विकास ने क्या किया—इसी प्रकार के प्रश्नों के जवाब जोड़ते चले जाएँ तो बच्चों की जिज्ञासा की काफ़ी सामग्री भर जाती है। पक्षी के लौटकर पहाड़ पर आने तक दोनों गहरी नींद में डूब जाते हैं। लेकिन, आज कोई कथा-वस्तु सूझ ही नहीं रही है। कल्पना एक इंच भी ऊपर नही उठ पा रही है। उसे ऐसा अहसास होने लगा है मानो आज चिक्कट-चिकने, दुर्गम, फिसलन-भरे शिलाखण्ड के नीचे गिर गई है, ऊपर उठने की जितनी चेष्टा करती है उतनी ही ज्यादा-ज्यादा फिसलती जा रही है। इस चेष्टा में कुद-जेहन होकर अनजान-सी बनी है। इस दीवान को छोड़कर कहीं और—सोफे पर; नहीं, इस लाउंज को छोड़कर बरांडेवाली बेंच पर बैठने को मन कर रहा है। इस बेजान जगह को बदलने से भला क्या फ़र्क पड़ने वाला है? अपने-आप से प्रश्न करती हुई कहती है, 'विजु, क्या आज तुम खुद कोई कहानी कहोगे बेटे? मेरा सिर दु:खने लगा है।' 'नहीं माँ, तुम्हें ही सुनानी होगी कहानी। वह कहेगा तो मैं नही सुनूंगा'—विकास ज़िद करता है। 'तब तुम ही सुनाओ।' 'यह कहेगा तो मैं भी नहीं सुनूंगा'—विजय भी ज़िद करता है। दोनों का मन रखने के लिए मुझे ही सुनानी पड़ेगी। 'अच्छा कौन-सी कहानी कहूँ, तुम्हीं बताओ।' वह बच्चों पर ही छोड़ देती है। दोनों बच्चों में एक समझौता होता—घोड़े के पंख निकल आने वाली कहानी। पहले भी कई बार कही हुई कहानी, दुबारा कहने लगी तो विकास कह उठता है, 'माँ, आज तुम ठीक तरह नहीं कह रही हो।' फिर भी दोनों सुनते-सुनते सो जाते हैं।

उस रात अमृता बेहद मायूस रही। अकसर वह रात मे देर से सोती है। एक बजे से पहले नींद नहीं आती। अपने कमरे के सोफ़े पर बैठे-बैठे पढ़ते रहना, बच्चों के कपड़े-लत्ते इस्त्री करना या तनहाई में कुछ सोचते-न सोचते चुपचाप बैठे रहना उसकी आदत बन गई थी। कई बार हाथ में रिवाल्वर लिये उसकी नली को कनपटी या सीने का वह हिस्सा जहाँ हृदय रहता है—निशाना बनाकर साफ़े पर बैठी रहती है। ऐसे समय बच्चों के कमरे के दरवाजे की बाहर से कुंडी चढ़ा देती। हाथ में रिवाल्वर लिये बैठे हुए अगर अचानक विजय या विकास ने आकर देख लिया तो उनके मासूम दिल पर क्या बीतेगा?—इस बात की बारीकियों को वह जानती है। ट्रिगर दबाकर अपने-आपको खत्म कर लेने का दबाव मन में बढ़ता है। मन इस अंतिम पड़ाव पर आ जाता है कि उस दबाव के वश में होने मात्र से ही जीवन की वेदना और पीड़ा का अंत हो सकता है, कोई दूसरा उपाय नहीं। जीवन के अंतिम क्षणों के आगमन के अहसास से रोना आने लगता है। मरना अनिवार्य है और मृत्यु के अहसास के साथ जो रोना आता है वह बरदाश्त के बाहर होता है—यह दोनों अनुभूतियाँ एक साथ होती हैं। मौत के विचार के दबाव को निष्क्रिय करने की शक्ति उसमें नहीं है, आसानी से मर जाने का

विधान मात्र वह संजो सकती है—वह अपनी आजादी की सीमाओं को पहचानने लगती है। हृदय की अपेक्षा कनपटी से ऊपर खोपड़ी में मार लेना कम पीड़ादायी होता है, इस बात को जानते हुए भी मन में कभी-कभार दुर्दमनीय लुभाव उत्पन्न हो जाता है कि हृदय को चीरकर गोली निकल जायेगी। फिर कभी रिवाल्वर जैसे निर्मम साधन की अपेक्षा नुकीली धारदार छुरी से ज्यादा प्यार उमड़ने लगता है। अपने बिस्तर के दूसरे बगल की दराज का ताला खोलकर उसमें छिपाकर रखी हुई धारदार नुकीली फौलादी छुरियों में से अपनी प्रिय छुरी हाथ में ले लेती है। उसकी नोक अपने सीने की सीध में रखकर बुत की तरह निश्चेष्ट होकर सोफे पर बैठ जाती है। एक ही पल की बात है, मूठ पर जोर लगाकर भीतर भोंक लेना काफी है। केवल भोंकने से काम नहीं चलेगा, भोंकी हुई छुरी को वापिस बाहर निकाल लेना होगा, तब रक्त का फव्वारा फूटकर धीरे-धीरे प्राण ···लेकिन यह कष्टपूर्ण विधान है। आनन-फानन में प्राण हर लेने की रिवाल्वर में जो शक्ति है वह इसमें नहीं —फिर भी उस दिन छुरी का विधान ही प्यारा लगने लगता है और छुरी को कस कर पकड़े यों ही बैठे रहती है। बीच में उठती है। पलंग की दराज खोलकर आत्म-हत्या के संकल्प के क्षेत्रों में लिखे पत्रों के पैड निकालकर उस दिन की तारीख और समय दर्ज करके एक नई चिट्ठी लिख डालती है। इससे पहले भी ऐसे अनेक पत्र उसने लिखे थे इसलिए उनकी इबारत, शब्द-वाक्य सभी कंठस्थ हो गए थे। लिखने में तारीख, समय, हस्ताक्षर आदि दर्ज करने में अधिक समय नहीं लगा। पैड को पलंग पर छोड़कर पुनः छुरी की तेज नोक सीने से लगाकर उसकी मूठ को मजबूती से पकड़कर कसकर आँखें बद करके बैठ जाती है।

आज बच्चों को सुलाने के बाद वह लाउज में आई। वहाँ कुछ देर सोफे और कुछ देर दीवान पर दो-तीन घंटे चुपचाप बैठे रहना कई दिनों से आदत-सी बन गई थी। दीवान को देखकर उसे याद हो आया कि वह उसी दीवान पर बच्चों को सुलाकर बैठी थी, यह खयाल आते ही जाकर नहाने का मन होने लगा। सारा दीवान या उसका गद्दा न सही, उस पर बिछी चादर तो निकालकर धोने को मन कर रहा है। अब एक बार नहा तो लिया है। यों देखा जाए तो इस तरह सोए बच्चों को भी उठाकर नहलाना पड़ेगा—इस तर्क के साथ खुद नहाने का विचार तिरोहित हो गया है। दीवान पर बिछी चादर उठाकर गुसलखाने में चली गई। बाल्टी में पानी भरकर उसमें साबुन का चूरा घोला और उसने चादर भिगो दी। वार्डरोब से दूसरी चादर ले आई। उसे दीवान पर इस तरह बिछा दिया कि कहीं सिकुड़न न दिखाई पड़े। उस पर करीने से तकिए रख दिए। अपने बेडरूम में जाकर रिवाल्वर उठा लिया और उसे अपनी जाँघ पर रखकर दीवार के पास सोफे पर जा बैठी। नीचे, नीचे, नीचे की ओर धँसते

जाने का भाव। रिवाल्वर दागकर बलात् अंत कर लेने की मानसिक तीव्रता तो नहीं थी, किंतु अंत अपने-आप प्राप्त हो जाए तो वह सुखद होगा, छुटकारा मिल जाएगा।—इसी कल्पना में वह डूब गई। उस अवस्था को प्राप्त होना कितना सुखद होगा, जहाँ न कोई कष्ट होता है, न कोई दिक्कत और न मरने की कसक ही होती है। वह अवस्था मुझे अपने-आप प्राप्त क्यों नहीं होती ? पता नहीं, अभी कितने वर्षों तक उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ?—शून्य भाव में सामने वाली दीवार पर नजर गड़ाए चेतनाहीन होकर बैठी रही।

काफ़ी समय बाद वह सहसा उठी और रिवाल्वर दराज में रख दिया और फिर अपने कमरे से निकलकर बच्चों के कमरे घुस गई। दीवार पर जलते हलके लाल रग के बल्ब की रोशनी में दो अलग-अलग पलंगों पर सोए हुए दोनों बच्चों के चेहरे निहारने लगी—सुन्दर, सुकोमल, दोनो का एक जैसा माथा, एक जैसी नाक, एक जैसी आँखें। जान खाने को यह रूप लेकर पैदा हुए है दोनो ! —दाँत पीसकर अमृता ने मानो अपने-आप से कह लिया यह सब। मन मे विचार आया कि पहले इन दोनों को एक साथ गोली मार दे, फिर खुद मार ले तो कोई दिक्कत नहीं रहेगी। लेकिन, मन ने उस अवस्था में भी असहमति व्यक्त की कि यह अपने से बनने वाला काम नहीं। किसी भी हालत में उठ जाने वाली तो हूँ ही। क्यों न उसे बुलवा लूं और पहले उस पर गोली दाग दूं, फिर आप दाग लूं ? मन के भीतर से सहमति की अनुगूंज आई। सोचा, यह काम वह कर सकती है। लेकिन, इनमें कोई भी विचार पहली बार आया हो, ऐसी बात नहीं थी; कई बार पहले ऐसे विचार उसके मन मे आ चुके है, अजाम नही दे पाई, इस बात का उसे खेद हुआ। अपने-आप पर क्रोध आया कि वह निकम्मी और कायर औरत है। खड़ी-खड़ी जब वह बच्चो को निहार रही थी तो विचार आया कि मैं कैसी पापी हूँ कि ऐसे प्यारे बच्चों को मार देना चाहती हूँ; खुद मरना ही एक मात्र अपनी सज़ा है। सरपट वह वहाँ से सीधे अपने कमरे में चली आई और दराज से रिवाल्वर निकाल लिया। उसे हाथ में लेकर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। मन-ही-मन बेचैन हो उठी कि वह क्यों ऐसी दुविधा मे फँसी है ? मानो निश्चयात्मक शक्ति जवाब दे गई है ! उसे रोना आया। लेकिन उसने अपनी रुलाई को बलपूर्वक दबा लिया। अनायास उसके बाएँ हाथ ने खिड़की का परदा उठाया। बाहर घना अँधेरा। सहसा पहाड़ की याद हो आई। घर के पीछे ही मानो स्वयं मृत्यु साकार खड़ी हो। वहाँ जाने की इच्छा बलवती हुई। देर नहीं की। रिवाल्वर हाथ में ही लिये भीतर की बत्ती जलती छोड़कर चाभी का गुच्छा लिये बाहर आई। आगे वाली माँद में सोया विक्रांत गुर्राया तो पीछे की माँद से विश्वास ने उसके सुर में सुर मिलाया। 'ऐ, मैं हूँ', अमृता के बतियाने पर वे 'कूं-कूं' करने लगे। गराज खोला, गेट खोलकर कार बाहर ले आई। फिर

गेट और गराज दोनों बंद करके कार में बैठकर पहाड़ की ओर चल पड़ी।

हर तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। जैसे-जैसे सड़क की बत्तियाँ पीछे की ओर सरकती गईं, अंधेरा घहराता गया, पहाड़ की धूमिल आकृति यों दिखाई देने लगी मानो घनीभूत होकर सो गई हो। कार की रोशनी में केवल सड़क का चढ़ाव ही नजर आता था। पहाड़ के उस भाग में जाकर कार रोकी और बत्ती बुझाकर तथा इंजिन बंदकर चुपचाप बैठ गई, जहाँ से मैसूर शहर दिखाई नहीं देता था। जब अँधेरा और सन्नाटा एक ही ढाँचे में ढल गए तब मौन की भावना मुखरित होने पर उसे लगा कि वह इच्छित स्थान के बिलकुल क़रीब आ गई है। दिन में कई बार देखे रहने के कारण बाईं ओर की खाई और उसके पार क्या है, इसका वह केवल अनुमान भर लगा सकती थी। अब सामने अंधकार से भरे शून्य के सिवा और कुछ नहीं था। उसमें नज़र गड़ाए बैठी रही तो मन संतुलित होता-सा लगा। कुछ देर वहीं बैठी रही। फिर इंजन चालू करके और ऊपर चढ़ना शुरू किया। उस सन्नाटे को खलबलाती हुई इंजन की आवाज़ में उसे झल्लाहट-सी होने लगी। सड़क को चीरकर फ्लड-लाइट का फैला हुआ प्रकाश भी अच्छा नहीं लग रहा था। इनकी परवाह न करके तेज गति में पहाड़ को घेरते हुए ऊँची चोटी पर सड़क की उस जगह कार रोककर इंजन बंद कर दिया जो उसके घर के सीध में थी। हाथ में रिवाल्वर लिये कार से बाहर निकलकर खड़ी हो गई। जहाँ खड़ी थी वहाँ घुप्प अँधेरा था, किंतु, नीचे मैसूर शहर की गलियों की बत्तियाँ जगमगा रही थीं। उनको निहारते हुए उसे अहसास होने लगा मानो उसके आसपास अँधेरा और घनीभूत होता जा रहा हो। गरदन उठाकर देखा तो अंधकार की दुर्गम शक्ति से जूझते हुए दुर्बल टिमटिमाते इने-गिने तारे। मन में विचार आया कि अंधकार और एकाकीपन, यही दो जीवन के चरम सत्य है। लगा कि इस ऊँची जगह पर गरदन उठाकर कनपटी के ऊपर रिवाल्वर दागकर मर जाना ही आत्मा की महानता स्थापित करने का विधान है। लेकिन रिवाल्वर वाला हाथ ऊपर उठा नहीं।

इसी मुद्रा में बड़ी देर तक खड़ी रही। सहसा उसकी नज़र अपने घर की ओर दौड़ गई। घर के पिछवाड़े में टिमटिमाता हुआ दीप दिखाई देने लगा है, पता नहीं वह अपने घर का है या किसी और का। उसी ओर वह टकटकी लगाए देखती रही। विचार आया कि घर में बच्चे अकेले सोए हैं। अचानक जागकर अगर माँ की रट लगाने लगे तो ? अथवा मुझे कार में बाहर निकलते हुए देखकर कोई चोरी या डाका डालने के लिए भीतर घुस गया तो ? उसके मन में सहसा घबराहट होने लगी। कार के भीतर वाली बत्ती जलाकर घड़ी देखी—दो बजने में अभी दस मिनट थे। याद आया कि पहले जब वह यादवगिरि के किराए के बँगले में रहती थी तब भी कितनी बार इसी तरह आधी रात में बच्चों

को घर में छोड़कर अँधेरे में दस-बीस मील दूर चली जाया करती थी। लेकिन, अब नगर के छोर पर बने इस निजी घर में आने के बाद इस तरह पहली बार निकली है। इस घर में आने के बाद इतना तेज अवपात पहली बार हुआ है। अब देर करना ठीक नही। तुरन्त उसने इंजन चालू किया और तेजी के साथ पहाड़ के घुमाव को पार करते हुए नीचे उतरने लगी। इस जंगली पहाड़ के बीच अगर अचानक कार बिगड़कर रुक जाए तो ?—उसे दहशत-सी हुई। घर आकर जब गेट खोला तो कुत्ते भौंकने लगे। आवाज़ लगाकर अपनी पहचान दी। गराज का दरवाजा खोलकर कार वहाँ छोड़ी। गेट पर ताला लगाकर, घर का ताला खोलकर भीतर आई। सीधा बच्चों के कमरे में जाकर देखा। दोनों मीठी नींद सो रहे थे। अपने कमरे में जाकर रिवाल्वर के लॉक का खटका दबाया और उसे बगल वाली दराज में बंद कर दिया। कपड़े बदलकर नाइट गाउन पहनकर सो गई। बड़ी देर बाद उसकी आँख लगी।

केवल उलझाव मात्र है। अगर कोई वारदात होती तो उसे आसानी से दिल से निकालकर सोमशेखर दो-चार दिनों में मन को स्वस्थ बनाकर संभल जाता। लेकिन उसे अहसास होने लगा कि वह भुलाने की जितनी चेष्टा करता है भावनाओं की जड़े अप्रत्याशित रूप से उतनी ही गहरी होती जा रही है। अमृता की यादों की जड़ों को यदि उखाड़ फेंकना हो तो अपनी नींव के नीचे तक खुदाई करनी पड़ेगी; यानी कि अपने-आपको नष्ट होना पड़ेगा। उसका सहवास आज न सही कल, कभी भी अपने लिए खतरे से खाली नहीं, बड़ा खतरनाक है — चेतावनी साफ़ सुनाई देती थी; फिर भी मन के किसी कोने मे दिन-रात, जब काम पर हो या न हो, सोते में भी अमृता की याद करके उसी मे डूबा रहता था। यों तो अपने को स्त्रियों से विशेष लगाव नहीं है। हाय भगवान ! अब किसी का स्नेह चाहिए भी नहीं, लेकिन अनुभवी मित्रों की बातें सुनी है; खुद पहल करके जो ऊपर आ गिरती है, और उसके इशारे और याचनाओ से स्पंदित होकर अगर पुरुष झुक भी जाता है तो भी वह यह कहने से बाज नहीं आती कि मुझ मासूम को इसी ने बिगाड़ दिया, सारा दोष इसी का है; उसने स्वयं अपना सतीत्व खोया नहीं, खोने का पाप किसी और के सिर मढ़ देना ही ऐसी स्त्रियों की दलील होती है। 'शादीशुदा औरत; क्या तुम में इतनी भी तमीज नहीं कि उसे मन से भी नहीं छूना चाहिए ?' उसने अंततः दोष अपने ही सिर पर मढ़ लिया। बंबईवाली ठीक थी, उसने कभी अपने संबंध का नैतिक प्रश्न नहीं उठाया। एक बार भी उसने मुँह खोलकर नहीं कहा कि वह संबंध किससे प्रारंभ हुआ, किसने पहल की, पहले किसने उकसाया। उस संगति के अपने हिस्से की सारी जिम्मेदारी उसने स्वयं ओढ़ी थी। परोक्ष रूप से इशारा अवश्य किया था

कि तुम्हारे हिस्से के लिए तुम जिम्मेदार हो। मुँह खोलकर उमने साफ़ शब्दों मे कहा था कि हमारी मंगति केवल पारस्परिक आनंद के लिए है। संगति के समय, उमके उपरांत, विदाई के बाद छलकते आनंद के सिवा कहीं रत्ती भर कड़ुआहट तक नहीं रहती थी। दो वर्ष की अवधि में कभी कड़ुआहट का स्वर नहीं फूटा था। अब मन तुलना करने लगता है—संतृप्ति के अंत में इमने अप-राधी भावना को मुखरित किया; मुझे झल्ला देने वाले भय का शिकार बनाया। उत्पाती और अहंकारी औरत है। बंबई वाली मे तुलना करने पर इसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है। लगातार तीन दिनों तक मन उसकी यादो मे डूबा था। फिर अहसास होने लगा कि उसकी संगति मे गहराई नहीं थी; जो कुछ था वह केवल सुख के उन्माद तक सीमित था, दुबारा देह की भूख लगने तक सब कुछ भूलकर चुपचाप रहने लायक था। अमृता क्रोध करती है, मेरी भर्त्संना करती है, नैतिक आक्षेप करती है, लेकिन इसमें अथाह गहमता है, पहेली-सा विचित्र आकर्षण है। साथ ही यह चेतावनी भी कौंध जाती है कि यह मृत्यु के सदृश्य घातक आकर्षण है। इस आकर्षण को दबाकर रखना नहीं है, बल्कि जड़ से उखाड़कर जला डालने का निश्चय बार-बार मन मे उठा करता है। इस निश्चय के साथ मन का स्वास्थ्य लौटाने की चेष्टा करता है। दो-चार दिन उसकी याद से उबर कर अपने कारोबार में मन लगा पाना संभव होता था। फिर, चार-छह दिनो तक सारे मन मे वही छायी रहती और इधर अपनी कारीगरी का स्तर घट जाता है। इस शहर में अभी काम जमा ही नही और अगर यही हाल रहा तो नींव के स्तर पर ही ढह जाएगा। इस सावधानी के बावजूद अपने आपको सुधार लेना संभव नहीं हो पा रहा था। यह कैसा सम्मोहन है? उसकी ओर क्यों आकर्षित हुआ मैं? मन-ही-मन विश्लेषण करने लगता है; तुनक-मिजाज, प्रायः मुझे अपराधी करार देने वाली बातों के अतिरिक्त उसका दिल मेरे लिए जो तड़पता है उसे नकारा नही जा सकता। मेरी खातिर आज तक किसने अपना दिल तड़पाया है ?—वह अपने आप से प्रश्न करता है। जब उसकी जाँघो पर सिर टिकाकर, न, न, जब वह अपनी जाँघों पर मेरा सिर टिकाकर सुला लेती है, तब दिल को जो सांत्वना मिलती है वह जीवन में आज तक कहीं भी, कभी नहीं मिली; बचपन में जब माँ की गोद में सोया करता था तब माँ मेरे सिर के बालों में उँगलियाँ फेरती हुई, हलकी-सी खुजाती हुई लोरी गाने लगती तब जो सुख मिलता था वही सुख अमृता की जाँघ पर सिर टिकाने पर मिलता है। दौड़कर अमृता की जाँघ पर सो जाने की बलवती इच्छा होने लगती है। लेकिन साथ ही भय भी होने लगता है कि अमृता के कामल स्पर्श की सांत्वना क्या उस छाया की तरह नही जो साँप के फन के नीचे मेंढ़क को मिलती है?

रात में लेटते ही आँख लग जाती थी; लेकिन दो-एक घंटे में ही फिर खुल जाती थी। दिल में उसकी याद हो उसी के विचार हों, ऐसी बात नहीं थी, लेकिन एक बार जाग जाने पर कितनी ही करवटें लेने पर भी नींद नहीं आती थी। कभी-कभार भोर में पुनः आँख लग जाती थी और दो-एक घंटे गहरी नींद सो जाता। कई-कई दिन वह भी संभव नहीं होता था। जिस दिन भोर में आँख नहीं लगती वह सारा दिन उनींदी जम्भाई में बीतता। काम की चुस्ती नहीं रहती थी; केवल जम्भाई और ऊँघ। रात में सोने के समय एकाध गोली खा ले और दिन निकलने तक गहरी नींद सो ले तो कोई दिक्कत नहीं रहेगी। दिन किसी तरह कट जाता है। रात की समस्या है। कुछ दिन गोली खा लेने में कोई दोष नहीं; लेकिन, एक सवाल उठता है कि रात में किसी विचार की शरण में जाना अपनी इच्छा-शक्ति की कमजोरी होगी। अपने-आप निश्चय कर लेता है कि किसी तरह खटपट करूँगा, लेकिन गोली की दुर्बलता का शिकार नहीं होऊँगा। जीवन में कैसी-कैसी परिस्थितियों का सामना नहीं किया? यह कौन ऐसी बड़ी समस्या है?—वह अपना आत्म-विश्वास संजोने लगता है। फिर एक परिहार सूझता है, आप अभी चालीस वर्ष का ही तो है, अगर व्याह कर ले तो इस तरह किसी पराई स्त्री के लिए मन नहीं ललचाएगा, इस तरह तड़पते रहने की नौबत नहीं आएगी। पत्नी को मरे साढ़े चार वर्ष बीत गए; ब्याह के मामले में उत्साह ही नही है; कोई ठोस कदम नहीं उठा पा रहा है। क्या अब हर चीज नए सिरे से शुरू करे? मैसूर आकर क्या नया कारोबार शुरू करके एक ढर्रे पर नहीं आ रहा हूँ? जीवन का ढंग भी इसी तरह होता है। इस तुलनात्मक समाधान के साथ मन धीरे-धीरे समझौता करने लगता है।

एक दिन इसी तरह आधी रात के समय बेचैनी में करवटें वदलता रहा था, पलकें भारी होने लगी थीं तभी निचली मंजिल वालों ने रेडियो खोल दिया, भजन सुनाई देने लगा। कुछ ही देर में दूध वाले लड़के की जीना चढ़ने की आहट सुनाई दी। उठकर दरवाज़ा खोला और दूध का पैकेट ले लिया। फिर शौच के लिए चला गया। खिड़कियों के किवाड़ यों वंद करके पुनः सो गया कि निचली मंजिल से आने वाली रेडियो की आवाज सुनाई न दे। जब चाहे तव सो जाए, जितनी देर तक चाहे सोये और जब चाहे जाग जाए—क्या इस प्रकार की शक्ति प्राप्त करना मनुष्य के लिए संभव नहीं? नींद पर अर्थात अगर अंतर्मन पर नियंत्रण कर लिया जाए तब ऐसी अवस्था प्राप्त होती है जहाँ अंतर्मन-बाहरी मन, प्रज्ञा-अप्रज्ञा का भेद ही नहीं रह जाता। रात में सोने से पहले दो-एक घंटों तक कोई गंभीर विषय पढ़ा जाए तो अच्छी नींद आती है, बुद्धि का आलसपन दूर हो जाता है और चुस्ती आ जाती है—यह उपाय सूझा। उसे इस बात का खेद हुआ कि उसने अपनी सालों पुरानी पढ़ने की आदत छोड़ दी है। फिर उसकी

वजह भी याद आई कि अब पढ़ाई में मन ही नहीं लगता था। इतने में किसी के जीने पर चढ़ने की आहट सुनाई दी। अगर पेपर वाला हो तो सरपट जीना चढ़कर उल्टे पाँव दौड़ लगाता है। यह साड़ी वाली औरत के चप्पलों की आहट है। कहीं वही तो नहीं? इस कल्पना से मन में खुशी भी हुई और उद्विग्नता भी। बाहरी दरवाज़ा खुलने की आवाज़। दूध वाले बच्चे के चले जाने के बाद क्या मैंने दरवाज़ा बन्द करके चटखनी नहीं चढ़ाई थी? वह इस सोच में डूबा ही था तभी आवाज़ आई, "मिस्टर सोमशेखर!"—उसी की। सोमशेखर ने जवाब नहीं दिया। भीतर आकर किवाड़ बंद करने की और बोल्ट लगाने की आवाज़। सोमशेखर जहाँ सोया था सीधा उस कमरे में आई। कुछ बोले बिना, आगे-पीछे कुछ सोचे बिना उसकी चादर हटाकर चरणों पर अपना सिर रखकर दोनों हाथों से पाँवों को यों कसकर पकड़ लिया कि वह हिल-डुल न सका। हाथों से पकड़ा ही नहीं था, बल्कि मुँह दबाकर माथे का पूरा भार भी जुड़ जाने के कारण सोम के लिए पाँव हिलाना असंभव हो गया। सोमशेखर को गुस्सा आया। घिन हुई। लगा कि वह कितनी बेहया है। लेकिन यह विचार शब्दों में व्यक्त नहीं हो सका, व्यक्त करने की चेष्टा की तो वह गुप्त गह्वर में घुलकर तिरोहित हो गया। नकारना, अपने पाँव छुड़ा लेना या हाथ बढाकर उसके सिर को दूर ढकेल देना संभव नहीं हो सका। अगर निश्चेष्ट होकर आँखे बंद किए रहेगा तो अपने पाँवों पर उसके सिर के दबाव का अहसास मन की गहराई को घेर लेगा, इस विचार से पलकें खोलकर ही लेटा रहा। अमृता की साँस गरम और बोझिल थी। पलकों की बरौनियों की हरकत पाँव के स्पर्श से मालूम हो रही थी। दो-एक पल में वे बरौनियाँ भीगकर मुलायम ब्रश की तरह खाल पर खेलती हुई-सी लगीं। फिर गरम बूंदे झरने लगीं। लेकिन अमृता एक ज़िद्दी की तरह बिना रोए, यहाँ तक कि सिसकियों को भी रोककर बड़े तनाव में थी। सोमशेखर यों ही पड़ा रहा। कुछ समय बाद अमृता हाथों की पकड़ ढीला करके सिर उठाकर खड़ी हो गई। पलंग के सिरे पर उसकी बगल में आ बैठी और सहज अंदाज में उसका चेहरा निहारते हुए शांत स्वर में बोली :

"सोमु, तुमसे मिलने आकर इस तरह तुम्हारे पाँव पकड़कर क्षमा-याचना करने की चेष्टा पिछले दस दिन से करती रही हूँ। लेकिन धैर्य कहाँ था, नैतिक धैर्य? पहले दो दिन शर्मिंदा हुई थी। एक हद में अगर गलती हो जाए तो उसके लिए क्षमा-याचना करने का हौसला रहता है। जब ग़लती उस हद को पार कर जाती है तब वह हौसला भी पस्त हो जाता है। किस मुँह से तुम्हारे सामने आकर याचना करूँ? शर्म के मारे गड़ी जा रही थी। उसके बाद अहसास हुआ कि मैं शरम से गड़ी नहीं जा रही हूँ बल्कि नैतिक भय से आक्रांत हूँ। कल रात ही निश्चय किया कि अपने सोमु के सामने जाने में शरम कैसी? अपनी सुरक्षा की

जगह माथा टेककर निश्चित होने में भय कैसा ? अपने सोमु को क्रोध करने का अधिकार तो है ही । अगर उसने क्षमा नहीं भी किया तो उसके सामने मैं निडर होकर खड़ी रह सकती हूँ । वह मुझे धक्का देकर ठेल सकता है, ठोकर मार सकता है । लेकिन दिल के इस पिंजरे में घुसकर शरण की याचना करके बैठ जाऊँ तो वह भगा नही पाएगा । पता है, कल रात जब मैंने यह फैसला किया तब कितनी तसल्ली हुई ? तेईस दिन के बाद; उस दिन क्रोध करके तुम्हें चले आए आज तेईस दिन हो गए, याद है ? चेहरे से ही पता चलता है कि तुम्हें याद नहीं । तेईस दिनों से मैं रात में सोयी नहीं । उठकर खड़ी होती तो अनिद्रा के कारण सिर चकराने लगता था । एक दिन घर के गेट के पास गश खाकर गिर पड़ी । घर में कोई नहीं था । पन्द्रह मिनट के बाद जब होश आया तो दोनों कुत्ते मेरी बाँहें, गरदन वगैरह सूँघ रहे थे । नींद उसके बाद भी नही आई । चुपचाप पड़ी रहती थी, सपने देखती । सोमु आएगा, मेरी क्षमायाचना स्वीकार करेगा जल्दी, कम-से-कम फोन तो करेगा—इसी उधेड़बुन में रहती । दिन में जब कभी फोन की घंटी बज उठती तो दिल भर आता और मानो धड़कन रुक-सी जाती; एकाध पल के बाद चोगा उठाती । एक भी फोन तुम्हारा नहीं था । आखिर कल रात फैसला जो किया कि तुम्हारे दिल के पिंजरे में घुसकर शरण की याचना करने बैठ जाऊँ तो, वहाँ से भगा पाना तुमसे संभव नहीं होगा । इस निर्णय के बाद जानते हो, कैसी नींद आई ? तेईस दिन की नींद ने एक साथ धावा बोल दिया । सवेरे उठते ही दातून भी नहीं किया, चेहरे पर पानी छिड़ककर सीधा यहाँ चली आई । तुम मुझे यहाँ एक बार भी नहीं लाए । लेकिन, जिक्र किया था । दो बार आस-पास की गलियों का चक्कर काटकर आखिर ढूंढ निकाला ।" फिर सोमशेखर का चेहरा निहारते हुए बोली, "मैंने अपनी ही बात कही । तुम्हारा चेहरा बता रहा है कि तुम्हें भी नीद नहीं आई है । सोये नहीं हो ।" तुरंत उसने झुककर सोमशेखर के सीने में अपना मुँह घुसाकर कहा, "अब मैं तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर चुकी हूँ । तुम भगा नहीं सकोगे, डाँट सकते हो, पीट सकते हो, लताड़ सकते हो, लेकिन भगा नहीं पाओगे ।" वह जीत की खुशी में हँसने लगी । फिर सिसक-सिसककर रोने लगी ।

सोमशेखर का गुस्सा, नफरत, भारीपन आदि सारे ढह गए । दोनों हाथ अपने-आप ऊपर उठ गए और अमृता के सिर को बाँहों में भरकर अपने सीने से लगा लिया । प्रेम की यह गहराई, भावना की यह तीव्रता, यह गरम टाँके का जोड़ दूसरे और किस में हो सका है ? इस तथ्य के ढाँचे में मन ढल गया । अमृता ने कुछ और कहने की चेष्टा की । सोमशेखर ने एक हाथ उसके मुँह पर रखकर इशारा किया कि अब और बातें नहीं चाहिए; दूसरे हाथ से पीठ सहलाने लगा । पंद्रह मिनट से भी अधिक समय तक वे खामोश एक-दूसरे की धड़कनों में

खोये रहे। फिर सिर उठाकर स्निग्ध आँखों से सोमशेखर को देखते हुए वह बोली, "बच्चों को स्कूल छोड़ने जाना है; अब मैं चलती हूँ। ठीक साढ़े बारह बजे खाने के लिए आ जाना। मैं बारह बजे ही घर पहुँच जाऊँगी। बारह बजे फोन कर देना। अगर मैं आ गई हूँगी तो तुरत निकल आना।" सोमशेखर की आँखो में अनिश्चय दिखाई पड़ा। "हाय! अगर तुम नही आओगे तो मतलब होगा कि तुमने क्षमा नहीं किया; हीला-हवाला कुछ नही चलेगा।" आँखो में क्रोध और चेतावनी दिखाते हुए अमृता बोली। फिर बोली, "कुछ देर सो लेना, मुझे विदा करने के लिए उठना मत। अब तुम्हें नीद आनी ही चाहिए। मैंने हुक्म जो किया है, इसलिए।" कहते हुए वह उठी और सरपट निकल गई। बाहर का दरवाजा बंद होने की, जीना उतरने की आवाज़, फिर इंजन स्टार्ट करके दरवाजे की आवाज़ के साथ कार के चलने की आवाज़ सुनाई पड़ी।

अब सोमशेखर मे कड़ुआहट, बोझिलपन, भर्त्सना, आत्मावहेलना आदि अपनी वजन को घटाने वाली तथा अपने-आपसे कुढ़ने वाली सारी भावनाएँ भाप बन कर उड़ गईं और वे सारी भावनाएँ जिन्हें वह खुद समझ नही पाया था जैसे उत्साह, आत्मविश्वास, स्वीकृति आदि मन में घर करने लगीं। अमृता की बात मानकर अगर सो जाता तो शायद नींद आ जाती। लेकिन उमड़ती भावनाओं की उमंग में सो जाना संभव नही हो सका। उठकर जल्दी नहा-धो लिया। कॉफी बनाने का मन नहीं था, इसलिए केवल दूध पी लिया। होटल में नाश्ता करके अपने दफ्तर में पहुँचा।

बारह बजे फोन किया। अमृता फोन पर मिली। उसने जल्दी आने के लिए कहा। वह तुरंत निकलकर बारह बजकर दस मिनट पर जब पहुँचा तो अमृता गेट आधा खोलकर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। तेईस दिन बाद आज उसे फिर देखकर कुत्ते भौंकने लगे। लाउंज में सोफे पर जब दोनों एक-दूसरे से लिपटकर बैठ गए तब मानो दोनों के मन ने निर्णय किया था कि बीते दिनो के बारे में या किसी कड़वी घटना के बारे में वे कुछ नहीं बोलेंगे। दोनों को अहसास होने लगा था कि खामोशी, आपसी स्पर्श और निकटता में जो शांति निहित है वह किसी भी तरह की शक्तिशाली बातों में नहीं। जब वे एक-दूसरे से लिपटकर बैठे थे तब अमृता की सूखी देह के चकत्ते, सीना और कंधे की हड्डियों के स्पर्श का अहसास सोमशेखर की बाँहों को हुआ। वह स्पष्ट समझ गया कि इस पीड़ा ने उससे ज्यादा अमृता को झुलसाया है। पीड़ा के यथार्थ और उसके परिणाम का अहसास जब उनके स्पर्श को होने लगा और [illegible] वह शोधपूर्ण प्रश्न नही उठा कि वह सारा बखेड़ा किसकी ग़लती के कारण हुआ था! विग्रह की शिथिल गाँठ को कसने वाले शिल्पी की तरह वह अमृता की पीठ, कंधा, गरदन, चेहरा वगैरह सहलाने लगा। सांत्वना के इस कोमल स्पर्श से सुलगती हुई अमृता ने आँखें बन्द

कर लीं। खाना खाते समय अमृता ने ही बातों का सिलसिला शुरू किया।

"यों तो खाए बिना जी नहीं सकते। लेकिन क्या तुम्हें विश्वास आएगा कि तेईस दिन में यह मेरा पहला खाना है ?"

स्वीकृति की मुद्रा में सिर हिलाते समय सोमशेखर मन-ही-मन शर्मिंदा हो रहा था। रुचि हो या न हो, होटल में अपनी थाली में जो कुछ परोसा जाता था उसे वह जबरदस्ती ठूंसा तो करता ही था। इस बात का भी अहसास हुआ कि उसकी देह अमृता की तरह सूख नहीं गई है।

खाना खाकर वह लाउंज में सोफे पर जा बैठा। बर्तन उठाकर टेबुल साफ़ करके पास आकर वह बोली, "उठो, अब तुम्हारे और मेरे बैठने की जगह यहाँ नहीं है। तुम्हारे लिए एक जोड़ा लुंगी ले आई हूँ। पैंट उतारो, लुंगी दूंगी, चलो उठो।" उसका हाथ पकड़कर उठाकर ले गई। उसके बेडरूम के पास आते ही सोमशेखर ठिठक गया। अमृता जो आगे कदम बढ़ाते जा रही थी, मुड़कर बोली, "क्या हुआ ?"

जवाब साफ़ था, किंतु शब्दों का रूप नहीं ले पा रहा था; शब्दों में व्यक्त करना कठोरता होगी, इस भावना से बोला, "लाउंज में ही बठे रहेंगे, लुगी ले आओ।"

पल-भर के लिए अमृता उसका चेहरा घूरकर देखने लगी। सोमशेखर ने उससे नज़र तो नहीं मिलाई लेकिन उसका इरादा पक्का था। अमृता तुनककर बोली, "बातें बड़ी मीठी, सलूक भी बड़ा प्यारा, लेकिन भीतर से एकदम निर्दयी; क्षमा करने के लिए भी उदारता चाहिए।" सोमशेखर ने आंख उठाकर उसे देखा। "नज़रो की यह लड़ाई अब बस करो, अब भीतर चलो"—अमृता उसे जबरदस्ती खींचकर भीतर ले गई और पलंग पर बिठाकर वार्डरोब का किवाड़ खोलकर लुगी के जोड़े में से एक लुंगी हाथ में ली और सोमशेखर को बाँह पकड़कर उठाया। "आओ मेरे साथ"—उसे पूजा के कमरे में ले गई। पूजादानी से हल्दी लेकर लुंगी के छोर में लगाते हुए बोली, "भगवान के सामने हाथ जोड़ो; तुम चाहे भगवान को मानते हो या न मानते हो, मेरी खातिर हाथ जोड़ो।" सोमशेखर ने झुककर प्रणाम किया। अमृता ने उसके माथे पर सिन्दूर का टीका लगाया। "चलो, अब लुंगी पहनो।" उसे पुनः बेडरूम में ले आई।

पलंग पर उससे लिपटकर अपनी बाँहों में सुला लिया। उसके कानों में बोली, "मेरा मन पूरी तरह तैयार होने से पहले ही हम आगे बढ़ गए। इसीलिए उसके बाद मुझे कुछ का कुछ हुआ। अब…।" फिर झूठा गुस्सा लाकर बोली, "जाओ भी, सब मेरे मुंह से ही उगलवाने की यह शरारत ठीक नहीं। तुम अच्छे लड़के हो न !"

सोमशेखर का मन सांत्वना से भर गया। संपूर्ण जीव और जीव के

स्तर के विश्वास में ऐसे समागम का अनुभव हुआ जहाँ प्रश्न, उत्तर, आलोचना, प्रत्यालोचना, अमर्ष, विमर्ष के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। ऐसी शांति, हर प्रकार की छोटी-बडी यातनाओं को शमन करने वाली सांत्वना क्या स्त्री के स्नेह में संभव है ? इसकी गहरी अनुभूति उसे हुई, जिससे वह स्वयं चौंक गया। तेईस दिन के उपवास के कारण शरीर का सारा मांस मानो रिस गया था। फिर भी शरीर की सुकुमारता, मन की मादकता मुखरित थी। करुणा, दैन्य, समर्पण, प्रेम, अधिकार, प्रसाद आदि सारे मंद-तार स्वर की समुचित युति की अनुभूति में अमृता ने पहले स्वयं द्रवित होकर फिर सोमशेखर को द्रवित किया।

उस रात जल्दी खाना खाकर सोमशेखर ऐसी गहरी नींद सोया कि जब आँख खुली तो सवेरे के नौ बजे थे। दूधवाला बच्चा दूध का पैकिट रख गया था। उसकी बगल में समाचारपत्र पड़ा था। आँखे अभी बोझिल थीं।

उस दिन भी बारह बजे दफ्तर से निकलकर अमृता के घर गया। छूटते ही अमृता बोली, "मुझे भेड़िये जैसी भूख लगी है। जब तक तुम लुंगी पहनकर मुँह-हाथ धोकर नहीं आते, मैं खाना नहीं दूंगी।" वह भेद-भरे अंदाज में मुसकाई। अमृता के बेडरूम में वह खुद गया। कल पहनकर रखी हुई लुंगी वार्डरोब से निकालकर पहन ली और हैंगर के सहारे पेंट वार्डरोब में लटकाकर मुंह-हाथ धोकर आया। भोजन के बाद जब दोनों कल की तरह पलंग पर सो गए तब अमृता बोली, "मुझे वास्तव में तुम पर बड़ा गुस्सा आया है।"

"मैं जानता हूँ कि नहीं आया है।

"कैसे कहते हो ?"

"मुझसे 'तुम' कहकर संबोधन जो कर रही हो।"

"अच्छा ऽ! हाँ जी, मुझे आप पर गुस्सा आया है। क्यों आया है, यह जानने की भी आपको परवाह नहीं।"—कहते हुए वह दूसरी ओर करवट लेकर लेट गई।

सोमशेखर ने उसकी भुजा पकड़कर अपनी ओर घुमाने की चेष्टा की, लेकिन वह पाँच डिग्री भर भी हिली नहीं। उसने और जोर लगाया। लेकिन हद से ज्यादा जोर लगाना भी अनाड़ीपन होगा और उससे माहौल बिगड़ जाएगा, इस विचार से संभल गया। "अमृता, मुझसे ग़लती हुई। बताओ, तुम्हें क्यो गुस्सा आया है ?"—उसने अनुनय के साथ पूछा।

"मेरे गुस्से का कारण आपको खुद समझकर उसे सुधारना होगा"—वह तनाव में बोली।

सोमशेखर कुछ समझ नहीं पाया। "मैं अपने भोदूपन को स्वीकार करता हूं।"—वह बोला।

"भोंदू के साथ मुझे ऐसा प्यार नहीं चाहिए।" वह औंधा मुंह किए सो गई।

सोमशेखर उठकर बैठ गया, अमृता की पीठ और कंधा सहला-सहलाकर बड़ी देर तक मनुहार करते जब तीन-तीन बार अपनी ग़लती को स्वीकार किया तब वह दबी आवाज में बोली, "मैं और आप कितने निकट आ गए हैं। यह डबल पलंग वास्तव में हम दोनों का हो गया है। कभी-न-कभी क्या इसकी खबर मेरे पति को नहीं लगेगी ? अगर उसे पता चल गया तब क्या करेंगे ? अथवा क्या आपने कभी एक बार भी पूछा है कि मेरे और मेरे पति के संबंध कैसे हैं ?"

सोमशेखर को कसमसाहट हुई। लेकिन उसका मन यह तय नहीं कर पाया था कि उसकी ओर से यह प्रश्न न पूछा जाना ग़लत है या सही। इसी बीच अमृता सोमशेखर की ओर मुड़कर उसका चेहरा निहारने लगी थी। उससे नज़र मिलाने के बाद सोमशेखर के चेहरे पर धीरे-धीरे अपराधी भाव उमड़ने लगा। फिर भी मन में उमड़ते विचार को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते हुए उसने कहा "पूछने का विचार मन मे चार-पाँच बार आया था। लेकिन पूछूं या नहीं, इसी उलझन में चुप रहा।"

"ऐसा क्यों सोचा ?"

"यह पर्सनल···व्यक्तिगत बात है। तुम खुद बतातीं तो वह बात और थी।"

पल-भर के लिए अमृता की आँखों में क्रोध उभरा। लेकिन सोमशेखर ने ताड़ लिया कि अमृता ने भीतर-ही-भीतर उसे नियंत्रित कर लिया है। नियंत्रित शात आवाज़ में वह बोली, "यानी तुम्हारा इरादा मुझे बाहर का बाहर ही रखने का है ? जितनी जरूरत हो उतना ही संबंध रखने का। शेष मामले में तुम्हारे लिए तुम और मेरे लिए मैं। दुःख-दर्द, भावनाएँ आदि कुछ भी आपस में बाँटने का कोई इरादा नहीं, यही बात है न ?"

"ऐसी बात नहीं"—इस बात को कहते समय सोमशेखर को अपने मन की गहराई में ग़लती का अहसास हुआ।

"ऐसी बात नहीं है तो फिर कैसी बात है ? साफ़ बताओ न।" अमृता ने तलब किया।

सोमशेखर के पास इसका जवाब नहीं था, उसके मन मे ग़लती का अहसास और तेज हुआ। अमृता ने पूछा, "तुमने कहा है कि बंबई में तुम्हारा किसी से प्यार का रिश्ता था। अपने उस प्यार से क्या तुमने कभी यह प्रश्न नहीं पूछा ? या पूछा भी हो तो क्या उसने तुम्हें इस मामले में एजुकेट किया कि ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिए; यह अपना-अपना निजी मामला होता है, पर्सनल ? वहाँ जो सबक सीखा था उसी के बूते पर क्या यहाँ सावधान बने हो ?"

इस प्रश्न से सोमशेखर के मन को इतनी पीड़ा हुई कि उसका अक्स उसके चेहरे पर साफ़ दिखाई पड़ा, "अमृता, उसके साथ तुम्हारी तुलना करना मुझे

बिलकुल पसंद नहीं। उसके बारे में ऐसी-वैसी बातें करना भी पसंद नहीं। तुम्हारा दर्जा बहुत ऊँचा है। फिर कभी अपनी तुलना उससे मत करना। उसकी बात अगर न करो तो मुझे खुशी होगी।"

"सॉरी!"—कहकर अमृता ने अपनी नज़र झुका दी। पुनः बिस्तर में मुँह दबाकर औंधे मुँह लेट गई। सोमशेखर ने उसे छूने, हिलाने, कंधा पकड़कर अपनी ओर घुमा लेने जैसी कोई चेष्टा नहीं की और वह चुपचाप बैठा रहा। खामोशी दोनों के कानों को सालने लगी थी। सहसा अमृता उठकर बैठी और सोमशेखर से लिपटकर याचना-भरी आवाज़ में बोली, "सोम, मेरे मन में जो कुछ उथल-पुथल होने लगती है, उसे किसी के सामने कह लेने को मन करता है। ऐसा कोई आत्मीय व्यक्ति नहीं है जिसके सामने कह लूँ। तुम ही एक मेरे अपने हो, आत्मीय हो। अगर तुम अमुक को पर्सनल, व्यक्तिगत और अमुक को अवैयक्तिक मानकर बीच में रेखांकन करके दूर खड़े रह जाओगे तो बताओ, मैं कहाँ जाऊँ? कहते हो कि उस बंबईवाली से अपनी तुलना न करूँ। लेकिन, तुम्हारा सलूक ऐसा नहीं होता कि उसमें और मुझ में कोई भेद दिखाई पड़े।"

"सॉरी, तुम्हीं बताओ, मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ है। मैं तुम्हीं से पूछ रहा हूँ, बताओ।" गहरी संवेदना से सोमशेखर बोला।

"मान न मान, मैं तेरा मेहमान वाली कहावत सुनी है न? फिर भी बताती हूँ। रसोई में जाकर दो कप कॉफी बनाकर लाओगे? कॉफ़ी पी लेने से उदासी कम होगी।"

"ओह ओ!" सोमशेखर उठकर गया। एक प्रकार का जोश था। और अधिक निकटता प्राप्त होने का, प्यार का रंग गहरा होने का, एकदम बढ़िया कॉफी बनाने का उत्साह फूट पड़ा। बड़ी लगन के साथ ठीक अनुपात में सारी चीज़ें डालकर कॉफी तैयार की। उसे दो कप तश्तरी में रखकर ट्रे में लिये छल-काए बिना लाकर जब अमृता के सामने रखी तो अमृता ने शाबाशी देते हुए तश्तरी के साथ कप उठा लिया। कॉफी की एक चुस्की लेकर बोली, "वास्तव में बढ़िया बनी है। मुझे तुमसे सीखनी होगी।" सोमशेखर में धन्यता का भाव उभरा। दोनों ने साथ-साथ चुस्की लेकर कॉफी पी। खाली कप और तश्तरी को सोमशेखर ने ट्रे में रखकर ट्रे सोफे के सामने वाली टीपाय पर रख दी। जब वह पलंग पर आ बैठा तो अमृता उसकी जाँघ पर अपना सिर टिकाकर लेट गई। और लेटे-लेटे सोमशेखर से नज़र मिलाए बिना बोली, "मेरा छोटा बेटा विकास अब चार साल का है। जब वह गर्भ में आया था, अर्थात् चार साल नौ महीने पहले, तभी रंगनाथ का संपर्क किया था। उसके बाद मैंने उसे छूने तक नहीं दिया।"

"क्यों?" सोमशेखर ने बेचैनी की गहरी आवाज़ में पूछा।

"क्यों? इस प्रश्न के जवाब में मुझे अपने और उसके संबंध की सारी बातें

बतानी पड़ेंगी। उसके बारे में मेरी क्या धारणा है, इसका खुलासा करना पड़ेगा। बताऊँगी। इसीलिए तो कॉफी पी ली है। कहाँ से शुरू करूँ!" उसने अपने आपसे प्रश्न किया, फिर बात शुरू की—"जब मैं छह साल की थी तब मेरी माँ चल बसी। मेरे पिताजी ने दूसरा ब्याह नहीं किया। अब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो कुछ और ही दिखाई देता है: कॉफी का वगीचा, जरखेज़ खेत, सारी मेरी माँ की मिल्कियत थी। वह अपने माँ-बाप की इकलौती संतान थी। मेरे पिताजी पढ़े-लिखे थे यानी उस जमाने में बी० ए० किया था। बड़े सुन्दर थे। मेरी माँ भी असुन्दर तो नहीं थी। लेकिन पिताजी जैसी चित्ताकर्षक नहीं थी। माँ का ब्याह रचाने के बाद नाना ने अपने दामाद को सरकारी नौकरी छुड़वाकर घर में रख लिया, बड़ी ऐस्टेट की देख-भाल के लिए। मेरा विचार है कि वे दामाद की बड़ी इज्ज़त करते थे, बड़ा मान देते थे। क्योंकि जब तक मेरे पिताजी जीवित थे तब तक वे अपने ससुर को बड़े आदर के साथ याद करते थे। बड़ी श्रद्धा के साथ प्रति वर्ष उनका श्राद्ध कर्म करते थे। घर में उनकी तसवीर टँगवाई थी। सुना है, मेरी माँ जब बारह वर्ष की थी तभी मेरी नानी का देहात हो गया था। यह नानी मेरे नाना की दूसरी पत्नी थी। पहली पत्नी जब निस्संतान मर गई तो दूसरा ब्याह किया था। जब दूसरी पत्नी मर गई तब नाना तिरेपन साल के थे। दुबारा शादी-ब्याह के चक्कर में पड़ने का पागलपन उन्हें नहीं था। उन्होंने निश्चय किया कि जब बेटी जवान होगी तब किसी अच्छे लड़के को घर-जमाई बना लेंगे और ऐस्टेट की सारी ज़िम्मेदारी बेटी को संभालकर कुछ प्रशिक्षित कर दें तो अपना कर्तव्य पूर्ण हो जाएगा। उनकी इच्छा के अनुकूल मेरे पिताजी मिले। माँ के ब्याह के दो वर्ष बाद मेरा जन्म हुआ। अगले साल नाना जी का देहांत हो गया। पेट का दर्द था; कहते है कि आपरेशन हुआ, गाँठ निकली, शायद कैंसर होगा। उन दिनों यह नाम और इसका भयावह रूप उतना परिचित नहीं था। फिर माँ ने दो बार गर्भ रखा था, दोनो बार गर्भपात हुआ। नाना के मरने के पाँच वर्ष बाद माँ भी मर गई। पिताजी ने दूसरा ब्याह नहीं किया।"

"तब उनकी क्या उम्र थी?" सोमशेखर ने, जो सारी कहानी ध्यान से सुन रहा था, पूछा।

"माँ से आठ वर्ष बड़े; माँ की उम्र चौबीस थी, उनकी बत्तीस।"

"क्यों नहीं किया?"

"मैंने बहुत सोचा है। दरअसल उनका स्वभाव ही एक प्रकार से निर्लिप्त किस्म था। शायद उनका विचार रहा होगा कि एक बार गृहस्थी जमायी। बार-बार उसकी खोज के पीछे पड़ना बेकार है। लगता है कि उन्हें माँ से प्यार भी था। नौकरों को कहते सुना है कि इतने बड़े ऐस्टेट की वारिस होकर भी माँ ने

कभी अपने पति से अहंकार का व्यवहार नहीं किया; बड़े प्यार व विश्वास से पेश आती थी। एक और कारण भी हो सकता है : सारी मिल्कियत पत्नी की है। उसकी कोख से जन्मी हुई एक बेटी है। इस ऐस्टेट में ही रहकर उसकी देखभाल करके उसे बेटी के हाथों सौंप देना अपना कर्तव्य है। सरकारी नौकरी को छोड आए थे, अब रोज़ी-रोटी के लिए क्या करेंगे ? ऐसी अवस्था में अगर दूसरा ब्याह करेंगे तो उस आने वाली का दर्जा क्या होगा ? चाहे गरीब घर की ही हो, जब पत्नी का दर्जा मिल जाता है तब क्या उसमें महत्वाकांक्षा, दुर्बुद्धि आदि दोष नही आ जाएँगे ?—इन सारी बातों के बारे में सोचा होगा। बहरहाल उन्होने फिर ब्याह नहीं किया। पिताजी धार्मिक बुद्धि के थे। अपने सुख का त्याग करने की उनमें महानता की याद करती हूँ तो आज भी मेरी आँखे नम होने लगती है।" बातों-बातों में अमृता की आँखें डबडबा आयी। एक बार लंबी साँस लेकर रो पडी तो आँखों से आँसू नीचे लुढ़क पड़े। सोमशेखर ने दाहिना हाथ बढ़ाकर उसका सिर सहलाया। पल भर में संभलकर आँसू पोछती हुई वह आगे बोली, "पिताजी का धार्मिक बुद्धि इसलिए कहा कि इतने बड़े ऐस्टेट का हिसाब-किताब और कोई पूछने वाला नहीं था। बड़ी होकर, समझदार बनकर सवाल करने की बुद्धि, चाहे तुम इसे दुर्बुद्धि कहो, मुझमें आने के लिए मेरी आयु कम-से-कम तेईस-चौबीस की तो होनी चाहिए थी। ब्याह के बाद मेरा पति उसके लिए उक-साए। इतना सब जमने में अठारह वर्ष तो लगेंगे ही। उन अठारह वर्षों में दस-बीस-तीस लाख की हेराफेरी करके क्या अपनी दूसरी पत्नी और उसके बच्चों के नाम अलग जायदाद नहीं बना सकते थे ? उन बच्चों के साथ भाई-बहन का नाता जोड़कर क्या मेरी भावनाओं को बाँधा नहीं जा सकता था ? ऐसा कुछ नही किया, उन्होंने।" दुबारा उसने छलकती आँखों को पोछ लिया। सोमशेखर उसके पिताजी के चरित्र और व्यक्तित्व की कल्पना करते हुए बैठा-बैठा अमृता का चेहरा ताक रहा था। सहसा वह पलंग से उठी। टीपाय के पास जाकर ट्रे और कप-तश्तरियाँ उठाकर रसोई में चली गई। नल के नीचे उन्हें धोकर पुन: जब लौटी तो सोमशेखर जान गया कि उसने आँख और मुँह धो लिया है। इतने दिनों के संपर्क से वह जान गया था कि जब कभी भावनाओं का आवेग बढ़ जाता है तब किसी और काम में अपने आपको उलझाना अमृता का स्वभाव है। लौटकर पलंग के सिरे पर तकिया रख कर उससे टेक लगाकर बैठ गई। वह पुन: बोलने लगी :

"अब मैं असल मुद्दे पर आती हूँ। पुरुष बलवान होता है या स्त्री ? इस बारे मे तुम्हारी राय क्या है ? बताओ तो सही।"

"अनेक बातों में स्त्री।"

"मुझे रिझाने की खातिर तुम ऐसी बात न कहो जो तुम्हारा मन नहीं

मानता। खैर, मैं बताती हूँ। दैहिक बल में, ऊँचाई में, शिकार खेलने में, साहस के कार्यों में साधारणतः पुरुष का बल ही अधिक होता है। लेकिन, घरेलू-भीतरी मामलों में पुरुष कितना निकम्मा होता है, जानते हो? माँ जो मर गई न! हमें किस बात की कमी थी? क्या नौकर-चाकरों की कमी थी? या खाना पकाने वालों की कमी थी? उतने बड़े ऐस्टेट का कारोबार सँभालने वाले पिताजी पर जब उसी ऐस्टेट के बीच बने घर की, खासकर रसोईघर की जिम्मेदारी आ पड़ी तो वे निस्सहाय हो गए। अकसर पुरुष ऐसे ही होते हैं; तुम भी हो। वरना, होटल का घटिया खाना खाते क्यों पड़े रहते? खैर, छोड़ो इन बातों को। मेरे पिताजी का एक छोटा भाई था, आज भी है, मेरा चाचा। सकलेशपुर में एक छोटी-सी दुकान चलाता था। दाल-चावल, बीड़ी-सिगरेट, कागज-पेंसिल वगैरह रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुओं की दुकान, छोटी-सी। मैट्रिक फेल था। पिताजी ने ही अपने ब्याह से पहले अपने भाई के गुजारे के लिए किराए की एक दुकान लेकर कुछ पूँजी लगाकर निर्देश देकर शुरुआत करवाई थी। चाचा बदमाश तो था नहीं; लेकिन किसी भी हालत में घटिया काम नहीं करेगा, ऐसी नैतिक शक्ति भी उसमें नहीं थी। बिलकुल आम आदमी की तरह था। लेकिन उसकी बीवी, यानी मेरी चाची, नाम जयलक्ष्मी, बड़ी चालाक औरत है। चालाकी का उदाहरण चाहिए तो उसका नाम लिया जा सकता है। किसी भी हालत में जाहिरा तौर पर वह कभी अनुचित काम नहीं करेगी। चाहे किसी के रू-ब-रू क्यों न हो, उसकी ओर उँगली न उठा सके। लेकिन भीतर ही-भीतर कुतर डाला है। अब भी जीवित है। कभी तुम उसे देख लेना। कैसे, कहाँ, इसकी व्यवस्था करना कठिन है। खैर! माँ जब जीवित थी तब देवरानी के नाते जब कभी वह आती तब अच्छी आवभगत करती थी उसकी। लेकिन ज्यादा लगाव नहीं रखा था। उन्हीं दिनों पिताजी के विरासत की छोटी-सी जायदाद का बँटवारा हुआ। तब माँ ने खुद पिताजी से अपना हिस्सा यह कहकर अपने भाई के नाम छोड़ने के लिए कहा था कि भगवान ने हमें बहुत दिया है। तब चाची ने अपनी जेठानी का बहुत उपकार माना था।

"माँ के मरने का समाचार मिलते ही वह खुद दौड़कर आई। आते ही मुझे कसकर अपनी बाँहों में भर लिया। जानते हो, इस बाँहों में भरने, सिर सहलाने, पीठ सहलाने, आँहें भरकर मस्तक को गरम करने जैसी क्रियाओं में कैसी मोहिनी शक्ति का जादू रहता है! माँ का शव पड़ा था, पिताजी अपने दुःख में डूबे हुए थे। क्रिया-कर्म होना था, उसकी व्यवस्था करनी थी, उसकी निगरानी करनी थी। बिटिया के प्रति प्यार भी है। उनका प्यार निष्कलुष था। मौत क्या होती है, इसका ठीक ज्ञान भी मुझे नहीं था। माँ की मौत के सही अर्थ और परिणामों से अनभिज्ञ मैं मूक वेदना से भीतर-ही-भीतर कराह रही थी। पिताजी ने मेरा हाथ

पकड़कर अपने पास बिठा लिया था। फिर उठकर अंत्येष्टि की देखरेख करने चले गए थे। चाची ने आते ही दौड़कर मुझे बाँहों में भर लिया। ऊँची आवाज़ में रुदन करने लगी, 'दीदी, कम-से-कम इसके लिए तो तुम्हें जीना चाहिए था। इस फूल जैसी बिटिया को मेरी गोद में छोड़कर कहाँ चली गईं ?' मेरी पीठ सहलाते हुए धीरे-धीरे दबाकर मुझमें रुलाई लाई थी, मेरा मुँह अपने वक्ष में दबाकर सिसक-सिसककर रोने लायक बनाया था। इस दृश्य को देखकर भला पिताजी को कैसा लगा होगा ? छह साल की छोटी बच्ची। बिन माँ के कैसे जिएगी, कैसे बढ़ेगी ? उनको शायद यही लगा होगा न, कि इस घड़ी जब सगी माँ मर गई है तब भगवान ने चाची के रूप में माँ को भेजा है ? चाची ने मुझे छोड़ा ही नहीं। लाश के सामने किए जाने वाले क्रिया-कर्मों को यह मासूम बच्ची कैसे देख सकेगी ? इस बहाने मुझे उठाकर आँचल में मेरा मुँह छिपाकर सीधे भीतर ले गई थी। छह वर्ष की अवस्था में ही मेरा शरीर काफ़ी बढ़ गया था। मेरा चेहरा, देह की गठन आदि पिताजी की तरह ही थी। भारी होने पर भी उसने मुझे पल-भर के लिए भी उतारा नहीं; गोदी में लिये-लिये ही फिरती रही। माँ का क्रिया-कर्म एक बड़ी ऐस्टेट के मालिक की प्रतिष्ठा के अनुसार होना था। पिताजी को इस संबंध में सलाह-सूचना देते हुए भगवान को कोसती रही कि उसने अपने भाग्य में अपनी दीदी के क्रिया-कर्म देखने के दिन लिखे। आँखों से यों आँसू बहाती रहती थी कि केवल पिताजी ही नहीं बल्कि माँ के दूर-दराज के संबंधियों को भी अहसास होने लगा था कि जयलक्ष्यम्मा के बिना रामस्वामय्या बच्ची की परवरिश नहीं कर पाएँगे। वास्तव में इस चाची को देखकर मेरे मन में सहज प्यार उमड़ा नहीं था। अवसाद के क्षणों में ही अगर स्नेह आप्लावित रहे तो बाद में बहानों के सौ बाँध बाँधे जाने पर भी वह जड़ नहीं [illegible] पाएगा। लेकिन वह जो मुझे यों ढोए फिर रही थी कि मेरे पाँव जमीन पर न टिके और यह देखकर लोगों को विश्वास होने लगा था कि अब वही मेरी माँ का अभाव पूरा करेगी। उस समय इन बातों के प्रभाव के समक्ष मेरी सहज प्रवृत्ति अभिव्यक्त नहीं हो सकी। छठे वर्ष मे ऐसे प्रभाव को तोड़कर अपनी निजी भावनाओं को अभिव्यक्त करना क्या संभव है ? तिस पर चाची जैसी औरत के अभिनय के दायरे को तोड़कर बाहर निकलना ? मन की दशा को समझ गए न ?"

मन में चाची के चरित्र की कल्पना करते सोमशेखर ने हामी में सिर हिलाया। अमृता ने कहा था कि चेहरा और शारीरिक गठन में वह अपने पिता जैसी है। अमृता की लंबी नाक और सुडौल चौड़ा चेहरा देखकर वह कल्पना करने लगा कि शायद उसके पिताजी ऊँचे कद के, सुगठित शरीर के धनी रहे होंगे। "क्रिया-कर्म के बाद क्या किया ?"

"मैं वही बताने जा रही थी। वैकुंठ हुआ। चाची ने खुद कहा, 'जेठ जी !

दीदी का मन बहुत बड़ा था। गौरव, प्रतिष्ठा की बात तो आप जानते ही हैं। आस-पास के सारे ऐस्टेटों के मजदूरों को खाने के लिए बुलाइए।' यों कहकर उसने पिताजी का मन जीत लिया। दूसरे दिन पिताजी मुझे गोद में लिये दालान में बैठे थे। वहाँ आकर वह बोली, 'अशुभ काम पर आई हूँ। विदाई की बात नहीं करनी चाहिए। जाते समय कहकर नहीं जाना चाहिए। लेकिन, मैं इसी घर की हूँ, इसलिए वे बातें मुझ पर लागू नहीं होतीं। इस बच्ची को छोड़कर जाऊँ तो दीदी ने, जो अब स्वर्ग में है, अगर सपने में आकर पूछा कि जया, मेरी बच्ची को, अनाथ बच्ची को अनाथ छोड़कर जाने के लिए तुम्हारा दिल कैसे माना, तो मैं क्या जवाब दूँगी ? चाहे मेरे प्राण चले जाएँ, मैं इसे छोड़कर हर्गिज नहीं जाऊँगी। अपने साथ ले जाऊँगी। कभी-कभी यहाँ लाती रहूँगी। आपका तो सकलेशपुर आना-जाना रहता ही है। तब बच्ची से आपकी भेंट होती रहेगी। यहाँ आप अकेले रहेंगे, नौकरों के हाथ का खाना खाना पड़ेगा। मैं बीच-बीच में आकर खैर-खबर लेती रहूँगी। लेकिन उधर की गृहस्थी भी तो चलानी है। अगर मैं न रहूँ तो आपके भाई को दुकान का ध्यान ही नहीं रहता। घर में छोटे-छोटे बच्चों की देखभाल करनी पड़ती है।' पिताजी ने पल-भर में अपना निर्णय सुना दिया। चाची की गोद में बैठी मैं सुन रही थी, "जयम्मा, यह तो तुम्हें छोड़कर रह नहीं सकती। यहाँ मेरा अपना भी कौन है ? तुम सारे लोग यहीं आ जाओ।" चाची ने भी उतनी ही अवधि यानी पल-भर सोचने का अंदाज दिखाकर बोली, "आपको अकेला छोड़कर जाने के लिए भी मन नहीं करता। लेकिन हम सभी परिस्थिति को भली-भाँति समझ लें। दीदी केवल इस बच्ची को ही मेरी गोद में देकर गई है। लेकिन, यह जायदाद, यह ऐस्टेट सब दीदी का है। विरासत में अब वह इसका है। विरासत में जो आपको मिला था वह आपने बड़ी उदारता से अपने भाई को दे दिया। दुकान में भी आप ही ने पूँजी लगाई। उसे चलाते हुए किसी तरह रूखा-सूखा खाकर गुजर-बसर कर रहे है। अब उस दुकान को बंद करके अगर यहाँ आ जाएँगे तो अपने गुज़ारे के साधन पर पानी फिर जाएगा। फिर दीदी का, उनको विरासत में मिले इस घर का नमक खाते पड़े रहेंगे तो लोग क्या कहेंगे ? दीदी के सगे-संबंधी क्या कहेंगे ? मेरी गोद में जो इसे डाल दिया है उसे पढ़ा-लिखाकर बड़ी करके राजकुमार जैसे लड़के को ढूंढकर इसके हाथ पीले करने की खुशी मनाना ही अपना कर्तव्य है। यहाँ आकर बैठना नहीं। आप समझदार हैं, आप ही बताइए।' पिताजी भला क्या कहते ? भाई की पत्नी की धार्मिक बुद्धि के सामने भक्तिभाव से नतमस्तक हो गए। चाची बार-बार जोर देकर कहा करती थी कि मेरी माँ मुझे उसकी गोद में छोड़ गई है। लेकिन मेरी माँ ने मुझे किसी की गोद में नहीं छोड़ा था। मरने से पहले उसकी बोलती भी बंद हो गई थी; होश भी नहीं था। उसके मरने के पाँच-छह घंटों बाद यह चाची आयी

थी। सोचने लगती हूँ तो उन सारी घटनाओं का रहस्य अब समझ में आता है। वह समझने की उम्र नहीं थी। पिताजी भी उस उम्र में समझ नहीं पाए थे। अनुज-वधू बिन माँ की बच्ची की माँ बनकर आई, प्रतिफल की कोई अपेक्षा न लेकर, निस्वार्थ प्रेम को लेकर अपनी बच्ची को माँ का प्यार देने के लिए आई थी, पिताजी ने तुरंत विश्वास कर लिया।

"चाची मुझे सकलेशपुर ले गई। वहीं स्कूल में मेरा नाम लिखवा दिया।एक सप्ताह के भीतर ही पिताजी मुझसे मिलने आए। ऐस्टेट के लिए आवश्यक खाद, उर्वरक, छिड़काव की दवाइयाँ, जीप-ट्रक की मरम्मत, तेल, पेट्रोल, घर के लिए सामान आदि जो भी खरीदारी करनी हो सकलेशपुर को ही जाना पड़ता था। चाहे खरीदारी न भी हो, पिताजी सप्ताह में एक बार आ जाते थे। लेकिन, हर बार अपने भाई के घर नहीं जाते थे। फिर सप्ताह में दो बार आना शुरू किया। बेटी को देखे बिना उनको चैन नहीं पड़ता था। फिर लगता है कि हमेशा अपने मातहत नौकर और रसोइयों के साथ रहते हुए वे ऊब जाते थे। नौकर-चाकरों के साथ खुलकर कैसे रहा जा सकता है? स्नेह-समानता दिखाने लग जाए तो नौकरों में भय नहीं रहेगा और वे ठीक ढंग से काम कहाँ करेंगे? चाची बड़ी चालाक थी। पिताजी जब कभी आते उनकी पसंद का खाना पकाकर खिलाती। कलेजा मुँह को लाकर कहती, 'आप अकेले हैं, वहाँ आपका कौन साथी है, भला'' पिताजी को सहज ही उसकी बातें भाती थीं। इसी तरह बीच-बीच में कभी-कभार चाची ऐस्टेट हो आती, रसोईघर की देखभाल करती, मिर्च मसाला, चटनी-पाउडर, साँबर का मसाला वगैरह बनवाकर रसोइयों को हिदायतें देकर जाती थी। इसी तरह छह महीने बीत गए। एक दिन पिताजी ने ही निर्णायक बात कही, 'जयम्मा, लोग चाहे कुछ भी कह लें। तुम कोई [illegible]ार वहाँ नहीं जा रही हो। बच्ची की देखभाल के लिए मैं खुद ले जा रहा हूँ। यहाँ दुकान भी ठीक तरह नहीं चल रही है। चुपचाप सभी लोग वहीं चलो।" यह बात नहीं कि पिताजी का यों कहना आवश्यक नहीं था। लेकिन अपनी बातचीत, सलूक द्वारा इस प्रकार की मानसिक आवश्यकता का निर्माण करने की शक्ति-युक्ति चाची में थी। आखिर चाची ने अपने पति और दो बच्चों को लेकर ऐस्टेट में अपनी जड़ जमा ली। जयराम मेरी ही उम्र का था। लीला मुझसे दो साल छोटी थी। आखिरी बेटा कृष्णमूर्ति ऐस्टेट में आने के दो वर्ष बाद [illegible] हुआ था। उतने बड़े ऐस्टेट के उतने बड़े घर में न जाने कितने लोगों का खाना पकता था। उसमें ये पाँच लोग कोई भार नहीं थे।

"लेकिन चाची जो आई थी वह काम करके पेट भरने के लिए नहीं, वरन् धीरे-धीरे कारोबार अपने हाथ में लेने के लिए! ऐस्टेट के कारोबार में मातहत बाबू लोग और कामगारों पर विश्वास तो करना ही पड़ता है। कैसा ही बाबू

या मिस्त्री हो, नमक-मिर्च के लिए कुछ-न-कुछ करता ही है। ऐसी बातों के लिए छूट भी देनी ही पड़ती है। पिताजी इन सारी बातों को जानते होंगे। शायद न भी जानते हों! चाची ने आते ही छह महीने के अंदर बड़े बाबू के किसी हिसाब की चोरी का पता लगाया और पिताजी के सामने पेश किया। शर्मिंदा होकर वह काम छोड़कर चला गया। दो कारीगरों के साथ भी ऐसा ही किया। वे भी छोड़कर चले गए। 'दीदी की जायदाद की हकदार अपनी बिटिया अमृता है। चोर-उचक्कों द्वारा उसकी लूट होते हुए देखते क्या मैं चुपचाप रसोई में बैठी रहूँ? मैं भी ऐस्टेट में घूम-फिरकर निगाह रखूंगी। अपने भाई से भी कहिए कि अपना आलसीपन छोड़कर ज़रा घूमा-फिरा करें।'—वह पिताजी से बोली। छोटे बाबू के हिसाब की जाँच-पड़ताल करने लगी। साथ-ही-साथ पिताजी के लिए तथा मेरे लिए हमारी पसंद का खाना व नाश्ता तैयार करवाती। सप्ताह में एक बार वह स्वयं मेरे सिर में तेल मलकर नहलाती थी। सकलेशपुर से हर त्यौहार के लिए रेशम का लहँगा सिलवाकर लाती थी। पिताजी को शुरू-शुरू में संकोच होता था, फिर भी वह स्वयं आगे बढ़कर कहती, 'गरमी के कारण आपकी आँखें कितनी लाल हुई हैं!'—और फिर उन्हें बिठाकर सिर में इतना तेल भरती कि वह रिस जाता था। फिर मलकर मालिश करने लगती तो फेन निकल आता। तब फेन को बताकर कहती कि गरमी हो तो ऐसा ही फेन निकलता है। शुरू-शुरू में अपने पति के हाथों पिताजी के सिर पर गरम-गरम पानी डलवाती थी। तीन-चार महीनों के बाद अपने पति के रू-ब-रू ही, 'अगर तुम्हें ठीक ढंग से पानी डालना आता तो दुनिया क्यों ऐसी बनी रहती?' कहते हुए उसके हाथ से ताँबे का लोटा छीनकर एक दिन पिताजी को उसने खुद नहलाया। काहिल चाचा को इस बात से खुशी ही हुई कि नहलाने के काम से छुट्टी मिली। धीरे-धीरे सारा ऐस्टेट उसकी पकड़ में आ गया। घर का कारोबार तो पहले ही उसकी मुट्ठी में आ चुका था। लेकिन वह बहुत चालाक थी। ऐस्टेट की जिम्मेदारी का कोई काम पिताजी से पूछे बिना, उन्हें सूचित किए बिना नहीं करती थी। एक महीना पहले ही हर काम के बारे में सोच-समझकर, उसका विधान, लागत, किस ढंग से करने पर लागत कम होगी आदि सारी बातों का ब्योरा पिताजी के सामने रख देती। फिर कहती, 'आपके निर्णय के बिना मुझे कुछ नहीं करना चाहिए।' पिताजी को अहसास होता रहे कि हर मामले में वे ही मालिक हैं, उन्हीं की बात चलती है और वह उनकी प्रतिनिधि बनकर हुक्म जताने वाली सेविका मात्र है—इस प्रकार का धूर्त व्यवहार वह करती। सारे नौकर-चाकर उसी से डरने लगे। नौकरों की हाज़िरी, वेतन जैसा मामूली हिसाब-किताब ही बाबू लोगों के हाथ में रह गया था। खरीद, बिक्री, जीप, ट्रक, कार आदि के खर्चे का सारा हिसाब वह स्वयं करने लगी। इससे आगे तुम खुद

अंदाजा लगाओ।" अमृता सोमशेखर का मुँह देखने लगी।

"ठीक है, भीतर-ही-भीतर कैंची मारकर गठरी बनाना शुरू किया।"—सोमशेखर ने साफ बात कही।

'कब से गठरी बनाना शुरू किया था और किन-किन संदर्भों में कितना काट किया, इसका ठीक अंदाजा मुझे नहीं है। मै अभी छोटी बच्ची थी। आठ वर्ष बाद यानी जब मैं चौदह साल की थी तब पिताजी का देहांत हुआ। उसके बाद पूरा स्वामित्व और गार्डियनशिप उसी का हो गया। उस समय भी मुझे बाँहों में भरकर धीरज बँधाया था। क्रियाकर्म के बाद मुझे अकेले मे बिठाकर बोली, 'सुन बिट्टू! मैं तेरी माँ हूँ और तू मेरी बेटी। फिर भी जायदाद की खबर तुझे रहनी चाहिए। इसलिए कह रही हूँ कि कल के दिन कोई ऐरा-गैरा आकर तेरे कान न भर दें। मरते समय तेरे बापू ने मुझसे कहकर प्राण छोड़े हैं कि जब तक अमृता जवान नहीं होती, उसकी पढ़ाई खत्म नहीं होती और किसी अच्छे लड़के से उनका ब्याह नही होता तब तक मैं यहाँ रहकर निगरानी करती रहूँ। मैं अपना कर्तव्य पूरा करूँगी। तू भी बड़ी होने लगी है। लोग माँ-बच्चो में ही फूट डालने की कोशिश करेंगे। इसीलिए अभी से कहे दे रही हूँ।' उसके सिवा मेरा अपना कौन था भला? जमीन-जायदाद के बारे मे मैं क्या जानूं? हमेशा रेशम की जरीदार लहँगे, सिंथेटिक कपड़े जो अभी-अभी शुरू हुए थे, मजेदार चटपटा खाना, अपनी बड़ी बेटी होने के दावे का प्यार—इन बातों से आगे मेरी कल्पना जा भी कैसे सकती थी? उन दिनों मैं हाईस्कूल में पढ़ती थी। उसका बड़ा बेटा जयराम, बारह वर्ष की लीला, छह वर्ष का कृष्णमूर्ति और मैं, हम चारों को हर रोज जीप में सकलेशपुर के स्कूल को भेजा जाता था। फिर हासन के कालेज में मुझे प्रवेश दिलवाया गया। हासन में एक घर लिया गया। चाची की रिश्तेदार कोई महिला खाना पकाती थी। सप्ताह में तीन दिन हमारे साथ, और तीन दिन ऐस्टेट में रहकर चाची दोनो ओर की देखभाल करती थी। इतवार के दिन हम सभी ऐस्टेट चले जाते थे। पढ़ाई में मैं हमेशा तेज थी। बुद्धि-शक्ति में, प्रतिभा में या स्मरण-शक्ति में—कुछ कह नहीं सकती। बचपन से ही स्मरण-शक्ति बहुत तेज थी। कक्षा में पढ़ाई के लिए सुनना भर काफी था, पढ़े बिना उत्तर लिख देती थी। यो तो पढ़ती भी थी। चाची कहा करतीं कि दूसरों से मेल-जोल न रखूं, घर मे बैठकर पढ़ती रहूँ। मैं लाइब्रेरी से किताबें लाकर हमेशा पढ़ती रहती। जो भी पढूं, जितना भी पढूं याददाश्त बिलकुल साफ़ रहती थी। यहाँ तक कि कौन-सा विषय किस पृष्ठ पर है, ज़रा याद रहता था। इसी तरह दिन कटते रहे और मैं बी० ए० के अंतिम वर्ष में पहुँच गई। तब चाची ने मेरे ब्याह की तैयारी की। 'अगर तेरी माँ होती तो आज तेरा ब्याह हुए दो वर्ष बीत गए होते। तेरे बापू भी होते तो भी अब तक तेरा ब्याह कर चुके होते। बापू तो

मुझसे कहकर ही गए हैं। अब देर ठीक नहीं।' मेरे सिर पर हाथ फेरकर पीठ सहलाकर आंसू छलकाते हुए उसने मुझे मनाकर ही छोड़ा। दूल्हा कौन था, पता है? बताओ तो सही?"

"रंगनाथ।"

"नाम ठीक है। वह कौन है, अंदाजा लगा सकते हो?"

"चाची के भाई का बेटा?..."

"सगा भाई। डोनेशन सीट में बी० ई० पास किया हुआ। कभी-कभार हमारे यहां आया करता था। चाची उसकी बहुत प्रशंसा करती थी। दो वर्ष पहले से ही मेरे सामने कहना शुरू किया था: हमारी बच्ची कितनी सुंदर है। उसकी जायदाद की लालच में कोई ब्याहने आ जाए तो मैं नहीं दूंगी। ब्याहने वाला ऐसा चाहिए जो उससे प्यार करे। जो यह माने कि उसकी जायदाद उसी की है, उसमें से एक फूटी कौड़ी भी उसे नहीं चाहिए। ऐसा न मानता हो तो वह कैसा मर्द होगा?' ब्याह का पक्का प्रस्ताव मेरे सामने रखने से छह महीने पहले उसने कहना शुरू किया, 'आज कल के लड़कों का चाल-चलन कैसा होता है, यह कौन जाने? बाहर देखने में तो बड़े भोले लगने है, लेकिन पता नही भीतर-ही-भीतर क्या-क्या गुल खिलाए रहते हैं। किसी अजनबी लड़के से अपनी बेटी का ब्याह रचाने की बात सोचती हूँ तो डर के मारे मैं सिहर उठती हूँ।' फिर कहने लगी, 'अपना रंगनाथ घर का ही लड़का है, कुछ हेठी दिखाये तो कान पकड़-कर लीक पर लाया जा सकता है। हमारी बच्ची को अपनी हथेली पर चमेली के फूल की तरह रखकर देखभाल करेगा। ऐसी शर्त पहले ही लगाई जा सकती है। तू भी चाहे तो अपनी जो भी शर्तें हों पहले ही लगा लेना।' मुझे सोचने का मौका ही नहीं दिया। अगर बाहरी लोग-बागों से मिलने-जुलने का मौका ही नहीं दिया जाता तो ही अपनी निजी बुद्धि, निज का अभिप्राय विकसित हो सकता था न? ब्याह तय करके गर्मी की छुट्टियों में मेरे हाथ पीले कर ही दिए।"

"मतलब यह कि सारा ऐस्टेट पीहर के हिस्से में चला गया।"—सोमशेखर ने अर्थ बताया।

"ब्याह के समय मैं बीस वर्ष की थी। जब बी० ए० का रिजल्ट आया तब मैंने गर्भ धारण किया था। चाची बहुत खुश थी। शायद अपने पीहर की उन्नति देखकर हुई होगी। परीक्षा में मैं सारे विश्वविद्यालय में प्रथम आई थी। इतने में ब्याह हो जाने के कारण पढ़ना एकदम छूट गया था; बुद्धि में जड़ता आई थी। रिजल्ट निकलते ही मैं खुद हासन गई और अपनी अध्यापिकाओं से मिली। कालेज का गौरव बढ़ाने वाली छात्रा के नाते उन सब का मेरे प्रति बड़ा स्नेह था। उन्होंने कहा कि तुम जैसी लड़की अगर आगे नहीं पढ़ेगी तो कैसे काम

चलेगा ? चाहो तो हम तुम्हारी माँ को समझाएँगे। तुम्हें एम० ए० के लिए मैसूर जाना ही होगा। बिना पढ़ाई के घर में बैठे रहने का अहसास मुझे पहली बार हुआ और लगा कि वह मेरे लिए असंभव है। मैंने जिद की कि गर्भवती होने की कोई परवाह नहीं, मैं मैसूर जाकर पढ़ूँगी जरूर। जब चाची को लगा कि मेरा निश्चय अटल है तो उसने हारकर कहा, 'तब तो मैसूर में ही घर लेंगे। जयराम, लीला और कृष्णमूर्ति को भी हासन के बदले मैसूर में ही रखेंगे।' मैंने होस्टेल में रहना चाहा तो वह मानी नहीं। मैं उसकी बात मान गई। तुरंत एम० ए० के लिए अप्लाई किया, सीट मिल गई और दाखिला भी हो गया। यह घर पिताजी ने खरीदा था। दशहरा या रामनवमी की संगीत-सभा के लिए मैसूर आने का उनका शौक था। इसीलिए यह घर खरीदकर एक चौकीदार को रखा था। पिताजी के देहांत पर चाची ने इसे किराए पर दे दिया था। किराएदार तुरंत कहाँ छोड़ते हैं ? उन तीनों को कालेजों में जल्दी प्रवेश नहीं मिल पाया। उनकी सारी व्यवस्था होने तक होस्टेल में रहने का तय करके निकल पड़ी।

"रंगनाथ उन दिनों हेमावती बाँध पर नया-नया जूनियर इंजिनियर लगा था। अब तक मैं यह समझ गई थी कि वह मुझसे डरा-डरा-सा रहता है, उसमें हीन-ग्रंथि है। होस्टेल में आने के दो महीने बाद मैं समझने लगी कि स्वतंत्रता स्व-नियंत्रण का क्या अर्थ है। मेरी सहपाठी श्वेता मेरी सहेली बन गई। वह भी सकलेशपुर तहसील की ही थी, एक ऐस्टेट मालिक की बेटी। इसी बीच गौरी का त्यौहार आया। दोनो साथ मिलकर सकलेशपुर तक गए; वहाँ से वह अपने ऐस्टेट को चली गई और मैं अपने सूगूर ऐस्टेट को आई। छुट्टियों के बाद पुन: दोनों सकलेशपुर में मिले और एक साथ मैसूर चले गए। तब मुझे चौथा महीना चल रहा था। श्वेता भी साहित्य की छा[illegible]त्रा थी। बताया न, हम दोनों क्लासमेट्स थे। दोनों साथ-साथ बस मे बैठ गए और जब बस चल पड़ी तब उसने पूछा, 'पात्रों का पुनर्मूल्यांकन करना क्या होता है, जानती हो न ?' मैंने पूछा, 'किस संदर्भ में यह प्रश्न पूछ रही हो ?' उसने कहा, 'सुनो, जो कुछ मुझे पता चला है बताती हूँ। मैंने अपनी माँ से कहा कि सूगूर ऐस्टेट के कपनीपतय्या की पोती, रामस्वामय्या की बेटी अमृता मेरी क्लासमेट है; मेरी फ्रेंड भी है; दोनों साथ आए हैं। हम दोनों में गहरा स्नेह है। दो दिन के बाद माँ ने खुद बताया कि तुम्हारी चाची ने तुम्हारे साथ बड़ा [illegible] किया है। हमारे ऐस्टेट के आठ मील की दूरी वाली घाटी के पास साठ एकड़ का एक तथा पैंतालीस एकड़ का एक दूसरा ऐस्टेट उसने खरीद लिया है। जयराम नामक बेटे के नाम से एक और कृष्णमूर्ति नामक दूसरे बेटे के नाम से दूसरा। दोनों की कुल कीमत छब्बीस लाख है। कंगाल पीहर से आई हुई औरत के पास इतनी जायदाद खरीदने के लिए पैसा कहाँ से आएगा ?

सुगूर ऐस्टेट का उत्पादन, खर्च आदि का लेखा-जोखा कौन देखता है ? को" पूछता है ? इसके अतिरिक्त हासन के तल्लम् वेंकटरमण सेट्टी की दुकान में अक्सर अपनी मर्जी के गहने भी बनवाती रहती है। माँ ने कहा कि अब तक लगभग सात-आठ सेर सोने के गहने जड़वाए होंगे। मेरी कसम, किसी के सामने यह जिक्र न करना कि मेरी माँ ने यह सब कुछ कहा। सच्चाई से अवगत रह"। तुम्हारे साथ धोखा हो रहा है। एक और बात है; तुम्हारे जो हस्बेंड हैं न, उनको तुम्हारी चाची ने ही पढ़ाया है। डोनेशन देकर तुमकूर में सीट दिलवायी, होस्टेल में रखकर पढ़ाया; वह भी तुम्हारे ऐस्टेट के पैसे से ही।'

"बस अभी जंगली झाड़ी के प्रदेश मे ही दौड़ रही थी। मेरी अर्ध-निमीलित आँखें खिड़की के बाहर भागती हरियाली में गड़ी थीं। दो ऐस्टेट का छब्बीस लाख, सात-आठ सेर सोने का पता नहीं कितने लाख, भाई की पढ़ाई में कितना डोनेशन, होस्टेल का खर्च—इन सब की स्पष्ट कल्पना मुझे नहीं हो पा रही थी; मानो कहीं किसी के साथ हुई कोई घटना बनकर मन के बाहरी परत से चिपके बुदबुदे की तरह मुझे खिड़की के बाहर हरियाली की पृष्ठभूमि में दिखाई दे रही थी। फिर मुझमें और श्वेता में अलग-अलग विषयों पर जैसे विश्वविद्यालय, एम० ए० की पढ़ाई, समकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ आदि के बारे में बातें होती रहीं। श्वेता की कही बातें धीरे-धीरे मेरे मस्तिष्क में उतरती गईं। लेकिन इतने दिनों से जिन पर विश्वास किया था, भावनात्मक संबंध स्थापित हुए थे सहसा किसी और प्रकाश में उनकी कल्पना कर पाना और इस नए रूप में सारी संगतियों का अर्थ बिठा पाना कितना कठिन होता है न ? मुझे चौथा महीना चल रहा था। बढ़ते गर्भ को लेकर होस्टेल में अकेली कैसे रहूँ ? बढ़े हुए पेट को लेकर कक्षा में जाते हुए शर्म लगती थी। स्त्री जब गर्भवती होती है तब उसे माँ की आवश्यकता, भावनात्मक निर्भरता अधिक महसूस होने लगती है। चाची बड़ी चतुर थीं। वह खुद एक दिन रंगनाथ को साथ लेकर मैसूर आईं। यह घर अभी खाली नहीं हुआ था। तब तक के लिए यादवगिरी में एक किराए का घर ले लिया। 'गर्भवती बच्ची को मैं अकेली होस्टेल में नहीं छोड़ूँगी। बच्चा होने तक मैं यहीं रहूँगी। बीच में कभी-कभी दो-चार दिन के लिए जाकर उधर की भी देखभाल करूँगी। रसोई के लिए हासन से पुट्टतायम्मा को बुलवा लूंगी'—उसने कहा। उसे मना करने की भावनात्मक शक्ति मुझमें नहीं थी। पहले बच्चे में बड़ी दिक्कत होती है, और घबराहट भी। लेकिन उसके बच्चे जयराम, लीला, कृष्ण-मूर्ति का यहाँ आकर मेरे साथ रहना मुझे पसंद नहीं था। मैं बोली, 'ठीक है, लेकिन बच्चों को हासन में ही रहने दो; उनकी पढ़ाई वहीं चलने दो।' तुरन्त वह मान गई। 'मंत्री से कहकर रंगण्णा का तबादला मैसूर या आस-पास के

किसी गाँव को करवाया गया तो बड़ी सुविधा होगी, करवाएंगे।' वह बोली। जब वह यहाँ मेरे साथ रही तब उसके विरोध में सोचना मुझसे संभव नहीं हो सका। उस आवभगत, उस लगाव, उन बाँहों से मुक्त होकर खुद सोच पाना संभव ही नहीं था। रंगनाथ का तबादला मैसूर हुआ। पाँच महीने में विजय पैदा हुआ। प्रसूति का उपचार ठीक ढंग से हुआ।

"इतना सब कुछ होने पर भी मैं पढ़ाई में तेज थी। एम० ए० प्रथम वर्ष में मैं कक्षा में प्रथम थी। अध्ययन, विचार-गोष्ठियों में भाग लेना, आलोचनात्मक लेख लिखना आदि के परिणामस्वरूप मेरा एक अलग व्यक्तित्व बनता जा रहा था। धीरे-धीरे मुझे पता चला कि इंजीनियर रंगनाथ ने डोनेशन सीट से बी०ई० पास की है; अक्षरशः वह गोबर-गणेश है। विश्वविद्यालय के मुक्त वातावरण में पति-पत्नी की जोड़ी कैसे रहे, बौद्धिक स्पंदन और प्रति-स्पंदन कैसे हो, अगर बौद्धिक विकास न हो तो भावना की सूक्ष्मता भी विकसित नहीं होती—आदि बातें मेरी समझ में आने लगीं। बच्चे के आठ महीने का होने तक चाची यहाँ थी। उसके बाद लीला का ब्याह करना था। बच्चे की देखभाल करते हुए सीनियर एम० ए० की पढ़ाई मुझे भी कठिन लगी। इसलिए बच्चे ने जब दूध छोड़ा तब चाची उसे अपने साथ ऐस्टेट ले गई। पढ़ाई की ओर पूरा ध्यान देने के उद्देश्य से मेरे लिए भी यही वांछित था। खाना पकाने वाली औरत थी। दफ्तर के काम के साथ रंगनाथ घर की ओर भी ध्यान देता था। चाची ने मेरे बैंक के खाते में पच्चीस हज़ार रुपए जमा किए थे। मैंने जी-तोड़ परिश्रम करके, विचार-गोष्ठी, समालोचना आदि में सक्रिय भाग लेकर सारे विश्वविद्यालय में प्रथम रैंक प्राप्त की। परिणाम निकलने से पहले ही पी-एच० डी० करने का तय किया था और शोध का विषय भी मन में निर्धारित कर लिया था सोमु, क्या तुम्हें पता है, रजिस्ट्रेशन के दो वर्ष में ही मैंने थीसिस प्रस्तुत कर दी थी और आगे तीन ही महीने में परिणाम आ गया था। सारे परीक्षकों ने एक मत होकर सिफारिश की थी कि विश्वविद्यालय द्वारा थीसिस का प्रकाशन हो।"—अमृता सोमशेखर का मुंह देखने लगी।

"इसका पता नहीं था। केवल इतना जानता था कि तुम बड़ी कुशाग्र बुद्धि हो और तुमने बहुत पढ़ा है।" सोमशेखर ने गंभीरता से प्रशंसा की।

"खैर, चाची ने जो पूंजी बनाई थी उसे मैं भूली नहीं थी। लेकिन, अधिक लगाव भी नहीं रखा था। जब लीला का ब्याह हुआ तब ठीक तरह पूछताछ करने का विचार मेरे मन में आया। उस ब्याह से पहले मेरे मन में उसकी कल्पना भी नहीं थी। बेंगलूर का लड़का था। लड़के वालों ने कहा था कि ब्याह बेंगलूर में ही करें। वहीं हुआ। मैंने जाकर देखा, लड़के वालों की माली हालत के बारे में पूछताछ की। बड़ा खाता-पीता घराना था। लड़का बड़ा सुन्दर था। तीन

बड़ी ऐजेंसियों का कारोबार था। लड़के वालों ने जैसा चाहा था उसी धूमधाम से चाची ने ब्याह किया। बेटी के बदन पर सोना तुल रहा था। किसी जागीरदार के घर की बेटी पर भी उतना सोना लटकाया नहीं जाता। लड़की को दिए जाने वाले स्टील के वर्तन-बासन की लड़के वालों की इच्छा के अनुसार एक कमरे में प्रदर्शनी सजाई गई थी। एक बड़ी दूकान की सजावट जैसी थी। वरोपचार के लिए नकदी पचास हज़ार अलग दिया था। शाही भोजन, बैंड-बाजा, रिसेप्शन वगैरा सब हुआ। मेरे साथ चाची बड़े प्यार से पेश आती रही। समधियों से अपनी बड़ी बटी कहकर मेरा परिचय कराया। सहसा मुझे श्वेता की कही हुई बात याद आई। इतना ही नहीं बल्कि ब्याह में भी कैसा धोखा किया है, इसका भी अहसास हुआ। लीला के बारे में मेरे मन में बहन का ही प्यार था। उसका सम्बन्ध किसी अच्छी जगह जुड़ता तो मुझे खुशी ही होती। लेकिन, मैं लीला की तुलना में कितनी सुन्दर थी! पढ़ाई में कितनी तेज थी! लेकिन मेरा ब्याह एक ऐसे आदमी से कराया जिसकी माली हालत कुछ भी नहीं थी, जिसने मेरे पैसे से ही पढ़ाई की थी, शक्ल-सूरत में मेरी बराबरी नहीं कर सकता था, अपने भाई के साथ मेरा ब्याह करा के उसके द्वारा' मेरी सारी जागीर को अपने पीहर के हिस्से में कर दिया। मेरी ही लाखों की रकम खर्च करके अपनी बेटी का रिश्ता बड़े धनवान के घर जोड़ा और उस घर की रईसी का भोग-भाग अपनी बेटी को दिलाया। लीला मुझसे केवल दो वर्ष छोटी थी। उसके साथ क्यो न अपने भाई रंगनाथ का सम्बन्ध जोड़ा? अगर ऐसा करती तो बेटी को एक कंगाल के हाथ थामने पड़ते। भाई को मेरे ऐस्टेट की संपत्ति नहीं मिलती। अहसास हुआ कि यह पाजी औरत भीतर-ही-भीतर मेरे सीने में छुरा भोंक रही है। ब्याह के घर में अपनी भावनाओं को दबाए भीतर-ही-भीतर पीड़ा सहने मैं उदास बैठी रही।

"दीदी की बेटी के ब्याह में रंगनाथ अपनी दीदी का उपकार स्मरण करके बड़े जोश के साथ घूम रहा था। तब मुझे अपने ब्याह की बात याद आई। सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात का व्यामोह मुझे कभी नहीं था। आज भी नहीं है। बदन पर अगर कोई गहना न हो तो सूना-सूना लगेगा और तुरंत लोगों की नजर उस ओर जाएगी। ऐसा नहीं होना चाहिए, इसलिए बाली, एक चेन और दो चूड़ियाँ पहनती हूँ। अपने ब्याह में मैंने कुछ माँगा नहीं। उसने पहनाया नहीं। लेकिन, मेरे नाना ने जिनकी इतनी बड़ी ऐस्टेट विरासत में मिली थी, अपनी इकलौती बेटी, मेरी माँ के लिए क्या कोई गहने बनवाए ही नहीं थे? माँ के मरने के बाद वह सारा कहाँ गया? माँ के मरने के बाद जबकि उसका कोई बेटा नहीं था, उसकी इकलौती बेटी के ब्याह में क्या उस बेटी को पहनना नहीं चाहिए था? मेरी माँ के सोने-चाँदी का जिक्र इसने कभी नहीं

किया, उसके बारे में बताया तक नहीं। वह सारा कहां गया ? आज के भाव में कुल कीमत कितने लाख की होती होगी ? मैं यही सोचते-सोचते बैठी थी। कन्यादान के दूसरे दिन शाम लड़के वाले चले गए। उसके दूसरे दिन सुबह हमने मंगल-कार्यालय खाली किया। मै काम का बहाना बनाकर मैसूर चली आई। अपनी दीदी की सहायता के लिए रंगनाथ वहीं रुक गया। मेरी सहेली श्वेता ने उनके द्वारा खरीदे गए कॉफ़ी बगीचो के बारे में जो बताया था उसकी सच्चाई परखने की ज़िद मन में ठन गई। अपनी पहचान की एक टैक्सी लेकर अकेली सकलेशपुर होते हुए श्वेता के जेनुफल ऐस्टेट गई। उसका अभी व्याह नहीं हुआ था। जानती थी कि वह घर पर ही रहती है—और थी भी। एक कमरे में अकेले में बैठकर मैंने अपने दिल की सारी बात बताई। उसने पहले अपनी माँ से, फिर अपने पिता से बात की। उसके पिता, वीरप्पा गौड़, खुद कमरे मे आए, जहाँ मैं बैठी थी। 'देखो बेटी, अपनी श्वेता अकसर तुम्हारा जिक्र करती है। जो पढ़ाई में ज्यादा अच्छे होते है उनका व्यावहारिक बातों की ओर ध्यान बहुत कम जाता है। तुम्हारी चाचो ने कौन-कौन-सा बगीचा कब और कितनी कीमत पर लिया, इसका पता सब-रजिस्ट्रार के दफ्तर से लग जाएगा। लेकिन, साधारणतया रजिस्ट्री के कौल-करार में पूरी रकम नहीं लिखी जाती। वह जमीन जिसने बेची है उसी ने मुझे बताया था। उसको पद्रह और इसको ग्यारह, कुल छब्बीस लाख। चाहो तो सकलेशपुर चलकर, रेकार्ड देख लेंगे।'—उसके पिताजी बोले। श्वेता को साथ लेकर टैक्सी में हम लोग सकलेशपुर गए। क्लर्क बाबू के हाथ में सौ रुपये रख दिए। वीरप्पा गौड़ ने सम्बन्धित वर्ष और अंदाजे से महीना बता दिया। आधा घंटे में उस बाबू ने एक मोटी पुस्तक खोलकर सुनाई। पंद्रह लाख का बगीचा दस लाख में रजिस्ट्री करवाया था। उसके एक [illegible] के बाद ग्यारह लाख का सात लाख में लिखवाया था। रजिस्टर नंबर आदि एक कागज पर नोट करवा के गौडा जी ने मेरे हाथ में दिया।

"वहाँ से हम तीनों पुन: श्वेता के घर गए। उनके घर के भीतरी दालान में बैठकर जब सभी लोग शाम का नाश्ता और कॉफ़ी ले रहे थे तब श्वेता की माँ ने अपने पति से पूछा, 'बिटिया के साथ इतना धोखा हुआ है। अब क्या किया जा सकता है ?' गौडा जी बोले, 'क्या किया जाए ? जितने में रजिस्ट्री हुई है उतने के लिए अदालत में प्रूव किया जा सकता है। इस व्याह के फोटोसेट प्राप्त करके उसकी लागत का अनुभावित मूल्य निर्धारित किया जा सकता है। उस ऐस्टेट के खाते में कितनी खाद, उर्वरक-स्प्रे की दवाइयाँ आदि खरीदी गई हैं, कौन-कौन-से वर्ष कॉफी बोर्ड को कितना माल बेचा है, उस वर्ष क्या कीमतें थीं—इसका हिसाब प्राप्त किया जा सकता है। वकील लोग यह सारा काम करेंगे। तुम्हारी माँ के सोना-चाँदी, गहनों के मामले में कुछ प्रूव नहीं किया जा सकेगा। अदालत

में नालिश करके तलब किया जा सकता है कि इतने सालों के उत्पादन का हिसाब दो, यह जमीन खरीदने के लिए तुम्हारे पास पैसा कहाँ से आया, एक नाबालिग लड़की की संपत्ति का दुरुपयोग किया गया है। समय लगेगा, लेकिन कुछ कम-ज्यादा उगलवाया जा सकता है। लेकिन अपनी दीदी पर मुकदमा दायर करने के लिए क्या तुम्हारे पति तैयार होंगे? परिणामस्वरूप आपसी सम्बन्धों का क्या होगा? इन सारी बातों के बारे में पहले सोच लो।'

"उस रात मैं और श्वेता एक ही कमरे में सोए। उसके साथ बातें करते समय पिछली सारी घटनाएँ याद आने लगीं। माँ की मृत्यु के दिन चाची ने अपनी बाँहों में भरकर जो सांत्वना दी थी वहाँ से लेकर हर बात, हर घटना का नया अर्थ मेरे सामने उभरने लगा। मैंने कभी अपने मन में इन बातों का सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया था कि चाची के प्यार में स्वभाविक निस्पृहता थी या नहीं। केवल तीस-चालीस लाख की धोखाधड़ी ही नहीं, वरन अपने भाई के साथ मेरा व्याह भी किया था, जो मेरे योग्य कदापि नहीं था। यह बातें श्वेता से कहते समय मेरे जीवन के साथ उसने जो धोखा किया था उसकी गंभीरता मुझे अब दिखाई देने लगी। श्वेता भी व्यथित हुई। चुपचाप उसने मेरे हाथ पकड़ लिये। 'हर संदर्भ के लिए माँ-बाप होने चाहिए री!'—उसने मासूम बेतुकी बात कही। आगे कुछ भी कदम उठाना चाहूँ तो क्या पति मान जाएगा? आपसी सम्बन्धों के बारे में सोचने के लिए उसने भी कहा। सवेरे अपनी उसी टैक्सी मे लौटने के लिए निकली तो श्वेता की माँ ने हल्दी-सिन्दूर के साथ एक साड़ी और ब्लाउज पीस मुझे दिया। मैसूर आई। रंगनाथ आया था। उस रात मैंने उस पर अपना सारा गुस्सा उतार लिया। लेकिन आश्चर्य, क्या हुआ जानते हो? उस समय मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मनुष्य का स्वभाव शायद हर कहीं ऐसा ही होता होगा। यह सारी बातें सुनते ही कोई भी बाहरी व्यक्ति तुरन्त कह सकता है कि एक चाची बनकर उसने जो कुछ किया वह सरासर धोखा था फरेब था। सोमु, तुम्हारी क्या राय है? सच बताओ।" अमृता ने उसका चेहरा देखा।

"केवल धोखा नहीं, एक बड़ा षड्यंत्र, एक बड़ी साजिश थी।" वह एक ही साँस में बोल गया।

"लेकिन, रंगनाथ को अपनी दीदी की करतूत में साजिश जैसी कोई चीज लगी ही नहीं। वह बोला कि उसने मेरी परिवरिश की, इतने दिनों तक ऐस्टेट को बेदखल होने से बचाया, अपने बच्चों के लिए थोड़ी-बहुत किया होगा। पहली बार मुझे उसके प्रति घृणा हुई। दीदी की साजिश का अधिक लाभ उसी को तो हुआ था। मैं उससे बोली नहीं। रात में चुपचाप सोयी रही। अगले दो दिन तक मैं उससे बोली नहीं। उसके बाद वही बोला। सांत्वना दी। कहा, 'तुम्हारी माँ के गहनों के बारे में पूछना ही होगा।' मैं भी उससे बोली। तीन दिनों तक अपने-आप

संतापित रही। फिर एक दिन सवेरे सहसा उसी पुरानी टैक्सी को मँगवा लिया। उसमें बैठकर सीधा अपने ऐस्टेट को चली गई। चाची ने वही बनावटी आवभगत दिखाई। 'टैक्सी भी हो तो कैसी उमस होती है'—कहते हुए वह अपने आंचल मे मेरे माथे का पसीना पोंछने आई। मेरा पारा चढ़ गया। "चाची, यह सारा नाटक बन्द करो। पंद्रह लाख का एक, ग्यारह लाख का दूसरा ऐस्टेट चोरी-चोरी अपने बेटों के नाम जो खरीदा है उसके लिए पैसा कहाँ से आया? उनकी रजिस्ट्री की प्रतियाँ मेरे पास हैं। इस ब्याह में किया गया खर्च, लीला को पहनाए गए गहनों का पैसा कहाँ से आया? मेरे पैसे में से डोनेशन देकर, होस्टेल में रखकर अपने भाई को पढ़ाया और उसे मेरे गले मढ़कर मेरी सारी संपत्ति अपने पीहर के घर में भरने की साजिश तुमने की। अपनी खुद की बेटी को अमीरों के घर में ब्याहा, वह भी मेरे ही पैसे से। मेरे पिता के देहांत के बाद से लेकर आज तक का ऐस्टेट का हिसाब-किताब मुझे चाहिए।'—मैं बोली। यह सुनकर वह सुन्न रह गई ' ो पल के लिए। तुरंत भाव परिवर्तन हुआ, अभिनय का ढंग बदल गया। आँखों में पानी भर लिया। और बोली, 'भगवान के चरण छूकर मैंने ठान लिया और तुझसे इस संकल्प से प्यार किया जैसा अपनी सगी बेटी से किया जाता है, बिन माँ की बच्ची को अपनी बेटी से बढ़कर प्यार करने में ही महानता है। तेरा हिसाब मांगना कोई गलत नहीं। क्योंकि मैंने जो कुछ किया है वह सारा एक गुमाश्ते की भावना से ही किया है। अपने मेहनताने के रूप में, तुम्हारे पिताजी की बात मान कर मैं, मेरे पति, तेरे भाई-बहन यहाँ रोटी तोड़ते रहे है। मकलेशपूर वाली अपनी दूकान अगर चलाते तो जितनी आमदनी हो सकती थी उमसे एक कौड़ी ज्यादा हमने नहीं छुई। बिन माँ की बच्ची, कुछ ऐसा-वैसा हुआ तो उसका पति हमारी बात मानने वाला हो इसी इरादे से मैंने रं गा को तुझे अपनाने के लिए मजबूर किया। वरना, उसको लड़की देने वालो की क्या कमी थी? तुमकूर के डिप्टी कमिश्नर भी तैयार थे। ऐसे सम्बन्धों को छोड़कर तुझसे ब्याह करने के लिए राजी करवाया था।'—वह बोली। 'चाची, मैं जानती हूँ कि किसी भी बात को जैसा चाहे वैसा मोड़ देने की चालाकी तुममें है। तुम्हारे भाई को अपनी बेटी क्यों नहीं दी?'—मैंने पूछा। 'सच्चाई कहती हूँ तो तू उसे चालाकी कहती है! मेरी बेटी के जीवन मे अगर कुछ भी उलट-फेर होता तो मैं उसे देखते तड़पती रहती। लेकिन तेरे साथ ऐसा न होने पाए, लड़का अगर अपना ही हो तो तुम्हारी देखभाल यों करेगा कि बाल भी बाँका न होने पाए, इसी विचार से तेरा ब्याह रंगनाथ के साथ किया। अब तू ही बता, क्या कभी उसने तेरा दिल दुखाया है? नाराज किया है?'—चाची ने उल्टा सवाल किया। वास्तव मे उस समय मुझे कोई जवाब नहीं सूझा। लेकिन, मेरा मन चिल्लाकर कह रहा था कि उसकी हर बात एकदम झूठ है। क्रोध से मेरा दिमाग खौल रहा था। तपाक से

उठ खड़ी हुई। मुँह से 'थू' कहा, लेकिन थूका नहीं। सरपट आकर टैक्सी में बैठ गई और तुरंत गाड़ी चलाने के लिए ड्राइवर से कहा। चाची ने मेरे पीछे निकल कर मुझे रोकने की कोशिश नहीं की। दोपहर के ढाई बजे मैसूर पहुँची। गाँव जाने की बात शाम को रंगनाथ से नहीं कही।

"इस घटना के सप्ताह-भर बाद सवेरे ग्यारह बजे चाची मैसूर आयी। हाथ में एक छोटी-सी थैली थी; कपड़े-लत्ते कुछ नहीं थे। आते ही सीधा हमाम गई, हाथ-मुंह धो लिया। हाथ पकड़ कर मुझे अपने पास बुला लिया; और बोली, 'चाहे माँ हो या बेटी, शंका उत्पन्न होने के बाद व्यवहार नहीं रखना चाहिए। केवल प्रेम रहे। लो, वकील की सलाह पर, बैंक मैनेजर की सलाह पर एक दस्तावेज बनवाकर बैंक को और कॉफी बोर्ड को दिया है। उसकी एक नकल यहाँ है। इसमें लिखा है, मैं अपने जेठ की बेटी की ओर से सूगूर ऐस्टेट की देखभाल करती थी। अब वह बालिग हुई है, ब्याह भी हुआ है और अपने कारोबार सभालने लायक बनी है। इसलिए इसकी सारी जिम्मेदारी वही सभालेगी। अपना रसोई का सारा सामान जिसे हम तेरी माँ के मरने के बाद सकलेशपुर ले आए थे, उसे पैक करके कल शाम ही ऐस्टेट के घर सकलेशपुर भेज दिया है। अपने घर में जो मास्टर किराए में रहते थे उनसे जबरदस्ती पाँच दिन में खाली करवाया, परसों लिपाई-पुताई करवाई। इतना सब करने में एक सप्ताह बीत गया। आज से ऐस्टेट का सारा कारोबार तेरा है। अब मैं वहाँ पांव नहीं रखूंगी, लेकिन तू मेरी बेटी है, यह प्यार तुझ पर मुझे हमेशा से था और रहेगा। अब मुझे चलना है। आकर खाली पेट निकल जाना इस घर के लिए शुभ नहीं। इसलिए एक कटोरी दूध दे, पीकर जाऊँगी। भगवान तुम्हारे परिवार का भला करे।' उसने झुककर भगवान के सामने माथा टेका; सिन्दूरदानी से सिन्दूर लेकर मेरे माथे पर लगाकर खुद भी टीका लगा लिया। वहाँ से सीधा रसोईघर में गई; कटोरी में खुद दूध लिया और पीकर सरपट चली गई। बाहर दरवाजे में ही ऑटो रोककर आई थी। उसमें बैठते ही ऑटो वाले ने स्टार्ट कर दिया। उस समय की भावनाओं के युद्ध में उसने मुझे हराया था। लेकिन मैंने पीछे दौड़कर ऑटो वाले से रोकने के लिए नहीं कहा। उस दिन शाम जब रंगनाथ आया तब उससे सारी बातें बता दीं। वह चौंक गया; फिर शान्त ही रहा। इसके दो महीने बाद पता लगा कि चाची ऑटो में घर से निकलकर सीधा उसके दफ्तर गई थी; वहाँ उससे मिलकर बस से चली गई थी। लेकिन उस समय यह खयाल नहीं आया था। दो दिन बाद सकलेशपुर जाकर दीदी से मिल आने का बहाना बनाकर वह गया था। तीन दिन रहकर आया। लौटकर एक प्रकार से दुनियादारी की बात कहने लगा, 'अब पुनः उसे ऐस्टेट की देखभाल के लिए बुलाना ठीक नहीं। आखिर अपनी संपत्ति है। मैं सरकारी नौकरी में हूँ; बार-बार वहाँ जाकर देख-

भाल नहीं कर पाऊँगा। तुम खुद जाकर उसकी कोई व्यवस्था कर दो। किसी मैनेजर को रख लो। तुम जाती-आती रहना। ऐस्टेट में जो अपनी कार है उसे यहीं ले आयेंगे। छुट्टियों में या इतवार के दिन मैं भी चला करूँगा।' उसने यही बात कही। कभी यह नहीं कहा कि तुम बहक गईं, तुमने उपकार भुला दिया। मेरे मन को कुछ तसल्ली मिली। दूसरे दिन मैं खुद टैक्सी लेकर पुन: सकलेशपुर गई। बैंक बैलेंस केवल साठ हजार था। बोर्ड पर चालीस हजार का कर्जा था। श्वेता के ऐस्टेट में जाकर चाची की दस्तावेज की बात बताई। 'शायद तुम्हारी चाची के मन को ठेस पहुँची है। अथवा इसका मतलब हो सकता है कि मामला यहीं खत्म कर दो, कोर्ट-कचहरी के चक्कर में पड़कर पिछला हिसाब-किताब मत उघाड़ो। अब जल्दी से तुम्हें एक मैनेजर की तैनाती कर लेनी होगी। चाहो तो मैं ढूंढ़ लाऊँगा। लेकिन, एक बात ध्यान में रखो। चाहे कितना ही ईमानदार क्यों न हो, जूठन को ललचाएगा ही। बीच-बीच में आकर तुम हिसाब-किताब जाँचती रहना। फ्लावरिंग सीजन में निगरानी करना। पिकिंग के समय यहीं रहना होगा। बीच में कब-कब तुम्हारी निगरानी की जरूरत होती है, उसकी एक साल में तुम्हें ट्रेनिंग दे दूंगा। इतना कर दोगी तो मैनेजर की हेराफेरी कंट्रोल में रहेगी। चाहे वह कितनी ही हेरा-फेरी करे, सारा खर्च निकालकर तुम्हारे ऐस्टेट से सालाना तीन-चार लाख से कम आमदनी नहीं होगी,' उन्होंने कहा। 'तुम ऐस्टेट में ही आकर क्यों नहीं रहतीं? मैनेजर भी रहने दो, हर रोज तुम्हारी नजर भी रहेगी। तब मैनेजर की चोरी भोजन में एक तिनके के समान होगी।' —उन्होंने बात जोड़ी। मैंने इस बारे में भी सोचा। मेरी थीसिस लगभग पूरी होने को थी। सोचती रही कि उसे जल्दी पूरा करके क्या ऐस्टेट को चली जाऊँ? लेकिन मैसूर आने के बाद मेरी बुद्धि का विकास हुआ था। स्वतंत्र चिंतन के साथ-साथ स्वतंत्र, अकेली जीने की शक्ति भी आयी थी। ब[illegible]चे की रखवाली करते बैठने को मन नहीं चाहा। कुछ खाता है तो खा लेने दे—मैनेजर ही रख लें। निश्चय किया कि मैं भी खुद बार-बार जाकर निगरानी करती रहूँगी। मैनेजर चाहे जितना भी खा सकेगा, वह चाची की लूट की बराबरी तो नहीं कर सकेगा। दरअसल मैं वीरप्पा गौड़ा के मार्गदर्शन पर चली। जानते हो, पहले बर्ष का लाभ कितना आया? कितना हो सकता है बताओ?"

"उन्होंने कहा था न, तीन-चार लाख।"

"साढ़े तीन लाख! उसके अगली साल वही कीमत नहीं थी। रुपए का मूल्य भी बढ़ गया था। फिर भी चाची ने उतने सालों में कितना मारा होगा? खैर! इस बीच एक और धोखा हुआ। [illegible] बार रंगनाथ ने अपनी दीदी की प्रेरणा से फरेब किया। पहले ही बताया था न, ब्याह के तुरंत बाद मुझे गर्भ रह गया था। मैं वह बिलकुल नहीं चाहती थी। एम० ए० की पढ़ाई के लिए वह

बाधक था। इसलिए उसने गर्भपात की सलाह भी दी थी। लेकिन कोख में जब अंकुर फूट पड़ा तो उसे नाश करने का मन नहीं हुआ। बहुत कोशिश की; मन माना नहीं। उसी हालत में एम० ए० क्लासिज़ अटेंड करने का निश्चय किया। उन दिनों गर्भ को ढोकर क्लास में जाना कैसी लज्जा होती होगी? फिर भी मैंने बच्चे को बचा लिया। क्लास में भी गई। उसके बाद रंगनाथ से कहा कि पहली बार किसी को अनुभव नहीं रहता; लेकिन अब सावधान रहना चाहिए। उसके जो भी साधन होंगे, वह तुम्हारी जिम्मेदारी। जब तक मैं नहीं चाहूँ तब तक हमें दूसरी संतान नहीं चाहिए। मुझे थीसिस पूरी करनी है। रंगनाथ भी सावधान ही था। सावधानी का सारा उत्तरदायित्व उस पर छोड़कर मैं निश्चित थी। जब से मैं ऐस्टेट का कारोबार देखने लगी उसके दूसरे महीने मैं रजस्वला नहीं हुई। मैंने पूछा, ऐसा क्यों? वह अनजान-सा बना रहा। हमने डाक्टर की सलाह ली। डाक्टर ने दो सप्ताह और रुकने के लिए कहा। मैं रुकी। इतने में मिचली शुरू हुई। मैंने उससे कहा कि तुम्हारी ही ग़लती है। वह बोला कि कितनी ही सावधानी बरतने पर भी कभी-कभी फेल हो जाता है; क्या करें! डाक्टर से पूछा तो उन्होंने कहा, 'पहला बच्चा अढ़ाई साल का है न? इस बच्चे के आने तक दोनों का अंतर सवा तीन साल का हो जाएगा। छोटी उम्र में जल्दी दो बच्चे हो जाने दीजिए। दोनों के बीच ज्यादा अंतर रखना भी ठीक नहीं।' किसी तरह परिस्थिति के साथ समझौता करके थीसिस लिख रही थी।

"तीसरा महीना चल रहा था। एक दिन सहसा मुझे आशंका हुई। अब तक रंगनाथ की हस्ती क्या है, यह मैं समझ चुकी थी। आमने-सामने मुँह खुलवाने की जिद से रात में जब सोए थे तब भगवान की शपथ देकर बात की पहल की। भगवान की, उनकी दीदी की, दीदी के बच्चों की—सभी के नाम की शपथ दिलाकर पूछा—'उसके बाद खुद डाक्टर ने ही बताया है कि सावधानी कभी फेल नहीं होती; तुम्हारे पति ने ही स्वेच्छा से फेल किया है। इसके लिए वैज्ञानिक आधार है; कल तुम्हें डाक्टर के यहाँ ले चलूँगी या मेरे सामने सच बताइए।' उसका चेहरा काला पड़ गया। तुरंत मैंने पूछा, 'ऐसा क्यों किया? सच कहो। अगर झूठ कहोगे तो भगवान की कसम, तुम्हारी दीदी, उसके बच्चे, उसके पति—सभी को जो भी अनहोनी होगी उसके जिम्मेदार तुम होगे।' तब उसने मुँह खोला। जब वह अपनी दीदी के गाँव गया था तब उसने इसके कान भरे थे—'तुम्हारी पत्नी तुम्हें छोड़ सकती है। एक बार और गर्भ रहने दे; एक बच्चा और होने दे। दो बच्चे जनने के बाद पति को छोड़ना स्त्री के लिए संभव नहीं। दो बच्चों वाली माँ को कोई सूंघेगा भी नहीं।' अपनी जिंदगी को, मुझको बचाने के लिए, मेरे प्यार की खातिर कहा कि उसने ऐसा किया था। जिस साधन का

उपयोग करता था उसी में कुछ फेर-बदल किया था। उसने अपना समर्थन कर लिया कि उसने जो भी किया था वह धोखा नहीं था, मेरे प्रति प्यार था, उद्देश्य सद् था। वही आखिरी दिन था। उसके बाद उसे छूने नहीं दिया। यही नहीं, बल्कि एक बिस्तर पर सोए ही नहीं। उससे अलग कमरे में सोने के लिए कहा। दो-एक दिन भटके हुए कुत्ते की तरह पाँवों में उलझकर आगे-पीछे चक्कर काटता रहा। मैं बोली, 'अगर तुम अलग कमरे में नहीं सोओगे तो मैं यों चिल्लाऊँगी कि रसोई वाली औरत भाग कर यहाँ आ जायेगी।' 'पति-पत्नी अगर अलग सोएँगे तो वे क्या समझेंगे ?' उसने कहा। 'कमीने, मुँह बंद कर'—मैं ऊँची आवाज़ मे बोली। डर के मारे वह चुपचाप वहाँ से निकल गया। वही आखिरी थी। इसी तरह साढ़े तीन महीने बीते।

"इतने में उसका तबादला चन्नपट्टण हो गया। 'तबादले का आर्डर निकला है'—घर आकर उसने बताया। 'नौकरी चाहिए तो जाना होगा, मुझसे क्या पूछते हो' मैं बोली। वह आगे कुछ नहीं बोला। अगर वह कुछ कहता तो मैं तिरस्कार के साथ प्रश्न रूप में जवाब देती, सीधे मुँह बात नहीं करती। वह अपना सूटकेस, अटैची लेकर चला गया। उसी की ओर से कभी-कभार चिट्ठियाँ आती थीं। गृहस्थी का मतलब है समरसता, सामंजस्य, आपसी समझौता··· वगैरह उपदेश की बातें लिखता था। मैंने एक पत्र का भी जवाब नहीं दिया। उसे खुद आने में भय था—आया नहीं। अगर आया भी होता तो मैं उससे बोलती नहीं। विकास की प्रसूति मैंने खुद कर ली। घर में पकाने वाली नौकरानियाँ थीं। ऐस्टेट की कार यहीं ले आयी थी। प्रसव-पीड़ा शुरू होते ही नौकरानी को लेकर खुद ड्राइव करके नर्सिंग होम जाकर एड्मिट हुई। किसी के प्यार के नाटक के बिना ही जचगी हुई।" सहसा बात रोककर कुछ याद करते अमृता ने घड़ी देखी। "ओऽफ् ! पौने-पाँच बज गए। आज सुशीलम्मा को बाजार जाना था; जल्दी बच्चों को ले जाने के लिए उन्होंने कहा था। मैं खुद उन्हें बाज़ार छोड़कर आऊँ तो, बेचारी का समय बचेगा। लेकिन इसकी एक और खास बात बताए बिना खत्म नहीं कर सकती।

"बता दिया न, उस वर्ष बगीचे का उत्पादन साढ़े तीन लाख का हुआ था। मैं फूली नहीं समा रही थी। चाची की धोखा-धड़ी जाए भाड में, उसका पाप उसे भोगने दो, इस उदार मनोभाव से मैं वे सारी बातें भूलने की कोशिश कर रही थी। अगले वर्ष के लाभ की रकम मिलने के बाद इस पुराने घर को तुड़वाकर नए ढंग का बनवाने का विचार था। ऐसी बात नहीं कि उसे माफ़ किया था। रंगनाथ को भी माफ नहीं किया था। जो हुआ उसे भूलकर उन लोगों से दूर ही रहूँ, अपने-आप बच्चों की परवरिश करने, पढ़ाई-सिखाई में मन लगाकर आराम से रहने का निश्चय किया था। इसका भी अनुमान किया कि ऐस्टेट की देखभाल का

अनुभव प्राप्त होने के बाद उसका उत्पादन साढ़े-चार, पांच लाख तक पहुँच सकेगा। इसी तरह तीन महीने बीत गए थे। एक दिन डाक से एक रजिस्टर्ड पत्र आया। वह पत्र मेरे ऐस्टेट भेजा गया था और वहाँ से अनुप्रेषित होकर आया था। सकलेशपुर के बैंक का था। मेरा दिल दहल गया। 'अपने ऐस्टेट पर आपने जो कर्ज़ लिया था उसका मूलधन तो आपने आज तक अदा नहीं किया। ब्याज बरावर भरते आ रहे हैं। लेकिन इस वर्ष आपकी उपज आई, उसकी बिक्री भी हुई और उसका पैसा आपको मिले तीन महीने बीत गए; आज तक आपने ब्याज नहीं भरा। इस नोटिस के प्राप्त होने के पंद्रह दिन के भीतर अगर आप तीन लाख बाईस हजार तीन सौ पचास रुपए जमा नहीं करेंगे तो आप पर कानूनी कार्रवाई करके ऐस्टेट से आपको बेदखल कर दिया जाएगा।'—उसमे यह चेतावनी थी। पढ़ने के बाद मुझे आगा-पीछा कुछ नहीं सूझा। दिल डूबता हुआ-सा लगा। जब पत्र मिला था तब दिन के साढ़े ग्यारह बजे थे। यह कैसा कर्ज है? किसने लिया? बैंक में पूछताछ करके ही पता लगाया जा सकता है। दो बजे विजय को भी साथ लेकर कार ड्राइव करके ऐस्टेट गई। नए मैनेजर ने हिसाब-किताव देखकर बताया कि पिछले सालों में भी ब्याज अदा किया गया है। लेकिन, कर्जे का विवरण नहीं मिल सका। उस रात वहीं रुकी। दूसरे दिन मैनेजर को साथ लेकर सकलेशपुर आई और बैंक में पूछताछ की। ऐस्टेट के विकास का कारण बताकर चाची ने तीन बार कर्जा लिया था। पिताजी के मरने से पहले उन्होंने खुद अपने हस्ताक्षर से तीन लाख का कर्जा लिया था अनावृष्टि के फलस्वरूप फसल न आने के कारण ऐस्टेट के संपोषण के लिए लिया था। कुल उन्नीस लाख कर्जा था। मुझे गुस्सा आ गया। मैंने मैनेजर पर अपना गुस्सा उतारा। वह बोला, "मैडम, बैंक सार्वजनिक संस्था है। जो पैसा दिया जाता है उसे ब्याज के साथ वसूल करना उसका कर्त्तव्य है। अगर आपके साथ कोई अन्याय हुआ हो तो संबंधित व्यक्ति पर कार्रवाई कीजिए। मुझे यहाँ आए चार महीने हुए हैं।" अपने गुस्से के कारण मैं खुद शर्मिंदा हुई। 'सॉरी' कहकर चाची के घर गई। उसने बताया था कि वह सकलेशपुर वाले घर में रहने जा रही है। उसने वह घर खाली तो करवाया था, लेकिन वास्तव में उसका ठिकाना छोटे बेटे के नाम खरीदे गए ऐस्टेट में था। उसका अता-पता लेकर कार ड्राइव करके चली। मैनेजर को साथ नहीं लिया। मुझे देखते ही, 'हाय् बिट्टू, भरे गर्भ को लेकर खुद ड्राइव करते आई? कहला भेजती तो किट्टण्णा तुम्हे लेने आता।' कहते हुए मुझ से लिपट गई। 'यात्रा के कारण यह कितना दुबला हुआ है!' विजय को अपने अंक मे भरती हुई बोली। बच्चे को उसी ने तो पाला था, इसलिए नानी को देखते ही उसका चेहरा खिल गया। बच्चे का चेहरा अपने सीने से दबाकर उसका सिर पीठ सहलाने लगी। 'मैं खुद मैसूर आने वाली थी। प्रसूति, बच्चा, अकेली कैसी

सँभालेगी ?'—वह बोली। 'चाची, प्यार का यह नाटक रहने दो। बैंक से नोटिस आया है कि ब्याज नहीं भरा गया। जाकर पूछताछ की तो पता चला कि उन्नीस लाख कर्जा रुका है। यह सब कैसे हुआ ?'—मैंने पूछा। 'पहले भीतर चलकर खाना खा ले। बच्चे के लिए कुछ दलिया बना देती हूँ। फिर बैठकर बातें करेंगे।' कहते हुए मेरी बाँह पकड़कर खींची। 'मैं तुम्हारी दहलीज पर पाँव नहीं रखूँगी। पहले मेरे प्रश्न का जवाब दो।' वह चेहरे पर सब्र और प्यार छलकाते हुए बोली, 'मेरी बिट्टू, मेरी बच्ची, तेरे साथ मैं भी गुस्सा करूँ तो क्या ठीक लगेगा ? चबूतरे पर ही बैठ जा। दो दोसे सेककर लाती हूँ। ऐस्टेट का कारोबार यानी क्या। केवल पैसा बटोरकर बैंक में भरना ही समझा है ? सूखे के कारण फसल हाथ न लगने के भी संदर्भ होते हैं; अतिवृष्टि से पूरी फसल हाथ से चली भी जाती है। और सदा खाद, स्प्रे आदि के लिए खर्च तो करना ही पड़ता है। नौकरों को मेहनताना देना ही पड़ता है। जब हाथ तंग हो जाए तब या तो कर्जा लेना पड़ेगा या ऐस्टेट बेचना पड़ेगा। जरा धीरज रख, सारा अनुभव होने लगेगा।'—वह बोली। छूटते ही मैंने पूछा, 'यह ऐस्टेट खरीदने के लिए तुम्हारे पास पैसा कहाँ से आया ?' 'इसके लिए न जाने कहाँ-कहाँ से कर्जा लेना पड़ा। मेजारिटी में आने के बाद शुगर ऐस्टेट का स्वामित्व अपने कब्जे में लेना न्याय-सम्मत ही है। तुम्हारे भाइयों के गुजारे का क्या होगा, इस विचार से कर्जा उठा कर इसे लेना पड़ा। अच्छी बरसात हो, बीमारी न आए, फसल अच्छी हो और बाजार में ठीक भाव आ जाए तो इसे बचा लेंगे ! वरना बेचकर कर्जा चुकाकर शहर के किसी होटल में कप-तश्तरियाँ धोते रहेंगे। तेरा आशीर्वाद और सदिच्छा जैसी हो वैसा उनका गुजारा चलेगा। अब दोसे खा लेना, चल।' पुनः उसने मेरी बाँह पकड़कर आग्रह किया। मुझे घिन हुई। 'बेशर्म हो ..न !' कहते हुए विजय का हाथ पकड़कर खींचते हुए लाकर कार में बिठाया, स्टार्ट करके लौटकर सीधा अपने ऐस्टेट में आई। बैंक के नाम एक चेक बनाया। मैनेजर बोला, 'मैडम, इतनी रकम का चेक काटेंगे तो खाते में कुछ नहीं बचेगा। मजूरी, पेट्रोल, स्प्रे आदि साप्ताहिक खर्च के लिए क्या करेंगे ?' 'उसके लिए कुछ करेंगे। पहले इस ब्याज का भुगतान होने दें।' चेक भिजवाकर मैं श्वेता के पिता के ऐस्टेट गई। अहसास हुआ कि मेरी बेचैनी, क्रोध, दिग्भ्रांत भावनाओं को नियंत्रित करके, कोई रास्ता सुझाने वाले वे ही एक व्यक्ति हैं। लेकिन वे अपने बेटे से मिलने अमेरिका चले गए थे। पति-पत्नी और बेटी तीनों ही। बताया कि लौटने में तीन महीने लगेंगे। लाचार होकर मैसूर चली आयी। कितनी थक गई थी ! तिस पर पूरी गर्भवती। इतना ड्राइव किया था, साथ-ही-साथ मानसिक तनाव, अनाथपन का बोध अलग। किसके सामने कह लूँ ? किससे याचना करूँ ? ..."

"क्या रंगनाथ को नहीं बताया ?"

"वह अपनी दीदी का पालतू कुत्ता है, इस बात को भूलकर मैंने उसे फोन किया था। अभी वह चन्नपट्टण में था। तुरंत दौड़कर आया। मैंने सारा समाचार बताकर कहा कि तुम्हारी दीदी की दगाबाज़ी अभी खत्म नहीं हुई। भीतर-ही-भीतर उन्नीस लाख हड़प कर डाला है। अब क्या करें? वह यों सिर लटकाए बैठा रहा मानो गम्भीर चिंतन में डूबा हो। 'क्या अब तुम्हें उसकी दगाबाज़ी का यकीन आया?' मैंने तलब के अंदाज में पूछा। वह निरुत्तर चुपचाप बैठा रहा। 'बताओ,' मैंने डाँटकर कहा। 'थोड़ा-बहुत खा लिया होगा जैसे शहद का छत्ता उतारने वाला हाथ चाट लेता है, उस तरह। लेकिन अतिवृष्टि, अनावृष्टि से फसल हाथ से गई भी होगी। तुम्हारे पिताजी ने ही अपने जीवन-काल में तीन लाख निकाला था, इसका मतलब यह तो नहीं कि उन्होंने हड़प लिया था? क्या इन सारी बातों की पूछताछ सब्र के साथ नहीं करनी चाहिए?' मुझे सान्त्वना देने के अंदाज में बोला। अपने पिताजी की बात सुनने के बाद मेरे मन में उलझन पैदा हुई कि शायद चाची की बातों में सच्चाई हो। लेकिन, उसके फरेब, धोखेबाजी, उसके मिथ्यावाद का अहसास कम नहीं हुआ। कुछ ही समय में फिर यह अहसास होने लगा कि यह पति भी पल्ले दर्जे का धोखेबाज है और मैं अकेली इस फरेबी के लिए बलिपशु बनी हूँ। रंगनाथ उस रात यहीं रहा। उसने पूछने की चेष्टा की कि किस नर्सिंग होम में नाम लिखवाया है। मैं उसे झिड़ककर बोली, 'तुमने और तुम्हारी दीदी ने मेरे गर्भ में जिस फरेब का बीज बोया है उसे सुरक्षित जन्म देकर उसकी परवरिश करूँगी, बेफ़िक्र रहो।' लताड़े गए कुत्ते की तरह दुम दबाकर वह चुप रह गया। असल मुद्दे पर आती हूँ। मैंने कॉफी बोर्ड में जाकर पूछ-ताछ की। ऐस्टेट का काम चलाने के लिए वे लोग एक लाख देने के लिए राजी हो गए। उस कर्जे से ऐस्टेट का अनुरक्षण करते हुए और उत्पादन से बेंक का कर्जा अदा करते हुए आज तक निर्वाह करते आ रही हूँ। यहाँ कालेज से मिलने वाले वेतन में मेरा और बच्चों का निर्वाह हो जाता है। इस टपकते घर की डामर और सिमेंट के पैच से मरम्मत करवाई। अब बिना लिपाई-पुताई के हाथ-पाँव पटकते बैठी हूँ।" उसने पुन: घड़ी देखी। "ओऽफ्! पाँच बजकर दस मिनिट!" तपाक से वह उठ खड़ी हुई।

"रंगनाथ क्या आज भी चन्नपट्टण में ही हैं?" सोमशेखर ने पूछा।

"नहीं। पिछले साल आकर बताया था कि उसका तबादला कृष्णा के ऊपरी बाँध निर्माण योजना पर हो गया है, और भी चार सौ मील दूर। मैं बोली, 'सरकारी नौकरी में तबादला आम बात होती है। मुझसे कहने की आवश्यकता नहीं।' दुतकारे गए कुत्ते की तरह उसने मुँह लटका लिया।" अमृता कपड़े बदले बिना आदमकद आइने के सामने जा खड़ी हुई। बाल सँवार कर चाभी और वैनिटी बैग लेकर निकल पड़ी। सोमशेखर ने जल्दी से पेंट पहनकर जूते पहन लिये।

"कल सवा-बारह बजे आ जाना।" कहते हुए गेट खोलकर वह कार के पास गई। सोमशेखर ने भी अपना स्कूटर स्टार्ट किया।

सोमशेखर को उस रात दस बजे तक दफ्तर में काम करना पड़ा। उसे अहसास हुआ कि हर रोज दोपहर के समय जब लेन-देन और काम का बोझ रहता है, उस समय उसका चार-साढ़े-चार बजे तक दफ्तर से गैरहाजिर रहना व्यवसाय के विकास की दृष्टि से उचित नहीं। साथ ही उसे बंबई की याद हो आई। वहाँ सप्ताह में दो बार इस तरह काम से गायब हो जाया करता था। फिर हर रोज रात के नौ-दस बजे तक बैठकर बकाया काम पूरा करता था। इतवार के दिन भी काम करता था। फिर याद आया कि अपनी-गैरहाजिरी में देख-रेख करने के लिए वहाँ नवीन था। यहाँ वह अकेला है। दोपहर के बदले कोई और समय ? लेकिन उसके अलावा अलग समय भी कहाँ संभव है ? बच्चे घर पर रहेंगे। एक आंशिक परिहार सूझा कि साप्ताहिक छुट्टी अगर इतवार के बदले सोमवार की जाए तो ग्राहकों को भी सुविधा होगी और उसे भी एक वर्किंग-डे मिल जायेगा। दस बजे होटल जाकर ठंडा खाना खाया। जब पौने-ग्यारह बजे घर पहुँचा तो मन में इस बात का खेद हुआ कि अमृता बेचारी कितनी दुःखी है। बंबई जैसे अमीरों के शहर में वास्तुकार का काम करके उसने रिहायशी घर, बहु-मंजिली इमारतों की योजनाएँ बनाकर उनकी निगरानी की थी। जायदाद की खातिर भाई-भाइयों में, बहनों में कैसी-कैसी धोखाधड़ी, विश्वासघात चलते हैं, इसकी पूरी जानकारी उसको थी। इसलिए अमृता की चाची के स्वभाव में कोई उसे खास बात नहीं दिखाई दी। एक तीसरे व्यक्ति के रूप में कहानी की तरह सुनते हुए उसे कुछ आघात अवश्य पहुँचा था। लेकिन जो विश्वासघात का शिकार हुई है, उसको कितना आघात पहुँचा होगा ? यह सोचते-सोचते वह लेटा रहा। पैसे के अलावा अपने भाई के साथ उसका ब्याह कराना, उसकी मनोदशा की कल्पना करके जल्दी दूसरा बच्चा होने की योजना बनाना —ये सभी बातें उसे केवल घटिया काम नहीं बल्कि अपराध जैसी लगीं। जल्दी नींद नहीं आई। मन में कल्पना करते हुए कि वहाँ वह अकेली अपने कमरे में उस बड़े पलंग पर पड़ी रहती है, उसने आँखें बंदकर सोने की कोशिश की। मन का एक छोर कहने लगा कि अमृता को सच्चे प्यार की आवश्यकता है और मैं वह दे सकूँगा। सत्य को छोड़ कभी किसी के साथ असत्य का व्यवहार करना क्या अपने लिए संभव है ? अपने-आपसे उसने प्रश्न किया। इसी तरह सोचते-सोचते उसे कुछ देर बाद नींद आ गई।

दूसरे दिन जब वह अमृता के घर गया तो वह उसका हाथ पकड़ कर सीधे उसे अपने बेडरूम में ले गई। खुद अपने हाथों से फीते खोलकर उसके जूते

उतारे। बिस्तर पर बिठाकर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "सोमु, मेरा खयाल है कि मेरी अंतर्ध्वनि में सच्चाई का पता लगाने की शक्ति है। एक बार मुझे जो अहसास हुआ था, आज सवेरे पता चला कि वह सच निकला। कितना खुश हुई, जानते हो?" वह उत्साह की लहरों पर तैर रही थी। आगे, सोमशेखर के पूछने से पहले ही वह बोली, "मैं नहीं बताऊँगी। बता दूंगी तो तुम ऐंठ दिखाने लगोगे। अगर तुम ऐंठकर इस तरह आकाश की ओर गरदन अकड़ाकर खड़े रह जाओगे तो मैं वहाँ तक कैसे पहुँच पाऊँगी?" उसने सोमशेखर का माथा अपनी ओर झुकाकर उसके होंठों पर दीर्घ चुंबन अंकित करके बोली, "देख लिया न, तुम्हें कैसे झुकाती हूँ! तुम चाहे कितनी ही अकड़ दिखाओ तुम्हें झुकाकर अपनी बात मनवाने की शक्ति मुझमें है। मानते हो न?" सोमशेखर ने आँखो के इशारे से ही हामी भरी। "हाँ कहने में भी अकड़! मुंह खोलकर कहो कि मानता हूँ। मुँह से कहने में क्या अपमान होता है? उठो, खाना खाते हुए बातें करेंगे," अमृता ने खुद उठकर उसकी लुंगी लाकर सामने रख दी।

कुर्सियों पर एक-दूसरे के बिलकुल पास सटकर बैठे खाना खाते हुए वह बोली, "मेरी एक कुलीग है। पेंतालीस वर्ष की, जलजाक्षी, फिजिक्स पढ़ाती है। 'स्ट्रक्चर प्रोफेसर' तुम्हारे कोई मास्टर बी० के० एम० इंजीनियरिंग कालेज में रहते हैं न, उनका उपनाम है, उनकी बेटी। याद आया?"

वह बोला, "हाँ, हाँ बहुत अच्छे मास्टर थे। मेरी बहुत सहायता की है उन्होंने। उनके घर हर सप्ताह मधुकरी खाने जाता था।"

"अच्छा! फिर क्या हुआ उनके घर, बताओ?"

"और कुछ नहीं। मास्टर साहब मुझे आवश्यक पुस्तकें दिया करते थे। गोकुलाष्टमी त्यौहार में तो ढेर सारी मिठाई बाँधकर देते थे।"

"बस, इतनी-सी बात? मैं एक और समाचार सुनाती हूँ, सुनो। एक बार मास्टर साहब गाँव से बाहर गए थे। तुम्हें उनके घर में सोने के लिए कहा गया था। जीने पर तुम उनके स्टडी-रूम में सोया करते थे। पंद्रह-बीस दिन। उनकी पुस्तकों को सँजोकर रखा हुआ ओपन-शेल्फ, जिन पर काँच भी नहीं लगा था। उनमें से अपनी पसंद की पुस्तक ले जाने की आजादी तुम्हें थी। एक बार जब तुमने पिछली कतार से कोई पुरानी पुस्तक खींची तब उसके नीचे से कपड़े में लपेटी हुई कोई वजनदार वस्तु नीचे गिर पड़ी। उठाकर देखा तो चार लड़ीवाला सोने का हार था। उसे तुमने यथा-स्थान लपेटकर रख दिया था। उस समय रात के ग्यारह बजे थे। दिन निकलने की प्रतीक्षा की और सवेरे मास्टर साहब की पत्नी को अकेले ऊपर ले गए और बताया, 'माँ देखो, यह यहाँ था। पुस्तक खींची तो नीचे गिर पड़ा।' क्या यह बात सच है?"

उसने याद करके 'हाँ' कहा।

"सुना है कि उन दिनों तुम्हें सप्ताह में दो दिन खाना नहीं मिलता था। और उन दिनों उस हार की कीमत पाँच-छह हज़ार थी। अगर तुम चुपचाप उसे उड़ा लेते तो कोई पूछ नहीं सकता था। किसी को पता भी नहीं चलता। मास्टर साहब तो बड़े उदार थे। अपने पति की नजर बचाकर पत्नी अपनी लड़कियों की खातिर कौड़ी-कौड़ी जोड़कर गहने बनवाया करती थी। मास्टर साहब की कोई बहन जब कभी आती तो संदूकों का कोना-कोना छानकर देखती कि भाभी ने क्या-क्या जोड़कर रखा है। इसलिए जब उसके आने की खबर मिलती तो मास्टर की पत्नी ऐसी जगह ढूँढकर चीज़ छिपाकर रखती कि किसी को अनुमान न हो। ऐसी पुरानी पुस्तक के नीचे उन्होंने हार छिपाकर रखा था जिसे मास्टर साहब कभी पढ़ते नहीं थे। अगर तुम उसे उड़ा देते तो बेचारी किसी के सामने मुँह तक नहीं खोल सकती थी। अगर मुँह खोलती तो पति आड़े हाथों लेते कि मेरे अनजाने में तुमने गहने कैसे बनवाए। वह समझ लेती कि ननद ही उड़ाकर ले गई है। जलजाक्षी को उसकी माँ ने कहा था कि वह कितना ईमानदार लड़का है। यह बात इसलिए निकली कि वे एक घर बनवाना चाहते हैं। मैंने तुम्हारा अता-पता देकर बताया कि बड़े नेक हैं और मैं उन्हें जानती हूँ। तब उन्होंने कहा, 'कौन, वही सोमशेखर? विद्यार्थी-जीवन में ही उनका हाथ कितना शुद्ध था!' उन्होंने ही सोने के हार की बात बताई। तुम्हारे दफ्तर का पता, फोन नंबर वगैरह नोट कर लिया और कहा कि तुम से ही प्लान करवाएँगे तथा तुम्हारी निगरानी में ही घर बनवाएँगे। तुम्हें एक नया आर्डर मिल गया है। उसमें मेरा कमीशन होगा?" शरारत-भरी नज़रों से सोमशेखर का चेहरा देखा। आधा पल के बाद भाव-विभोर नेत्रों से बोली, "सोमु, एक जन्मजात ईमानदार व्यक्ति को अपने मित्र के रूप में पाकर मुझे कितना गर्व होता है, जानते हो?" बाएँ हाथ से सोमशेखर का कंधा कसकर पकड़ लिया। सोमशेखर का मन अपने उस अध्यापक और खाना खिलाती उनकी पत्नी की यादों में डूब गया था।

भोजन के बाद जब एक-दूसरे की बाँहों में लिपटे पलंग पर सोए थे तब अमृता बोली: "सुनो, कल मैंने तुम से जो कुछ कहा था वह उतना ब्यौरेवार अभी तक किसी से नहीं कहा। कह लेने लायक विश्वसनीय और भावना का तादात्म्य रखने वाला कोई मिला नहीं था। श्वेता अब ब्याह करके अमेरिका में है। जिस व्यक्ति से कहा जाता है वह व्यक्ति अगर भावना के तादात्म्य के साथ अगर शुद्ध मन का और सच्चा हो तो मन को कितनी तसल्ली होती है, जानते हो? मानो हमारे भार को दूसरा कोई खुद उठाकर अपने कंधों पर रखे ले रहा हो। आज जलजाक्षी ने जब यह बातें कहीं तब से मन की सारी-की-सारी बातें तुम से कह लेने को जी चाह रहा है।"

यह प्रशंसा सुनकर सोमशेखर को वास्तव में बहुत अच्छा लगा। लेकिन

उसका विचार था कि जब कोई अपनी प्रशंसा करने लगे तब उसे प्रोत्साहित करना या उसमें रुचि दिखाना घटियापन होता है। तुरंत उसने बातों की दिशा बदल दी, "सुनो, कल रात से मेरे दिमाग में एक प्रश्न उलझा हुआ है। रंगनाथ के बारे में तुम्हारे मन में तिरस्कार की भावना है। लेकिन, पहले कभी तुमने बताया था कि विकास के नामकरण के संदर्भ में वह आया था। याद है? क्यों बुलाया था?"

अमृता तुरंत अंतर्मुखी हो गई। चेहरे पर खेद, क्रोध, अवनत भावनाएँ आलोड़ित होने लगीं। सोमशेखर के मन में इस बात का खेद हुआ कि कहीं उसने यह प्रश्न पूछकर उसकी उर्ध्व लहर को नष्ट तो नहीं कर दिया! फिर अपनी तसल्ली कर ली कि इस प्रश्न से अमृता की भावनाओं में उतार आएगा, इसकी कल्पना उसे नहीं थी। "अगर नाराज होती हो तो जवाब मत देना"—उसने अमृता के बाएँ गाल पर बिखरे बालों को हटाते हुए कहा। लेकिन अमृता ने सहमकर जवाब दिया, "दरअसल यही मेरी समस्या है। रंगनाथ से मुझे बेहद घृणा है, घिन है। उसकी दीदी से तो इतना द्वेष है कि मेरा रोम-रोम जल उठता है। रिवाल्वर से अगर उसे दाग दूँ तो शायद मेरे द्वेष की आग ठंडी पड़ जाए! लेकिन सहसा मन उनके प्रति एकदम दुर्बल भी हो जाता है। हो सकता है, मेरे परंपरागत संस्कार और विश्वास इसके कारण हों। सहसा मन में विचार आया कि बच्चा पैदा हुआ है। क्या माँ-बाप दोनों मिलकर उसका नामकरण न करें? रंगनाथ को चिट्ठी लिखी; उसकी दीदी को भी लिखी। बच्चे को जन्म देने की थकावट में सम्भवतः मानसिक शक्ति दुर्बल हो गई थी। मैं अकेली कहाँ तक उनके विरोध में अपने को सालती रहूँ? मन के किसी कोने में यह कामना रही होगी कि लोग मुझे यह न कहें कि मैं परित्यक्ता हूँ। पुरोहित ने जब गुरुजनों के चरणों की पूजा करने के लिए कहा तो मैंने चाची और चाचा के चरण छूकर मंत्राक्षत डाले। चाचा के चरण छूने में मुझे खेद नहीं था। क्योंकि वह बनावटी आदमी नहीं है। सारी विधियाँ समाप्त करके दोपहर को जब भोज शुरू हुआ तब मेरा मन बेहद पछताने लगा कि नाहक मैंने यह सारी विधियाँ क्यों अपना लीं? रंगनाथ के बिना भी अगर मैं अकेली भगवान के सामने दीप जला देती तो क्या नामकरण की विधि पूरी नहीं होती? चाची को अगर नहीं बुलवाती तो क्या बिगड़ने वाला था? मेरी अक्ल कहाँ चरने चली गई थी? दरअसल मेरे अपने भीतर विसंगति है, मेल नहीं है।

"मेरी बुद्धि कभी एक जैसी नहीं रहती। यह मेरी दुर्बलता है। नामकरण के लिए उनको बुलवाने का नतीजा यह हुआ कि भीतर-ही-भीतर छुरा भोंकने वाली एक और बात बाहर आ गई। मेरी पढ़ाई में बाधा न पड़े, इसलिए बड़े बेटे विजय को आठवें महीने की अवस्था में वह अपने साथ ले गई थी न! उसकी साजिश

का भंडाफोड़ होने तक और ऐस्टेट को अपने क़ब्जे में लेने तक विजय उसी के साथ था। उसके बाद उसे अपने साथ ले आई थी। उससे पहले मैं जब कभी बच्चे से मिलने जाती थी, रंगनाथ भी मेरे साथ जाता था। फिर जब दूसरे गर्भ की साजिश का पता चला और तबादला होकर रंगनाथ चला गया तब तक बाप-बेटे का संपर्क तो था ही। चार वर्ष बीत जाने पर भी विजय अपने बाप को भूला नही था। नानी का दुलार कम नहीं हुआ था। नामकरण के संदर्भ में वह अपने बाप से अधिक लगाव बढ़ाने लगा। नानी के आने पर आधा घंटे के भीतर ही उसकी गोद में जा बैठा। हर किसी को उल्लू बनाने मे चाची माहिर है ही। इस बार दो ही दिनों में उसने विजय को अच्छी पट्टी पढ़ाई। नामकरण के बाद जब वे लोग चले गए तब एक दिन सहसा विजय नानी से मिलने की ज़िद करके रोने लगा। मैंने उसे बाँहों में लेकर प्यार-दुलार से पूछा कि क्या बात है ? नानी ने क्या किया है ? मुझमें क्या कमी है ? तब उसने क्या कहा, जानते हो ? वह बोला, 'नानी बहुत प्यार करती है। मेरा पालन उसी ने तो किया है। तुम्हें मुझसे प्यार नहीं। अपनी पढ़ाई में बाधक होने के बहाने बचपन में ही मुझे उसके पास भेज दिया। नानी ने ही मेरा पालन-पोषण किया।' पहले कभी उसके मन में यह विचार नहीं आया था। अब कैसे आया ? नामकरण के दो दिनो में मैं जब दूसरे कामों में उलझी हुई थी तब इसी चाची ने उसके मन में यह बीज बोया था। एक दिन वह बोला, 'मुझे पिताजी से मिलना है। सुना है कि तुम्हीं ने उन्हें यहाँ आने से मना किया है।' इससे भी अधिक नुकीली छुरी मेरे सीने में भोंका जाना क्या संभव है ? तुम ही बताओ, क्या संभव है ?"

सोमशेखर ने गंभीर होकर सिर हिलाया।

"तब मुझे अपनी ग़लती का अहसास हुआ। बच्चे के मन में यह भावना घर कर गई है कि मेरी माँ मुझसे प्यार नहीं करती; उसे अपनी पढ़ाई-लिखाई की चिंता रहती है। मैंने निश्चय कर लिया कि बच्चे के दिल से इस भावना को मिटाने का हर संभव प्रयत्न मुझे करना होगा; वरना, बच्चे मेरे हाथ से निकल जाएँगे। उस दिन से हर रोज शाम को उन्हें घर लाते ही तुरंत उनके साथ उन्हीं के स्तर के खेल खेलना, उन्हीं की जैसी शरारतें करना, कहानियाँ सुनाना, बाँहों में भरकर दुलारना, हर दिन नई-नई चीजें बनाकर खिलाना, नए-नए कपड़े सिलवाना शुरू कर दिया। कभी-कभी इस बात पर [illegible] शर्मिंदा भी होने लगती हूँ कि अपने बच्चे से प्यार करने के लिए क्या चाची से होड़ लगाना आवश्यक है ? इतने लाड़-प्यार के कारण बच्चे बेकाबू होकर, उद्धत और उदण्ड न हो जाएँ, यह डर भी लगा रहता है। छोटे बच्चे ने एक दिन पूछा कि हमारे पिताजी आकर हमें अपने साथ क्यों नहीं ले जाते ? उसके मुँह में यह बात कहाँ से आई ? इस सवाल से मैं सहम गई।" अमृता के चेहरे का रंग बिलकुल उड़ गया

था। दस मिनिट से भी अधिक समय तक वह अवाक बैठी रही। मन-ही-मन सोचती रही। फिर अमृता धीरे से बोली "इन बच्चों का प्यार जीतने के लिए मैं अपना सारा समय बर्बाद कर रही हूँ। पढ़ाई, शोध, बुद्धि का विकास, ज्ञान, हर बात पर एक अंकुश-सा लग गया है।" सोमशेखर ने उसका चेहरा गौर से देखा। उसे अहसास हुआ कि अब तक की सारी बातों की अपेक्षा यह बात उसके मन में बहुत ही गहरी परत से निकली है। सांत्वना के लिए उसने अमृता को बाँहों में भर लिया और उसकी पीठ धीरे-धीरे सहलाने लगा। बड़ी देर तक अमृता गुम-सुम-सी बैठी रही।

सहसा वह फिर फूट पड़ी। लिपटकर बोली, "सोमु, कल का सारा दिन मैंने दुखड़ा सुनाने में ही बिता दिया। आज फिर उसी बात को लेकर बैठी हूँ। अब इसे छोड़ो। अगर तुम पास हो तो हर किसी का सामना करने की शक्ति मुझमें आ जाती है। मेरे जीवन में पहली बार प्यार, निस्वार्थ और सहज-सच्चा प्यार देकर तुमने मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया है। जब हम मिलें तब प्यार की बातों के सिवा कोई और चर्चा छिड़नी ही नहीं चाहिए, समझे ? अगर मैं कोई और बात करने लगूँ तो तुरंत तुम मेरे गाल पर थप्पड़ जमा देना। अगर तुम दूसरी बात करने लगे तो मैं तुम्हारे गालों पर···" कहते हुए वह सोमशेखर का चुंबन लेने लगी। मानो सहसा स्विच बदल दिया गया हो। इस बदली हुई मनोदशा के साथ अपने-आप को समायोजित करके प्रतिक्रियाशील होना सोम-शेखर को कठिन लगा। लेकिन, इस दशा में मना करने या अमृता के मनोवेग को निराश करने के लिए उसका मन तैयार नहीं हुआ। प्रयत्नपूर्वक उसने अमृता को अपनी बाँहों में भर लिया और स्पंदित हो गया, पूरे उत्साह के साथ। आक्रामक मनोवेग के साथ उसका कचूमर कर दिया। अमृता इस अंदाज में सोम-शेखर के नियंत्रण में चली गई कि अपने-आपको उसके हवाले करके उसकी शरण में गए बिना, पूरी तरह समर्पित हुए बिना उसकी खैर नहीं। अब तक उसके दिल में बेचैनी और मानसिक संघर्ष था। उसके शमन के बाद अमृता के चेहरे पर और रोम-रोम में सुख-शांति का भाव उमड़ रहा था। सोमशेखर का मन भी तसल्ली एवं सफलता की भावना से निहाल हो उठा। लाड़-दुलार और मादकता के साथ माँ जिस प्रकार बच्चे को सहारा देती है, उसी प्रकार उसने अमृता को अपने आगोश में भर लिया।

दोनों गहरी नींद सोये और जब उनकी आँखें खुलीं तो साढ़े-चार बजने को थे। घड़ी देखकर सोमशेखर ने उतावली में कहा, "ओऽफ़! बच्चों को लाना है, जल्दी उठो।" लेकिन अमृता इत्मीनान से बोली, "आज सुशीलम्मा कहीं जाने वाली नहीं है। अभी एक घंटा और इसी तरह आराम किया जा सकता है। तुम भी आँखें बंद कर लो। अपनी जगह से एक इंच भी मत हिलना। छह बजे

के करीब मैं जाऊँगी। अगर तुम्हारे दफ्तर में कोई आएगा भी तो नीलकण्ठप्पा उन्हें देख लेगा। अब से तुम्हारे दफ्तर का समय होगा—सवेरे नौ से बारह तक, फिर शाम छह से नौ तक; बोर्ड पर लिखवा दो। अब आँखें बंद करो। अब बताओ, आँखें बंद करने पर क्या दिखाई देता है? कौन-सा चित्र उभर कर आता है?" अमृता ने उसका मुख अपने सीने में छिपा लिया।

"अमृता दिखाई देती है। अमृता के सिवा कोई और चित्र उभरता ही नहीं," वह बोला।

"अगर अब तुम झूठ भी बोलो तो सुनने में बड़ा प्यारा लगता है क्योंकि तुम स्वभावतः एक सच्चे आदमी हो। इसलिए जी चाहता है कि उस काल्पनिक स्वर्ग को आग लगा दूं।" इसी बात का रसास्वाद करने के अंदाज में अमृता ने आँखें बंद कर लीं। उसके सीने में मुँह छिपाए सोमशेखर को अहसास हुआ मानो अमृता ने समय के चक्र को गतिहीन कर दिया है। उस भाव-स्थिरता में कहीं कोई आलोड़न न हो, इस चेष्टा में वह निश्चल, साँसों को रोककर स्पन्दन-शून्य [illegible] रहा। लेकिन कुछ ही क्षण बाद अमृता बोली। अब उसकी आवाज बहिर्मुखी ही नहीं बनी, बल्कि उसमें भावनाओं की अपेक्षा तहकीकातपूर्ण विश्लेषण का अंदाज अधिक था।

"सोमु, तुमने जो कहा कि आँखें बंद करने पर अमृता के सिवा कोई दूसरी आकृति नहीं उभरती, वह बात शहद से भी अधिक लसलसाहटपूर्ण और मीठी है। लेकिन, मैं, तुम्हारे कहे अनुसार तुम्हारे लिए दूसरी औरत हूँ—अगर तुम्हारी बात को सच मानूं!"

सोमशेखर को यह बात बहुत रूखी और बेतुकी लगी। निकटता प्राप्त होने पर भी इस प्रकार खीझ जब-तब अच्छी नहीं लगती। जब [illegible]सी स्थिति बनती है तब अमृता सहसा बीच में एकाध बूंद खटाई जैसी कोई [illegible] टपका देती है। सोमशेखर कुछ नहीं बोला। मौन रहकर ही उसने अपनी असहमति प्रकट करने की चेष्टा की। पल भर बाद फिर अमृता बोली, "नाराज हो गए? नाराज़ हो तो मत बोलो।" सोमशेखर ने कहा—"ऐसी बात नहीं।" अमृता बोली, "तुम्हें नाराज करने के इरादे से कुछ नहीं कहा था। तुम नेक हो। इसलिए विश्वास करती हूँ कि बंबई वाली के सिवा तुम्हारा किसी और से को[illegible] संबंध नहीं था। फिर भी तुम्हारे लि[illegible] मैं दूसरी ही हूँ। मानो या न मानो, मेरे साथ रहते हुए जो भावनाएँ उमड़ती हैं, मैं तुममें जिन भावनाओं को उद्वेलित करती हूँ क्या वे दिल के किसी कोने में कभी अपने-आप तुलने नहीं लगतीं? क्या कभी ऐसा विचार नहीं आता कि किसी-न-किसी स्तर पर बंबइ वाली अमृता से अधिक सुख देती थी? सच बोलो। ऐसा विचार आता ही नहीं, यह कहना मनुष्य स्वभाव के विपरीत पड़ता है।"

सोमशेखर से झूठ कहते नहीं बना। झूठ कहना उससे संभव भी नहीं था। वह बोला, "तुम्हारे साथ होने वाली अनुभूति की गहराई अनन्य होती है। इसकी तुलना किसी से करना घटियापन है। कृपा करके फिर कभी ऐसा प्रश्न मत पूछना।'"

"ओऽफ़! सोमु!" अमृता ने गरम बाँहों मे भरकर चूमते हुए कहा, "तुम्हारी बातें सुनने लगती हूँ तो पता है, कैसे पुलकित हो उठती हूँ? अकथ गहराई! वाह! साहित्य में एम० ए० की है, वही पढ़ाती भी हूँ, फिर भी ऐसी अभिव्यक्ति संभव नहीं। लेकिन, बंबई वाली के पास भी ऐसी ही अनन्य गहरी अनुभूति होती थी। तुम्हीं ने कहा था कि बीच-बीच में ग़ज़ल के मिसरे बहाते हुए प्रणय की, उन्माद की लहरों पर वह तुम्हें तैराती रहती थी। ग़ज़ल के सामने तेरी कविताएँ फीकी पड़ती हैं। फिर, जब हमारा निकट का समागम होता है तब उसके बीच मैं कभी कोई कविता या ऐसे ही कोई साहित्य के वाक्य नहीं बोलती क्योंकि वे अपने नहीं होते, औरों के होते हैं। जब ऐसी बात है तो उस जैसे सुख की गहराई और ऊँचाई मुझमें कैसे मिल सकती है, भला?"

"औरों की किसी बात का हवाला न देकर तुम अपने गहरे मौन में सब कुछ व्यक्त कर देती हो; इसीलिए मैंने तुम्हें अनन्य कहा," सोमशेखर ने अपनी बात के समर्थन में कहा।

"मतलब हुआ कि तुम्हारे मन में तुलना होती है और होती रहती है। फिर तुम झूठ क्यों बोलते हो कि होती ही नहीं?" अमृता ने पकड़ लिया।

सोमशेखर को मन-ही-मन गुस्सा आया। लगा मानो स्वादिष्ट खीर मे कंकड डाल दिया हो। मन में ही तौला कि उसमें संयम की मात्रा कम है; कुछ बोला नहीं। फिर खयाल आया कि जवाब न देने का मतलब होगा उसके अभियोग को स्वीकार करना; इसलिए बोला, "कुछ न बोलने में ही बड़प्पन मानकर मैं चुप हूँ। मेरी चुप्पी का मतलब यह नहीं कि मैं तुम्हारी बातों से सहमत हूँ।"

"हाँ, मुझमें बड़प्पन कहाँ?" सहसा वह तुनक उठी। अपने बाँहों के बंधन को छुड़ाकर उल्टी करवट लिये उस बड़े पलंग के सिरे पर इतनी दूर जाकर लेट गई कि दोनों के बीच दो फुट का फासला हो गया। सोमशेखर उलझन मे पड़ गया कि वह ऐसा क्यों करती है? तुरंत उठकर चले जाने का उसका मन हुआ। लेकिन वहाँ से उससे उठा नहीं गया, वहाँ से चले जाना संभव नहीं हो सका। उसे अहसास हुआ कि वह उससे बँध गया है, किसी अज्ञात शक्ति ने उसको यों चिपकाकर रखा है कि वह दूर जा ही नहीं सकता। उसे इस अहसास पर खीझ हुई। इस खीझ को दबाकर वह चुपचाप पड़ा रहा, करवट भी नहीं ली। माहौल पुनः बोझिल हो गया; समय की गति रुक-सी गई। मन समय के आरंभ, मध्य और अंत को ग्रहण करने लगा। मन में प्रश्न आया कि क्या समय का अंत ऐसा

ही होता है ? 'समय का अंत' के मायने क्या भावना के बोझिलपन की अवस्था होती है ? तब समय क्या भावनाबद्ध होता है ?—इस सोच में उसका मन पूरी तरह से अंतर्मुखी हो गया। दिल की धड़कन यों मंद पड़ गई थी कि हाथों को ही कानों के रूप में इस्तेमाल करने पर भी धड़कन का अहसास नहीं हो पा रहा था। उसकी गति भी धीमी पड़ गई थी। समय और दिल की धड़कन का क्या कोई नाता है ?—एक और प्रश्न उभर आया। समय की बोझिल अवस्था, दिल की धड़कन और समय—इन सबने मिलकर बुद्धि को उलझा दिया था। अमृता सहसा उठी और उसी जगह सोमशेखर से दो फुट दूरी पर पलंग के सिरे पर बैठकर नपे-तुले अंदाज में बोली—

"सुनो, पुरुष जहाँ जो चाहे कर सकता है ! सतीत्व को खो लेना स्त्री के लिए एक ऐसी हानि है जिसे वह लौटकर कभी वहीं पा सकती। तुम्हारे इस संबंध ने मुझे इस कदर कमज़ोर, इस क़दर पंगु बना दिया है कि मैं उस रंगनाथ के सामने खड़ी नहीं हो सकूंगी । तुम्हारी खोपड़ी में उतर रही है न मेरी बात ?"

प्रश्न की उलझन में पहले ही से उलझे सोमशेखर की खोपड़ी में अमृता की बात तुरंत उतरी नहीं; फिर भी एकाध पल में उसका भावावेग घटता गया। अमृता की बात का जवाब देने का मन हुआ; किंतु, उस पर ब्रेक लगाकर दबा लिया और चेहरे पर संजीदगी लाने की चेष्टा की। अमृता उसका चेहरा घूरती रही। सोमशेखर ने अपनी निगाह झुकाई नहीं और घूरकर सामना भी नहीं किया। बलात् संजीदगी लाकर शांत निगाह का पलस्तर ओढ़े अमृता का सामना करता रहा। अमृता की त्यौरियाँ चढ़ गईं। गुस्सा और भी चढ़ गया। "तुम्हारी दिल की सारी बातें समझ रही हूँ, जी ! तुम्हारे चेहरे से साफ़ झलक रहा है कि तुम्हें मुझसे नफ़रत है, सख्त नफरत है, गली के कुत्ते से भी घटिया समझते हो। भीतर कड़वी नफरत और घिन्नाहट है तो चेहरे पर क्यों सौम्य भाव का रोगन चढ़ाते हो ? सीधा-सीधा कहते क्यों नहीं ?" तलब के अंदाज में ऊँची आवाज़ में बोली।

"मुझ पर क्यों ग़लत आरोप लगाती हो ?"—सोमशेखर ने अपनी आवाज़ को न चढ़ाकर सहमे स्वर में धीरे से कहा।

"हाँ; मैं झूठ बोलती हूँ। मैं झूठी हूँ । तुम अकेले ही सत्यवान हो। इसे मुँह खोलकर मैंने स्वीकार कर लिया है न, इसी से तुम्हारा अहंकार बोल रहा है, नैतिक अहंकार।"—झटके के साथ उठकर टायलेट में गई और धड़ाम से दरवाजा बंद कर लिया। दो मिनट में मुँह धोकर बाहर निकली। माँग निकाल ली; साड़ी सँवार ली; वैनिटी बैग लटकाकर चप्पल पहनने लगी। सोमशेखर को अहसास हुआ कि वह अभी पलंग पर ही पड़ा है। वह झट से उठा, पेंट पहन ली, जुराबें

चढ़ाकर बूट पहने; हैलमेट हाथ में लिये निकला। अमृता उससे बोली नहीं। वह भी कुछ नहीं बोला। चुपचाप बाहर निकलकर गेट खोला; कुत्तों की भूंक के बीच स्कूटर स्टार्ट किया। अमृता कार का दरवाजा खोल रही थी।

विजय और विकास सुशीलम्मा के बच्चों के साथ धारी का खेल खेल रहे थे। अपनी माँ की कार आते ही दौड़कर कार में बैठने की जल्दी उनमें नहीं थी। धारी का खेल बीच में छोड़ें कैसे ? दोनों कार को नज़रदाज करके खेल रहे थे। अमृता के दिल में चुभन का अहसास हुआ। फिर भी उन्हें आवाज न देकर प्रतीक्षा करती हुई स्टियरिंग पकड़े बैठी रही।

कुछ देर में सुशीलम्मा बाहर निकली। कार देखकर वह बच्चों से बोली, "विजय, विकास, देखो, माँ आई है।" फिर भी बच्चों ने इधर ध्यान नहीं दिया। सुशीलम्मा खुद कार के पास आकर बोली, "खेल खत्म होने तक भीतर आइए।"

कार का दरवाज़ा बंद करके उसमें चाभी घुमाकर अमृता घर में आई। मुस्कुराते हुए बोली, "आपके घर से इतने परिचित हो गए है कि और कोई चीज चाहते ही नहीं; मैडम होने का भय भी नहीं है।"

"आज का दृष्टिकोण भी यही है कि अध्यापक और छात्रों के बीच भय की गंध नहीं होनी चाहिए," सुशीलम्मा कॉफी बनाने के लिए भीतर गई।

"न, न; अभी पीकर आई हूँ। दुबारा पी लूं तो रात में नींद नहीं आएगी।" अमृता के मना करने पर वह सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई।

"आप मानें या न मानें, बच्चे माँ-बाप पर ही जाते है। आपके बच्चो को संभालने में कोई दिक्कत नहीं होती। कुछ शरारती है; लेकिन ऊधमी बिलकुल नहीं। बड़ा चतुर भी है," सुशीलम्मा ने बात छेड़ी।

अध्यापिका से अपने बच्चों की प्रशंसा सुनकर अमृता सहज प्रसन्नता से बोली, "चाहे कितना ही चतुर हो; लेकिन योग्य अध्यापक के बिना उनका विकास कैसे हो सकता है ? आप जैसी अध्यापिका का मिलना मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ।" भरपूर प्रशंसा करके वह तनिक मुस्कुरायी।

"एक बात कहूं; बच्चों में अगर शांत-स्वभाव पनपाना हो तो माँ-बाप, खासकर माँ, में शांतगुण का होना जरूरी है। मेरी ननद की बेटी आपके कॉलेज में पढ़ती है। वह कह रही थी—प्लैज़ेंट्नेस का मतलब है अमृता मैडम। स्वयं हंसते-मुसकाते हमें भी सदा प्रसन्न रखती है। चाहे कोई कितना भी शोर मचाए, प्रश्नो का ठीक-ठीक जवाब चाहे न दे, फिर भी कभी गुस्सा नही करतीं। उनमें मन्न का जो मादा है वह किसी और लेक्चरर में नहीं है। जिनके भीतर संतोष और सहिष्णुता होती है वे ही औरों में उसे बांट सकते हैं। अपने इस कथन के

समर्थन में आपकी ओर इशारा करते हुए उसने किसी कविता की पंक्तियाँ भी सुनाईं।" सुशीलम्मा की बातें सुनते हुए अमृता को कालेज का अपना रहन-सहन याद आया। अन्य सभी अध्यापक और अध्यापिकाएँ किसी-न-किसी संदर्भ में आपे से बाहर हो जाते हैं; लेकिन उसने कभी, किसी भी संदर्भ में संयम नहीं छोड़ा—इस बात की याद से अध्यापन-वृत्ति में उसने जो साधना की है उस पर अमृता को कुछ गर्व हुआ।

कुछ समय बाद बाहर तालियों की आवाज़ सुनाई दी। शायद खेल खत्म होने की सूचना पाकर सुशीलम्मा ने बाहर आकर देखा तो बच्चे दूसरी बारी की तैयारी मे लगे हुए थे। "विजय, माँ प्रतीक्षा कर रही है। अब कल खेल लेना। चलो।" मैडम के कहने पर दोनों भाई कार की ओर चल पड़े। लौटते समय रास्ते में अमृता बच्चों से उनकी पढ़ाई के बारे में, स्कूल में सिखाए गए नए गाने के बारे मे, अध्यापको द्वारा कही गई नई कहानी के बारे में, विजय के मित्र राजीव और विकास के मित्र भरत के बारे मे पूछताछ करते हुए बच्चों की जिज्ञासा को धरातल पर रखने की चेष्टा करते हुए कार चला रही थी। घर पहुँचते ही बच्चों को सूजी के लड्डू, जो सवेरे ही पुट्टम्मा से बनवाकर रखे थे, दिए। फिर बोर्नविटा पिलाया। धारी के खेल के नियम आदि बच्चो से जानकर घर के पिछवाड़े के आँगन में उनके कहे अनुसार चूने की धारियाँ बनाईं। खुद खेलने के लिए तैयार होकर बच्चों को बुलाया। विजय बोला, "माँ, उसके लिए चार लोग चाहिए।"

"दो का खेल मैं अकेली खेलूँगी, आओ," अमृता ने बुलाया।

"बच्चो के लिए ठीक रहेगा, बड़ो को जमेगा नहीं," उसने आपत्ति उठाई।

"एक बार बता दो, तो सीख लूँगी। वरना, कल तुम्हारी मैडम से सीख लूँगी। अब बताओ, आओ।" उसने अनुरोध किया।

"तुम्हारे साथ खेलने को मन नही करता," वह बोल उठा।

अपने बच्चे अपने से नफ़रत करने लगे है, एक बार फिर अमृता के दिल में चुभन का अनुभव हुआ। इस वेदना को भीतर ही दबाकर चेहरे पर प्रसन्नता ला पाना मुश्किल हो गया। फिर भी फुसलाया, "विकास, तुम आओ बेटे, माँ को खेल सिखाओ।" यों तो विकास धारी वाले खेल के नियम ठीक तरह जानता नहीं था। विजय और सुशीला मैडम का बड़ा बेटा चंद्रू खूब खेलते थे। वह और मैडम की छोटी बेटी शांता खानापूरी के लिए धारी पर खड़े रहकर खिलाड़ी को रोकने का काम करते थे। इसलिए माँ को विजय की ही याचना करनी पड़ी। तुरंत अमृता ताड़ गई कि इस खेल में तीन लोगों के लायक परिवर्तन लाया जा सकता है। लेकिन बच्चे माने नहीं। रोज की तरह शटल-काक खेलने के लिए बुलाया तो बच्चों ने मना कर दिया।

कुछ समय बाद विजय बोला, "सब जगह छोड़कर तुम ऐसी जगह आकर

बसी हो जहाँ खेलने वाला कोई साथी ही नहीं।" अब अमृता से रहा नहीं गया। वह सरपट भीतर आई। लाउंज के सोफे पर अकेली बैठ गई। आँखों से आँसू ढलकने लगे। आँखें धुंधली हो जाने पर भी उसने पोंछा नहीं।

कुत्तों को बिस्किट, खौलते पानी में गरम किए लचना के लड्डू खिलाए, दूध पिलाया। कुछ देर के लिए घर में खुला छोड़ दिया। बच्चों को खाना खिलाकर खुद भी कुछ खा लिया। दिल एकदम डूब गया था, फिर भी खाना खाते समय बच्चों को उलझाए रखने के लिए तरह-तरह के प्रश्न पूछती रही। बुद्धिशक्ति टूट चुकी थी, फिर भी बच्चों को लिटाकर उनकी बगल में बैठकर चंद्रमा और समुद्रराज की कहानी सुनाई। बच्चों को वर्णन भाता है, वे विवरण चाहते है। बोझिल मन से, भावनाशून्य होकर वर्णन करने की शक्ति जब टूट गई हो तब बच्चों को लुभा पाना बड़ा यातनाप्रद लगता है। उसे ऐसा अनुभव पहली बार ही नहीं हो रहा था। पहले भी असंख्य बार ऐसा अनुभव हो चुका है। लेकिन हर बार महसूस होता है कि आज जैसी क्रूर पीड़ा पहले कभी नहीं हुई थी। इस पीड़ा के बीच, अपने बोझिलपन को पीकर इन बच्चों को दुलारते हुए बगल में बैठकर या लेटकर कहानी को इतनी लम्बाई तक तानना पड़ता है कि उन्हें नींद आ जाए। कहानी में ऐसे अंशों का निर्माण करना पड़ता है कि बच्चे उसमें घुलमिल जाएँ, कल्पना के पंखों पर चढ़ जाएँ। अहसास हुआ कि कैसी नीरस जिम्मेदारी है।

बड़ी देर तक समुद्रराज की कहानी के दायरे को बढ़ाते रहने के बाद बच्चों को नींद आई। बिना आहट के चुपचाप बत्ती बुझाकर छोटा लाल बेडलैंप जलाकर बाहर लाउंज में आकर बैठ गई। दिल-ही-दिल में जिस पीड़ा की आग में झुलसती जा रही है, उसके शमन का एक उपाय उसे सूझा। दिल की गहराई से यों फूट-फूटकर रोए कि घर के भीतर-बाहर, पिछवाड़े की पहाड़ी, आकाश—हर कहीं जहाँ खामोशी जमकर बैठी है वह चकनाचूर हो जाए। फिर अहसास हुआ कि रुलाई इतनी करुणामयी नहीं होती कि जब चाहो तब आ जाये। जब आती है तो उसे टाला जा सकता है; लेकिन, जब नहीं आती तब बलात् उसे लाना असंभव है। रुलाई के इस विचित्र गुण का उसे पहली बार अहसास हुआ। आज तक लोगों ने, यहाँ तक कि खुद उसने भी यह कभी नहीं सोचा था कि रुलाई केवल दुःख-सूचक ही नहीं होती बल्कि दुःख-शमन का विधान भी होती है। कुछ देर तक इसी सोच में डूबे रहने के कारण मन कुछ पल के लिए दु:ख से मुक्त रहा। लेकिन, वह अस्थायी था; दुःख ने पुनः आ घेरा। हाय भगवान! पार्थिव पीड़ा चाहे कितनी ही गहरी हो, किसी स्वरूप की हो, उसे सहा जा सकेगा; लेकिन यह भीतरी पीड़ा, वेदना कितनी भयानक होती है, तुम नहीं जानते? अमृता को भगवान पर गुस्सा आया। उसने निश्चय किया कि भगवान नामक व्यक्ति या शक्ति के हाथ पकड़कर जवाब तलब करना चाहिए कि वह ऐसी पीड़ा क्यों देता है? मन कहीं

और भटक गया। मानो कोई भूली हुई बात याद करके वहाँ से उठी। अपने कमरे में जाकर पलंग की बगल वाली दराज का ताला खोलकर भीतर से रिवाल्वर निकाल लिया। लॉक खोलकर उसे इस स्थिति में लाया कि ट्रिगर दबाते ही गोली दग उठे; फिर, उसकी नली को दाहिनी कनपटी पर दबाकर रख लिया। न रुलाई की जरूरत है और न भगवान-वगवान जैसी कल्पना के सहारे की ही जरूरत है। अपना हल, अपना उपशमन अपने पास है।—इस विचार के साथ आत्मविश्वास बढ़ गया। उसने तय किया कि अब रोएगी नहीं और रोना चाहेगी भी नहीं। ट्रिगर दबाए जाने और सारी पीड़ाओं से मुक्ति पाने के बीच का अंतराल क्षण के एक करोड़वें भाग से भी कम होगा। वास्तव में अंतराल होगा ही नहीं। इस बात का आत्मविश्वास बढ़ गया कि अंत अपने ही हाथ में है। रिवाल्वर की नली को कनपटी पर धरकर ही वह दृढ़ कदमों से चलकर ड्रेसिंग टेबुल के सामने जाकर खड़ी हुई। बाएँ हाथ से जब स्विच दबाया तब तुरंत चका-चौंध रोशनी फैल गई। उस रोशनी में सामने वाले पचास वर्ष पुराने आदमकद आईने में उसे अपना चेहरा नज़र आया। उसने जिस आत्मविश्वास की कल्पना की थी वह तो वहाँ था ही नहीं और फिर अपना चेहरा भी यों दिखाई देने लगा मानो निर्जीव लाश का चेहरा हो। उसी को घूरते हुए बड़ी देर तक खड़ी रही। वह समझ गई कि जब उसके भीतर का यह शून्य फैल जाएगा तब वह अवश्य मर जाएगी। फिर जब ट्रिगर और मौत के बीच कोई अंतर ही न हो तब मरने के लिए नाहक क्यों इतनी खटपट करने लगी है? इसी विचार में वह गहरी उतर गई। जीवन का अर्थ जब पूरी तरह से नष्ट हो जाता है और केवल मृत्यु ही मुक्ति का एकमात्र द्वार नज़र आता है तब उस द्वार पर खड़े-खड़े नर क्यों उस ओर अग्रसर न होकर निष्क्रिय बन जाती है? इस प्रश्न के साथ ह रिवाल्वर की नलिका के रूप में वह द्वार साफ़ दिखाई देने लगा। सहसा उसे एक नया विधान सूझा। इस सूझ पर वह यों पुलकित हो गई जैसे किसी नई खोज के साथ, नए आविष्कार के साथ किसी वैज्ञानिक की बाँछें खिल उठती है। रिवाल्वर की नली को कनपटी के बदले मुँह में तालू को निशाना बनाकर रख लिया जाए और सोचा, ट्रिगर अगर दबाया जाए तो निशाना ठीक ही नहीं बैठेगा वरन् मौत को निगलकर बाजी मारने का आनंद भी मिलेगा। कनपटी से नली को हटाया और मुँह में रखकर पुराने आइने में चेहरा देखा। चेहरे पर अ[illegible] भ। वही शून्य भाव था; लाश के समान। मन बोझिल हुआ। नली को मुँह से बाहर निकाला। ड्रेसिंग टेबुल की बत्ती बुझाकर बैठ गई। रिवाल्वर दाहिने हाथ में ही था। बड़ी देर तक बैठे रहने के बाद सहसा कोई बात याद आई। उठकर खिड़की के पास गई। परदे की ओट से बाहर झाँककर देखा।

चाँदनी, धूमिल चाँदनी, सारी दुनिया को दुःख और यातनाओं में सराबोर

डुबाए पांडुर रोशनी । बाहर जाकर देखने का मन हुआ । दुःख से भीगी दुनिया में घूमने की इच्छा हुई । इन मजबूत बंद दरवाजों में इस अस्वाभाविक सब्र में क्या रखा है ? तुरंत वह घर और कार की चाभी लेकर बाहर निकली । घर के दरवाजे पर ताला लगाकर गराज से कार निकाली । उसे गेट के बाहर लाकर गराज और गेट बंद किए । फिर कार में सवार होकर पहाड़ की ओर निकली । फ्लड लाइट नहीं जलायी । बीच में कहीं रुकी नहीं । हल्की चाँदनी की दुखद सफेदी में भी रास्ता कुछ ही फुट की दूरी पर स्याह-सा हो गया था । इसलिए दूसरे गियर में ही धीरे-धीरे किंचित सतर्कतापूर्वक कार चला रही थी । बाईं ओर शोक की घाटी का सिलसिला जारी था; अखण्ड दुःख का पठार निहारते हुए वह ऊपर-ही-ऊपर चढ़ती जा रही थी । मैसूर शहर को पश्चिमोत्तर की ओर छोड़कर वह उस रोशन दिशा की ओर आई जो बिजली की बत्तियों के प्रकाश के बिना विषादपूर्ण चाँदनी में मुरझाकर अपना आकार खो चुकी थी । तब तक वह पहाड़ का लगभग पौना हिस्सा चढ़ चुकी थी । कार रोककर दरवाजा खोलकर निकली । बाहर आकर जब आकारहीन खाई को देखते खड़ी हुई तो मन में शरीर के उस आकार की तुलना उभर कर आई जो मृत्यु के दो दिन पश्चात संभव हो सकता है । इसी तुलना में सामने वाले रूपहीन दृश्य को बड़ी देर तक देखते खड़ी रही । सहसा भीतर की पीड़ा तेज हो उठी । ऐसी पीड़ा मानो चेहरे को निचोड़ लिया गया हो । इससे छुटकारा कैसे हो ? यह बड़ी अच्छी जगह है । किसी को शक भी नहीं होगा । अपनी कार में आई हूँ । कार यहीं खड़ी रहेगी । मेरा अपना, अपने नाम का लाइसेंस वाला रिवाल्वर, किसी पुलिस के लिए भी चिट्ठी-पत्र लिखकर रखने की आवश्यकता नहीं । अगर घर होता तो गोली की आवाज़ से बच्चे जाग जाते । बीभत्स दृश्य को देखकर इस सुनसान घर मे चीख-चीखकर रोने लगते । आगे उनके दिल मे वह बीभत्स दृश्य जीवन-भर घर करके बैठ जाता कि उनकी माँ मुँह में गोली दागकर मर गई । इन सारे झंझटों से बचने की, अपनी विशालता में उस घर को छिपा लेने वाली पहाड़ी की इस ओर की यह जगह, जहाँ से गोली की आवाज़ भी कोई नही सुन सकता, हर दृष्टि से बड़ी सुविधाजनक जगह है । इस योजना के साथ जब सहसा खयाल आया कि रिवाल्वर तो घर मे बिस्तर पर छोड़ आई है तब बड़ी निराशा हुई । उल्टे पाँव कार मे सवार होकर फ्लड लाइट जलाकर घुमावदार ढलान का रास्ता होने पर भी पचास मील की रफ्तार से घर जाकर रिवाल्वर ले आने का निश्चय किया । कार मे बैठकर जब इंजन स्टार्ट किया तब विचार आया कि प्राण हर लेने के लिए रिवाल्वर की अनिवार्यता नहीं है । पर पहाड़ पर आत्म-हत्या के लिए कोई-न-कोई उपयुक्त जगह होती ही है । सौ फुट दुर्गम चट्टान काफ़ी है । ऐसी जगह इस पहाड़ी मे कहाँ है ? याद नहीं आई । सोचा कि मंदिर के पीछे वाली जगह जहाँ

कभी-कभी वह सूर्यास्त को निहारते खड़ी रहती है, कैसे रहेगी ? लेकिन, शायद वहाँ लोग होंगे। इस बेवक़्त कार की आवाज़, अकेली औरत का उतरकर उस ओर जाना, किसी ने ऊँघती नज़रों से भी अगर देख लिया और आकर पूछताछ करने लगा कि कौन है, किधर चली है वगैरह, तो ? इस कल्पना से वह काँप उठी। स्टार्ट किया हुआ इंजन बंद करके स्टियरिंग के सामने चुपचाप बैठी रही।

अमृता कार से उतरकर बाहर आई। दुःखी और भारी मन से बिखरी चाँदनी को देखती खड़ी रही। धीरे-धीरे निगाह ऊपर की ओर उठती गई। दुनिया के अपने जैसे सारे पीड़ितों के दुःख का अनुभव करते हुए चंद्रमा बोझिल कदमों से आगे बढ़ रहा था। उसे लगा, मानो चंद्रमा की वेदना उसकी वेदना से भी अधिक है। उसे लगा, मानो वह जो जीवन-भर आँसू बहाता है उन्हें वह पल-भर में चाँदनी के रूप में ढालकर सारे संसार पर बरसाकर दुबला होता जा रहा है। अहसास हुआ कि उसकी भी अपनी जैसी ही तनहाई है। बड़ी देर तक उसी को निहारते हुए खड़ी रही। उठी हुई गरदन ज्यों की त्यों थी। जब गरदन दुखने लगी तो उसे झुका लिया। अब वहाँ और ठहरने का मन नहीं हुआ। कहीं निकल जाना चाहिए; कहाँ जाए ? इस पहाड़ी पर कार ड्राइव करती आगे निकल जाए तो मंदिर मिलेगा जहाँ लोग होंगे, होटल होंगे, वह जगह ठीक नहीं रहेगी। इसी बीच बिस्तर पर छोड़े हुए रिवाल्वर की याद हो आई। अचानक बच्चों में से कोई जाग गया और 'माँ' की हांक लगाते हुए उसके कमरे में आकर उसे हाथ में ले ले तो, उसमें गोली भरी है, उसका लॉक खुला है। ओऽफ़् ! घबराहट में वह सिहर उठी; पसीना छूट गया। अगर, अब तक रिवाल्वर तक पहुँच गए हों तो ? टाँगें थरथराने लगीं। क्या करे, कुछ समझ नहीं पायी। तत्काल घर लौटकर देखने का निश्चय मन में जागा, किंतु टाँगों ने इस निश्चय का साथ नहीं दिया। बड़ी मुश्किल से मन पर नियंत्रण पाकर कार स्टार्ट की; फ्लड लाइट जलाकर तेज रफ्तार से, तीस-चालीस की रफ्तार से—इस घुमावदार रास्ते में इससे अधिक रफ्तार संभव नहीं—नीचे उतरी। ओऽफ़् ! कितनी दूर है ! आखिर घर पहुँचकर, भौंकते कुत्तों को पुचकार कर कार को गेट के बाहर छोड़ भीतर दौड़ी। दरवाज़ा खोलकर अपने कमरे में जाकर देखा कि रिवाल्वर बिस्तर पर उसकी प्रतीक्षा में सजीव पड़ा था। पहले उसे लॉक किया; फिर चेंबर खोलकर सारी गोलियाँ बाहर निकालीं। उन्हें पलंग की बगल वाली दराज में रखकर ताला लगाया। फिर बाहर निकलकर कार को गराज में लाकर खड़ा किया। गेट और गराज बंद करके उन पर ताले लगाकर भीतर आई। दिल की धड़कन साफ़ सुनाई दे रही थी। लाउंज में सोफे पर बैठकर कुछ राहत की साँस ली।

फिर सहसा बच्चों को देखने का मन हुआ। उठकर उनके कमरे में गई। लाल बत्ती की धूमिल रोशनी में उनके चेहरे अस्पष्ट दिखाई दे रहे थे। बड़ी बत्ती

का स्विच दबाया। वह जानती थी कि इस रोशनी से उनकी नींद में कोई बाधा नहीं होगी। अचानक अगर किसी की आँख खुलती और वहाँ जाकर रिवाल्वर छू लेता तो? इस कल्पना मात्र से वह काँप उठी। प्यार-भरी नजरों से उनके चेहरे निहारती खड़ी रही। एक बात नुकीले चाकू की तरह कलेजे को कोंचने लगी। दोनों के चेहरे उनके बाप से मिलते हैं। जैसे-जैसे बढ़ते जाते हैं सादृश्यता भी बढ़ती जाती है और अंत में एक समान बन जाते हैं। मैं बाहर रह जाती हूँ। मेरी किस्मत बच्चों के रूप में भी मेरी पीड़ा को छेड़ती रहती है। बड़ा तो अपनी नानी पर जान देता है, छोटे को बाप से लगाव है। 'तुम्हें मुझसे प्यार नहीं; मुझसे बढ़कर तुम्हें अपनी पढ़ाई प्यारी है; इसलिए मुझे नानी के पास छोड़ा'—मुँह-तोड़ जवाब दिया था उसने। इनकी खातिर मैंने अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर नौकरी की हद तक ही अपनी पढ़ाई सीमित रखी। उन चेहरों को देखते रहने का मन एकदम बदल गया। बड़ी बत्ती बुझाकर पुनः लाउंज में आकर बैठ गई।

जब साजिश का पता चला तब तीसरा महीना चल रहा था—मन अतीत की ओर चला गया। अगर चाहती तो उस साजिश के फल को निकाल देना कोई कठिन काम नहीं था। अगर मैं ज़िद करती कि मैं नहीं चाहती, उसे निकालना ही होगा तो डाक्टर मना कैसे कर पाते? अगर निकलवा देती तो उस रंगनाथ को ही नहीं, बल्कि उसकी दीदी को भी मुँह की खानी पड़ती। फिर जाकर उस चाची का पानी उतारा जा सकता था। अगर मैं गर्भ के भार, प्रसूति-काल की निष्क्रियता, फिर उसके पश्चात अंतहीन परवरिश में लगने वाली शक्ति को अध्ययन में लगाती तो मेरा यह हाल न होता। फिर भी मैंने उसे क्यों बना लिया? स्मृति की परतें खुलने लगीं। अपने गर्भ में अंकुरित होने वाले जीव को अंकुरित ही न होने दिया जाय। यह सावधानी बरतना तो उचित है; लेकिन एक बार, चाहे साजिश और धोखाधड़ी से सही, जब वह अंकुरित हो गया हो तो उसे निकलवाकर फेंक देना क्या उचित होगा? अपनी पीड़ा, अपने साथ जो साजिश हुई है, जो धोखा हुआ है उसे खुद सहना होगा। उससे निवृत्त होने की खटपट में क्या मैं निष्पाप जीव के अंकुर को नष्ट कर देने का पाप करूँ? पात करवाना, नष्ट करवाना, निकलवाना जैसे शब्दों की कल्पना से ही रोना आ जाता था। इस बात को मानने का मतलब स्त्रीत्व को नकारना होगा। पाप का भय। बचा लेना होगा, बचाकर दुलारना होगा—इस विचार से प्रयत्नपूर्वक प्यार को पोषित किया। कुछ भार बनकर भीतर की ओर तनते हुए पेट पर अपनी हथेली फेरकर उस पर करुणा बरसाते वह मलते रहती थी। वह उदारता की, नैतिक उन्नति की भावना थी। ऐसी साजिश और धोखाधड़ी को नजरंदाज़ करके ऊपर उठते रहने की भावना का मैं प्रज्ञापूर्वक पोषण करती रही। अगर उसी दिन

समझ पाती कि आगे चलकर एक दिन यह बच्चा बड़ा होकर मुझसे पूछ सकता है कि मेरा बाप हमें अपने साथ लेकर क्यों नहीं जाता तो भी क्या मैं उस गर्भ को निकलवा देती ? लाउंज में बैठे-बैठे खिड़की से बाहर देखती रही। दुःखदायी चाँदनी अभी भी धूमिल अपनी जगह जमी हुई थी। अगर उसी दिन समझ पाती तो क्या निकलवाती ? उसके मन ने यह प्रश्न पुनः दोहराया। कुछ जवाब नहीं सूझा। चाँदनी स्याह पड़ती जा रही है अथवा उसे निहारते हुए अपनी आँखों के सामने कहीं आँसुओं की परत तो नहीं जम रही ? बड़ी देर तक वैसी ही बैठी रही। नींद नहीं आ रही थी। इस तरह बिना सोये निरंतर जागते रहकर रात काटती हुई उम्र बर्बाद कर रही हूँ। रिवाल्वर को भी बेकार ही हाथ में पकड़े रखकर उसके दस्ते पर पसीने की गंदगी जमा कर रही हूँ। दुबारा सारे दरवाजे बंद करके अपने कमरे में जाकर लेट गई। सोने से पहले एक बार बच्चों के कमरे में जाकर उन्हें देखने की आदत-सी बन गई थी। अब एक बार देख चुकी हूँ; पता नहीं, अब क्यों देखने की स्निग्धता मन में द्रवित नहीं हो रही है। मेरे देखने या न देखने से कोई फर्क पड़ने वाला नहीं; वे अपने में मस्त नींद सोते है। सोचा कि बच्चों को यह विचार, सूझ या समझ कभी नहीं रहती कि सोते में अपनी मां आ-आकर देखा करती थी। दाईं करवट लेकर बेड-लैंप बुझाकर जब लेटी तो अहसास हुआ कि खिड़की के परदे हटाने चाहिए थे ताकि चाँदनी भीतर आ सके। फिर विचार आया कि चाँदनी की वह दुःखपूर्ण भावना किसे चाहिए ? चंद्रमा की किस्मत चंद्रमा के साथ, घर-बारहीन दुर्दैव है वह। इस अहसास के साथ इन भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाली कोई कविता लिखने का मन हुआ। इसी का ताना-बाना बुनते हुए काफ़ी समय निकल गया। पहला चरण भी जम नहीं पाया। और न नींद ही आई। सहसा एक प्रकार की तसल्ली हुई; अपनी भूल का अहसास भी हुआ।

पढ़ाई में मन लगाना होगा। बच्चों को सुलाने के बाद जी-जान लगाकर पढ़ाई शुरू करनी होगी। बीच में अगर नींद आ जाए तो ठीक है; न भी आए तो परवाह नहीं, पढ़ाई तो जारी रहेगी ही। अब खयाल आया कि इस घर में आकर इतने वर्ष बीत गए, लेकिन अभी तक अपनी पढ़ाई का कमरा भी तैयार नहीं किया। लाउंज की बगल वाला बड़ा कमरा; जमीन से छत तक किताबें रखने के लिए एक-एक फुट के अंतर पर शेल्फ़, इतने शेल्फ़ कि तीन-चार हज़ार पुस्तकें रखी जा सकें। आगे कभी अगर पैसों की जुगाड़ हो जाए तो शेल्फ पर कांच लगवाने होंगे। अपने पास जो किताबें है, उन्हें को अभी ठीक ढंग से नहीं रखा है। क्या बीमारी आई है अपने को ?—अपने-आपको कोसते हुए झट उठी और बत्ती जलाकर बाहर आई। कई दिनों से बंद स्टडीरूम का दरवाजा खोलकर भीतर गई। एक बड़ा तौलिया लेकर हर किताब की धूल झाड़कर विषय के

अनुसार उन्हें अलग-अलग रखने लगी। कालेज के ग्रंथपाल से कह दूं तो वे स्वयं आकर सारी किताबें देंगे। तब उनका वर्गीकरण सुव्यवस्थित होगा और भविष्य में जो नई किताबें खरीदी जाएँ उन्हें कहाँ रखा जाना चाहिए, इसका भी तुरंत पता चल जाएगा। निश्चय किया कि उनको कुछ पारिश्रमिक दे देगी। सहसा उसे सोमशेखर की याद हो आई ! गुस्सा भी आया। मैं यहाँ सारी रात बिना नींद के छटपटा रही हूँ; मौत के छोर को बार-बार छूकर आ रही हूँ। उधर वह घर में खर्राटे भर रहा होगा। अपने से कमसिन, सुंदर, औरत का शारीरिक सुख चाहता है, रैस्कल ! आखिर प्यार, मोहब्बत का मतलब ही क्या हुआ ? बड़ा पाजी है; क्या कभी उसने भूलकर भी कहा है कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ ? उन दिनों रंगनाथ और उसकी दीदी के धोखे में आकर फँस गई थी। अब जान-बझकर इसके धोखे में आ गई हूँ।··· किताबों की धूल झाड़कर उन्हें ठीक से लगाने का काम छोड़कर एक बड़ी किताब हाथ में लिये बत्ती बुझाकर अपने कमरे में आई। लेटकर पढ़ने लगी। मस्तिष्क में कुछ उतर नहीं रहा था; फिर भी मन को उसमें उलझाए रखने की ज़िद करती रही। जब पुन: नींद न आने की चिंता से पीड़ित हो गई तब मन न जाने कहाँ-कहाँ भटकने लगा।

याद आया कि रिवाल्वर के चेंबर से गोली निकालकर उसे लॉक कर रखा है। रात में अगर चोर-डाकू घुसने लगें, अचानक अगर घुस ही आयें तब क्या उनके सामने गोली भरकर तैयार किया जा सकेगा ? वह उठी; दराज का ताला खोलकर रिवाल्वर में गोली भरी: लॉक करके पुन: दराज में रखकर सो गई। अगर अब नींद आयेगी भी तो सवेरे खाना पकाने वाली पुट्टम्मा जल्दी आएगी—गहरी नींद का भी डर लगा। इतने में सवेरे की डाक से आई मैनेजर की चिट्ठी की याद आई। कालेज से लौटते समय गेट पर लगे डाक के डिब्बे से उसे लाकर उस पर एक सरसरी नज़र डालकर रख दी थी। दुबारा ठीक ढंग से पढ़ने का अवकाश ही नहीं मिल पाया था। बेडस्विच दबाया। हाथ बढ़ाकर दराज से चिट्ठी उठाते समय लगा कि अवकाश की बात नहीं थी; जब कभी मैनेजर की चिट्ठी आती है उसे दुबारा पढ़ने से बचने के लिए या संभव हो सके तो उसे पढ़े बिना फेंक देने का मन करता है। जब कभी ऐस्टेट से संबंधित कोई लिफाफा आता है तब उसे खोलकर पढ़ने के लिए मन को जाल में फँसाकर रोकना पड़ता है। अनेक समस्याएँ, कर्ज, दिक्कत, तुरंत रकम की माँग। आज भी वही समाचार हैं। कोना फाड़कर रखे लिफाफे से चिट्ठी बाहर निकालकर दुबारा उस पर नज़र दौड़ाई, "बोर्ड वालों ने कहा है कि तंगी के कारण अभी तीन महीनों तक किसी को ऋण नहीं दे पाएँगे। फिलहाल अपने करंट अकाउंट में जो सवा-पंद्रह हज़ार की रकम है वह तीन महीनो के लिए बिलकुल नाकाफी होगी। अब सोसाइटी से चीजें उधार लाना ही एक मात्र रास्ता रह गया है। कल सकलेशपुर जाकर

सोसाइटी में मैंने पूछ-ताछ की। उन्होंने बताया कि अगर चेअरमैन चाहेंगे तो संभव है; उसके लिए मालिक का आना जरूरी है; मैनेजर के स्तर पर संभव नहीं। पता चला कि इस महीने की अठारह तारीख के बाद चेअरमैन साहब गाँव से बाहर जाने वाले हैं। इसलिए आपका तुरंत आना बहुत जरूरी है।" चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते उसका मन हिसाब लगाने लगा। एक बार जाने-आने में पेट्रोल का खर्च ही साढ़े तीन सौ रुपये आ जाएगा। बस से जाना चाहे तो सकलेशपुर में ऐस्टेट के लिए टैक्सी करनी पड़ेगी; फिर मैसूर लौटने के लिए बस का इंतजार करते रहो, समय पर बस न मिलने पर रात-भर के लिए रुक जाओ—कुल मिलाकर उतना ही खर्च हो जाएगा। फिर दिक्कत अलग। मनहूस एस्टेट से कार के पेट्रोल का खर्च भी नहीं निकलता। क्यों न उसे बेचकर बैंक का कर्जा चुका दें? एक रास्ता नजर आया। यों बैंक के पास रेहन तो है ही; क्यों न बैंक के नाम एक चिट्ठी लिख डालें कि मुझ से ब्याज भरा नहीं जाता, पड़ताल करके हिसाब-किताब ठीक कर लो। पल-भर बाद याद आया कि इस समस्या का यह विचार कोई नया तो नहीं है। जिद ठन गयी कि ऐस्टेट को हाथ से नहीं जाने देगी। लाख मुसीबतें झेलकर भी अच्छी फसल लेकर कर्जा अदा करके उसे बचाना होगा। नींद फिर उड़ गई। सकलेशपुर जाकर सोसाइटी के चेअरमैन के सामने दाँत निकालना; एक औरत इस तरह दाँत निकालने सामने बैठेगी तो उस कम्बख्त के सारे संस्कार चेहरे पर उभरने लगेंगे—धत्, इस कल्पना से ही उसे घिन हुई। उसके मन में, चेहरे पर चाहे कैसी ही भावनाएँ आने दे, अपने सामने बेहूदी बात कहने की किसी की हिम्मत नहीं होगी। अमृता के मन में आत्मविश्वास बढ़ा।

रातों में जब इस तरह उसकी नींद हराम हो जाती है ' दिन में कालेज में ऊँघना और जंभाई ही नहीं आती बल्कि आँखों में नींद भी आने लगती है। ऐसी स्थिति में घर आकर सोने पर भी नींद नहीं आती। कक्षा में पढ़ाते समय उनींदी अवस्था में चेतना निस्पंद हो जाती थी। उस उनींदेपन से बचने के लिए दो-तीन कप स्ट्रांग कॉफी पीती थी। शुरू-शुरू में कॉफी पी लेने से दो-एक घंटे के लिए दिमाग की जड़ता दूर हो जाती थी। लेकिन, धीरे-धीरे उसका भी कोई असर नहीं होता था।

अमृता आज ठीक बारह बजे घर आई। कार [illegible] समय ही मन करने लगा था कि घर पहुँचते ही खाना खाकर सो जाएगी। लेकिन, जैसे ही घर पहुँची तुरंत सोमु से मिलने की उतावली होने लगी। हर रोज सवा-बारह से साढ़े बारह के बीच किसी भी समय आ जाता है। कभी-कभी दस-पंद्रह मिनट देर भी हो जाती है। जल्दी मुँह-हाथ धोकर, कुत्तों को खाना डाला। उन्हें कुछ देर के लिए खुला छोड़ दिया। टेबुल पर खाना सजाकर रखा। तब तक साढ़े बारह बज गए।

अब किसी भी क्षण स्कूटर की आवाज सुनाई दे सकती है। अमृता ने खुद अपने कमरे में जाकर वार्डरोब से सोमशेखर के लिए लुंगी निकालकर पलंग पर रखी। चार-पाँच दिन से धोयी नहीं थी। सोमशेखर की लुगी धोनी थी, इस्त्री करनी थी। इसे नौकरानी महादेवम्मा से नहीं धुलवाती थी। वह खुद धोकर अपने कमरे से लगे टायलेट में सूखने के लिए डालती है। खुद इस्त्री करके रखती है। इस प्यार के कारण नहीं कि अपने सोमु के पहनने की है, बल्कि इस सावधानी के लिए कि नाहक नौकरानी को शक का मौका क्यों दे कि इस घर मे लुंगी पहनने वाला पुरुष कौन आता होगा? सोमु अभी आया नहीं। कभी-कभी देर कर देता है। लेकिन, आज ही क्यों देर हो? गेट के पास जाकर खड़ी हुई। विक्रांत दौड़ते हुए आकर अपनी सामने वाली दोनों टाँगें उठाकर खेल के लिए बुला रहा था। जितनी दूर संभव है उतनी दूर नज़र दौड़ाने पर भी किसी स्कूटर का निशान तक नहीं। आएगा तो भीतर आ ही जाएगा। मैं क्यों यहाँ ठहरूँ? मैं यहाँ खड़ी रहूँ और वह आ जाए और किसी ने देख लिया तो क्या समझेंगे? क्या उनको पता नहीं चलेगा कि मैं उसकी प्रतीक्षा कर रही थी? कोई चाहे कुछ भी समझे, मुझे किसी की परवाह नहीं। फिर मन में सावधानी जागी कि नाहक अफवाहों को क्यों जगह दे? नगरोपान्त के इस प्रदेश में जहाँ एक-एक एकड़ की दूरी पर एक-एक बंगला है, कौन देखता खड़ा रहेगा भला? इस विचार में डूबकर विक्रांत के अगले दाएँ पाँव का शेक-हैंड स्वीकार कर रही थी। तब तक बारह-चालीस हो गए थे। सहसा अहसास हुआ कि वह नहीं आएगा, कल गुस्सा करके गया है। याद ही नहीं रहा। कितनी देर से उतावली होकर गेट के पास प्रतीक्षा करती खड़ी है। लुंगी पहले ही निकालकर रख दी थी। उसे अपने-आप से खीझ हुई। विक्रांत को जो बार-बार शेक-हैंड के लिए पाँव बढा रहा था, दूर हटाकर वह सरपट घर के भीतर लाउंज के सोफे पर आकर बैठ गई। सारा हौसला पस्त हो गया था। ऐसा अहसास होने लगा था कि मानो सब नष्ट हो गया हो किसी का कोई अर्थ न रहा हो, सब शून्य हो गया हो। सोफे पर वह ऐसी निष्पंद बैठी रही मानो लकवा मार गया हो। सब तरफ सन्नाटा; पेड़ के पत्तो की हलचल, सूखे पत्तों की मरमराहट—सारा वातावरण खामोशी की अवस्था में था। रंग-रोगन उड़े हुए घर में जहाँ वह रहती है, ऐसी घुटन और निर्जीवता महसूस होने लगी मानो वैक्यूम पंप से भीतर की सारी हवा बाहर निकाली जा रही हो। लगा मानो हृदय की गति रुक गई है, शरीर की संवेदना रुक गई हो, समय की गति रुक गई हो। कुछ दूरी पर एक मक्खी फुदकती उड़ती दिखाई दी, किंतु उसके प्रति ऐसी भावना जागी कि उससे अपना कोई नाता नहीं, उसका संचालन करोड़ों ज्योतिवर्ष दूर वाली दुनिया से जुड़ा हुआ है। जब समय की गति ही रुक गई हो तो यह पता कैसे चलता कि कितना समय बीत गया! आखिर जब विक्रांत और

विश्वास दोनों एक साथ भीतर घुसे और आगे वाले दोनों पाँव बढ़ाकर अमृता की जंघाओं पर रखकर लंबी जिह्वा से बदन चाटते हुए उसके साथ खेलने का आग्रह करने लगे तब उसकी सुध लौटी। तुरंत उठ खड़ी हुई। दोनों के गले की पट्टी पकड़कर बाहर खींचकर ले जाने लगी। कुत्ते ताड़ गए कि अपने को बाँधने के लिए ले जा रही है। वे अड़ गए। अमृता उन्हें डाँटकर बाहर ले आई। पहले विक्रात को उसकी जगह यानी सामने वाले माँद में बाँध दिया। विश्वास अभी अड़ रहा था, अमृता ने उसे एक थप्पड़ मारा और पीछे वाले माँद में ले जाकर बाँधा। घर के किवाड़ बन्द करके बोल्ट लगाकर पुन: सोफे पर जब टेक लगा-कर बैठ गई तो वह हाँफ रही थी।

दीवार पर टँगी बड़ी घड़ी जो चुपचाप सेकेंड के काँटे को तेज गति मे घुमा रही थी, सवा-दो का समय बता रही थी। दिमाग का चक्र घूमने लगा। 'प्यार का ढोंग रचाता है। सच्चाई कहते ही, सच्चाई का प्रश्न पूछते ही, दूर चला गया। दूर जाने का कोई बहाना ढूंढ रहा था। ऐसे नौटंकीबाज का चले जाना ही ठीक हुआ'—अमृता ने यह बात ऐसी आवाज में कही कि जो न केवल मौन अंतरात्मा को ही सुनाई न दे बल्कि खामोशी के साथ चलती हुई घड़ी को भी सुनाई दे। यह ऊँची आवाज उसके कानों में यों गूंज उठी कि मन का जमाव फूट पड़ा। अहसास हुआ कि बातों की उस अवस्था में तीव्रता अधिक होती है जो शब्दों के रूप में प्रस्फुटित होने से पहले रहती है। इस बात की लज्जा हुई कि मैं क्यों पागल की तरह खुलकर बोल पड़ी? कुछ देर खामोश रही। फिर दृढ़ निश्चय के साथ उठकर सिंक के पास गई। साबुन से हाथ धोये। फिर डायनिंग टेबुल के पास बैठकर थाली में खाना लगा लिया। इस निश्चय के साथ खाना खाने लगी कि अपना खाना अपना ही होता है; किसी की प्रतीक्षा करने की उसे क्या आवश्यकता है? अभी दो-चार कौर ही खाया था कि उसे लगा कि हड़बड़ी में यों गपागप खाए जा रही है मानो खाने से एक बार निपट लेना ही उसका उद्देश्य है। यह विचार आते ही खाना मुँह को रुचा नहीं। मुँह में रखा पाँचवाँ कौर मुँह में ही चक्कर काट-काटकर जायका खोकर फीका पड़ गया। उसे जबरदस्ती गले में ठूंसने की जब कोशिश की तो मिचली-सी हुई। वह उठकर सिंक के पास गई। थूककर, कुल्ला करके फिर थाली के सामने आकर बैठ गई।

कुछ देर बाद वह बुदबुदाई: 'रास्कल, तू जानता है कि मेरी ऐसी हालत होगी। इसीलिए तू आया नहीं। जब तू इन सारी बारीकियों को जानता है कि क्या-क्या करने से औरतों की कैसी-कैसी दशा होती है तब उस अकेली बंबईवाली के साथ ही नहीं बल्कि कितनी सारी औरतों के साथ गुलछर्रे उड़ाकर इस खेल में प्रवीण बन गया। मैं सहनेवाली नहीं, समझ ले। तुझे ईमानदार होने का अहंकार है, लेकिन वास्तव में तू बड़ा फरेबी है'—अमृता ने मन-ही-मन फैसला सुनाया।

सामने थाली में परोसा हुआ खाना जबरदस्ती ठूंसने पर भी गले के नीचे नहीं उतरेगा, और न उतरने की सूरत में पुन: जाकर थूकना अपना ही अपमान है—यह अहसास होते उसने थाली उठाकर जूठे बर्तनों की बाल्टी में डालकर बर्तनों की बाल्टी धोने के लिए चौके में रख दी। रसोई के बरतन-बासन फ्रिज में रख कर मेज साफ की और कमरे में जाकर बिस्तर पर लुढ़क गई। थोड़ी देर सो लेने की ठानकर उसने आँखें बंद कर लीं। लेकिन, पलक बंद करते ही सोमु की आकृति आँखों में तिरने लगी। छि: ! उसे खेद हुआ कि सोमु से परिचय होने से पहले वह चैन से थी। उसी ने खुद आगे बढ़कर परिचय कर लिया, परिचय स्नेह में बदला, स्नेह···जब स्नेह स्वयं झूठा हो तब उसे अगली किसी भी मंजिल तक ले जाना मिथ्या है। लेकिन मैंने उसे आगे बढ़ाया, इसलिए उसका काम आसान हो गया। इसीलिए ऐसे पैंतरे दिखा रहा है, अब अपनी ही ओर से पहल करके इस डोर को काट लूंगी। तभी इस रास्कल को अक्ल आएगी—अमृता ने निश्चय किया। इस निश्चय के साथ वह दिल को पत्थर बनाए बैठी रही। बीच में एक बार हाथ की घड़ी देखी तो पता चला कि उसे निश्चय किए अभी तीन-चार मिनट भी नहीं हुए। वह कुढ़ गई कि घड़ी भी उससे साजिश कर रही है।

नींद तो आने से रही; रात में पढ़ने के लिए सिरहाने जो किताब लाकर रखी थी, पढ़ने के इरादे से उसे उठा लिया; पन्ने उलटते-पलटते उसका कोई अर्थ खोपड़ी में उतरते न देखकर सोचा कि जो हारता है अंत में जीत उसी की होती है। तुरंत उसने करवट लेकर छोटी टी-पाय पर रखे फोन का चोंगा उठा-कर सोमु का नंबर मिलाया। फिर खयाल आया कि उस तरफ घंटी बजते उसने चोंगा उठाकर पूछा कि कौन है तो क्या जवाब देगी ? जवाब दिए बिना भी वह समझ लेगा कि फोन मैंने ही किया है। इस खयाल के साथ ही उसने झट चोंगा रखकर संपर्क काट दिया। मैं इतनी गई-गुजरी नहीं हूँ जो कि हार मानकर उसके तलुए चाटने लगूं। चाहे तो उसे ही याचना करते निकट आने दे या फोन करने दे; फटकार कर अच्छा सबक सिखाऊँगी—उसने संकल्प किया। पाँच मिनट तक यह संकल्प फौलाद बना रहा। फिर वह औचक उठकर बैठ गई। पलंग की बगलवाली दराज का ताला खोलकर उसने रिवाल्वर उठा लिया। रिवाल्वर पर प्यार से हाथ फेरने लगी तो उस पर जमी हुई धूल हाथ को लगी। इसे कभी दिन में बाहर नहीं निकाला था, रात में धूल की ओर ध्यान ही नहीं गया था। अपनी साड़ी के आँचल से धूल पोंछकर उस हाथ में लिये बैठ गई। यह अच्छा सुभीते का समय है, बच्चे घर में नहीं होंगे, आवाज सुनकर उनके भागते आने का, रिवाल्वर देखकर उनके डर जाने का भय नहीं, सदमे का शिकार भी नहीं होंगे। आड़ करके अपना जबड़ा फैलाकर मुंह खोला, नली को भीतर रखकर बड़े चाव व प्यार से उस लोहे की नली के स्पर्श का आस्वादन करने लगी। मुंह में नली के

रहते हुए उसके मन में आत्मशोधक प्रश्न उठा—इतने दिनो से इसे हाथ मे लिये बैठी हूँ, ट्रिगर दबाने का संकल्प ठोस होकर भी कार्यान्वित क्यों नहीं हो पाया? कहीं मौत का डर तो नहीं है? जिंदगी का मोह? अब जो पीड़ा भोग रही हूँ क्या वह अभी अपनी चरमावस्था को नहीं पहुँची? क्या बच्चों का व्यामोह?

अपने को न मौत का डर है और न जीवन का मोह ही। ऐसी क्रूर पीड़ा अपने शत्रु को भी न हो। मैं मर भी जाऊँगी तो बच्चो का कुछ नहीं बिगड़ेगा। वह छोड़ेगी नही, परवरिश करेगी, पढ़ाएगी। उसका भाई तो माहवारी पर गुलामी कर ही रहा है। कर्जा चुकाकर ऐस्टेट को बचाएगी नहीं। क्या इस स्थिति को रोकने के लिए ही मैं जिंदा हूँ? उसे अपने से घिन हुई। उसे लगा कि स्वयं कितनी ओछी है! मन मे आया कि वह घिनौनी नहीं, अपनी प्रतिष्ठा को साबित करने के लिए ही सही, ट्रिगर दबाकर खत्म कर लेना होगा। उँगली ट्रिगर पर गई, छूते ही रुक गई। मन हुआ कि आखिरी इच्छा को याद कर ले। अपनी कोई इच्छा नहीं है, लगा कि जब मौत के सामने खड़े हो तब इच्छाओं को आदि, मध्य और अंत के तारतम्य मे विभाजित करने का दृष्टिकोण भी नही रहता। उँगली ट्रिगर पर ही टिकी रही। बड़ी देर तक उँगली यों ही टिकी रही, लेकिन उसने रत्ती-भर भी दबाव डालकर उसे खींचा नहीं। नली मुंह में भीगती जा रही थी, फैली हुई दाढ़ दर्द देने लगी, तब अपने-आपसे तुनककर नली को मुँह से बाहर निकाला, रिवाल्वर को लॉक करके पलंग पर फेंक दिया। अपने-आप पर गुस्सा आया। देह के रोम-रोम में मिचली-सी होने लगी। यह देह ऐसी है कि हत्या कर लेने लायक भी नहीं और उसमें हत्या करने की क्षमता भी नही—इस भावना ने निश्चल मौन का रुख लिया। कुछ समय तक वेदना-हीन खामोशी में बैठी रही, फिर सहसा पलंग से उठ पड़ी। अपना बैग लिये चप्पल [illegible]नकर दरवाजे पर ताला डालकर बाहर निकली। कुत्तो की भौंक को अनसुनी करके कार में बैठकर तेजी के साथ पहाड़ी की ओर चल पड़ी!

धूप में केवल सड़क ही नहीं वरन् पत्थर, चट्टान, पेड़-पौधे, मैदान सभी साकार दिखाई दे रहे थे। जैसे-जैसे ऊपर की ओर चढ़ती गई उसे अहसास होने लगा कि साँसो में जीव-ऊष्मा की मात्रा बढ़ती जा रही है। धूप में आँखें चौंधिया रही थी, फिर भी जीव, जो आँख और कानो द्वारा बाहर बह गया था, अपने विषय के विस्तार मे व्याप्त हो गया। कार की रफ्तार और तेज करके वह पहाड़ी का चक्कर काटकर उस जगह आकर रुकी जहाँ से अपना घर दिखाई देता था। नीचे उतरकर कीकर, काँटे, झाड़-झंखाड़ो बीच से रास्ता बनाकर, उस काली चट्टान पर आकर बैठ गई जहाँ जंगली आम के पेड़ों ने आपस में उलझकर मंडप-सा बना दिया था। दिल को राहत मिली। नीचे की ओर उस सीध में अपना घर दिखाई दे रहा है। कुछ देर देखती हुई बैठी रही तब याद आया कि पिछली बार

जब सोमु के साथ यहाँ थी, उसके बाद पुनः इधर आई ही नहीं। फिर वे सारी बातें याद आईं कि यहीं बैठकर उसने बंबई वाली की बात कही थी और बाद में कीकर की झाड़ियों में उलझकर अपनी साड़ी की फटने की भी परवाह न करते हुए गुस्से में निकल गई थी। उसने जो सारी बातें बता दीं, शायद वह ठीक ही था। अगर नहीं बताता, प्रारम्भ में ही अगर नहीं बता पाता तो शायद इस मामले में आगे बढ़ पाना उससे संभव नहीं हो पाता। इस बात को समझने की कोशिश भी उसने नहीं की—'इस बात' पर अमृता के विचार सहसा अवरुद्ध हुए और तुरंत उसे इस बात पर बड़ा गुस्सा आया कि वह रास्कल अपने सब्र और स्नेह की उदारता को ग्रहण करने लायक है ही नहीं। पश्चिम की ओर झुके हुए सूर्य की गरमी कुछ कम हुई-सी लगी। मैं क्यों उस पर गुस्सा उतारूँ? गुस्सा उतारने के लिए वह मेरा क्या लगता है?—अमृता ने अपने-आप से प्रश्न कर लिया। फिर धूप में घुलते हुए आकाश और धरती के संगम को निहारती हुई खामोश बैठी रही। मन उसी में डूब गया।

कुछ समय बाद मन-ही-मन में एक चिट्ठी की रूपरेखा तैयार होने लगी। 'प्रिय', न, 'मेरे', न, न, 'मेरे प्रिय'; छिः, 'मेरे प्राण'—ओऽफ़! यह सबोधन बड़ा पेचीदा होता है। यह प्रधान बात है ही नहीं। इतने दिन हुए, हमने कभी एक-दूसरे को कोई चिट्ठी नहीं लिखी। जब एक ही जगह होते हैं तो चिट्ठी लिखने की संभावना कहाँ होती है?—क्षितिज पर धरती के साथ मिलते हुए झुके आकाश की पृष्ठभूमि को कागज़ बनाने की कल्पना के साथ चिट्ठी लिखने में मन व्यस्त हुआ। जैसे ही दो-एक पंक्तियाँ शब्दों में रूपायित हुई कि सहसा भावनाएँ बाढ़ की तरह यों फूट पड़ीं मानो बाँध का द्वार एकदम खोल दिया गया हो। तुम्हारे दिल को कचोटने वाली बातें अनजाने में मेरे मुँह से निकल पड़ती हैं; फिर उनका पृष्ठ-पोषण भी करने लगती हूँ। जिन पर गुस्सा उतारना चाहिए उन पर तो उतारती नहीं; लेकिन तुम जो निर्मल तथा सच्चा प्यार देते हो, तुम्हीं पर मैं अपना गुस्सा उतारती हूँ। मेरे इस स्वभाव को मात्र अविवेकपूर्ण कहना काफ़ी नहीं, कृतघ्न कहना होगा। लेकिन, मेरे और तुम्हारे मामले में यह कृतज्ञता हमें जोड़ने का साधन नहीं बननी चाहिए। जब कृतज्ञता की बात चली है तो ऋण चुकाने की भावना भी मन में आ गई है। मानो जन्मों में जिस उपलब्धि को चुकाया नहीं जा सकता उसे किस ढंग से, कितनी कृतज्ञता से चुकाया जा सकता है? माँ की मृत्यु के बाद प्यार मिला ही नहीं। लेकिन, जब माँ का प्यार पाने के भ्रम में थी और जब वह भ्रम टूट गया तब इस कड़वी मनोदशा ने जन्म लिया कि इस दुनिया में प्रेम-वेम सब मिथ्या है, मात्र एक ढकोसला है। तुम्हारे संपर्क होने तक मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि प्यार का स्वरूप क्या होता है। जब कभी मैं अपने अध्ययन-अध्यापन के साहित्य में कवि,

उपन्यासकार आदि द्वारा चित्रित प्रेम के मार्मिक वर्णनों को पढ़ने लगती तो मुझे अहसास होने लगता था कि अन्य विषयों में भावना-सत्य को ग्रहण करके उसकी अभिव्यक्ति करने वाले ये लोग प्यार-मोहब्बत के मामले पर आते ही भ्रम में क्यों पड़ जाते है ! लेकिन, अब समझने लगी हूँ कि उन लेखकों के वर्णन का एक-एक शब्द ठोस सत्य की अभिव्यक्ति है। यह अहसास भी होने लगा कि जहाँ प्रेम की अभिव्यक्ति का संदर्भ आता है वहाँ बड़ा प्रतिभावान साहित्यिक भी अपने भाषा-सामर्थ्य की कोताही के कारण मात खा जाता है। तुम्हारे आने में अगर पाँच-एक मिनट की भी देरी होती है तो मेरा मन कितना बेचैन हो उठता है, रह-रहकर नज़र दरवाजे पर चली जाती है। गेट के पास आकर खड़ी हो जाती हूँ। तुम्हारे रास्ते के उस अत्यंत दूर वाले बिंदु को गर्दन उचकाकर यों खोजने लगती हूँ कि गर्दन में दर्द होने लगता है। तुम्हारे संपर्क में आने के बाद मुझमें जो परिवर्तन आया है उसका जब मैं स्वयं निरीक्षण करने लगती हूँ तो लगता है कि तुम कैसा जीव-रस मेरी आत्मा में घोल रहे हो। तुम्हारे संपर्क से पहले जो मेरा जीवन बेमानी-सा हो गया था वह अब लहलहाते उपवन के समान हो गया है। (लेकिन उसे उजाड़ डालने का काम भी मुझसे ही होने लगा है।)···इसी तरह मानस-पटल पर वह लिखती गई। जब दिन ढल गया और धूप उतर गई तब उसकी निगाह घड़ी पर गई। पाँच बज गए थे। बच्चो को लाने में देर हो जाएगी, झटपट वह उठी। अपनी अभिव्यक्ति को मानस-पटल पर, जो झुके आकाश के आगोश में आबद्ध धरती के विस्तार तक व्याप्त था, एक बार निहारकर, कीकर की झाड़ी के बीच से रास्ता बनाते हुए आकर कार में बैठी और कार चालू कर दी।

अभिव्यक्ति का अर्थ है भावनाओं की सहति। गहरा में पैठकर सारी बारीकियों को चुन-चुनकर बाहर निकालना, फिर उन्हें यों संजोना कि वे ठोस रूप ग्रहण कर ले। यह अपने-आपको पहचानने का क्रम है। अहसास हुआ कि सम्बन्ध इसी तरह पहचाने जाते हैं। इस अहसास से लगा कि उसने कोई नया सत्य जाना है। मन बहुत हलका हुआ। उसे लगा कि आकाश के पूर्वांचल में तैरते सफेद बादलों की तरह उसके भीतर एक हलकी-सी लहर दौड़ रही है। ऐसे में सोमु को उसके साथ होना चाहिए। चेहरा देखकर ही वह बता देता कि यह कैसी लहर है। और उसके अनुरूप स्वयं स्पंदित होता। सोमु, आओ यहाँ, आ जाओ, जल्दी आ जाओ, परिंदे की तरह उड़कर चले आओ। मुझे भी उड़ाकर उस सफेद बादल के ऊपर ले चलो। वास्तव में मै भार नहीं होऊँगी। तुम्हारे पंखों को थकाऊँगी नहीं। अपनी सारी शक्ति तुम में ढालकर तुम्हारे पंखों के संचालन की ऊर्जा बनूँगी। दोनों उस सफेद बादल पर सवार होकर तैरते रहेंगे—वह इन्हीं विचारों में डूबी थी कि तभी पहाड़ी का उतार खत्म होकर दृष्टि का

विस्तार संकुचित हो गया—सामने एक बस, उसके पीछे ट्रक, फिर दो कारें। अमृता खयाली दुनिया से सचेत होकर वास्तविकता की ठोस जमीन पर लौट आई।

कार रुकते ही दोनों बच्चे आकर सवार हो गए। आज उनमें खेल का लुभाव नहीं था। कार में बैठे-बैठे ही सुशीलम्मा की ओर मुसकान फेंककर अमृता घर की ओर चल पड़ी। घर पहुँचकर कार से उतरकर विजय ने गेट खोला। माँ से चाभी लेकर मोहार का बड़ा दरवाजा खोलने के लिए लपका। गराज खोलकर, कार उसमें पार्क करके अमृता के लौटने तक विकास भी भीतर चला गया था। भीतर कदम रखते ही तपाक से विजय ने पूछा, "माँ, तुम्हारे पलंग पर लुंगी पड़ी है न। पिता जी आए हैं ? रिवाल्वर क्यों वहाँ रखा है ? विकास उठाने जा रहा था। मैंने रोककर उसे पकड़ लिया।"

अमृता का दिल धड़क गया। घर में रिवाल्वर रहने की बात बच्चो से छिपी नहीं है। उसे अच्छी तरह याद है कि उसने रिवाल्वर लॉक किया था। लेकिन, लुंगी ? भावना के आवेग में चीजों को अपनी-अपनी जगह रखे बिना और अपने कमरे में ताला लगाए बिना बाहर निकलकर कार में जा बैठी थी। बच्चे क्या समझेंगे ? उसके बारे में क्या धारणा बनाएँगे ? तपाक से अनजान-सी बनकर उसने पूछा, "कैसी लुंगी, रे ?"

"सफेद लुंगी, माँ ! तुम्हारे बिस्तर पर जो रखी है। क्या पिताजी आए हैं ?" उसने फिर वही प्रश्न पूछा।

"तुझे तो अपने पिता की ही धुन लगी है। दिन-रात तुम्हारे लिए खटते रहने वाली माँ की कोई कदर नहीं।"—बेटे को यों डाँट दिया कि दुबारा वह पिता का जिक्र न करे। फिर वह अपने कमरे में आकर इस अंदाज में बोल पड़ी कि मानो उसने लुंगी को पहली बार देखा हो, "ओऽफ्, यह ? पुरानी लुगी थी। फर्श धोने के लिए महादेवम्मा माँग रही थी। उसे देने के लिए निकालकर रखी थी।" लुंगी उठाकर विजय की आँखों के सामने ही उसके टराटर चार टुकड़े बनाकर बोली, "ले, इन दो चिंदियों को फर्श धोने वाली बाल्टी में रख दे; बाकी दो चिंदियाँ रसोई में हाथ पोंछने के काम आएँगी।" दो टुकड़े विजय के सामने फेंक दिए। जब वह उन्हें उठाने लगा तब फैसला सुनाने के अदाज में बोली, "किसी की पुरानी लुंगी भी हमारे घर में रहने न पाए; किसी को हमारे यहाँ आकर हमारी खबर लेने की आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हारी परवरिश करूँगी। तुम्हारी हर माँग मैं पूरी करूँगी। चिंता मत करना।" विजय में यह सूझ आ गई थी कि जब माँ बिगड़े तो अपने को चुप हो जाना चाहिए।

रात के भोजन के बाद बच्चों को सुलाते समय उसके मन में पुनः बवंडर उठा। विजय की आँखों के सामने ही लुंगी फाड़कर फर्श धोने के लिए जो फेंक दी

थी उस पर, न जाने, विजय को विश्वास हुआ या नहीं ? विजय कभी दिल खोल कर बातें नहीं करता। मन की बात मन में ही दबा लेता है। इस छोटी अवस्था में घटनाओं का पूरा ब्यौरा शायद समझ नहीं पाएगा। लेकिन, उन्हें भूलेगा भी नहीं। भविष्य में जब घटनाएँ स्मृति में तैरने लगती हैं तब अपना नया अर्थ देने लगती हैं। अमृता को याद आया कि उसके साथ भी यही हुआ था। ऐसी स्मृति के साथ अहसास हुआ कि उसका संपूर्ण व्यक्तित्व संकुचित होकर बौना बन गया है। अपने बेटे के सामने सिर झुकाने की अवस्था की कल्पना करके उसे पसीना छूटा। लगा कि कैसी हीन अवस्था होगी, कैसा घटिया जीवन होगा ! अब सात वर्ष का है। शायद ठीक-ठीक समझ न पाता हो; अभी सात-आठ, न सही, दस वर्ष का होते-होते तो उसे समझ आएगी। माँ को तौलकर देखेगा, सजीव मृत्यु-दण्ड देगा। ऐसी जिंदगी किस लिए चाहिए भला ? उस दिन तो जान देनी ही पड़ेगी। उसके बदले आज ही क्यों न उसे खत्म कर दे ? रिवाल्वर हाथ में लेने का मन हुआ। अपने-आपको कोसने लगी कि हाथ में लेकर भी नली को मुँह में दबाए अंतिम क्षण में जिंदगी के मोह से चिपक जाने वाली कायर है। अपने को मन-ही-मन दुत्कारती रही कि वह एक ऐसा कीट है जो जीने की इच्छा भी नहीं रखता और जिसमें मरने का साहस भी नहीं। खिड़की के बाहर शून्य-सी बनी चाँदनी दिखाई दे रही थी। कल की भाँति कार में सवार होकर बाहर निकलने का मन हुआ। घर के मोहार पर ताला जड़कर, बगल में रिवाल्वर रखे, चाँदनी की शून्यता को चीरते हुए पहाड़ी के घुमावदार रास्ते पर कार चलाते जाने की कल्पना मात्र से मन में उद्वेगपूर्ण आकर्षण उत्पन्न हुआ। उठकर अपने कमरे में गई। कार की, गराज की तथा घर की चाभियाँ लेकर जब रिवाल्वर हाथ में उठा लिया तब विचार आया कि जो मरने के लिए जा रही है उसे सुरक्षा के साधन की क्या आवश्यकता है ? फिर, समर्थन का एक पहलू भी दिखाई पड़ा कि सुरक्षा का साधन नहीं, वरन मौत का साधन है; सुनसान शून्य-चाँदनी में निर्जन प्रदेश में ट्रिगर दबा लेना सहज सुभीते का काम होगा।

कुत्तों की भौंक के बीच कार को गेट के बाहर निकालने के बाद फ्लड-लाइट जलाए बिना पहाड़ी का पूर्वी भाग चढ़कर पठार के उस हिस्से में कार रोकी जहाँ अकसर वह रात के समय आया करती थी। हाथ में रिवाल्वर लिये वह कार से उतर पड़ी। पठार के छोर पर खड़ी हो गई तो चांदनी के धुँधलके में पेड़-पौधे, चट्टान और तराइयों की आकृतियाँ भूत-प्रेत के नाना रूपों में दिखाई देने लगीं। मौत इसी को कहते हैं। मरने के लिए, ट्रिगर दबा लेने के लिए इससे बढ़कर सुभीते का आवरण और क्या चाहिए ? इस विचार से उन रूपों के साथ प्रणयासक्त हो गई। उनसे मूक याचना करती हुई रिवाल्वर की नली को अपने खुले हुए मुँह में रख लिया कि मुझे अपने में तिरोहित कर लो। तर्जनी ट्रिगर में अटक

गई। वह आँखें बंद किए कुछ देर चुपचाप खड़ी रही। मन में वे प्रेत-रूप इस प्रकार घुल गए कि उसे अहसास होने लगा कि वह स्वयं उन रूपों का रंग-मंच बन गई है। फिर लगा कि जब वे सारे-के-सारे अदृश्य होंगे, साकार-स्वरूप सभी घुल जाएँगे, चाँदनी की स्याही भी बुझ जाएगी और घना अँधेरा फैलेगा तब ट्रिगर दबाना आसान होगा। जैसे ही तर्जनी में शक्ति का संचालन करके ट्रिगर पर जोर लगाने जा ही रही थी तभी विचार आया कि उल्टे पाँव कार में सवार होकर सोमु के घर चली जाए और वह जो सुख के खर्राटे भरते सोया होगा, उसके सीने में इसी गोली को दागना अधिक सार्थक होगा। चाहे कुछ भी हो जाए, जिसने मेरे शील-सौंदर्य को नष्ट किया, जिसके लिए मुझे घर में लुगी लाकर रखनी पड़ी और आज उस पर मेरे बेटे की नज़र पड़ी उस पापी को उपयुक्त सज़ा मिलनी ही चाहिए। अगर मैं इस लोफर से मिली न होती तो किसी तरह चैन से जी लेती। किसी और वास्तुकार से घर की मरम्मत करवा लेती तो अच्छा होता। वास्तुकार की आवश्यकता भी नहीं थी, किसी साधारण कंट्रैक्टर या राज से काम चल जाता। अब तक मन के भीतर जो क्रोध खौल रहा था उसमें हजारों बुदबुदे फूटने लगे। भावना उबलकर बह निकली और जयलक्ष्मीपुर में सोमु के घर तक पहुँचकर वह रुक गई। सावधानी से ट्रिगर से तर्जनी को हटाकर मुँह से नली को निकाल लिया और उसे लॉक करके कार में जा बैठी। वहाँ कार को घुमा लेने के लिए काफ़ी जगह नहीं थी। एक मील आगे ऊपर की ओर चढ़कर, जहाँ कुछ चौड़ी जगह थी कार को घुमा लिया और फ्लड-लाइट की रोशनी में अपने घर के सामने से ही तेज रफ्तार में निकल गई। मृगालय के सामने से हार्डिज सर्किल, शहर का बस स्टैण्ड, सयाजीराव मार्ग, चाँदनी से घुली हुई सडक की बत्तियाँ जिसके फलस्वरूप शून्यता का पलडा हलका होकर प्रेत के सारे रूप विमुख हो गए थे, वह दिन में मार्केट की जिन इमारतों को देखा करती, दुकानें, संकेत के सफेद निशान लगी डामर की काली सड़कें दिखाई देती रहीं। धन्वंतरी मार्ग के बायीं ओर मुड़ते समय सहसा उसे अहसास हुआ कि वह कैसे मूर्खतापूर्ण काम के लिए निकली है! वहीं ब्रेक लगाकर गाड़ी रोक ली। लेकिन, सामने ही एक बंदूकधारी पुलिस को देखकर पता चला कि वह पुलिस-चौकी है। इस सुनसान रात में अकेली औरत को कार में आया देखकर अगर वह पूछ-ताछ करने लगा तो? कोई हीला-हवाला देकर निकल भी जा सकती है। लेकिन, इस चौकी के लोगों के मस्तिष्क में यह बात बैठ जाएगी कि इस आधी रात के समय अमृता नामक लेक्चरर अमुक नंबरवाली कार में अकेली आई थी और यहाँ कार रोक कर खड़ी थी। इस विचार से सावधान होकर बंदूकधारी पुलिस का ध्यान अपनी ओर आने से पहले ही वह तेज गति से आगे निकल गई। धन्वंतरी मार्ग पार करके पेट्रोल-पंप आते ही तुरंत नारायण शास्त्री मार्ग में घुसकर देवराज अरसु मार्ग से

होते हुए अपने घर की ओर कार भगाने लगी।

भौंकते कुत्तों को आवाज़ देकर अपना परिचय जताया। दरवाज़ा खोलकर भीतर प्रवेश करते समय अहसास हुआ कि नगरांत पहाड़ी-पठार के इस सुनसान प्रदेश में दो छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर आधी रात को घर से बाहर चला जाना कितना ग़लत है! अचानक अगर बच्चे जाग गए, माँ को ढूंढ़ने लगे और पता चले कि वह घर में नहीं है, ताला लगाकर चली गई है तब भयभीत होकर कुछ अनहोनी हो गई तो ?--इस विचार से वह सिहर उठी। उसने निश्चय किया कि अब कभी इस तरह आधी रात को बाहर नहीं जाएगी। साथ-ही-साथ इस बात का भी अहसास हुआ कि इस निश्चय का पालन करना कितना कठिन है। दरवाजा बंद किया; कुण्डी चढ़ाकर भीतर ताला लगाया। फिर बच्चों के कमरे में जाकर दो-एक पल दोनों बच्चों को देखा और अपने कमरे में आकर कपड़े बदलकर लेट गई। उसने पुन: संकल्प किया कि भविष्य में फिर कभी रात के समय इस तरह बच्चों को छोड़कर वह कभी बाहर नहीं जाएगी—फिर खयाल आया कि अगर बच्चों की सौगंध खा ले तो इस संकल्प में भय और सावधानी के आँकड़े लग जाएँगे और वह अधिक ठोस बनेगा। लेकिन, फिर विचार आया कि जिसका पालन कर सकना असंभव है, ऐसे संकल्प के लिए बच्चों की सौगंध खाना ठीक नहीं। जब शून्य-भावना व्याप लेती है तब सारा जीवन ही एक निरर्थक डोर-सा लगने लगता है। रिवाल्वर से अपने-आपको खत्म कर लेना ही छुटकारे का एक मात्र स्पष्ट और असंदिग्ध मार्ग दिखाई देने लगता है। मर जाने की उत्कण्ठा जब भीतर से दबाव बनकर फूट पड़ती है तब मन करता है कि इसी जगह मर जाएँ, या मौत को ढूँढते हुए पहाड़ की चोटी पर अकेली चली जाए; जाने से अपने-आपको रोक ही नहीं सकती। क्या करने जा रही हूँ, इसका अहसास तो होता है, लेकिन उसे रोकने की शक्ति बिलकुल नहीं रहती। दबाव इतना बढ़ जाता है कि पहाड़ की ऊँची चोटी तक जाकर आकाश और दिगत के अंतराल वाले शून्य-वलय में अकेली मर जाने की इच्छा अतिम चरण तक पहुँच जाती है। लेकिन, वास्तव में कभी मरी नहीं। ट्रिगर नहीं दबाया। क्यों नहीं दबा सकी भला ? इस जीवन के प्रति ऐसा कौन-सा अज्ञात आकर्षण है, जिसे समझ नहीं पाती ? आँखें बंद करके जैसे ही मन की गहराई को कुरेदकर देखने लगी तो भीतरी वेदना उमड़ पड़ी। ऐसी मर्मांतक वेदना जो देह और मन दोनों में एक साथ व्याप्त होकर मन-शरीर को अस्थिर कर देती है। लगा, मरने से ही छुटकारा मिलेगा। कराह की पीड़ा से मिचली-सी हुई। बिस्तर पर करवटें लेते-लेते छटपटाती रही। फिर बाहर निकलने का रास्ता न पाकर अंधे उफान की तरह पीड़ा सुराग पाकर मुख के द्वारा रुलाई बनकर फूट पड़ी। उफान की गर्त में फँसे गरम आँसू आँखों से छलक पड़े। उस वेदना में भी इस बात का बराबर ध्यान

रहा कि बच्चों को पता न चल जाए। इसलिए चादर के छोर को मुँह में दबाकर आवाज पर रोक लगाकर जी भरकर रोई। रुलाई का आवेग इतना था कि मानो छलकता हुआ दिल कहीं टूट न जाए। औंधी लुढ़क कर पलंग के सिरे पर अपना माथा पीटने लगी। रुलाई बढ़ती गई, बढ़ती ही गई; बहुत देर बाद रुलाई रुकी। तकिए पर सिर टिकाए चुपचाप पड़ी रही। आँखें दुखने लगीं। होश उड़ गया। नींद में बदल गया। कमरे की बत्ती जलती ही रही।

कुछ देर बाद आँख खुली। वह कहाँ है, इस पसोपेश में तपाक से उठ बैठी। धीरे-धीरे होश में आ गई। वह घर में ही है। अपने ही बिस्तर पर बैठी है। बत्ती जल रही है। दीवार-घड़ी अढ़ाई का समय बता रही है। आँखों में चिपड़, होठों की कोर में लार चिपकी है। बाथरूम में जाकर आँखें धो ली, कुल्ली की, आँसुओं से चिपचिपाये गालों पर पानी फेर लिया, फिर अच्छी तरह मुह धोकर पुन: बिस्तर पर लुढ़क गई। जी हलका हुआ। क्लेश और दु:ख से मुक्त, सहज होने अहसास हुआ। जी खोलकर रो लेने से मन कितना हलका हो जाता है! लेकिन, कंबख्त रुलाई आती ही नहीं। जब जी चाहे तब रो लेने की अगर इच्छा-शक्ति होती तो! —इस चाहत में मन का चैन तलाशते हुए बत्ती बुझाकर आँखें बंद कर लीं। कुछ देर में नींद आ गई। ऐसी गहरी नींद सोई कि विजय के आकर कंधा हिलाकर जगाने तक जागी नहीं। विजय हाँक लगा रहा था—"माँ, पट्टम्मा आयी हैं। चाभी कहाँ रखी है, मिल नहीं रही है।" आधी रात में वह घर लौटी थी। अगले दरवाजे का ताला लगाकर शायद भूलकर चाभी अपने बैग में रख ली होगी। लेकिन, जागते ही रात के घटना-चक्र की याद मे मन पुन: बोझिल हो गया।

सोमशेखर को यह स्पष्ट हो गया कि जब तक वह अमृता से दूर नहीं होगा चैन के साथ जी नहीं सकेगा। हम दोनों की निकटता हो या मेरे जीवन की अन्य घटनाएँ ही हों, उनके बारे में नोच-नोचकर पूछती है। अपनी धूर्त बुद्धि से ऐसे बेतुके अर्थ लगाती है कि जिसकी मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। अपने मनमानी अर्थ को सामने रखकर जिग्ह करने लगती है। मुझे अपराधी बनाती है। तीव्र प्यार की तरह तीव्र क्रूरता भी उसका स्वभाव है। सोमशेखर इस नतीजे पर पहुँचा कि अमृता एक प्रकार से क्रूर संतोषी स्वभाव की है। उसने अपने मन को स्थिर करने की चेष्टा की कि जब उसका स्वभाव ही ऐसा है तब उसके लिए परेशान होना बेकार है। उसके साथ समय बिताने के लिए अपने दफ्तर का समय बदल लिया। जब सारे लोग कामों में व्यस्त रहते हैं, ग्राहकों का आने का समय होता है, इमारतों का काम चलता रहता है और खुद काम की निगरानी करते हुए सलाह-मशविरा देना पड़ता है उस दोपहर के बारह से शाम के साढ़े चार-

पाँच के महत्त्वपूर्ण क्षणों में उसका अमृता के घर रहना कारोबार को बढ़ाने का ढंग नहीं है। वह अपने-आप को कोसने लगा। इस तरह अगर वह हर रोज जाने लगा तो भला नीलकण्ठप्पा क्या समझेगा ? ग्राहकों से वह साँठ-गाँठ कर लेगा तो अपने कारोबार की बदनामी होगी—यह विचार एक दैत्याकार लेकर उसके सामने आया। ऐसी बात नहीं कि आज तक यह प्रश्न उठा ही नहीं। जब कभी यह प्रश्न उठता तब अमृता के साथ समय बिताने की चाहत किसी-न-किसी रूप में अपना समर्थन करती रही थी। पैसा कमाना ही सब कुछ नहीं है। अपने कारोबार को बढ़ाना ही जीवन का एक मात्र उद्देश्य नहीं है। उसके पास रहने में जो तृप्ति, सफलता, धन्यता का अहसास होता है वह क्या मैसूर शहर के लिए या सारे कर्नाटक के लिए नंबर-वन वास्तुकार बनने से हो सकेगा ? —इस प्रकार के समर्थन अपने-आप किसी निर्झर की तरह फूट पड़ते। आज कुछ और ढंग की ही प्रेरणा उसके मन में जागी और उसने तय किया कि इतने दिनों तक कारोबार की जो अनदेखी की सो की, अब और लापरवाही नहीं करेगा।

औरत के मोह के कारण ही तो सामान्यतया कारोबारी व्यक्ति फिसल जाता है। इस रूढ़ बात को वह अपने-आप से बार-बार चेताने लगा। उसने बंबई में भी देखा है, औरत और शराब के चक्कर में ऊँचाई पर रहने वाले भी फिसल जाते हैं। उसे कितने ही दृष्टांत याद आए जो समय ही बरबाद नहीं करते बल्कि अपने काम के प्रति निष्ठा भी गँवा देते हैं। बंबई वाली से अपने साथ भी यही होता था। लेकिन वह हर रोज की बात नहीं थी। सप्ताह में एक या अधिक से अधिक दो दिन, केवल चार-पाँच घण्टे मात्र। नवीन के कारण दफ्तर के समय में कोई दिक्कत नहीं होती थी। फिर, सोमशेखर को एक सूक्ष्म भेद भी दिखाई पड़ा। उसके संपर्क में उल्लास रहता था, थका देने वाली अड़चन नहीं रहती थी। इसीलिए जब उससे दूर हुआ था तब मैंने हिम्मत नहीं हारी थी। दो-चार दिनों तक ठगे जाने की भावना रही, लेकिन जब उसके व्यक्तित्व का साफ-साफ अंदाजा हुआ तब ठगे जाने की भावना से भी मुक्त हो गया था। लेकिन, अमृता उसकी तरह नहीं। बड़ी उग्र भावनाएँ रखती है; मुझमें भी उग्र भावनाएँ जगाती है। इसीलिए उससे छुटकारा पाने के लिए दृढ़ संकल्प-शक्ति की आवश्यकता महसूस होती है। बंबई वाली के साथ जवानी के उन्माद के दो-चार बार शरीर-सुख की चरम अवस्था को पहुँचकर फिर अगले सप्ताह अमुक दिन अमुक समय मिलने की उमंग, उल्लास लिये उस उन्मादपूर्ण आलिंगन से विदा लेते थे। न दुःख था, न विरह की पीड़ा, न अश्रुपूरित चेहरे ही थे। विदाई के आखिरी क्षणों में परस्पर निहारते समय भी आँखों से शरारत-भरी चमक बिखेरते हुए कदम बढ़ाते थे। अगले मिलन के दिन तक निरापद होकर चैन से रहते थे। वास्तव में वह एक प्रकार से पगा हुआ उत्तेजनात्मक मधुपान था। लेकिन, यह ? हृदय,

मन और बुद्धि ही नहीं, वरन सारे शरीर में, रक्त की धमनियों में, हड्डियों के ढाँचे में व्याप्त होकर पीड़ित करने वाली भावना-शक्ति है। उसने पुन: संकल्प किया कि चाहे कितनी ही तकलीफ़ हो, उससे छुटकारा पाए बिना चारा नहीं।

दूसरे दिन दफ्तर पहुँचते ही नीलकण्ठप्पा से बोला, "आज से मैं अपना समय बदलूंगा। यहीं पास वाले होटल में दस मिनट में लंच करके आ जाऊँगा। शाम के सात बजे तक दफ्तर में ही रहूँगा। अगर किसी को अपाइंटमेंट देना हो, तो इस बात को नोट कर लीजिए। दोपहर के समय घर जाने से टाइम वेस्ट होता है। और वह भी दफ्तर का समय।"

नीलकण्ठप्पा ने बड़े विनय से कहा, "हाँ, सर!"

इसी संदर्भ में एक और मौका निकल आया। रमाविलास मार्ग पर दफ्तर के लिए उसे जो जगह मिली थी वह बहुत तंग थी। अपनी बैठक, ग्राहकों का प्रतीक्षा-कक्ष, नीलकण्ठप्पा के लिए खाका बनाने वाली मेज, डेस्क तथा नकल उतारने वाला यंत्र आदि सभी के लिए एक ही बड़े कमरे में जगह बनानी पड़ी थी। ग्राहकों के लिए एकांत में बैठकर गोपनीय अंशो की चर्चा करने की सुविधा नहीं थी। जब कोई ग्राहक अपने से चर्चा करता हो तब प्रतीक्षा करते बैठे हुए लोग बीच में टाँग अड़ाकर वास्तुकार से भी बढ़-चढ़कर राय-मशविरा देने लगते। किसी दूसरी जगह की तलाश थी, लेकिन मिलना मुश्किल था। अब अचानक मिल गई थी—अपने एक ग्राहक के मार्फ़त। देवराज अरसु मार्ग में दुकान के ऊपरी तल्ले की सात सौ फुट की चौरस जगह। आधुनिक ढंग पर कक्षों का विभाजन किया जा सकेगा। खास अपने दफ्तर के लिए एक अलग शौचालय, प्रतीक्षा करने वाले ग्राहकों के लिए आरामदेह सोफ़ाओं से सजा हुआ अलग कक्ष बनाया जा सकता है। अब इस जगह को कभी न छोड़ने का तय किया। लेकिन, अढ़ाई लाख रुपया कीमत। पंद्रह दिनों में भरनी होगी। अपनी सारी पूंजी भुनवाने पर भी दो लाख तक की व्यवस्था हो सकेगी। ऊपर पचास का जुगाड़ करने के साथ-साथ अपनी रुचि के अनुसार, एक वास्तुकार के कार्यालय के रूप में देखने वालों की आँखों में भरने लायक सजावट करने के लिए पचास हजार—कुल मिलाकर एक लाख चाहिए। तुरंत उसे नवीन की याद आई। जरूर देगा! लाख न सही, पचास की जुगाड़ तो करेगा ही। सजावट का काम कुछ दिनों के लिए मुलतबी किया जा सकता है। लेकिन, मन में निश्चय किया कि पूरी सजावट हुए बिना स्थानांतरित नहीं करेगा। पूरी रक़म अदा करके एक माह के अंदर रजिस्ट्रेशन करवाने का अनुबंध करके पचास हज़ार की पेशगी दी और दूसरे दिन बेंगलूर होते हुए रेलगाड़ी से बंबई के लिए निकल पड़ा। अधिक-से-अधिक पांच दिन में लौट आने का कार्यक्रम बनाकर मिलने वालों को छठे दिन का अपाइंटमेंट देने की सूचना नीलकण्ठप्पा को दे दी।

बेंगलूर पहुँचने तक मन में नए दफ्तर का आलेख बनता ही रहा था। अपनी खुद की जगह होगी। अपनी इच्छा के अनुसार सजा ली जाएगी। रजिस्ट्रेशन खर्च का खयाल ही नहीं किया। नवीन से एक लाख लेने से काम नहीं चलेगा, सवा लाख माँगना होगा। सात-सौ वर्ग फुट; यानी बंबई वाली जगह साढ़े-चार सौ है। कम जगह मे बड़ा कारोबार चलाना बंबई की विशेषता है। अच्छी मजावट करनी होगी। मैसूर, मण्डया, हासन, कोडगु, दक्षिण कन्नड़ जिले के ठेकेदार, इंजीनियर, कॉफी प्लाटर, जमींदार, नगर-निगम के लोग— सभी के पते लेकर निमंत्रित करना होगा। बड़े पैमाने पर उद्घाटन करना होगा, चाहे भोज वगैरह में दस हजार ही क्यों न खर्च हो जाएँ। अब कारोबार में मन लगाकर काम की मात्रा यों बढ़ा लेनी होगी कि एक वर्ष के भीतर बी० ई० पास दो असिस्टेंट्स तथा एक पूर्ण-कालिक अकाउंटेंट की नियुक्ति कर ले। सोमशेखर इन्हीं विचारों की लहर में डूबता-उतरता चला जा रहा था। बेंगलूर में रात की गाड़ी में सवार होकर सो गया और जब सवेरे चट्टानी मैदानों पर धूप दौड़ने लगी तब जागा। जागते ही एक प्रकार के शून्य भाव का अहसास हुआ। नवीन पैसा देगा ही। अगर जी-तोड़ परिश्रम किया गया तो दो-चार जिले ही नहीं बल्कि बेंगलूर तक भी कार्य-क्षेत्र बढाया जा सकता है। तीन माह के भीतर ही घूमने के लिए एक कार खरीदी जा सकती है। फिर और क्या चाहिए ? बंबई की तरह ही व्यस्त जीवन हो जाएगा। मैसूर इसलिए आया कि यहाँ हवा और रोशनी की कोई कमी नही। तुरंत मन में विचार उठा कि बाज आए इस नए दफ्तर से और मैसूर से। पुन: लौटकर बंबई में नवीन के साथ उसकी साझेदारी मे काम करने का झंझट भी नहीं चाहिए। अपने से जितना बन सकता है उतना काम करके अपने हिस्से का पारिश्रमिक लेकर चैन से रहना ठीक रहेगा। बंबई वाली से संबध जब टूटा था तब दो-चार दिन के लिए कुछ खोया-खोया-सा लगता रहा। किंतु, जीवन में अँधेरा नही छाया था। बस, यों ही सिलसिला चल पड़ा था; दो साल तक चलता रहा; फिर टूट गया—इस साधारण उपेक्षा के कारण दिल नहीं टूटा था। उन दिनों पत्नी जीवित थी; सम्भव है, इसी वजह से संबंध टूटे जाने की पीड़ा उतनी तेज नही थी ? शाक-एब्ज़ार्बर की तरह घर में पत्नी रहे; बाहरी प्रणय व्यापार की आशा-निराशाओं को सोखकर समतल बनाने में सुविधा होगी। अब भी अगर मैं दूसरा ब्याह कर लूं तो ? जब मैसूर की यात्रा पर आए थे तब नवीन और इंदुबेन ने भी यही कहा था। इंदुबेन ने भौहें नचाकर जोर देकर कहा था कि आज के ट्रेंड में चालीस की उम्र तो पहले ब्याह की होती है। अगर ब्याह करता तो शायद अमृता से संपर्क नहीं होता ! फिर भी कहा नहीं जा सकता कि स्त्री-पुरुष के आकर्षण मे कौन-सा अंश साधक बनता है और कौन-सा बाधक ? वह उठकर शौच के लिए चला गया।

खिड़की के पास बैठकर पीछे की ओर दौड़ते हुए मैदान, धूप और चट्टानों को निहार रहा था। सहसा बंबई की चिलचिलाती धूप चमक उठी। साधारणत:, चप्पल बाहर छोड़कर भीतर प्रवेश करने की अपनी आदत थी। दबे कदमों से भीतर प्रवेश करके किसी की आजमाइश करना अपना उद्देश्य ही नहीं था।

अगर थोड़ी-सी भी कल्पना होती कि बंबई वाली ऐसी है तभी आजमाइश करने की बात होती। एक बार कुशल-समाचार लेने संयोग से उसके घर गया था। कुछ दिन पहले वाली भेंट में उसने बताया था कि उसके पति शहर में नहीं हैं, सरकारी काम पर जिनिवा गए हैं। वह समय भी बच्चों का स्कूल जाने का था। इस प्रत्याशा से भीतर कदम रखा था कि एक अनिरीक्षित सुख-समागम का संयोग हो जाए। दरवाजा खुला था। दबे पाँव भीतर जाकर दाहिनी ओर मुड़ा, उसका संगीत अभ्यास का कमरा था। तबला और तानपूरे के पीछे तबलची की बाँहों में सोयी थी। गंदा पाजामा, पान से भरा मुँह, खुरदरी दाढ़ी, अनपढ़ चेहरा। बंबई वाली ने मुझे देखा। मैंने उसे देखा। सिर्फ तबलची पिये था। वह पीती नहीं थी। अगर पीती भी थी तो अपनी बर्दाश्त के अंदर, ताकि नशा न चढ़े। वे दोनों पूर्वभावी क्रिया में लगे थे। मेरा सिर चकराने लगा। मुझसे वहाँ रहा नहीं गया। उल्टे पाँव मुड़ पड़ा, चप्पल पहनकर सीढ़ियाँ उतरकर मुड़े बिना उसे डाँटने का मन हुआ कि बस, यही है तुम्हारी औकात ? यही है तुम्हारी निष्ठा मेरे प्रति ! लेकिन डाँटा नहीं। भविष्य में कभी इसका जिक्र भी नही किया। उससे मिला ही नहीं। अगले बृहस्पतिवार को उसकी सहेली के फ्लैट में मामूली तौर पर मिलने का सिलसिला मैंने ही तो तोड़ा था। शायद वह इंतजार करके चली गई होगी। या हो सकता है कि मेरी डाँट के डर से आई भी न हो। डाँटा क्यों नहीं ? क्या घिन के कारण या निराशा के कारण अथवा विश्वासघात की पीड़ा के कारण ? तीनों कारण हो सकते हैं। इतने वर्षों बाद आज दौड़ती रेल की एकांगी भावना में एक नया विचार जन्म लेने लगा है। उसने कभी अपने साथ इस अर्थ की बात नही की थी कि मैं ही एक मात्र उसके जीवन का यार हूँ और मेरे सिवा कोई और उसका हकदार नहीं। निष्ठा और ईमानदारी के शब्दों का उसने कभी प्रयोग नहीं किया था। हम दोनों की शारीरिक उत्कट इच्छा की चर्चा करती थी। मेरी मैथुन-शक्ति को सराहती थी। स्तंभन के सारे विधानों की शिक्षा देकर वह मेरी गुरु बनी थी। उसने कहा था कि शिष्य से हारने में ही गुरु की सफलता है। एक दिन उसने पूछा था, "शेखर, तुम्हारी कितनी प्रेयमियाँ हैं ?" मुझे गुस्सा आया था। "आखिर तुमने मुझे क्या समझ रखा है ?"—मैं उस पर टूट पड़ा था। इस पर वह बोली थी, "इसके लिए क्यों गरम होते हो ? अगर तुम्हारी दस प्रेयसियाँ भी होंगी तो मुझे जलन नहीं होगी। तुम्हारे तौर-तरीके से ही पता चलता है कि तुम्हारी अपनी कोई ऐसी नहीं है।

इससे खुशी भी होती है, चिंता भी होती है।" मैंने समझा था कि उसकी यह आलोचना केवल मेरे बारे में है। मैं समझ ही नहीं पाया था कि इस टिप्पणी के द्वारा उसका खुद अपनी ओर भी इशारा था। अब जब पहली बार यह बात समझ में आई तो उसका मुँह अपने-आप खुल गया। खुले मुँह का प्रतिबिंब बाहरी धूप और मैदान की पृष्ठभूमि में दौड़ती रेल की खिड़की के काँच में दिखाई पड़ा। कुछ समय बाद अहसास हुआ कि बंबई वाली ने अपने को अधपका जानकर छोड़ दिया है। अब निष्ठा और ईमानदारी की प्रतीक्षा नहीं होती तब भावनाओं का बोझिलपन भी नहीं होता, सारा हलका-हलका-सा महसूस होने लगता है।

केटरिंग वालों को रात में ही आर्डर दिया गया था। केटरिंग के लड़कों ने नाश्ते का पैकेट और कॉफ़ी का फ्लास्क लाकर रखा। नाश्ता करते समय अमृता की याद सताने लगी। उसकी अपेक्षा वह अधिक अनुभवहीन ही नहीं, बल्कि बिलकुल भोंदू है। उसमें कोई जागृति नहीं। पहली बार अपने कारण जाग्रत होने लगी है। आपस की सच्चाई जानने के उसके आग्रह के कारण मैंने अपना बंबई-वाला सम्बन्ध बताया था। लेकिन, वह उसे बरदाश्त नहीं कर सकी। कैसे सोचते रहती है! अमृता की इस आदत की याद हो आई तो मन करने लगा कि बाज आए इस निष्ठा से। कुछ समय बाद केटरिंग वाला लड़का आकर कॉफी का फ्लास्क ले गया। बाहर की चट्टान, धूप और धूप फैलाने वाले गोलकार आकाश को निहारते रहने से एकाकीपन का अहसास होने लगता है। इसलिए वह अपनी जगह पाँव फैलाकर सो गया। पंखा घूम रहा था। आँखें बंद कर लीं। रेल आगे-ही-आगे दौड़ रही थी। हौले-हौले बंबई की निकटता का अहसास होने लगा था। नवीन, इंदुबेन और दिगंत की याद आई। कल उनके साथ होने का उत्साह मन में भर गया। धीरे-धीरे नींद आ गई।

दस-पंद्रह मिनट बाद जब आँख खुली तो अहसास हुआ कि वह मैसूर से दूर, बहुत दूर चला जा रहा है। मन को ढाँढस था कि अभी चार दिन बाद, यदि संभव हो सका तो तीसरे ही दिन इसी रास्ते से मैसूर लौट आएगा। लेकिन मैसूर छोड़कर दूर चले जाने की बात पीड़ादायक लगी। कुछ सूना-सूना-सा लगा। उस लड़के की तरह अहसास होने लगा जो अपना गाँव छोड़कर पढ़ाई के लिए पहली बार दूर के गाँव जा रहा हो। क्या रखा है उस शहर में? कितने साल बबंई में नहीं बिताए? भीड़भाड़, सँकरीलेपन को छोड़कर मैसूर में ऐसा क्या नहीं है जो बंबई में न हो? चार दिन के लिए बाहर जाने में ऐसी दिक्कत क्यों हो रही है? —अपने-आप से उसने प्रश्न किया। कुक्करहल्ली तालाब की मेंड? चामुंडी पहाड़? ललित-महल का मैदान? फौव्वारेवाला ताल? गंगोत्री का प्रदेश? हर एक की जब अलग-अलग समीक्षा करने लगा तो हर वस्तु अमृता की याद में घुलकर नया रूप लिये सामने आने लगी। वह खुद चौंक गया। आप कभी उसके

साथ कुक्करहल्ली बाँध या गंगोत्री नहीं गया। लेकिन वे सारे-के-सारे अमृता की याद में सराबोर होकर खड़े हैं। शायद इसी को या इसी प्रकार की चीजों को वेदांतियों ने भ्रम कहा होगा—इसी सोच में डूबा, घूमते हुए पहियों की आवाज़ सुनते वह सोता रहा। मन इस विचित्र मीमांसा में था; किंतु, ठीक-ठीक जवाब नहीं मिल पाया। कुछ समय बाद कोई स्टेशन आया; गाड़ी रुक गई। खिड़की के बाहर पेपर वाले की आवाज़ सुनाई दे रही थी। उठकर बैठा और खिड़की से ही आवाज़ देकर उस दिन का पेपर खरीद लिया, फिर पढ़ने लगा। गाड़ी चल पड़ी। लगभग तीस-चालीस मील का सफ़र कट गया। जब दोपहर का खाना आने को था तब एक और बात दिमाग में कौंध गई: जब बंबई का चित्र सामने आ जाता है तब बंबई वाली की याद नहीं आती। जब मैं उसकी सहेली के फ्लैट वाली गली में जाता हूँ जहाँ हम मिला करते थे, तब मुझे कोई पुरानी घटना की कोई हलकी-सी लहर-भर दौड़ जाती थी, लेकिन वह कभी गहरी याद बनकर नहीं आती थी। फिर वह हलकी-सी लहर और भी क्षीण हो गई थी। इसी के बारे में सोच रहा था कि तभी केटरिंग वाले लड़के ने खाना लाकर रख दिया।

लौटते समय सवेरे की फ्लाइट से बेंगलूर आकर सीधा वहाँ से बस में मैसूर आया। बैग लिये ही दफ्तर आया। अलग-अलग कामों के बारे में नीलकण्ठप्पा से सारा ब्यौरा प्राप्त करके नीलकण्ठप्पा द्वारा जाँचे गए बिलों पर हस्ताक्षर करने से पहले वह खुद एक सरसरी निगाह दौड़ाया करता था। फोन बज उठा। हिसाब-किताब के बीच अगर फोन की घंटी बजने लगे तो हिसाब में खलल पड़ने के कारण वह खीज उठता था। फिर भी उसने चोंगा उठाकर 'हैलो' कहा। "सोमू, बंबई से कब आए ?" आवाज से ही वह उत्तेजित हो उठा। दिल की कली खिल गई। तुरंत जवाब देना भी उसे सूझा नहीं। यों तो यह फोन-काल अप्रत्याशित था। इतने दिनों में उसके स्वभाव से काफी परिचित होने के कारण सोमशेखर को यह अजीब नहीं लगा। या तो अमृता बुलाती थी या फिर वह स्वयं चला जाया करता था। "सुनो," वह कहने लगी, "तुम्हारे सामने नीलकण्ठप्पा हैं। वे अभी लंच के लिए नहीं गए। तुम्हें गुस्सा आ रहा है। मन मुझपर उबल पड़ने के लिए मचल रहा है। कहना चाहते हो कि कौन गधी मुझसे सवाल कर रही है। जवाब न देकर जबान सी लेने को भी मन करता है। बिना बोले कान पर चोंगा लगाए चुपचाप तमतमाता चेहरा लिये बैठे रहोगे तो भी नीलकण्ठप्पा कुछ-न-कुछ गलत-सलत अर्थ लगा लेंगे। इसलिए सीधे मुँह मेरी बात का जवाब दो। मैं तुम्हें ढूँढ़ते तुम्हारे घर गई थी। निचले तल्लेवाले तुम्हारे घर के मालिक ने बताया कि बंबई गए हैं, आज सवेरे आएँगे। मैंने पूछा, अब कैसे बंबई जाना हुआ ? यों तो जानती हूँ कि दूसरों के मामले में टाँग नहीं अड़ाना चाहिए, लेकिन मेरा अपना

दिल बेचैन हो उठा था। इसलिए पूछा। मालिक ने बताया कि देवराज अरसु मार्ग पर दफ्तर के लिए नई जगह मिली है, खरीदने के लिए पैसों का बन्दोबस्त करने गए हैं। उसी दिन तुम्हारे दफ्तर आई और कहा, 'आप नया आफिस खरीद रहे हो न ! इसी सिलसिले में सोमशेखर बंबई गए हैं। जल्दी में वे मुझसे कहकर नहीं गए। चलिए, कौन-सी जगह है, देख लूं।' मै जगह देखकर आई। बड़े मौके की जगह है। इसका मतलब हुआ कि तुम अपने कारोबार की सारी बातें मुझसे कहते हो और कभी-कभी मिलते भी रहते हो। इसका अहसास नीलकण्ठप्पा को हो चुका है। मैं इसकी परवाह नहीं करती। इसीलिए उनमें यह बात कही। सुना कि अढाई लाख में खरीदी है। रजिस्ट्रेशन के पच्चीस हज़ार। फिर डेकोरेशन, पार्टिशन आदि के लिए पचास तो चाहिए ही। कुल सवा-तीन की लागत है। तुम्हारे पास कितना है ? बंबई से कितना लाए ? बताओ। अगर झिड़कना चाहते हो कि तुम कौन होती हो दखल देने वाली, नाहक सिर खाने वाली, तो तुम ऐसा नहीं कर सकते; क्योंकि नीलकण्ठप्पा तुम्हारे सामने बैठे हैं। हाँ, अलबत्ता घर आकर मनमानी डाँट-फटकार सकते हो। अब बताओ, बंबई से अपने मित्र नवीन शाह से कितना लाए ?"

जवाब दिए बिना चारा ही नहीं था। डाँट-फटकार की बातें, जिसे नील-कण्ठप्पा सुने, ठीक नहीं। सच है कि अपना पारा चढ़ा है। अमृता की आवाज सुनकर उत्तेजित हुआ था, यह भी सच है। सीधा जवाब देकर छुट्टी पाने के लिए बताया, "सवा !" "इतनी रकम के साथ क्या अकेले रेलगाड़ी से आए ? सुरक्षा की दृष्टि से पूछ रही हूँ।"

"रेलगाड़ी से नहीं। सवेरे फ्लाइट से बेंगलूर आकर वहाँ से बस से सीधा दफ्तर आया। डी० डी० बनवा लिया है। कैश नहीं।"

"अच्छा ? डी० डी० के मायने ?" आवाज़ में आश्चर्य भरा था।

"मासूम बनने का नाटक मत करो। कितने सारे कारोबार का अनुभव है !"

"मज़ाक नहीं कर रही हूँ। चेक और ट्रांसफर के अलावा मैं बेंक का कोई व्यवहार नहीं जानती। बताओ न, डी० डी० क्या होता है ?"

"जब हम किसी अमुक बेंक में पैसा भर देते हैं तब उस बेंक के मैनेजर हम जिस जगह का चाहते हैं उस जगह के बेंक मैनेजर के नाम एक प्रकार का अधि-कृत चेक लिखकर देते हैं। फिर गुप्त रूप से यहाँ के मैनेजर को इसकी सूचना भी देते हैं। चेकनुमा जो कागज़ हमें दिया जाता है उसे डी० डी० यानी—डिमाड ड्राफ्ट कहते हैं।"

"सोमु, मेरी इतनी उम्र हो गई। इतनी छोटी-सी बात नहीं जानती थी। तुम जो डी० डी० लाए हो, क्या उसे लाकर मुझे बताओगे ? देखूं, कैसा होता है। उसे पेश करते ही पैसा देंगे न ? बस से उतरकर सीधा दफ्तर आए हो। तुम्हारा

स्कूटर घर में है। ऑटो से चले आओ। वरना मैं कार लेकर आऊँगी। लौटते समय तो मैं छोड़ने आऊँगी ही। अब बताओ, क्या तुम ऑटो से आओगे या मै कार लेकर आऊँ? बताओ, कब लेने आऊँ? छह दिनों से बाहर थे, जरूर काम-काज देख रहे होगे। तत्काल आकर मैं तुम्हें डिस्टर्ब नहीं करूँगी। सिर्फ इतना बता दो कि कब आ सकोगे? इस भौंदू को पहले डी० डी० दिखाकर फिर बैंक में भुना लेना। अगर कल भुना लोगे तो बैंकवालों का कोई ऐतराज तो नहीं होगा न?"

"छह महीने की अवधि रहती है। दो के लगभग आऊँगा।"—वह उत्तेजित होकर बोला। अमृता ने यह बताकर फोन नीचे रख दिया कि तब तक वह खाना नहीं खाएगी।

वह जिस बिल की राशि जोड़ रहा था उसे दुबारा जाँचकर भुगतान की तरह लिख कर हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद वह उस घर के लोहे का हिसाब ले बैठा जिसे तुरंत पूरा करना था। नीलकण्ठप्पा के लंच से लौटने तक उस हिसाब से निपटकर नीलकण्ठप्पा द्वारा बनाए गए एक नक्शे को भी जाँच लिया था। नीलकण्ठप्पा के लौटने पर हाथ में ब्रीफकेस लिये वह लंच के लिए निकल पड़ा। जब ऑटो में बैठा तब इस अहसास से मन हलका हुआ कि आखिर अमृता के साथ का तनाव कम हो गया है और अब वह उसके घर के लिए निकला है। अपने को बोलने का मौका ही न देकर उसने जिस चालाकी से उसे अपने यहाँ जाने की बात पक्की कर ली थी, इसका उसे अहसास हुआ। 'रॅस्कल' कहा। यह हार्डिज चौक, मृगालय के मोड़ पर सामने दूरी पर ललित महल, दायीं बगल वाले आकाश को परदा बनाये खड़ा चामुंडी पर्वत—लगा कि इधर आये मानो युग बीत गए हों। यों तो हिसाब लगाने पर अमृता के घर से नाराज होकर लौटे कुल तेरह दिन हुए थे।

उसकी कल्पना के अनुसार अमृता गेट पर खड़ी थी। चमकते सफेद हीरे के कनफूल। अपने आगमन के कारण खुशी के मारे उन हीरों से भी अधिक चमकता हुआ उसका कोमल चेहरा। लगा कि उसमें क्रूरता का अस्तित्व झूठ है। इशारे से भौंकते कुत्ते का मुँह बंद करके सोमशेखर के साथ वह भीतर आई। मोहार का दरवाजा बंद करके कुंडी चढ़ाकर भरसक सोमशेखर से लिपटकर उसके सीने में मुँह गड़ाकर बोली, "सोमु, आज तेरह दिन में ही लगता है, तेरह साल बीत गए।" सोमशेखर को भी वह बात सच लगी। सिर पर हाथ सहलाते हुए उसने अमृता का चेहरा ठीक ढंग से देखा। खान-पान, नींद के बिना किसी बनवासी की तरह वह सूख गया था। सोमशेखर ने उसका जिक्र नहीं किया। अमृता ने भी नहीं किया। खुद उसे बेसिन तक ले गई। नल घुमाकर साबुन से हाथ धुलवाये। थाली लगाकर खुद भी उसी थाली में खाया। फिर बाँह पकड़कर उसे अपने

बेडरूम में ले गई। पलंग पर तकिए की टेक लगाकर बिठाकर बोली, "बताओ, डी० डी० कैसे होता है?" आँखों से बच्चों-सा कुतूहल झाँक रहा था। सोमशेखर ने ब्रीफकेस खोलकर उसमें से प्लास्टिक का लिफाफा निकाला। उस लिफाफे से डी० डी० निकालकर अमृता के सामने रख दिया। बड़े आश्चर्य और कुतूहल से उसे हाथ में लिये अमृता बोली, "ओऽफ, चेक की तरह ही है। मशीन से आँकड़े लिखे हैं। दो हस्ताक्षर हैं—एक मैनेजर का और दूसरा अकाउंटेंट का। इस गोबर-गणेश को पता ही नहीं था। कहाँ, वह प्लास्टिक का लिफाफा मुझे दो।" लिफाफे में डी० डी० डालकर उसे लिये वह कमरे के बाहर दूसरे कमरे में चली गई। खाली हाथ लौटकर सोमशेखर की बगल में बैठते हुए पूछा, "जिसने यह डी० डी० भेजा हो उसी को वापिस लौटाने पर क्या बैंक वाले उन्हें पैसा देंगे?" "हाँ।" "तब तो," कहते हुए उसी कमरे के कोने वाली अपनी टेबुल से कागज, पैड और पेन लाकर सोमशेखर के हाथ में थमाते हुए बोली, "मैं जो कहूँ, लिखो—प्रिय नवीन, माँगते ही तुमने पैसा दिया। लेकिन, यहाँ लौटते ही मुझे जो एक रकम मिलनेवाली थी वह मिल गई। इसलिए डी० डी० लौटा रहा हूँ। पैसा रखो। फिर कभी आवश्यकता पड़ने पर लूँगा।···या इसी तरह तुम्हारे और नवीन के बीच के स्नेह का जैसा सलूक हो उस ढंग से लिखकर मेरे हाथ में दो। मैं उन्हें रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेज दूँगी।"

सोमशेखर को इस बात की कल्पना या आभास तक नहीं हुआ था कि अमृता ऐसा कुछ करेगी। फिर आशंका भी हुई कि जब वह स्वयं कितनी तंगी में जी रही है, तब इतनी बड़ी रकम कैसे जुटा पाएगी? चाहे कैसे ही क्यों न जुटाए, किन्तु, अब तो उसने अपने को फँसा लिया! न जाने क्यों, सोमशेखर का मन इस व्यवस्था का प्रतिरोध कर उठा। प्रतिरोध के कारण का अहसास होने से पहले वह बोला, "नहीं, यह संभव नहीं।" अनजाने में ही उसकी आवाज में रुखाई दीख पड़ी।

"क्यों, संभव क्यों नहीं?" परिस्थिति और बातों के सिलसिले को अपने नियंत्रण में रखनेवाले वकील के धीरज और आत्मविश्वास के अंदाज में अमृता ने पूछा।

"उतनी दूर जाकर माँगते ही उसने दे दिया। अब यहाँ पहुँचते ही लौटा दूँ, तो क्या समझेगा भला?"

"इसीलिए तो तुम्हारे हाथ में कागज-पेन थमाया है। इस ढंग से लिखो कि वह बुरा न माने।"

"यह संभव नहीं।"

"क्या संभव नहीं? डी० डी० लौटाना और मुझसे लेना?"—अमृता ने सीधा प्रश्न किया। सोमशेखर को इस एकदम सीधे प्रश्न का जवाब देना कठिन

लगा।

तुरंत जो जवाब सूझा, कहा, "मैं जानता हूँ कि तुम्हारी आर्थिक स्थिति कैसी है। बहुत दिन पहले ही तुमने मुझसे पूछा था कि इस पुराने बड़े घर के रंग-व-रोगन के लिए, जहाँ-तहाँ टूटे हुए फर्श की मरम्मत के लिए, कंपाउंड की मरम्मत के लिए क्या लागत आएगी। मैंने ऐस्टिमेट लगा कर बताया था कि कम-से-कम तीस हज़ार तो लगेंगे। तुमने वह काम नहीं करवाया। मतलब यह कि पैसा नहीं है। ऐस्टेट का कर्जा और उसके ब्याज की बातें जानने के बाद मैं खुद परेशान हूँ कि आखिर इस समस्या का परिहार कैसे होगा। ऐसी हालत में मेरे लिए तुम रक़म कहाँ से जोड़ोगी ?"

अमृता ने उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर देखा। फिर बोली, "हम दोनों ने मान लिया है कि हमारे बीच झूठ के लिए जगह नहीं होगी। मेरे प्रश्न का ठीक-ठीक जवाब दो। बंबई की रक़म का ब्याज दोगे या नहीं ?"

"उसके मना करने पर भी मैं दूंगा। यह व्यवहार की बात है।"

"रकम के लिए तुम्हारे बंबई जाने की बात सुनकर, पता नहीं मुझे बेहद दु:ख हुआ। मुझे लगा कि ऐसी हालत में अपने सोमू के लिए अगर कुछ कर न पाऊँ तो मेरे जीने का मतलब ही क्या रहा ? अपने बैंक में जाकर पूछ-ताछ की। इस घर को रेहन रखकर पैसा देने के लिए मान गए। उसी दिन अर्जी देकर आई। कल सूचना मिली है कि लोन मंजूर हो गया है। जो ब्याज नवीन को दोगे वही ब्याज बैंक में भरो। यह रकम लो। वरना, मै यकीन मानूंगी कि तुमने मुझे अलग ही रखा है, मैं तुम्हारी कोई नहीं लगती। सोचो।"

सोमशेखर मानो कैंची में फँस गया। वह अमृता का चेहरा ताकने लगा। अमृता टकटकी लगाए उसके चेहरे को निहार रही है। संकोच और कसमसाहट से उबरकर एक नतीजे पर पहुँच कर वह बोला, "हर बात में ज़िद करना तुम्हारी आदत-सी है। प्रेम और व्यवहार को आपस में नहीं मिलाना चाहिए। मै चाहता हूँ कि अपना प्यार व्यवहार से अछूता और शुद्ध रहे। तुम भी मुझे सहयोग दो। आगे फिर कभी आवश्यकता पड़ने पर माँग लूंगा।"

वह बोली नहीं। आँखें तरेर कर सोमशेखर को घूरती रही। दो पल बाद वह लौटकर सरपट बाहर दूसरे कमरे में गई। फिर डी० डी० वाला प्लास्टिक का लिफ़ाफ़ा लिये वापस आई! लिफाफे को सोमशेखर के सामने वाले पैड पर रखकर चेहरे पर संयम का भाव लिये बोली, "प्यार याचना करने से नहीं मिलता। भीतर से उमड़ता है। कुत्ते की तरह घिघियाने से प्यार की जगह नफ़रत पदा होती है। अब समझ गई।" सोमशेखर उसके चेहरे को घूरने लगा। हार न खाने की जिद में अमृता और भी तीखी नजर से उसका सामना करते खड़ी रही। पल-भर के लिए यह मोरचाबंदी चलती रही। इतने में सहसा अमृता के

अंतराल से रुलाई की बाढ़ उमड़ पड़ी। उसके अभिमान ने रुकावट डालने की लाख कोशिश की। फिर भी रुलाई रुकी नहीं। चेहरे के कण-कण से फूट पड़ी। अनजाने में ही उसके मुंह से आँसुओं से लथपथ शब्द टपक पड़े, "सोमु, अगर तुम ऐसा सलूक करोगे तो मैं रिवाल्वर दाग कर क्यों न मर जाऊँ? किसलिए जीवित रहूँ?"

सोमशेखर ने कोई जवाब नहीं दिया। अपने सामने वाले पैड पर कागज को सम्भालकर रख लिया। पेन का ढक्कन हटाकर अंग्रेजी में सरपट लिखने लगा। वह उतावली में लिख रहा है इसका आभास न हो, इसलिए औपचारिक रूप से लिखा कि चार दिन का बंबई प्रवास अत्यंत आनंददायक रहा। इंदुबेन, दिगंत और अन्य मित्रों को भी याद किया। अंत में यहाँ रकम की व्यवस्था हो जाने की बात लिखकर सूचना दी कि साथ में डी० डी० नत्थी कर दिया है। नई जगह का इंटीरियर डेकोरेशन वगैरह पूरा हो जाने के बाद उद्घाटन के लिए बीवी-बच्चों के साथ आने का आग्रह किया। चिट्ठी के नीचे बाएँ कोने में नवीन का पता लिखा। फिर उस चिट्ठी पर डी० डी० वाला प्लास्टिक का लिफाफा रखकर गर्दन उठाकर अमृता की ओर देखा।

वह सामने ही बैठी थी, इसकी खबर सोमशेखर को नहीं थी। अमृता के हाथ में एक बड़ा कागज था—जैसे वास्तुकार घर का पैमाना तैयार करते हैं, उस तरह का। सोमशेखर की दी हुई चिट्ठी और डी० डी० को लेकर बगल में रख लिया। फिर पैड पर नक्शे को फैलाकर बोली, "एक बड़े वास्तुकार के दफ्तर का प्लान मैंने बड़े मनोयोग से बनाया है। मैं वास्तुकार तो नहीं हूँ। अब तुम सोचकर बताओ कि इसमें क्या-क्या परिवर्तन चाहते हो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार संशोधन करूँगी। कमरों का विभाजन, फर्नीचर, दीवारों की [illegible]ावट, फाइल्स रखने के लिए तुम्हारे चेंबर में तथा असिस्टेंटों के विभागों में दीवार में ही बनी बड़ी अलमारियाँ वगैरह मेरी रुचि के अनुरूप हैं। किस तरह का प्लाइवुड हो, कैसे शीशे हों, किस प्रकार के सोफ़े वगैरह हों, यह मैंने बाजार जाकर तय कर लिया है।" सोमशेखर का चेहरा खिल उठा। उसने सारी व्यवस्था कर रखी है—इस अहसास के साथ ही वह अमृता की भावनाओं में घुल गया। वह कहती गई, "देखो, यह रहा तुम्हारा चेंबर। एअरटाईट होना चाहिए; यानी कि साउण्ड-प्रूफ़। एअर-कंडीशंड करवाना होगा। यह रही [illegible] मेज़। इधर बाईं ओर टेलिफोन। फोन की घण्टी बजते ही तुम्हें पहले उठानी होगी, तुम्हारा असिस्टेंट नहीं। कौन फोन कर रहा है, इसक[illegible] पूछताछ वे लोग क्यों करें? अपने चेंबर में तुम चाहे किसी के साथ फोन पर बातें करो; लेकिन बाहर वाला कोई सुनने न पाए। असिस्टेंटों के पास वाले एक्सटेंशन रिसीवर में भी वह सुनाई न दे। ऐसी व्यवस्था हो कि तुम्हारी अनुपस्थिति में ही वे लोग फोन उठा सकें।

समझे ?" उसने हामी भरी। "क्या समझे बताओ, बड़े होशियार बनते हो !" छेड़-छाड़ और क्रोध-मिश्रित अंदाज में बोली।

फिर दीवार पर टँगी घड़ी की ओर मुड़कर बोली, "सवा तीन बज गये। चलो, अपने बैंक चलते हैं। पैसा ट्रांसफर करवाऊँगी। फिर नवीन भाई की चिट्ठी और डी० डी० भी पोस्ट करेंगे। कल ही जगह के मालिक से मिलकर रजिस्ट्रेशन की तारीख पक्की कर लो। रजिस्ट्रेशन के दूसरे दिन से भीतर का काम शुरू करवा देंगे। मैं दिन में दो बार जाकर देखभाल करूँगी। इसकी आर्किटेक्ट मैं जो हूँ। कितना पर्सेंट फ़ीस दोगे, अभी बता दो।" वह उठकर खड़ी हो गई।

हमेशा की भाँति अगले दिन साढ़े बारह बजे लंच पर आने का निमंत्रण अमृता ने नहीं दिया। लेकिन जब सोमशेखर उस समय वहाँ पहुँचा तब अमृता दो थालियाँ लगाकर प्रतीक्षा करती बैठी थी। दोनों एक साथ मुसकुराए। खाना खाते समय अमृता ने पूछा, "बंबई गए थे न, मेरे लिए क्या लाए ?"

"तुम्हारे लिए ? पुस्तकों की दुकान पर गया था। मेरी ज्यादा रुचि चित्र-कला में है। चित्र-कला के संस्कार ही मेरी वास्तुकारी में काम करते है। फिर दर्शन, मनोविज्ञान, कविता-संग्रह, उपन्यास आदि कुल तीस पुस्तकें चुन लीं। फ्लाइट से वजन ज्यादा होने के कारण ट्रक-पार्सल से भेजने के लिए नवीन से कहा है। पार्सल तुम खुद अपने हाथों से खोलोगी।"

"पुस्तकें चुनते समय क्या वास्तव में मेरी याद आई ?"

"रेलगाड़ी में जैसे-जैसे बंबई की ओर बढ़ रहा था तब जानती हो, कलेजा पीछे मैसूर की ओर खिंच रहा था ! मैसूर का मतलब तुम। वरना, बंबई में ही रह जाता। नवीन ने बड़ा आग्रह किया। कहा कि यहीं रह जाओ, तुम जितना कर सको उससे बढ़कर यहां काम है।"

"रह जाना था।"

"सच कहो"—सोमशेखर अन्वेषक की चुस्ती के साथ अमृता की आँखों में देखने लगा।

अमृता ने अपनी निगाह सोमशेखर की थाली की ओर घुमाकर कहा, "कालेज से लौटते ही तुम्हारी पसंद की मैंने भिंडी की सब्जी बनाई। तुमने छुई तक नहीं।"

सोमशेखर के नए, अपने निजी दफ्तर के भीतरी भाग का सारा विभाजन, डेकोरेशन वगैरह अमृता की कल्पना और योजना के अनुसार ही होता रहा। सोमशेखर के तकनीकी ज्ञान की जहाँ आवश्यकता हो वहीं उपयोग करती रही; किंतु, माल का चुनाव, रंग कुर्सी, मेज़, सोफा, रोशनदान के फलक का विन्यास,

सोमशेखर के चेंबर की हर बात के बारे में बारीकी से सोच-समझकर उसने निर्णय लिया। हर रोज वहाँ जाती। काम का मुआइना करती। बढ़ई, बिजली वाले, टेलीफोन वाले आदि सभी की वह खुद निगरानी करती, उन्हें सुझाव देती। नीलकण्ठप्पा को भी छोटे-मोटे काम सौंप देती ताकि उन पर अधिक काम का बोझ न पड़े। सोमशेखर के लिए विजिटिंग कार्ड का डिजाइन बनाकर प्रेस से छपवाकर लायी। नए दफ्तर के उद्घाटन की सारी तैयारियाँ भी कर लीं। विकास के नामकरण के समय जिन रसोइया सूर्यनारायणप्पा और यज्ञेश्वर जोयिस को बुलाया था उन्हीं को अब तय किया। ज्योतिषी द्वारा बताए गए सवेरे के मुहूर्त में उद्घाटन का कार्यक्रम निश्चित किया। दोपहर उसी जगह पर अपने खास-खास लोगों के लिए भोजन, शाम पाँच से रात के नौ तक कारोबार से संबंधित सारे लोगों के लिए भरपूर नाश्ते, चाय-पानी आदि की व्यवस्था की। भोजन और नाश्ते में कौन-कौन-सी चीजें पकेंगी—इसका निर्णय खुद अमृता ने किया।

सवेरे पंडित जी द्वारा किए गए होम-पूजा आदि के समय अमृता वहीं थी। देखने वाले हर किसी को तुरंत यह आभास होता कि उस इमारत की, उस समारोह की मालकिन वही हो। उसने बहुत दौड़-धूप की। हर काम के लिए राय-मशवरा देती। संतरा, सेब, नारंगी, अंगूर, केले, नारियल, पान, सुपारी, सुगंधित सुपारी, भोग की वस्तुएँ आदि से भरी थालियाँ उठाकर रखना; पंडित जी को दान-दक्षिणा, वस्त्र आदि देना; चमेली की मालाओं को सजाना, आम के पत्तों से कलात्मक ढंग का तोरण सजाना आदि काम वह करती रही। सारा काम निपटाकर पारिश्रमिक पाकर पंडित जी को कहीं दूसरी जगह जाना था। उन्हें देर हो रही थी। अमृता खुद उन्हें पहुँचाने के लिए कार बिठाकर ले गई। सोमशेखर सब देख रहा था। अमृता हर काम इतनी सतर्कता और चुस्ती के साथ कर रही थी कि जिसकी कल्पना सोमशेखर भी नहीं कर सकता था। इसलिए बीच में कोई दखल न देकर वह चुपचाप देखता रहा। दखल देने से अमृता का मिजाज किरकिरा हो जाने का डर भी था और सूक्ष्म बातों के बिगड़ जाने की संभावना भी थी। किसी औरत द्वारा जिम्मेदारी ढोए बिना केवल पुरुष द्वारा इस प्रकार की रौनक ला पाना संभव ही नहीं था। ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करने वाले पेशेवर पुरुष भी ऐसी शोभा का निर्माण नहीं कर सकते जो एक औरत करती है।

भोजन का समय साढ़े बारह का था। लेकिन अमृता जो ग्यारह बजे पंडित जी को छोड़ने गई थी, वह सवा बारह होने पर भी लौटकर नहीं आयी। भोजन के लिए निमंत्रित अतिथि आने लगे। सोमशेखर ने सोचा कि शायद बच्चों को लाने गई होगी और वहाँ स्कूल में किसी कक्षा के छूटने में देर हो जाने से प्रतीक्षा

करती हुई रुकी होगी। सोमशेखर जानता था कि हलवाई सूर्यनारायणप्पा ऐसा जिम्मेदार आदमी था कि अगर बीच में किसी चीज़ की आवश्यकता आ पड़ी तो मालिक का मुंह ताकते न बैठकर स्वयं कहीं से कुछ-न-कुछ व्यवस्था कर लेता था। खाना परोसने से लेकर सारे साज-सामान को अपनी-अपनी जगह पहुँचाने की जिम्मेदारी भी उसी की होती थी। मुसकुराहट के साथ अभ्यागतो का स्वागत करना और पंडाल के एक भाग में बिठाना उसका काम था। अभ्यागतों की सूची नीलकण्ठप्पा और उसने मिलकर तैयार की थी। सभी अपने पेशे के साथ संबंध रखने वाले ही थे। वह स्वयं एक बार अभ्यागतों की अगवानी कर देता तो शेष आतिथ्य का काम नीलकण्ठप्पा देख लेते थे। फिर भी अमृता क्यों नहीं आयी ? साढ़े बारह बजे भी दस मिनट बीत गए। सोमशेखर ने अब तक आठ-दस बार घड़ी देख ली। एक पंगत के लोग आ गए हैं। नीलकण्ठप्पा ने पास आकर पूछा, "सर, अब क्यों देर करें ? जो लोग आए हैं उन्हें खिला दें ? आने वालों के लिए कुर्सियाँ भी तो खाली होनी चाहिए।"

पसोपेश में सोमशेखर बेचैन हो उठा। इस समारोह से संबधित हर काम की देखरेख अमृता ही कर रही थी। अब पहली बार अपनी ओर से कोई निर्णय ले पाना उसके लिए कठिन हो रहा था। कुछ हिचक भी हुई। पाँच-एक मिनट में अगर वह आ गई और कहने लगी कि अमुक काम ऐसा होना चाहिए था, इतनी उतावली क्यों की ? और इसी बहाने वह नाराज हो गई तो ? यह डर भी उसे था। अभी पांच-एक मिनट की प्रतीक्षा करने के इरादे से उसने दुबारा घड़ी देख ली। लेकिन उन पांच मिनटों में दस-पंद्रह लोग और आ गए। हलवाई सूर्य-नारायणप्पा ने खुद आकर कह दिया कि पहली पंगत हो जाए। सोमशेखर ने हामी भर दी। लोग जो गपशप में टोली बनाकर खड़े थे, हर टोली के पास जाकर कहा, "चलिए, पत्तल बिछे हैं, चलिए।" नीलकण्ठप्पा सभी को साथ लिये आगे बढ़ गये।

इधर लोगों का भोजन हो रहा था और उधर सोमशेखर की आँखें अमृता की पुरानी कार के आकर रुकने की प्रतीक्षा में थीं। चार बार बाहर निकलकर सड़क के नुक्कड़ तक नज़र दौड़ाकर देखा। नीचे उतरकर दवा की दूकान से अमृता के घर को फोन किया। घण्टी की आवाज बराबर सुनाई दे रही थी। घर में कोई नहीं है। 'कोई' से मतलब इस समय और कौन हो सकता है भला ? होगी तो वही होगी। या कहीं बच्चों के स्कूल में तो नहीं होगी ? डायरेक्टरी में स्कूल का नंबर ढूँढकर फोन किया। जवाब मिला कि विजय और विकास स्कूल में ही हैं; उनकी माँ वहाँ नहीं आई। दुबारा घर को फ़ोन किया, कोई नहीं मिला। आखिर कहाँ गई ? पंडित जी को छोड़ने गई थी। क्या किसी ऑटो से उन्हें भेजा नहीं जा सकता था ? उन्हें छोड़ने के लिए खुद जाने की क्या जरूरत थी ?

सोमशेखर कुढ़ने लगा। जीना चढ़कर जब ऊपर आने लगा तो मन में आशंका हुई कि कहीं घर में रहकर भी फोन न उठा रही हो ? छिः छिः, ऐसा क्यों करेगी भला ? अपने-आपको तसल्ली दी कि सारा काम उसी ने तो किया है। अगर वह न होती तो वह खुद इतने व्यापक रूप मे इतने शानदार ढंग से यह आयोजन कर सकता था ? कार चलाते समय सड़क पर कोई वारदात ? ट्रक वाले लापरवाही से चलाते हैं। मन बेचैन हो उठा। फिर यह सोचकर मन को तसल्ली भी दी कि वह कार बड़ी सतर्कता से चलाती है, कभी जल्दबाजी नहीं करती। पहली पगत उठी। उनको तांबूल देकर विदा करके नौकरों के मेज़ साफ़ करने तक दूसरी पंगत के लिए लोग आ गए। उन्हें भी खाने पर बिठाकर नीलकण्ठप्पा ने पास आकर कहा, "मैडम कहीं दिखाई नहीं देतीं, सर ! महिलाओं के स्वागत में अगर वे होतीं तो ठीक था।"

नीलकण्ठप्पा देखता आ रहा था कि रजिस्ट्रेशन से लेकर आज तक सारे कामो की निगरानी अमृता ही करती आ रही थी और वह स्वयं भी उसी के निदेशों के अनुसार काम कर रहा था। अत. उसका यह प्रश्न स्वाभाविक ही था। पसोपेश में पड़कर सोमशेखर ने कहा, "बता रही थी कि कोई मेहमान आने वाले हैं, लेने जाना है।"

इतने में किसी मेहमान ने सामने आकर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "मार्क की जगह ली है। अंदर का डेकोरेशन बहुत बढ़िया किया है। आप केवल वास्तुकार ही नहीं, एक इंटीरियर डेकोरेटर भी है। बधाई हो !" सोमशेखर के पसोपेश की घड़ी मानो टल गई।

जब दूसरी पंगत का भोजन चल रहा था तब नीलकण्ठप्पा से कहा, "लगभग सारे मेहमान आ चुके। अचानक अगर कोई आ जाए तो खयाल रखना। मैं दस मिनट मे आया।" वह स्कूटर पर चढ़कर निकल पड़ा। हार्डिंज चौक को पार करके मृगालय के सामने से होकर जैसे ही वह मोड़ आता, उसे अमृता की याद आने लगती थी। अब भी याद हो आयी। लगभग हर रोज उससे कहा करती थी कि वह जगह सुरक्षित नहीं है, तुम हार्न करोगे भी तो सामने आने वालो को सुनाई नहीं देता; नियमानुसार कोई भी अपनी बायीं ओर नहीं चलता; सावधान रहो। अमृता की सावधानी उसके मन की गहराई में यों जम-कर बैठ गई थी कि वह जगह जब आधा किलोमीटर दूर रहती थी तभी वह सावधान हो जाता। मोड़ पार करके तेज़ गति में जाकर देखा तो गेट पर ताला लगा था। उसकी आहट पाकर कुत्ते स्नेह के अंदाज में भौंकने लगे। अपना परिचय जताने के लिए उसने कुत्तो को आवाज़ दी। मन परेशान हुआ कि आखिर वह कहाँ गई ? कुछ देर वह वहीं खड़ा रहा। कालेज ? विचार आया कि साढ़े ग्यारह बजे ही कालेज खत्म होकर उस इमारत मे दूसरा कालेज शुरू हो जाता है।

अढ़ाई बज गए। सबेरे नाश्ता तो किया था; लेकिन उसे चक्कर-सा आने लगा। वह असमंजस में खड़ा रहा। लौट जाने की चुस्ती नहीं रही। पुन: पाँच-एक मिनट गेट को पकड़े खड़ा रहा। मन में विचार आया कि गेट को लांघकर खिड़की से देख ले। लेकिन वह काम घटिया-सा लगा। ताला लगाकर भीतर इस तरह छिपकर बैठने की उसकी आदत नहीं; और उसको परखने की चेष्टा करना अपने लिए भी उचित नहीं—मन ने समर्थन किया। लौट जाए। मेहमानों का भोजन होने के बाद ताम्बूल देकर उन्हें धन्यवाद देना है। इस बात की याद होते ही किक मारकर स्कूटर स्टार्ट किया। कुत्ते भौंकने लगे। लौटते समय उसे याद हो आया; सवेरे बच्चों को स्कूल छोड़कर वह सीधा समारोह में आयी थी। कालेज से छुट्टी ली थी। बड़ी तन्मयतापूर्वक सारा काम करती रही। इस अवसर के लिए मैंने खासतौर रेशम की जो नई साड़ी लाकर दी थी उसी को पहने थी। लेकिन, पंडित जी जब होम-पूजा आदि कर रहे थे तब बहुत गभीर बनी हुई थी। मैं खुद दूसरे कामों में उलझा हुआ था। कब, किस घड़ी उसकी त्यौरी बदल जाएगी, इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। फिर भी इतनी बात साफ़ याद थी कि पूजा के समय अमृता का चेहरा एकदम गंभीर बना हुआ था। ऐसा क्यो? उसने सोचा; किंतु, समझ नहीं पाया। मृगालय वाले मोड़ से पहले ही सावधान होकर सामने देखते हुए स्कूटर की गति कम कर दी। उसके लौटने तक कई मेहमान भोजन करके चले भी गए थे। शेष मेहमानो को नीलकण्ठप्पा बिदा कर रहे थे। अब कोई आने वाला नहीं था। हलवाइयों को शाम के रिसेप्शन की तैयारी करनी थी। शाम के मेहमानो की -ही भीड़ ज्यादा थी। नीलकण्ठप्पा ने कहा, "सर, अब हम भी भोजन कर लें।" सोमशेखर का मन नहीं हुआ। अमृता ने खाया नही। एक सप्ताह पहले ही दोनो में बात हुई थी कि भोजन के समय वह दोनो बच्चो को ले आएगी। बच्चों को भी नहीं लायी और खुद भी निकल गई है। घर पर नही है; इसका मतलब हुआ कि उसने खाया नहीं। वाहर भी कहीं कुछ खाया नही। अगर खाया भी हो तो इतनी सारी मिठाई, इतने बढ़िया भोजन को छूना भी अपने लिए असंभव-सा लग रहा है जिसे अमृता ने खुद अपनी रुचि और इतने मनोयोग से बनवाया है। "आप कर लीजिए। मेरा पेट ठीक नहीं। इसीलिए डाक्टर के यहाँ गया था। मट्ठा पीने के लिए कहा है। मेरे लिए एक गिलास मट्ठा भिजवा दीजिए, काफ़ी है।" उसने नीलकण्ठप्पा से कहा।

"रस्म के लिए ाा आज एक कौर मिठाई······," नीलकण्ठप्पा वहीं जमा रहा।

"मिठाई कहाँ भाग जाएगी? डाक्टर के मना करने पर भी खा लूं तो कहीं दिक्कत खड़ी न हो जाए! शाम तक प्रतीक्षा करके खा लूंगा। अब मट्ठे के अतिरिक्त और कुछ न लेने के लिए कहा है न डाक्टर ने।" सोमशेखर के ज़िद करने

पर नीलकण्ठप्पा ने उसे एक गिलास मट्ठा लाकर दिया। नीलकण्ठप्पा के परिवार वाले सारे दूसरी पंगत में आए थे। अब खुद सोमशेखर ने अपने हाथों से नीलकण्ठप्पा को परोसा। फिर थकावट के कारण एक कुर्सी पर निढाल होकर बैठ गया।

शाम के पाँच बजे से लोगों का आना शुरू होगा। अमृता ने वीणा-वादन के जो रेकार्ड चुनकर रखे है उन्हें पार्श्व में धीमी आवाज में बजाया जाएगा। इस खास मौके के लिए ही उसने चुनकर जो नया सूट सिलवाया है उसे पहनकर आत्म-विश्वास की मुसकुराहट बिखेरते हुए आनेवाले मेहमानों से हाथ मिलाकर उनका स्वागत करना होगा। मैंने नीलकण्ठप्पा को जो नयी पेंट, बुश्शर्ट और जूते खरीद कर दिए है उन्हें पहनकर वह मेहमानो को अपने साथ ले जाकर भरपूर नाश्ते से भरी तश्तरियाँ देकर उन्हें बिठाएगा। बाकी आवभगत का काम सूर्यनारायणप्पा के लोग देख लेंगे। अंत में गुलदस्ते और नारियल के साथ अपना विजिटिंग कार्ड रखी प्लास्टिक की थैली देकर सभी को विदा करना होगा। यह सारी योजना अमृता की ही बनाई हुई है। इसी मौके के लिए उसने खास तरह के दो-हज़ार विजिटिंग कार्ड छपवाए हैं। प्रोफेशनल टैक्टिक्स की दृष्टि से समारोह का यही अंश सर्वाधिक महत्व का है। लेकिन अब खुद अमृता ही नहीं है। आप अकेला उसके बनवाया सूट पहनकर मुसकुराते हुए···सारा उत्साह पस्त ही नहीं हुआ, बल्कि मन में आया कि समारोह की सारी जिम्मेदारी नीलकण्ठप्पा को सौंपकर कहीं चला जाए। लगभग आधा घंटे तक यह विचार स्थिर रहा। लेकिन अपने पेशे के प्रचार की दृष्टि से यह समारोह बहुत महत्त्वपूर्ण था। अगर वह स्वयं उपस्थित नहीं रहेगा तो भारी नुकसान की आशंका थी। इसलिए कपड़े बदलने के लिए घर की ओर निकला। "नीलकण्ठप्पा, आप नए कपड़े पहनकर आइए मैं घर जाकर कपड़े बदलकर आऊँगा। उधर से ही डाक्टर से भी मिलता आऊंगा।"—उसने कहा। घर जाने के बाद हैंगर से लटकता हुआ नया सूट और उससे मेल खाती हुई नई कमीज और टाई पहनने का मन नहीं हुआ। पुराने जोड़े में से ही कोई अच्छी-सी पेंट, सफेद कमीज और टाई का चुनाव करना चाहा तो पता चला कि ज्यादातर कपड़े तो धोबी के यहाँ ही रह गए है। तुरंत स्कूटर पर जाकर इस्त्री किए हुए कपड़े ले आया। उनमें से अच्छी लगने वाली पेंट और बुश्शर्ट पहन कर, मुँह-हाथ धोकर, कँघी करके पौने-पाँच बजे रिसेप्शन की जगह लौट आया। बदन में भी आलस्य महसूस होने लगा था। मन तो विरक्त भाव में डूबा था कि किसे चाहिए यह दफ्तर, यह पेशा, यह समारोह वगैरह? नीचे दवाई की दूकान से पुनः अमृता के घर को फोन किया। अब भी घंटी बजती रही। कोई उठाता नहीं था। स्कूल का समय बीत चुका था। इसलिए वहाँ फ़ोन नहीं किया।

सारे कार्यक्रम समाप्त होने पर भी उसने खाना नहीं खाया। रिसेप्शन के

लिए बनाए गए केसरी-भात, उड़द के बड़े, चिप्स, पुलाव, समोसा, फ्रूट-सलाद आदि काफी बचे थे। उनमें से भी किसी चीज को खाने का मन ही नहीं हुआ। नीलकण्ठप्पा से कहा कि नाश्ते की चीज़ों में से कुछ अपने घर ले जाए और बचा हुआ सामान काम करने वालो में बाँट दे। वह खाली पेट ही स्कूटर पर चढ़कर घर चला गया। दस बज रहे थे। उतने सारे मेहमानों से हाथ मिलाना, हाथ जोड़कर प्रणाम करना, उनकी खैर-खबर लेना साधारण काम नहीं था। भरे-पेट भी अगर आवभगत के लिए खड़ा हो जाए तो आदमी सुस्त हो जाता है। अब तो पेट पीठ से जा मिला है। फिर सारे समारोह के लिए वह अकेला रह गया था। अमृता का उसे अकेला छोड़ जाने की जलन भी थी। दो गिलास पानी पीकर बिस्तर पर लुढ़क पड़ा। अब उसे साफ़ अहसास होने लगा कि उसके जीवन के उत्साह की मूल-शक्ति अमृता ही है। उसके बिना वह जो भी समारोह, जो भी आयोजन करेगा उसमें कोई जान ही नहीं रहेगी।

अमृता ने ऐसा क्यों किया? बड़ा गुस्सा आया। क्या वह जानती नही कि उसके बिना मैं खाना नहीं खाता; खा ही नहीं सकता? क्या जानबूझकर उसने ऐसा किया? पिछले डेढ़ महीने से एक दिन भी विश्राम न कर इस दफ्तर की सजावट के लिए, आज के समारोह के लिए दौड़-धूप करती रही है। खुद इसके लिए पैसा देकर हर काम को बड़े मनोयोग से करवाया है। लेकिन, आज अचानक उस तरह···विचार आया कि अब एक बार पुन: फोन कर दें। किन्तु अपने घर में फोन नहीं है। पास में कहीं भी नहीं है और वह भी इस बेवक्त; क्यों न खुद जाकर देख आए? काफ़ी थकावट थी, फिर भी उठा। ताला लगाकर नीचे उतरकर स्कूटर चढ़ने तक सवा-ग्यारह हो गए। सड़क की बत्तियाँ तो थीं। लेकिन, ऊपर आकाश में घना अँधेरा जमा था, टिमटिमाते तारो ने अंधकार की गहनता को बढ़ाया था। ठंडी हवा में स्कूटर पर सवार होकर जाने में थकावट कुछ कम-सी महसूस होने लगी। दायीं ओर कुक्करहल्ली तालाब को छोड़कर आज ही अपने जिस नए दफ्तर का उद्घाटन किया था उसके सामने देवराज अरसु मार्ग से होते हुए हार्डिंज चौक को पार करके जैसे ही मृगालय के मोड़ के निकट आया तो उस अँधेरी रात के बियाबान वातावरण में भी हाथों ने क्लच को दबाकर रफ्तार कम की और पाँव से ब्रेक दबाकर गाड़ी को धीमी करके सामने देखते हुए आगे बढ़ता रहा। उसे अहसास होने लगा कि अमृता की सावधानी की बात उसके रोम-रोम में उतर गई है। सुनसान ऐसी ही जगह को कहते हैं। सब छोड़कर अमृता यहाँ क्यों रहती है? अपना निजी घर ही सही, लेकिन यहाँ अकेला रहना कितना खतरनाक है?—इन विचारो में डूबा वह आगे बढ़ रहा था। अमृता का घर अभी लगभग डेढ़ फर्लांग दूर था। कार की पिछली लाल बत्ती दिखाई पड़ी। हाँ, रिवर्स आ रही है। किसका घर होगा भला? बिजली के खंभों का हिसाब

लगाया जाए तो अमृता का ही घर लगता है। कार रिवर्स आई। सोमशेखर ने गति कम कर दी। कार पहाड़ की ओर मुड़ी। फ्लड-लाइट दिखाई दे रही हैं। सोमशेखर ने रफ्तार बढ़ाई। कार आगे भाग रही थी। वह भी उसके पीछे तेजी से स्कूटर भगाने लगा। स्कूटर की रोशनी में साफ़ दिखाई दे रहा है—अमृता की ही पुरानी फियट कार, पीछे नंबर की मैली-सी तख्ती। वही नंबर है। अब अकेली कहाँ जा रही होगी? और कहाँ? पहाड़ का रास्ता। बच्चों को भी साथ नहीं लिये थी। इस आधी रात के समय शहर के बाहर इस सुनसान प्रदेश के घर में बच्चों को छोड़कर अकेली पहाड़ की घाटी में···सोमशेखर ने स्कूटर तेज करके उसकी रोशनी में घूरकर देखा। कार में साफ़ अकेली नज़र आ रही है। दूसरा कोई नहीं है। इतने में अमृता ने ही मुड़कर देखा। स्कूटर की रोशनी का अहसास किया है। रोशनी दिखाई दी है। किंतु, सवार दिखाई नहीं देता। अमृता ने रफ्तार बढ़ायी। कार की रफ़्तार में सोमशेखर का स्कूटर पीछे रह गया। आगे जब [illegible]-[illegible] का मोड़ आया तब सोमशेखर सोद्देश्य बायीं ओर मुड़ा। अमृता के पहाड़ की लगभग दो मील की चढ़ाई चढ़ने के बाद वह कार का पीछा करते निकला। इस बेवक़्त अकेली पहाड़ पर क्यों जा रही है? इस रहस्यपूर्ण कुतूहल में उसकी भूख-प्यास, थकावट सारी भाग गई। उसने स्कूटर की गति बढ़ायी। पठार की चढ़ाई समाप्त होकर जब पहाड़ की चढ़ाई शुरू हुई तो स्कूटर की गति कम हो गयी। गियर बदल कर ज़ोर लगाने पर बत्ती का प्रकाश बढ़ गया। अब यहाँ से बचकर निकलना संभव नहीं—मन में इस विचार से स्कूटर की सारी शक्ति लगायी। मेरे पहुँचने तक वह मंदिर पहुँच जाएगी। यों तो कार को पकड़ना असंभव है—इन विचारों में डूबा वह बढ़ता जा रहा था। बायीं ओर जहाँ खाई थी उस मोड़ पर अचानक कार को रुका पाया। हाँ, उसी की कार है। वही नंबर। स्टियरिंग पकड़े बैठी है, इंजन को बंद कर, सामने वाली लाइट, पीछे वाली लाल बत्ती को बुझाकर। इतनी जल्दी अमृता के मिलने की खुशी में सोमशेखर स्कूटर को कार की दायीं ओर ले गया जिस तरफ वह बैठी थी। स्कूटर को बंद किए बिना उद्वेगपूर्ण आवाज़ में वह बोला, "इस बेवक़्त अकेले यहाँ कहाँ निकली हो? सवेरे पंडित जी को छोड़ने के लिए गई तो लौटीं ही नहीं।"

स्कूटर की बत्ती जल रही थी। अमृता उसकी ओर मुड़ी नहीं। कुछ बोली भी नहीं वह। ऐसे मानो सोमशेखर की बात सुनी ही नहीं। बोलने की बात तो अलग रही; अलौकिक-भावों की प्रतिमा बनकर बैठी थी, मानो उसका इस सारे माहौल से कोई सरोकार ही न हो और वह किसी दूसरे लोक से संबंध रखती हो। "क्या जानतीं नहीं कि अकेले यहाँ आना कितना खतरनाक होता है?" यह बात भी अमृता तक नहीं पहुँची। सोमशेखर उसी तरह दो-एक मिनट स्कूटर पर प्रतीक्षा करते बैठा रहा। फिर इंजन बंद करके आगे सड़क की बगल में, अमृता

की कार के सामने स्टैंड लगाकर खड़ा किया। पीछे मुड़कर खिड़की से हाथ बढ़ाकर कार के भीतर की बत्ती जलाई। उस प्रकाश में अमृता की बायीं बगल में रिवाल्वर दिखाई पड़ा। "पास में रिवाल्वर होते हुए भी इस वक्त अकेली औरत का यहाँ आना खतरे से खाली नहीं।" यह बात भी अमृता ने मानो सुनी ही नहीं। प्रकाश में उसका चेहरा दिखाई दे रहा था। नितांत निर्जीव और निष्प्राण-सा। अपने शरीर से भी बेपरवाह लाश की-सी स्थिति। उसकी दायीं भुजा पकड़कर झकझोरते हुए उसका मुँह खुलवाने की जिद में सोमशेखर बोला, "अमृता, ओ अमृता, सुनती हो ?"

धीरे से सोमशेखर की ओर मुड़ते हुए मुर्दा आँखों से वह बोली, "रात के समय जब कोई अकेली औरत यात्रा कर रही हो तब कोई भला आदमी उसका पीछा नहीं करता। मोड़ पर दूसरे रास्ते से मुड़ने का ढोंग नहीं करता। आप यहाँ क्यों आए ?"

"तुम्हारा पीछा करते हुए आया हूँ। घर से अभी डेढ़ फर्लांग की दूरी पर था तभी तुम्हें बाहर निकलकर पहाड़ की ओर मुड़ते हुए देखा।"

अमृता ने जवाब नहीं दिया। कार के बोनट की ओर मुँह मोड़कर उसी चेतना-शून्य सूरत में बैठी रही। सोमशेखर को आगे कोई बात नहीं सूझी। जब मुझ पर गुस्सा आता है, शून्य-भावना छा जाती है तब अमृता मेरे साथ आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग करने लगती है। तुरंत सोमशेखर ताड़ गया कि अमृता सवेरे से ही शून्य-भावना का शिकार हुई है। उसने तय किया कि उसे अमृता के शून्य-भावों में प्रवेश करके उसमें सामान्यता-सहजता लाने की चेष्टा करनी चाहिए। वह बोला, "मैं पूछ रहा हूँ कि इस बेवक़्त तुम यहाँ क्यों आई ? जवाब देना ही होगा।" अमृता बोली नहीं। अपना बायाँ हाथ उठाकर उसने बत्ती बुझा दी। कार के भीतर भी अँधेरा छा गया। अमृता की जगह, उसका आकार कुछ भी साफ़ दिखाई नहीं दे रहा था। अब अधकार हो जाने के कारण वार्तालाप को एक निगूढ़ नींव प्राप्त हो गई। सोमशेखर बोला, "जवाब देना ही पड़ेगा।"

"जवाब तलब करने का आपको क्या हक़ है ?" उसने झट पूछा, मानो अँधेरे में बोलना सुलभ था।

"क्या हक़ ? हक़ यह है कि मैं तुम्हारा सोमु हूँ। प्यार का हक़ है मुझे।"

"मिस्टर सोमशेखर ! हवामहल की बातें अब बस कीजिए। मुझ पर आपका कोई हक़ नहीं है। आप पर भी मेरा कोई हक़ नहीं है। इस रिश्ते के ठोस यथार्थ को समझ लेने में बाधा मत डालिए। यह चिकनी-चुपड़ी बातों का जादू अब मेरे सामने नहीं चलेगा।"

"तो क्या तुम्हारा मुझसे और मेरा तुम से प्यार करना सरासर झूठ था ?" विवश होकर सोमशेखर ने पूछा।

"मैं आप से प्यार करती हूँ यह बात तो बिलकुल झूठ है। मैं इस भ्रम में थी कि प्यार करती हूँ। अब भ्रम टूट गया है और मैं सच्चाई जान गई हूँ। कल्पना-लोक में ही अगर आपको तैरते रहने की चाह हो तो आपकी मर्जी, वैसा कर सकते हैं। ठीक है! अब स्कूटर हटाकर मेरा रास्ता छोड़ दीजिए। वरना, मैं खुद रिवर्स लेकर आगे निकल जाऊँगी।" उसने इंजन चालू करके सामने वाली फ्लड लाइट जलायी। सोमशेखर ने असहाय-सा अनुभव किया। अपने जीवन की, जान की मानो जड़ें ही कट गई और उसे चक्कर आया। कुछ सहारा न पाकर कार की खिड़की से टिककर खड़ा हो गया। उसे खड़ा रहना असंभव लगा और धम्म से वहीं जमीन पर बैठ गया। बाहर का घुप्प अँधेरा मस्तिष्क के भीतर भी छा गया; वह कहाँ है, क्या हो रहा है, इस होश को खो बैठा। पाँव फैलाकर कार को टेक लगाए बैठा रहा। समय-गति से बेखबर वह उस अवस्था में कब तक बैठा रहा, इसका भान उसे नहीं रहा। आखिर जब धीरे-धीरे होश लौटा तब कार का इंजन बंद हो रहा था। फ्लड लाइट बुझा दी गई थी। अहसास हुआ कि वह बिलकुल निकम्मा होकर लूले-लंगड़े की तरह पड़ा है। सड़क की मिट्टी, धूल, कूड़ा, कर्कट कपड़ों में जमकर बदन में चिपचिपाहट पैदा करने लगा है। उठकर खड़े होने की शक्ति नहीं, उम्मीद भी नहीं। यह अहसास घर कर गया कि जिस पहाड़ मे अँधेरे ने जमकर आकार लिया है उस सारे पहाड़ मे वह एक एकाकी क्षुद्र जंतु है। कार के सहारे टिका वह वहीं पड़ा रहा।

लेकिन, कुछ समय बाद आवाज़ सुनाई दी, "सोमशेखर, सच्चाई को मान लोगे तो मुझे कोई गुस्सा नहीं। लेकिन, सहानुभूति पाने के लिए इस तरह का ढोंग करोगे तो घिन हो जाएगी।"

सोमशेखर ने कभी कल्पना नही की थी कि क्रोध इतना बेरहम हो सकता है। उसका, अमृता की बातो का विरोध करने को मन हुआ। गुस्सा आया। गुस्से के आवेग मे जोश उमड़ पड़ा और वह झट उठ खड़ा हुआ। अँधेरे मे ही अमृता की ओर मुड़कर बोला, "बोलना आता है इसलिए बकती मत जा, रैस्कल! मेरे दिल में क्या है, उसे पहचानने की योग्यता तुझ में नही है।"

"क्या रहता है दिल में?" शांत तिरस्कार के साथ अमृता ने पूछा।

"प्यार। ऐसा प्यार जिसे समझ पाना तेरे बूते से बाहर है।"

"फाइन!" शांत उपेक्षा भाव से बोलकर वह चुप हो गई। कुछ समय बाद उसी संयम के साथ फिर भी प्रश्नार्थ के अंदाज मे बोली, "उसे प्रूव करके दिखाना क्या आपके लिए संभव है?"

सोमशेखर को मानो डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। तुरंत बड़बड़ाया, "प्रूव करके दिखाना होगा? कैसे दिखाऊँ, बताओ। दिल फाड़कर बताऊँ? हनुमान जी ने अपना सीना चीरकर श्री रामचंद्र की मूर्ति दिखाई थी, इस उपमा

को तुम मज़ाक समझोगी। लेकिन मेरा प्यार इतना गहरा है कि मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ?"

अमृता बोली नहीं। सोमशेखर अँधेरे में उसके जवाब की प्रतीक्षा करते खड़ा रहा। एकाध पल के बाद उसी संयम और दृढ़ आवाज में वह बोली, "प्रूव करने का एक विधान है। यह तरीका कम-से-कम यह तो सिद्ध करेगा कि आपकी बातें कितनी हवाई हैं। मानेंगे ?"

'ठीक है।" बिना देरी के वह तैयार हो गया।

"वास्तव में ?"

"तुम्हारी क़सम। क़सम खाने के लिए तुमसे बढ़कर और कोई आत्मीय वस्तु मेरे पास नहीं है।" प्रफुल्लित होकर वह और भी सन्नध हुआ।

अब अमृता ने भीतर की बत्ती जलाई। रोशनी सोमशेखर की आँखों को कोंचने लगी। अमृता की आँखें घने अँधेरे से भरी चौधियाती रोशनी मे परिवर्तन-हीन अपारदर्शी आकृति-सी बनी रहीं। धीरे से बायीं ओर मुड़कर अपनी बगल वाली रिवाल्वर को उठाकर सोमशेखर की ओर बढ़ाते हुए बोली, "इसे पकड़िए।" उसने हाथ बढ़ाकर पकड़ लिया। "यों निशाना लगाइए।" अमृता ने उसकी नली पकड़कर अपने कान के आगे कुछ ऊपर उसे दबाने के लिए कहा, "और कुछ नहीं चाहती। उँगली से ट्रिगर दबा दीजिए, बस।" उसने आँखे मूंद लीं। सोमशेखर का बदन पसीने से तर हो गया। बंदूक, रिवाल्वर की बनावट से वह अपरिचित नहीं था। कालेज के दिनों में एन० सी० सी० प्रशिक्षण के समय बंदूक के साथ एल० एम० जी०, एम० एम० जी० का प्रशिक्षण भी लिया था। वह जानता था कि रिवाल्वर का ट्रिगर छूते ही वह गोली दाग देती है। अमृता आँखें बंद करके तैयार होकर बुत की तरह बैठी थी। सोमशेखर की सारी देह मे हलकी-सी कँपकँपी छूटी। इस कँपकँपी में अगर कहीं उँगलियों ने ट्रिगर पर दबाव डाल दिया और गोली निकल गई तो ? इस भय और सावधानी में रिवाल्वर पीछे खिड़की के बाहर हटाकर आकाश की ओर निशाना बनाकर पकड़ लिया। दो-एक पल खामोश बैठने के बाद अमृता उसकी ओर मुड़े बिना बोली, "प्रूव कर चुके न, अपना प्यार ?"

"तुम्हारी पागल जैसी बातें निभाई नहीं जा सकतीं।" सोमशेखर फटकारने के अंदाज में बोला।

"आपके पागल कहने से पागल नहीं बनती और आपके द्वारा समझदारी का खिताब देने से समझदार भी नहीं बनती। मुझे जो चाहिए, उसकी माँग तो मैं करूँगी ही। उसे पूरा करने की क्षमता, प्यार अगर आप में नहीं है तो यह सारा केवल दिखावा मात्र है। एक विकल्प सुझाऊँगी। निभाएँगे ?"

"कहो, क्या है ?"

"मैं पहले बताकर यह याचिका समर्पित नहीं कर रही हूं कि अगर आपको स्वीकार्य हो अनुग्रह की भिक्षा देने की कृपा करें। मैं तो आपको अपने प्यार का सबूत देने का एक और मौका देना चाहती हूं।"

"बताओ न, क्या है ?"

"रिवाल्वर की नली को अपनी कनपटी पर रखकर उसकी ट्रिगर दबा लीजिए। सीने पर रख लोगे तो भी चलेगा। पहले कई बार आपने कहा है कि मेरे लिए प्राण देने के लिए भी आप तैयार हैं। उसे अब प्रूव करके बताइए।"

सोमशेखर को एकदम लगा कि यह बड़ा आसान काम है। तत्काल उसे विश्वास हो गया कि अमृता पर गोली दागने के बदले अपने-आप पर गोली चला लेना आसान होगा। वह बोला, "यह कर सकूंगा।"

"सकूंगा नहीं। करके बताना होगा।" इधर मुड़े बिना अमृता ने शून्य में दृष्टि गड़ाए हुए ही कहा।

इतने में सोमशेखर संभल गया था। वह बोला, "अगर मैं करके दिखा दूं तो, उसमे तुम्हें क्या मिलेगा ?"

"आप कर नहीं सकेंगे। आपके प्यार की सारी बाते नाटक के डायलाग मात्र हैं। एक सुंदर सुशिक्षित लड़की जिसकी परवरिश की कोई जिम्मेदारी अपने ऊपर न हो और हम-बिस्तर के रूप मिल जाए तो सहज ही ऐसी कविता फूट पड़ती है। केवल इस बात को जांचने के लिए मैंने कहा।"

"तुम्हारा मतलब है कि अगर मैं जान दे दूं तब ही मेरा प्यार सच्चा होगा, अन्यथा ऐयाशी ? खुद जीकर और तुम्हें जिलाकर साबित करके बताऊँगा कि मेरा प्यार सच्चा है। मरने-मारने के पागलपन से साबित नही व ा। अगर मुझे मारने की इच्छा हो तो यह लो, तुम खुद गोली चलाओ। मैं अडिग खड़ा रहूँगा।" रिवाल्वर अमृता की जांघ पर रखकर वह बुत बनकर खड़ा हो गया।

"आप में मरने की हिम्मत नहीं है न।" अमृता ने उसकी बात में दोष ढूंढ निकाला।

"सचमुच नही है। खुद जीने की और तुम्हें भी जिलाने की ही मेरी इच्छा है। लेकिन मार डालने की अगर तुम्हारी इच्छा हो तो मार डालो। रुको, एक चिट्ठी लिखकर रख लूंगा, पेंट की जेब में कि अपनी मौत के लिए मैं खुद जिम्मेदार हूं। मैंने स्वयं रिवाल्वर से अपनी हत्या कर ली है।"

"जिन्हें जीने की आकांक्षा हो उन्हें मारने की क्रूरता मुझ में नहीं है। लेकिन, जो मरना चाहती है उसे न मरने देने वाले क्रूर आप हैं। आपकी बातों की लोग कद्र करते हैं, महानता का खिताब देते हैं। लेकिन, मेरी बातों की सच्चाई कोई समझता ही नहीं। आप जैसा बेरहम कोई नहीं है। आपकी क्रूरता उस पापी

भगवान की समझ में भी नहीं आती।" कहते हुए दायीं ओर मुड़कर अपने माथे को कार के दरवाजे से दो बार पीट लिया। सोमशेखर ने देखा कि माथा सूजकर लाल हो गया है, पीटने से खून जम गया है। उसे सहलाकर सांत्वना देने के लिए उसने हाथ बढ़ाया। लेकिन भरी हुई रिवाल्वर उसकी जाँघ पर है। अगर जरा-सी भी चूक हो गयी और ट्रिगर पर हाथ पड़ गया तो गोली छूट सकती है। भले ही सीधी देह में न लगे; लेकिन कार के दरवाजे से टकराकर लौटकर अगर देह के किसी भी अंग में लग गई तो? पहले रिवाल्वर की ओर हाथ बढ़ाया। "हाथ हटाइए। खबरदार जो उसे छुआ।" अमृता चीख उठी। सोमशेखर ने हाथ हटा लिया। अमृता ने तुरंत भीतर की बत्ती बुझाई, इंजन स्टार्ट किया और कार पीछे की ओर मोड़ दी। सोमशेखर घबराकर एक कदम पीछे हट गया। अमृता तेज रफ़्तार से पीछे की ओर जा रही थी। अँधेरे में पीछे कुछ नहीं दिखाई दे रहा था; कहीं पहाड़ की घाटी में गिर न जाए; इस डर के मारे सोमशेखर "अमृता, अमृता!" चिल्लाता रहा। अमृता ने कुछ नहीं सुना। वह सरपट पीछे गई और जहाँ सड़क कुछ चौड़ी थी वहाँ तीन बार आगे-पीछे घुमाकर कार मोड़ ली। फिर तेज गति से पहाड़ से उतरकर चली गई। सात-आठ मिनट में ही वह इतनी दूर चली गई कि आधी रात के उस सन्नाटे में भी कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। सोमशेखर उलझन में पड़ गया कि अब क्या करे?

यहाँ से कहाँ गई होगी? घर या कहीं और? यह सोचने की शक्ति सोमशेखर के मस्तिष्क में नहीं बची थी। भ्रांति छा गई। घुप्प अँधेरा यों जम गया था कि अपने खुद के हाथों की हरकत अपने को ही दिखाई नहीं देती थी। रिवाल्वर लेकर अकेली आधी रात के समय इस सुनसान पहाड़ पर आयी है। अगर गोली दाग भी लेगी तो सोए हुए परिंदे, गिलहरी, खरगोश, लोमड़ी आदि ही सुन सकेंगे। शायद उसका उद्देश्य रहा होगा कि कोई इन्सान न सुन पाये। अचानक यह मरने का भूत क्यों सवार हुआ? अमृता के लिए सोमशेखर का मन छटपटाने लगा। अब भी यहाँ से जाकर कहीं घर में ही···! —वह बेचैन हो उठा। घर से कार लेकर पहाड़ पर आयी हैं, घर जाकर नहीं करेगी, बच्चे सुन लेंगे; माँ के मरने का दृश्य बच्चे देखने न पाएँ, शायद यही विचार रहा होगा। इसलिए अगर घर पहुँच गई हो तो कोई चिंता की बात नहीं। लेकिन, घर के बदले कहीं और गई हो तो! इस आशंका से सोमशेखर का मन सिहर उठा। स्कूटर पर सवार होकर उसकी तलाश में जाने का मन हुआ। लेकिन, कहाँ जाए, किस रास्ते से जाए? टी० नरसीपुर वाला रास्ता, बन्नूर का रास्ता या उधर नंजनगूड़ का रास्ता? मैसूर से गुजरने वाले आठ-दस रास्तों में कहाँ ढूंढे? वह उलझन में पड़ गया। अगर उसे ढूंढ़ भी लिया तो क्या किया जा सकता है? शारीरिक बल का प्रयोग करके अगर रिवाल्वर छीन लिया तो? उसमें खतरा है। भरी रिवाल्वर की छीना-

झपटी में अगर अचानक ट्रिगर दब गया तो ! अमृता जिस रफ्तार से गई थी उस रफ्तार से स्कूटर दौड़ाकर उसे पकड़ पाना असंभव था। इस बीच अँधेरे में निगाह कुछ जम चुकी थी। सड़क के किनारे उसे एक पथरीली आकृति दिखाई पड़ी। पास जाकर टटोलकर देखा। फिर उस पर बैठ जाने पर कुछ जान में जान आयी। रुकी साँस को मानो ढील देने के लिए सात-आठ बार उसने लंबी साँस ली। खड़े पहाड़ की लगातार चढ़ाई से जैसे साँस फूलने लगती है वैसी थकावट। वहीं ढेर जाने की-सी सुस्ती। पुनः दस-बीस बार भागने की तरह जब छाती ने श्वासोच्छ्वास किया तब याददाश्त कुछ साफ़ हुई। बल-प्रयोग से रिवाल्वर छीन लेने पर भी इस अवस्था में वह उसे अपने पास फटकने नहीं देगी। दूर रखने की बातों से ही नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व से ही बड़ी भारी आकर्षण-शक्ति उमड़ने लगती है। बात न करने पर भी मेरी भर्त्सना करके काफ़ी लानत-मलामत करेगी। क्या करे, कुछ समझ नहीं पाता। कुछ कहने जाता है तो उसे झूठा साबित करने वाली मूकावस्था का निर्माण कर लेती है। दिल की गहराई से निकलने वाली बातों का टेढ़ा-मेढ़ा अर्थ लगाकर बतगड़ बना देती है। मेरी सत्यनिष्ठा से ही आशंकित होकर मेरे व्यक्तित्व को घटिया स्तर का करार दे देती है—सोमशेखर के अनुभव से मानो उसे अपना व्यक्तित्व गिरता हुआ-सा महसूस हुआ।

कुछ समय बाद उसे डर लगने लगा। नोच खाने के लिए दौड़ने वाला अँधेरा। पहाड़ की आधी ऊँचाई वाली घाटी का सुहाना। चीता, शेर चाहे न हों, लोमड़ी, गोह, साँप, छिपकली, बिच्छू आदि कुछ कम नहीं हैं। उल्लू और चिमगादड़ भी होंगे। रात में देख सकनेवाले उल्लू से देख न पाने वाले मनुष्य में भी शायद अधिक हानिकारक शक्ति होती है। अब वह यहाँ बैठकर क्या करेगा ? स्कूटर पर चढ़कर घर चला जाए। लेकिन, इस भयानक रात में वह अकेली आई थी। कैसा धैर्य रहा होगा ! याद आया कि शहर के बाहर जहाँ लोगों की बस्ती कम है वहाँ उस बड़े घर में दो छोटे बच्चों को लिये रात बिताना धैर्य के बिना संभव नहीं। लेकिन रात के अँधेरे में अकेली, इस पहाड़ पर ? जब मरने के लिए निकली हो तब भय और अधैर्य का प्रश्न कहाँ उठता है ? विचार आया कि अधैर्य का आधार तो जीव-भय और जीव के प्रति प्यार होता है। सोमशेखर को पुनः आशंका सताने लगी कि कहीं अब तक उसने रिवाल्वर से अपने-आपको खत्म ही न कर लिया हो। मन हुआ कि तुरंत स्कूटर पर चढ़कर उसके घर जाए; गेट चढ़कर दरवाजे के पास लगी काल-बेल दबाए। अगर ऐसा कुछ हुआ होगा तो अब तक सेंकड के सौवें भाग में ही उसने सब समाप्त कर दिया होगा। इस खयाल से सोमशेखर का मन बिलख-बिलकर रोने को करने लगा। आँखें नम हुई; गला भर आया, साँस अवरुद्ध हुई। 'हे भगवान, चामुण्डी माता, उसे सद्‌बुद्धि देना, उसके दिल में घुसकर उसके मन को नियंत्रण में रखना; तुम्हारे

अलावा उसे रोकने की शक्ति किसी और में नहीं है।' सोमशेखर का दिग्भ्रात मन दिशा की तलाश करने लगा। अब अगर वह जाएगा भी तो वह दरवाजा नहीं खोलेगी, तिरस्कार करेगी, कूड़े से भी बदतर समझकर बाहर निकाल देगी—इस कल्पना के साथ उसमें ऊपर उठने की शक्ति भी मानो तिरोहित हो गई। उसी चट्टान पर बैठा था। टेक के लिए कुछ नहीं था; कमर और रीढ़ मे दर्द महसूस होने लगा। पेट में गरम वेदना चक्कर काटने लगी। उसे क्यों ऐसी अनिश्चित अवस्था प्राप्त हुई है? अपनी इच्छा-शक्ति कहाँ लुप्त हो गई है?—अंतर्मुखी होकर अपने-आपसे सवाल करते हुए, लुढ़कते माथे को दोनो हाथों की अंजुली का सहारा देकर बैठा रहा। बड़ी देर तक बैठा रहा। और वहीं बैठे-बैठे ऊँघने लगा।

इतने में कहीं से किसी वाहन की आवाज़ सुनाई दी। कार है या जीप, कुछ पता नही चला। पहाड़ पर राजेन्द्र विलास होटल है। वहाँ किसी पार्टी के लोग शायद उतर रहे होंगे। पहाड़ पर पुलिस का वायरलेस रिले केंद्र है। उससे संबंधित शायद पुलिस वैन होगी। अगर किसी ने पूछ लिया कि आधी रात के वक्त यहाँ अकेला बैठकर वह क्या कर रहा है? कौन है? क्यों आया? तब क्या जवाब देगा? कह देगा कि बस यों ही चला आया, घूमने के लिए। लेकिन अब क्या बजा होगा? कलाई की घड़ी देखने के लिए स्कूटर चालू करके रोशनी करनी होगी। गर्दन उठाकर सितारों को देखकर समय का पता लगाने का तनिक भी ज्ञान उसको नहीं है। इन बेशुमार सितारों में किसी भी सितारे को पहचानने की प्रज्ञा उसमें नहीं है। इतने में नीचे से ऊपर की ओर वाहन आने की आवाज सुनाई दी। कोई बड़ा वाहन नहीं था, कार थी। होटल की ही रही होगी। बेंगलूर देर से पहुँचने वाले हवाई-जहाज के यात्रियों को लाने वाली टैक्सी होगी। तभी उसकी रोशनी भी दिखाई देने लगी। पास आई। अब तक अंधकार की जो निगूढ़ता थी उसे उस कार की फ्लड लाईट की रोशनी ने भंग कर दिया। उस आवरण में मानो उसके अपने ही अस्तित्व की जाँच-पड़ताल होने लगी थी। आँखे चौंधियाने से मुँह फेर लेने का मन हुआ। लेकिन, इस वक्त जब वह अकेला बैठा है तब मुँह फेर लेना बेकार की आशंकाओ के लिए मौका देना होगा। इस खयाल से मुँह फेरे बिना और कार की ओर भी न देखते हुए सामने पहाड़ की ऊँचाई में नजर गड़ाए बैठा रहा। कार तेजी से आई और आकर निशानेबाज की तरह एकदम उसके सामने ही आकर रुक गई। इंजन बंद करके भीतर की बत्ती जलाने के बाद पता चला कि आने वाली और कोई कोई नही, अमृता ही है। लेकिन, सोमशेखर कुछ बोला नहीं, बात नहीं की। मुड़कर उसकी ओर देखा तक नहीं। अमृता दरवाजा खोलकर बाहर आयी। कार के सामने से चक्कर काटकर सोमशेखर के पास आयी। वह बैठा ही रहा, अमृता ने उसके मुँह को अपने सीने में छिपाकर

कसकर आलिंगन किया। सोमशेखर पत्थर की मूर्ति की तरह निर्जीव होकर बैठा था। अमृता ने झुककर अपनी बाँहों के बंधन को और कस दिया। उसकी छाती की धड़कन सोमशेखर के माथे, आँख, गाल के स्पर्श से साफ़ सुनाई दे रही थी। अपने गरम अंतःकरण का मानो अभिसिंचन करने के अंदाज में उसने सोमशेखर के सिर पर अपने होंठों को गड़ा दिया। अमृता की आँखों से लुढ़कते गरम आँसुओं ने उसके बालों को चीरकर खोपड़ी को भिगो दिया। "सोमु, क्षमा या भुला देने जैसी बातों का अब कोई अर्थ ही नहीं रह गया। मैं जानती हूँ कि मैं जो कुछ पाप तुम्हारे साथ कर रही हूँ भले ही तुम उसे माफ़ कर दो, लेकिन भगवान मुझे कभी माफ़ नहीं करेंगे। मैं भी अपने-आपको तो कभी क्षमा नहीं कर सकूँगी। दोपहर होम-हवन, रात को मित्रों का भोजन। मैं जानती हूँ कि सारा दिन तुमने कुछ खाया नहीं। यह भी पता है कि नए सूट के बदले तुमने पुरानी पेंट और बुश्शर्ट पहनी थी। अब तुम कुछ बोलना मत। स्कूटर लेकर तुम आगे चलो। मैं पीछे-पीछे कार लेकर आऊँगी। अब समझ गई कि सूर्यनारायणप्पा की रसोई नहीं बल्कि मेरे हाथ की रसोई ही हम दोनों को खिलाने का भगवान का संकल्प था। हमारे घर चलो। दोनों एक साथ खाना खाएँगे। फिर बातें करेंगे। मन में बहुत कुछ है कह लेने के लिए। तुम्हारे सिवा और किसके सामने कहूँ?" सोमशेखर ने अब भी मुँह नहीं खोला। स्पन्दनहीन बैठा रहा। "मुझसे तुम्हें घिन होना स्वाभाविक है। इस जन्म में इस औरत के साथ न बोलने का संकल्प करना भी स्वाभाविक ही है। तुम जो चाहो सजा दो। लेकिन मेरे पेट में भी सारा दिन एक कौर तक खाना नहीं पड़ा। चक्कर खाकर गिरने की-सी हालत हुई है। अगर तुम नहीं चलोगे तो मैं अपना उपवास जारी रखूँगी, चाहे कितने दिन क्यों न हो, मरते दम तक। लेकिन उपवास करके मरने की अपेक्षा रिवाल्वर दाग लेना आसान होगा, आरामदेह होगा। अगर तुम अब मुझे माफ़ नहीं करोगे, मेरे साथ नहीं चलोगे तो ट्रिगर दबा लेना आसान हो जाएगा।"—इतना कहकर अमृता कुछ देर चुपचाप खड़ी रही। फिर, "चलो उठो, तुम्हारा गुस्सा चाहे कितना भी हो, लेकिन मैं जानती हूँ कि वह तुम्हारी अमृता को आत्महत्या के लिए विवश करने लायक नहीं होगा।" कहते हुए उसने सोमशेखर की दोनों बाँहें पकड़कर ऊपर उठाया। वह चुपचाप मूर्तिवत खड़ा हो गया और जाकर अपना स्कूटर स्टार्ट किया।

घर पहुँचकर दरवाजा बंदकर के भीतर पहुँचने के बाद सोमशेखर को देखकर उसने कहा, "तुम्हें पहले अपने कपड़े बदलने होंगे। यानी कि उन्हें उतारकर लुंगी पहननी होगी। क्यों, पता है? तुम चक्कर खाकर गिर पड़े थे। फिर भी कसाई की तरह मैं चुप बैठी थी। सड़क की धूल, मिट्टी तुम्हारी पेंट और बुश्शर्ट में भर गई है। जब तुम आगे स्कूटर पर निकले थे तब मैं पीछे कार में आ रही

थी न, फ्लड-लाइट की रोशनी में धूल और गर्द को देखकर शर्म के मारे डूब मरने की इच्छा हो रही थी। तुम्हारे गिर पड़ने के कारण नहीं, बल्कि तुम्हें गिरते देखकर भी मैं जो चुप बैठी रही, उसके कारण। ठहरो, लुंगी दूंगी। पहले मुँह-हाथ धो लो।" अतिथि-कक्ष से लगे टायलेट में ले गई। मुँह-हाथ धोकर, कपड़े बदलकर सोमशेखर के रसोईघर में आने तक भोर के सवा तीन बज चुके थे। चूल्हा जलाकर अमृता कढ़ाई में घी डालकर सूजी भून रही थी। केतली में पानी उबल रहा था।

"अब कुछ न बनाओ। जो कुछ बचा-खुचा हो तो थोड़ा-सा खा लेंगे।" सोमशेखर अमृता को रोकने के लिए आगे बढ़ा।

"फ्रिज में दाल है। राइस-कुकर में खाना पक ही गया। दही है। लेकिन आज दफ्तर का उद्घाटन है। हम दोनों ने खाना नहीं खाया। दोनों को मीठा खाना ही होगा। इसलिए केसरी भात पका रही हूँ। पाँच मिनट में बन जाएगा। तुम जरा इलायची छीलकर चूरा कर दो। घर में काजू-किशमिश कुछ नहीं है।" वह बोली।

बाहर डायनिंग-टेबुल पर बैठेंगे तो अपनी बातों से बच्चे जाग जाएँगे, इसलिए रसोईघर में ही छोटी-सी मेज पर थाली लगा दी। रसोईघर का दरवाजा भीतर से बंद करके सोमशेखर की बगल वाली कुर्सी पर वह बैठ गई, "पहले केसरी भात खाएँ। तुमने इलायची का चूरा बनाकर डाला है न, इसलिए जायकेदार बना होगा।" चम्मच में लेकर भात का एक कौर उसने सोमशेखर के मुँह में डाला। छेड़छाड़ के लिए मन अभी तैयार नहीं हुआ था। फिर भी सोमशेखर ने उस कौर को मुँह में ले लिया और अपनी थाली से चम्मच में थोड़ा भात लेकर अमृता के मुँह में रखा। सूर्यनारायणप्पा के केसरी-भात को तो मैंने नहीं चखा था; लेकिन यह भात तो बड़ा जायकेदार है। वह जल्दी-जल्दी खाने लगा। दोनों दिन-भर के भूखे थे। अमृता भी चुपचाप खाती रही। दोनों के पेट की आग ठंडी पड़कर जब फ्रिज से गाढ़ी दही निकालकलर दही-भात खाने लगे तब अमृता ने बातों का सिलसिला शुरू किया, "सवेरे अचानक मैं क्यों चली गई? यह प्रश्न तुम्हारी जबान पर मचल रहा होगा। सच बताओ, पूछने को मन नहीं करता?"

"जवाब जानते हुए भी नाहक तुम्हारे दिल को क्यों कोंचे? अब छोड़ दो उन बातों को।" अमृता को सांत्वना देने के अंदाज में उसके कंधे पर बायाँ हाथ रखकर दबाया।

"बताओ, कौन-सा जवाब तुम जानते हो?" बड़े भोलेपन से अमृता ने पूछा।

उसके कंधे पर अपनी पकड़ को प्यार से कसते हुए सधी हुई हलकी आवाज में वह बोला, "अमृता, मैं जानता हूँ कि तुम कभी-कभी शून्य भाव का शिकार हो

जाती हो। कई बार तुमने खुद बताया भी है। अचानक क्रुद्ध हो उठती हो; गुस्सा करने लगती हो। लेकिन, इस तरह आधी रात को घर छोड़कर अकेली पहाड़ के उस पार रिवाल्वर लेकर जाना बहुत ग़लत बात है। तुम्हें मेरी क़सम है। तुम अगर मेरी कसम खाकर वादा नहीं करोगी तो मैं चुप नहीं रहूँगा; अब फिर कभी इस तरह रात के समय घर छोड़कर नहीं जाओगी। रिवाल्वर नहीं छुओगी—जब तक कि घर में कोई चोर-डाकू ही न आए। मुझसे वादा करो, चलो, भगवान के सामने मेरा हाथ पकड़कर कहो।"

अपना दाहिना हाथ सोमशेखर के कंधे पर फैलाकर वह बोली, आवाज़ में तार्किक शुष्कता थी, "शून्य-भाव का शिकार होना तो ठीक है। भगवान के सामने खड़ा करके कसम दिलवाना तुम्हारे सेंटिमेंट का परिचायक है। लेकिन, आज सवेरे उस तरह मैं क्यों चली गई, इस बारे में सोच-समझ लेने की इच्छा तुम्हें नहीं है ?"

"इच्छा नहीं है, ऐसा मत कहो। तुम्हें अचानक कभी-कभी शून्य भाव···" सोमशेखर के प्रतिरोध को बीच में ही काटकर वह बोली, "अचानक, कोई भी बात अचानक, यों ही, बिना किसी वजह के नहीं बनती। कारण जानने की इच्छा तुम्हे नहीं। अगर जानते भी हो तो खुलकर उसे स्वीकार करने की इच्छा नहीं।"

"अमृता, तुम्हारी हालत, तुम्हारे साथ जो अन्याय हुआ है, वह मैं जानता हूँ। उसे भूल जाओ। या माफ़ कर दो। इससे सब ठीक हो जाएगा। मैंने तुमसे चार-पाँच बार कहा भी है। अब 'स्वीकार करने की इच्छा नहीं' का मतलब क्या हुआ ?" उल्टा नाराज़ न होते हुए केवल अपनी अस्वीकृति सूचित करते हुए वह बोला।

"सोमशेखर, इससे साफ़ ज़ाहिर है कि इस विषय पर बात करना तुम्हें पसंद नहीं। अब बातें बंद। हाथ धो लो। समय तीन पचास हुआ है। अब घर जाओगे ? या गेस्ट रूम में सोओगे ?" कहते हुए दोनों की जूठी थालियाँ उठा लीं।

अघा कर खा लेने के कारण सोमशेखर की बुद्धि मंद पड़ गई थी। "अगर यहाँ से जाऊँ तो क्या बच्चे जागकर पूछेंगे नहीं कि अंकल रात में यहाँ क्यों सोए थे ? सवेरे आने वाले नौकर, खाना बनाने वाली को क्या शक नहीं होगा ?"

"अगर तुम्हें इतना डर है तो अभी चले जाइए। मेरे प्रश्न का आपने व्यंजनात्मक ढंग से जवाब दे दिया है। थेंक्स। मानो अंतिम बात कही हो—वह उठकर सिंक के पास चली। पिछवाड़े के दरवाजे के पास लगे नल पर सोमशेखर ने हाथ-मुंह धो लिये, और लाउंज में आकर सोफ़े पर बैठ गया। इतनी थकावट महसूस हुई कि बैठे-बैठे पाँव फैलाकर सो जाने का मन हुआ। लेकिन,

अगर सो गया तो अमृता जो अब जल रही है उसमें घी डालने का काम हो जाएगा। इस सतर्कता के कारण वह प्रयत्नपूर्वक आँखें खोलकर बैठा रहा। दस-पंद्रह बार ऐसी लंबी जंभाई आई मानो जबड़े के जोड़ ही खुल जाएँगे। अमृता के अपने बेडरूम में जाने की आहट सुनाई दी। इस उधेड़बुन में खुली आँखों से दम-एक मिनट गुजारे। सोचा कि वह इसी सोफ़े पर सो जाए या स्कूटर चढ़कर घर चला जाए। इतने में अमृता सरसर वहाँ सामने आकर खड़ी हुई। "यहाँ बैठेंगे, बातें करेंगे तो बच्चे जाग सकते हैं। मैं कुछ कहती नहीं, इसलिए तुम रसोई-घर छोड़कर चले आए?" सीधा अपने सिर पर आरोप मढ़ते हुए वह बोली।

"ऐसा कोई विचार मेरे मन में नहीं आया। थकावट हुई थी। सोफे पर बैठने के इरादे से आया," वह बोला।

"थकावट तुम्हें अकेले को ही नहीं हुई है। शाम को तीन मील से भी ज्यादा चल चुकी हूँ। सारा दिन उपवास भी किया है। तुम्हारे उपवास होने की बात मेरी कोरी कल्पना हो सकती है। सच्चाई कुछ और ही हो सकती है। उसे जानने की जिज्ञासा मुझे बिलकुल नहीं है।"

सोमशेखर जान गया कि अगर वह बोलना शुरू करती है तो किसी भी बात को छुरी की तरह घुमा-फिराकर किसी भी स्थान पर भोंक सकती है। चाहे कितनी भी ईमानदारी के साथ यथार्थ का बोध कराने की चेष्टा की जाए, पर वह बातों के हर शब्द का विपरीत अर्थ लगाती है, इसलिए कहा कि चलो वहीं चलते हैं; फिर वह उठकर रसोई-घर में गया और पहले जहाँ बैठा था उसी कुर्सी पर जाकर बैठ गया। उसके पीछे ही आकर रसोई-घर का दरवाज़ा बंद करके सोमशेखर के बदन से लिपटकर अमृता ने उसके होंठों का कसकर चुंबन लिया और बोली, "सोमु, मैं जानती हूँ कि थकावट के कारण तुम्हें नींद आ रही है। मेरे हृदय में जो वेदना खौल रही है उसे कह लेने के लिए तुम्हारे सिवा मेरा कौन दूसरा आत्मीय है? तुम इस बात को जानते हो। इतना जानते हुए भी क्या तुमने पूछा कि सवेरे तुम अचानक क्यों चली गईं? कहाँ गई थीं, क्या किया? तुमने इस अंदाज में उदासीनता दिखाई कि इसके रहने-न रहने से भला क्या बनने-बिगड़ने वाला है? ऐसी हालत में क्या मुझे गुस्सा नहीं आएगा?" रू-ब-रू बातें करने की सुविधा के लिए वह सामने वाली कुर्सी पर बैठी।

"मैं कितनी देर प्रतीक्षा करता रहा, जानती हो? लगभग एक बजे घर पर फोन किया। फिर जब पहली पंगत बैठी थी तब नीलकण्ठप्पा से घर जाने का बहाना करके स्कूटर पर सवार होकर यहाँ आया था। गेट पर ताला लगा था। दस-पंद्रह मिनट इंतजार किया, फिर लौटकर···" उसके लिए कितना परेशान हुआ था, उन सारी बातों को विस्तार से उसने बताया।

"मैं जानती हूँ कि तुम्हें मुझसे प्यार है। वरना मेरी सारी हरकतों को सह-

कर भी क्या तुम मुझे छोड़ न देते ! जानते हो, मुझे क्या हुआ ? हर रोज वहाँ जाकर दीवारों की डिजाइन, फर्नीचर, तुम्हारा चेंबर आदि हर चीज़ को दिन-रात और सपने में भी सोच-समझकर बनवाया था न ! उद्घाटन उत्सव की सारी योजना भी मैंने ही बनाई। विकास के नामकरण के अवसर पर जो पंडित जी और जो हलवाई आया था उन्हें ही इस अवसर पर भी बुलवाया था। पंडित ने क्या सोचा पता है ? उन्होंने सोचा कि जिस दफ्तर का उद्घाटन हो रहा है वह मेरा यानी मेरे पति का है। इसीलिए मैं इतनी दौड़-धूप कर रही हूँ। सवेरे मैं उन्हे लेने नहीं गई थी। वे खुद ऑटो से आए थे। तुम तब वहाँ नहीं थे। मैं उनकी अगवानी करके उन्हें ऊपर ले गई। पूजा की सारी सामग्री को जाँच लेने के बाद वे बोले, 'सब ठीक है। शुरू कर देंगे। अपने स्वामी को बुलाइए।' मुझे कैसा लगा होगा ! उस दफ्तर के तुम स्वामी हो और मै स्वामिनी। लेकिन, क्या यह बात उनसे कही जा सकती थी ? वे जिस अग्नि का आह्वान करते उसके सामने बैठकर एक साथ दूर्वा लिये बैठे थे क्या अर्घ्य डाला जा सकता था ? अगर उस तरह डाल.. भी गया तो क्या अग्नि उसे स्वीकार करेगी ? मुझे यह सारा अहसास होने लगा। नामकरण के समय रंगनाथ को बुलवा लिया था; जब मैं नाराज़ हो गई थी तब इन्ही पंडित जी ने मुझे उसके साथ बिठाकर अग्नि को अर्घ्य डलवाया था। अब तुम्हे देखकर क्या वे इस परिवर्तन को पहचान नही लेते ? मैंने उनसे कहा, 'यह मेरे सगे-संबंधी का दफ्तर है। उनकी पत्नी है। आप स्वयं सारी विधि-पूजा संपन्न करके अंत में प्रसाद दीजिए।' उन्होने शुरू किया। वे प्रश्न मेरे मन को कुदाल की तरह खोदने-कुरेदने लगे। यह केवल पंडित जी का या पूजा मे सम्मिलित होने का प्रश्न नही था। पंडित जी की पूजा डेढ़-दो घण्टों में पूरी हो जाएगी। उस समय ज्यादा लोग भी नहीं रहेंगे। उसके बाद भोजन के समय लोगो की भीड़ जमने लगेगी। शाम के समय तो झुंड-के-झुंड लोग आएँगे। उन सब के सामने मेरी क्या स्थिति होगी ? कौन है यह महिला ? नई साड़ी पहनकर मालकिन की तरह इस कदर चुस्ती-दुरुस्ती मे हर चीज की निगरानी कर रही है ? वास्तुकार सोमशेखर की क्या लगती है ? आपस में इस तरह की चर्चा करने लगेंगे। इन हजारों आँखो की भेद-भरी निगाह मे मेरा क्या स्थान होगा ? तुम कह सकते हो कि क्या कोई स्नेहिता यह सारा काम नहीं कर सकती ? दौड़-धूप नहीं करती ? लेकिन, वास्तव में हम दोनो केवल स्नेही भी नहीं है। लोग यह नहीं मानते कि स्त्री-पुरुष के बीच केवल स्नेह भी हो सकता है।

"पंडित जी मंत्रोच्चार करते हुए बीच-बीच में अर्घ्य डालकर जब आहुति दे रहे थे तब उसे देखते-देखते मेरे मन में यह प्रश्न मँडराने लगा कि आखिर इस समस्त आयोजन में मेरा क्या स्थान है ? तुम अब तक जान गए हो कि कंबख्त मेरी

स्मरण-शक्ति बहुत तेज है। नामकरण वाले होम में पंडित जी ने जो मंत्र पढ़ा था वही मंत्र अब भी पढ़ने लगे थे। वही स्मृति आज के होम में लौट आई। नामकरण के समय जब मैं आसन पर बैठी थी तब सहसा मुझे अहसास हुआ था कि मैंने धोखे में आकर गर्भ धारण करके बच्चा जना। लगा कि बगल में बैठा हुआ रंगनाथ मेरा पति नहीं है। उसके साथ बैठकर कैसा होम ! कहीं भागकर आत्म-हत्या कर लेने का विचार उस दिन, वहाँ, आसन पर बैठे-बैठे पहली बार जगा था। लेकिन समारोह की स्वामिनी मैं खुद थी। छोड़कर कहीं जा नहीं सकती थी। मेरा यहाँ भी ठिकाना नहीं था और तुम्हारे दफ्तर में सम्पन्न होम मे भी नहीं। समझे ?" कहते हुए सोमशेखर का चेहरा घूरने लगी।

सोमशेखर भी अमृता का ही चेहरा घूर रहा था। अमृता की आँखों की पलकें वास्तव में असहाय की-सी अवस्था में थीं। सोमशेखर को बात नहीं सूझी। अमृता भी खामोशी के साथ उसे निहार रही थी। इस दृष्टि का सामना कर पाना सोमशेखर को कठिन लगा। तुरंत मन में जो प्रश्न कौंधा उससे इस निगाह के भारीपन को कम कर लिया, "मैं शुरू-शुरू में एक घण्टे तक अचरज मे पड़ा रहा। सोचता रहा, पंडित जी को आँटो से भेजा जा सकता था; यह क्यों कार लेकर खुद छोड़ने गई ?"

"वहाँ से निकल जाने का एक बहाना चाहिए था। उन्हें छोड़ने के लिए निकली। उनके बिना भी मैं कार लेकर अपने-आप चली गई होती। पता है, वहाँ से मैं सीधा कहाँ गई ? बताओ, कहाँ गई हूँगी ?"

"पता नहीं, सोच नहीं पाता।"

"कन्नवाड़ी-बाँध पर। टिकट कटवाकर कार भीतर ले गई और होटल के सामने खड़ी कर दी। कावेरी की मूर्ति के पास जाकर वहाँ से सीढ़ियाँ चढ़कर बाँध के ऊपर गई। अपने को रोककर रखे हुए बाँध की दीवार को पानी रह-रहकर थपेड़े मार रहा था। बाँध के पास शायद सौ-सवा सौ फुट की गहराई होगी। उसी को निहारते खड़ी रही। मीलों तक फैले पानी की समस्त चंचलता को रोककर खड़े बाँध का कितना विशाल स्थिर भाव रहा होगा ! एक अनोखा विस्मय हुआ। कुछ देर बाद मन में एक विचार आया। चारों ओर मुड़कर देखा। पास कोई नहीं था। सामने वाली कमर तक की ऊँचाई वाली दीवार चढ़कर जलाशय में छलाँग मारने का आकर्षण उत्पन्न हुआ। प्रचण्ड कोप की किसी लहर ने तुरंत मुझे घेरकर दस-बीस फुट घेरे वाले रहट की तरह घुमाकर आधा पल में मुझे बाँध की किसी पथरीली दीवार पर अगर पछाड़ दिया तो ! पछाड़ने से पहले ही मुँह और नाक से श्वासकोश और पेट में पानी घुसकर प्राण बाहर निकल आएँगे। जीवन की सारी पीड़ा छूट जाएगी। फिर ऐसी स्थिति आएगी कि किसी प्रकार की पीड़ा या यातना कुछ भी नहीं रहेगी। मांस-मज्जा के हर छेद में

पानी भरकर सारा शरीर जलमय हो जाएगा। जल को पीड़ा या वेदना नहीं होती। एक दुर्धर्ष हर्ष के साथ मचलता रहता है। पहले इस बाँध में, फिर नदी के रूप में बहकर समुद्र से जा मिलता है। वहाँ पर भी लहरों के रूप में इठलाते हुए वेग के साथ बहता रहता है। मेरे मन में यह दुर्दमनीय आकांक्षा जागी कि क्यों न मैं उसी जलराशि की तरह बन जाऊँ? इस पीड़ा से मुक्त हो जाऊँ? दुबारा अपने आस-पास देखा। कोई नहीं था। दूर पर कोई आदमी मुझे कमर तक की ऊँची दीवार चढ़कर छलाँग भरते हुए देख लेगा, इसका पक्का विश्वास भी नहीं था। अगर किसी ने देख भी लिया और हो-हल्ला करते हुए दौड़ते आया तो तब तक मैं लहरों के भँवर में चक्कर ही काटती रहूँगी; भीतर सारा पानी भरकर सब खत्म हो जाएगा। दौड़कर आकर भी क्या कर सकेंगे? किसी दूसरे को बचाने के लिए कोई उस मौत के खोह में कूदेगा नहीं। चाहे कितना ही होशियार तैराक क्यों न हो, बचाने की बात तो दूर रही, खुद बच निकलना संभव नहीं था। अपना प्रयत्न [illegible] जाने की संभावना तो बिलकुल नहीं थी। क्यों न अभी सामने वाली दीवार पर चढ़कर—इस सोच में खड़ी-की-खड़ी रह गई। दो-चार पल के काम के लिए प्रवृत्त नहीं हुई। प्रवृत्त क्यों नहीं हुई; अंतिम क्षणों में इच्छा-शक्ति क्यों साथ नहीं देती इस बात का आज भी आश्चर्य होता है। अपने कायरपन से मुझे घिन भी होने लगी है। खोह की लहरों को कुछ देर और निहारते रहकर वहाँ से आगे बढ़ी। बाँध के उस पार; उस छोर के पास नीचे उतरने की जगह है, जानते हो, विश्वेश्वरय्या नहर से कुछ ऊँचाई पर?"

सोमशेखर ने स्वीकृति में 'हाँ' कहा।

"वहाँ से कूदकर नीचे विश्वेश्वरय्या नहर के मुहाने पर [illegible]कर खड़ी हो गई। तुमने उसे देखा होगा। किसने नहीं देखा होगा, भला! [illegible]त्महत्या करने वालों के लिए उससे बेहतर और कौन-सी जगह हो सकती है और सुभीते की भी? एक बार देखकर उसका नज़ारा मन में उतार लिया कि, बस, प्राण देने की चाह रखने वाला हर व्यक्ति सौ-पचास मील दूर से उसकी तलाश में पहुँच जाएगा। उस नहर के मुहाने की धारा कितनी तेज है, इसका अंदाजा मुझे···।" "नहीं, अब तो दिन निकलने को है, कल दोपहर को। चलो।" सोमशेखर के मन में उस जगह की याद हो आयी। उस समय वह इंजीनियरी पढ़ रहा था और अपने अध्यापक तथा सहपाठियों के साथ पहली बार उसने वह जगह देखी थी। एक मिनट में अमुक क्यूसेक्स पानी अमुक रफ्तार में बाहर निकलता; र[illegible] बाँध में जमा जलराशि के दबाव पर निर्भर होती है, आदि वैज्ञानिक बातों से ऊपर उठकर इस समय उसे लग रहा था कि उफनती हुई सफेद फेन बनकर प्रलयंकारी गति से उस जलराशि में अगर कोई गिर जाए तो पलक झपकते श्वास-नलिका और पेट में पानी भर जाएगा और पानी आगे बढ़ाने से पहले हज़ार बार तो

ऊपर-नीचे घुमाएगा। अगर कोई उसे देखता खड़ा रहे तो कलेजा मुँह को आ जाएगा। ऐसा विचित्र आकर्षण होगा जहाँ भय ही स्थायी बन जाएगा। लगता है कि वहाँ से लौटकर आने को मन नही करता। अमृता के समक्ष उसने इस बात का वर्णन किया। अमृता के मन में सह-भावना की सांत्वना जागी।

टेबुल के ऊपर से हाथ बढ़ाकर सोमशेखर का हाथ दबाते हुए बोली, "सोमु, उसे देखने से जो भावनाएँ मेरे मन में उठती हैं वही भावनाएँ तुम्हारे मन में भी उठती हैं। यह जानकर मुझे तसल्ली होती है कि मैं एकाकी नहीं हूँ। आज तक तुमने यह बात क्यों नहीं कही ? मैं कितनी बार वहाँ गई हूँ, जानते हो ? जाकर उसके आकर्षण के क्षेत्र में खड़े रहने मे ही एक गहरी अनुभूति होती है। केवल कल्पनावस्था को प्राप्त करने के लिए नही जाती। वास्तव में उसमें कूद पड़ने के मानसिक दबाव से मैं ग्रस्त हो जाती हूँ। मौत और मौत का स्थान कितना सुंदर, कलात्मक और आकर्षक होता है, इस बात को कल समझ गई। कल दोपहर वहाँ लगभग एक घंटे से भी अधिक खड़ी रही। क्यो खड़ी थी ? आधे में स आधा, उससे भी आधे क्षण में कूदकर उस आकर्षण में क्यो तिरोहित नहीं हुई ? —तुम पूछ सकते हो। वास्तविक बात यह है कि तब तक मैं समझ गई थी। मै कार मे बैठकर वहाँ जो निकलकर आयी थी वह असल मे तुम पर गुस्सा करके। तुम से दूर चले जाने के दबाव के कारण। इतने में दोपहर के दो बजे थे। उस समय इधर क्या हो रहा होगा ? दूसरी पंगत बैठी होगी। तुम सभी का कुशल-समाचार पूछते हुए इधर-से-उधर घूम रहे होगे। भूख के कारण थोड़ी-सा हलुआ या केसरी भात लेकर खा लिया होगा। शायद एक गिलास रसम में ताजा घी डालकर चुस्की लेते रहे होगे अथवा, सभी के बैठ जाने पर एक खाली पत्तल के सामने बैठकर भरपूर भोजन पर हाथ मार रहे होगे। कितना गुस्सा आया, जानते हो ? कैसी घिनौनी भावना ! ऐसी घिनौनी भावना कि चाहे मैं जिऊँ या मरूँ अथवा मरने की ताक में हूँ, सोमु के जीवन में कुछ भी नहीं रुकता ! नया दफ्तर, उद्घाटन-उत्सव, भोज, शाम को रिसेप्शन, उसका खान-पान आदि कुछ भी नही रुकेगा। ऐसी हालत में सामने घहराते जल में कूद पड़ना इतना सुलभ था कि दो-एक पल में वास्तव में कूद पड़ती। सचमुच कूदने के लिए विश्वास दृढ़ होना चाहिए ! बड़ी तेजी के साथ मेरी मानसिकता कठोर होने लगी थी। इतने में कोई पीछे से आकर उस घरघराहट के बीच चिल्लाकर बोला, "कौन ? आप अकेली यहाँ क्यों खड़ी हैं ? उधर जो कार खड़ी है क्या आपकी है ?" मैंने मुड़कर देखा। एक हट्टा-कट्टा आदमी, तलवारनुमा मूँछों से लगा कि पुलिस वाला है। अकेली औरत, बड़ी देर से उस मौत की घरघराहट के किनारे अगर खड़ी हो तो किसी को भी शक होता ही। सम्भव है, वह वहाँ का चौकीदार हो। सुपरवाइजर भी हो सकता है। मुझे गुस्सा आया। 'टिकट लेकर भीतर आई हूँ। मैं जहाँ चाहूँ, जितनी देर चाहूँ

रुककर देखने का मुझे हक़ है, आजादी है।' मैं चिल्लाकर बोली ताकि उस गर्जना में वह सुन सके। 'फिर भी इस जगह अकेले आना मना है। आप चाहें तो ठहरिए, मैं भी यहीं रहूँगा।' वह भी मुझसे दो हाथ की दूरी पर पानी का फेन देखने के अंदाज मे खडा रहा। जब कोई व्यक्ति हमारी ओर ही देख रहा है, हमारे पास ही खड़ा हो तब हमारी भावनाएँ क्या हमारी बनकर रह सकती हैं ? मुझे गुस्सा आया। एक बार आँखें तरेरकर उसे देखा, फिर इस ओर निकलकर आई। धूप से भरे वृंदावन को पार करके कार चढ़कर बाहर निकल आयी। वहाँ से कहाँ जाएँ ? पौने तीन बजे थे। तब याद आया। बच्चों से कहा था कि अंकल के उद्घाटन-उत्सव के भोजन के लिए स्कूल आकर उन्हें ले जाऊँगी। उनके लंच का डब्बा भी नही दिया था। भूखे प्रतीक्षा कर रहे होंगे। सुशीलम्मा से कह देंगे कि माँ आने वाली थी, आई नहीं तो वे खाना खिलाएँगी। वादा करके भी मैंने उन्हें प्रतीक्षा में रखा ! कैसी पापिन हूँ ! इतना पश्चाताप हुआ कि सिर फोड़ लेने को मन हुआ। तेज़ी से कार भगाकर उनके स्कूल गई। सुशीलम्मा ने खाना खिला दिया था। स्कूल की छुट्टी का समय हो चुका था। दोनों को विश्वास दिलाया कि कॉलेज में बहुत काम था, इसीलिए लेने नहीं आ सकी। 'माँ, आज सुशीलम्मा मैडम ने उद्यानवन पाठ पढ़ाया, उसमे वृंदावन भी है। उन्होने चित्र बताया। हमें वहाँ ले चलोगी ?' विजय ने पूछा। मैं मान गई। उन्हें ले जाते समय सुशीलम्मा के बच्चों को कैसे छोड़ दे, इसलिए उन्हें भी बुलाया। साथ में सुशीलम्मा भी। उन्हीं के घर में जल्दी से मुँह धोया, बच्चो को भी मुँह धुलवाया, कंघी की। सभी को साथ लिये पुनः उसी कन्ननबाड़ी गई। शाम के पाँच बजे थे। बच्चे बेहद खुश थे। फिर सुशीलम्मा का स्वभाव भी ऐसा है कि बच्चों को खिलाते, बहलाते खुश रखती हैं। सभी को पॉपकार्न, चाकलेट वगैर दिलवाया। मैंने पेट की गड़बड़ी का बहाना बनाकर केवल एक कप कॉफ़ी पी ली। तीन घंटे पहले इसी जगह इसी बाँध पर नहर के मुहाने में कूदकर प्राण दे देने को तत्पर थी। अब आत्महत्या कर लेने की वह उत्कट भावना कुछ कम भले हुई हो, लेकिन पूरी तरह गई नहीं थी। फिर भी फुदकते-दौड़ते हुए बच्चों के साथ अपने को भी फुदकते हुए, दौड़ते हुए उनके उत्साह मे भागी बनना पड़ेगा ! कैसी पीड़ा ! इसके साथ-साथ अपने भीतर की पीड़ा को दबाए सुशीलम्मा के साथ सहज बनकर अपने आयुष्मानों के सुख-दुःखों की बातें करनी होंगी। जब मैं फुर्सत से मिलती हूँ तब उनका भी मन मुझसे बहुत कुछ बोलने को करता है। सवेरे से भूखी, चलने-फिरने को पाँवो में शक्ति नहीं थी। बच्चो के साथ वृंदावन का पूरा चक्कर काटना पड़ा। जब सात बजे रोशनी हुई तब बच्चो की खुशी तथा उत्साह और भी बढ़ गया। उसे देखकर मैं भी खुश हुई। बच्चों की खुशी से बढ़कर और क्या चाहिए ? लाल पानी, हरा पानी, नीला पानी अपनी अंजुली में भर-भरकर वे जहाँ कहीं छिड़का ते,

मैं भी वैसा ही करती घूमती रही; छुआ-छूई का खेल खेला। इसमें भूखे पेट की आग भूल ही गई। आठ बजे जब वहाँ रोशनी खत्म हुई और सारी उत्सुकता और उत्साह शांत होकर वास्तविकता की जमीन पर लौटा तब सभी को साथ लेकर मैं वापस लौट आयी। पहले सुशीलम्मा के घर उन्हें, उनके दो बच्चों को उतारकर विजय और विकास के साथ घर आयी। जंजीर से बँधे कुत्ते भूख के कारण छटपटा रहे थे। देखकर मन दुखी हुआ। उन्हें खाना देकर माँद से बाहर निकाला; सहलाकर प्यार जताया। बच्चे जो उछल-कूद के कारण थके थे, उन्हें खाना खिलाकर सुलाने के बाद एकाकीपन, खालीपन की भावना जाग गई। उत्साह और जोश तो दूर, जीवन ही निरर्थक-सा लगने लगा। क्यों यह बेमानी लज्जाजनक जीवन जी रही हूँ? यह भावना मन को कचोटने लगी। रिवाल्वर से बिना पल-भर की देरी से अपने-आपको खत्म करने का भाव पुनः जागा। लेकिन घर में गोली की आवाज़, आधी रात के समय लहूलुहान माँ की लाश को देखकर बच्चों को कैसा सदमा पहुँचेगा! इस विचार से रिवाल्वर लिये कार चढ़कर निकल पड़ी। गेट पार कर रही थी कि तुम्हारे स्कूटर की रोशनी दिखाई पड़ी। तुरंत मैं पहचान गई कि तुम ही हो। तुम पर कितना गुस्सा आया, जानते हो? दोपहर नहर के मुहाने पर रोक लगाकर वहीं खड़े पुलिस वाले पर जो गुस्सा आया था उसके गुस्से को भी जोड़कर तुम पर बरस पड़ने के लिए मेरा क्रोध खौल उठा। फिर भी मैं अपने-आप पहाड़ की ओर कार भगाती रही..." अमृता जब अपनी यह दास्तान सुना रही थी तभी बाहर कौओं की आवाज सुनायी पड़ी। खिड़की से बाहर झाँककर देखा तो पौ फट रही थी। अमृता अपने हिस्से की सारी रपट सुना चुकी थी। सुनकर सोमशेखर का मन बहुत भारी हो गया। उसे कुछ सूझा नहीं। अमृता भी खामोश थी। कुछ देर बाद खिड़की से रोशनी भीतर आने लगी। अमृता बोली, "पुट्टम्मा शायद जल्दी आ जाए। बच्चों को जगाकर स्कूल के लिए तैयार करना है। तुम जयलक्ष्मीपुरम जाकर कुछ देर के लिए सो लो।"

घर आकर सोने की कोशिश करने पर भी नींद नहीं आयी। दिन निकल आया था और नींद का समय बीत गया था; और आँखें बंद करते ही अँधेरे पहाड़ की घाटी में रिवाल्वर लिये अपने प्राण त्यागने की तैयारी में खड़ी अमृता का चित्र ही उभरकर आने लगता। अमृता किसी भी रात यह काम कर सकती है। घर पास ही है, कार तैयार रहती है। गोलियों से भरा रिवाल्वर बिस्तर के बगल वाली दराज़ में ही रहता है। अमृता के मुँह से ही सुना था कि प्राण खोने की चाह बार-बार उसके मन में उठती रहती है। लेकिन उस चाह की तीव्रता इतनी गहरी होती है, इसकी कल्पना आज तक मैंने नहीं की थी। इस बात का डर हो गया कि वह किसी भी क्षण गोली दाग सकती है। अचानक अगर गोली मार ली तो?

मन में ऐसा अँधेरा छाने लगता है कि अगली स्थिति के बारे में सोच भी नहीं सकता। कल्पना भी नहीं कर सकता। जहाँ लेटा था वहीं से आँखें खोलकर घड़ी देखी। सात बजे थे। अमृता के घर उसका खाना पकाने के लिए पुट्टम्मा आ गई होगी। नौकरानी महादेवम्मा भी आ गई होगी। बच्चों को जगाकर अमृता उन्हें स्कूल ले जाने की तैयारी कर रही होगी। रात-भर जागते रहने के कारण उसका बदन भी टूट रहा होगा। बच्चों को नहलाकर कपडे पहनाने और छोड आने की पर्याप्त शक्ति नहीं रही होगी। जो भी हो, गोली मारकर आत्महत्या न करे—आँख बंद करके मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना की। खाना बनाने वाली तथा नौकरानी दोनो औरतें दस बजे तक घर मे रहेंगी। उस बड़े घर को झाड़-बुहार कर, कपड़े धोकर, चौका-बर्तन करके, बाहर पेड़-पौधो को पानी देकर, अहाता साफ करके दस बजे से पहले महादेवम्मा का जा पाना संभव ही नहीं। अकसर तो वह अमृता के कालेज से लौटने के बाद ही अपने घर जाती है। पता नहीं, आज वह कालेज जाएगी [illegible] लेगी। दरअसल महादेवम्मा के रहने के कारण वह अकेली नहीं होगी। गोली-वोली नही मारेगी इस, बात से मन को तसल्ली मिली। इस सांत्वना के साथ ही कुछ देर के लिए उसे नीद आ गई।

सोम साढे दस बजे सोकर उठा और नहा-धोकर दफ्तर चला गया। नीलकण्ठप्पा पुराने दफ्तर से फाइल, डुप्लिकेटर, ड्राइंग टेबुल, टाइपराइटर, किताबें आदि नए दफ्तर को ले जाने की तैयारी में लगा था। फोनवालों ने आज ही फोन स्थानांतरित करने का आश्वासन दिया था। पास वाले होटल में नाश्ता करके वह भी सामान रवाना करवाने में हाथ बँटाने लगा। सारा सामान नए दफ्तर में जुट जाने के बाद कल से व्यवस्थित काम शुरू होगा। देखभाल की जिम्मेदारी नीलकण्ठप्पा को सौंपकर वह दोपहर को खाने के लिए स्कूटर पर चढ़कर निकल पड़ा। जाते समय रास्ते में वह मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा कि हे भगवान, वह सुरक्षित मिले। मृगालय का मोड़ पार करने के बाद तेज रफ्तार में उसके घर के सामने जाकर सोमशेखर ने स्कूटर रोका। स्कूटर की आवाज़ सुनकर सामने वाली माँद से विक्रांत स्वागत में भौंकने लगा। पिछवाड़े से विश्वास ने उसके सुर में सुर मिलाया। गेट पर ताला नही लगा था। लेकिन घर का बाहरी दरवाज़ा बंद था। सोमशेखर ने घंटी दबाकर आवाज नहीं दी। अगर घर में होती तो स्कूटर और कुत्तों की आवाज़ से दौड़कर दरवाजा खोलती है। आवाज के बिना भी बाहर प्रतीक्षा में खड़ी रहती। कालेज से [illegible] नहीं होगी। अथवा...अथवा ...दिल धड़कने लगा। कल की तरह कन्ननबाड़ी, विश्वेश्वरय्या नहर का मुहाना वगैरह से भयभीत हुआ। धीरे से किवाड़ को ठेलकर देखा। भीतर का ताला लगा नहीं था। पता चला कि भीतर से सिर्फ बोल्ट लगी हुई है। भीतर रहकर भी अगर रिवाल्वर ...! भय हुआ। फिर भी एक प्रकार का धीरज था। मन में

एक विश्वास कि उसने ऐसा कुछ नहीं किया होगा। सारी रात सोई नहीं थी। शायद सो गई होगी। यह सोचकर सोमशेखर वहीं खड़ा रहा। दो पल बाद दायीं ओर से चक्कर लगाकर अमृता के बेडरूम की ओर गया। खिड़की से झाँककर देखा। एक खिड़की खुली थी। धीमी गति से घूमते पंखे के नीचे बड़े बिस्तर पर वह गहरी नींद सो रही थी। उस कोमल सुन्दर चेहरे का बायाँ भाग दिखाई दे रहा है। श्वासोच्छ्वास की गति से वक्षस्थल ऊपर-नीचे उठ-गिर रहा था। सोमशेखर को तसल्ली हुई। 'अमृता' कहकर जोर से आवाज लगाने का मन हुआ। होंठ खुले, शब्द जबान तक आये लेकिन, 'सारी रात सोई नहीं, सवेरे कुछ क्षण पलकें लगी होंगी या फिर कालेज गई होगी'—इस विचार से उसने अपने-आपको रोक लिया। दो-एक पल अमृता के उस रूप को वह अपनी आँखों में भरता रहा। फिर खयाल आया कि किसी सोते को इस तरह कोई आदमी निहा-रता रहे तो सोने वाले का अंत:करण उसे इसकी सूचना दे देता है और इस तरह उसके जाग जाने का डर रहता है। इसलिए चुपचाप वह वहाँ से निकलकर घर के सामने वाले भाग में आ गया। बाहर आकर गेट बंद किया। स्कूटर की आवाज़ से कहीं अमृता जाग न जाए, इस भय से स्कूटर को दो-सौ फुट दूर बिना स्टार्ट किए ही ले गया और फिर किक मार कर स्टार्ट किया। किसी होटल में दो पूरी खाकर एक प्याला कॉफ़ी पी ली। फिर अपने नए दफ्तर पहुँचकर अपने चेंबर की चीजों को तरतीब से लगाने लगा। कुछ देर बाद डाक-तार विभाग वालों ने आकर फोन जोड़ दिया। हर चीज़ अमृता के विन्यास के अनुसार ही थी। एअर-कंडीशनर चालू करके भीतर बैठ गया; बाहर की किसी आवाज से कोई ताल्लुक नहीं। सोम ने सोचा, फोन की पहली काल क्या अमृता को करूँ? वह भी घर पर अकेली है। पलंग की बगल में ही फोन है। लेटे-लेटे ही चोंगा उठाकर बात कर सकती है। लेकिन, नींद को भंग करना उचित न समझकर उसने फोन नहीं किया। फाइल निकालकर हुणसूर के तंबाकू के एक जमींदार के घर की रूपरेखा तैयार करने लगा।

शाम को आठ बजे नीलकण्ठप्पा के चले जाने के बाद फोन किया। अमृता ने फोन उठाया। ज्यादा बोली नहीं। समझ गया कि सामने बच्चे होंगे। दोपहर उसके यहाँ जाने की बात कहकर बोला, "तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा हो रही है। क्या अभी आ सकता हूँ?"

"आना चाहें तो आइए।" भावशून्य-सी नीरस आवाज़ में वह बोली।

"ऐसी बात नहीं, इस समय बच्चे होंगे।" उसने बात को स्पष्ट किया।

"अगर आपको ऐसा डर है तो मत आइए।"

सोमशेखर मानो थप्पड़ खा गया। अमृता का उसके साथ इस तरह बातें करना कोई नई बात नहीं। लेकिन सवेरे से उसकी खुशी के लिए परेशान रहा है,

और अब धैर्यपूर्वक बातें कर रहा है और वह है कि तीखा और मुँहतोड़ जवाब दे रही है। फोन का चोंगा रख देने का मन हुआ। आगे कुछ बोला नहीं। सोचने पर भी शब्द नहीं सूझे। कुछ देर चुप बैठा रहा। जिज्ञासा बनी रही कि अमृता कुछ बोलेगी या फोन रख देगी ? अमृता ने दोनों काम नहीं किए। चोंगा लिये ही बैठी है। आखिर सोमशेखर ने ही कहा, "मुझे कोई डर नहीं है। हममें बात जो हुई थी कि जब बच्चे घर पर हों और वह भी रात के समय, मेरा आना ठीक नहीं। इसलिए पूछा।"

"मैं जिनको चाहती हूँ उन्हें रात के भोजन के लिए बुलाने की आजादी मुझको है," वह बोली।

"आधा घण्टे में पहुँच रहा हूँ।" सोमशेखर ने फोन रख दिया।

दफ्तर के दरवाज़े पर ताला लगाकर मार्केट गया। वहाँ ढूँढ कर खुशबूदार चमेली का जूडा बनवाया। फिर बढ़िया मिठाई की दूकान से बादामी हलुआ और जहाँगी... का बड़ा पैकेट बनवाकर सादा प्लास्टिक की कागज में जिस पर दुकान का नाम न हो, बँधवा लिया। उसे समाचार-पत्र में लपेटकर स्कूटर में रखकर निकल पड़ा। उस घर की मरम्मत के समय उसके बच्चों ने उसको कई बार देखा था। उसने उन बच्चों के साथ प्यार से बातें की थीं। अपना और अमृता का स्नेह जब इस दिशा में निकट आता गया तबसे दोनों ने इस बात की सावधानी बरती थी कि यथासंभव सोमशेखर का वहाँ आना-जाना बच्चों को पता न चले। लेकिन, बीच में कभी दो-तीन बार छुट्टियो में बच्चो की उपस्थिति में दोपहर के समय यो आकर खाना खाकर चला गया था मानो संयोग से आ गया हो। उनकी माँ के साथ बैठकर बातें करके चला गया था। इस तरह ... की सूचना स्वयं अमृता ने ही उन्हें दी थी। अब जब वह आने वाला था तब वि...य और विकास दोनों भीतरी कमरे मे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने ही किवाड़ भी खोले। फिर अमृता स्वागत करने आई। सोमशेखर ने छूटते ही कहा, "सुनिए, कल आप भोजन पर नहीं आयीं। बच्चो को भी नहीं भेजा। मैं इंतजार कर-करके थक गया।" "हमारे विजय और विकास ने भी पूछा। जानते है, कल कालेज मे क्या हुआ ? हड़ताल ! प्रिंसिपल साहब छुट्टी पर थे। यह क्या उद्घाटन की मिठाई ले आए ? क्या-क्या बनवाया था ?"—कहते हुए अमृता ने पैकेट लेकर वहीं उसका कोना फाड़कर देखते हुए बोली, "ओफ़, बादामी हलुआ ! अपने विजय भैया की जान, जहाँगीर विकास के प्राण। यही तो बनवाया था। हम लोग भोजन के लिए भले न आए हों, लेकिन, आज इतनी मिठाई ले आए हैं कि सप्ताह-भर आराम से खायी जा सकती है। आपको बच्चों से बड़ा लगाव है। मेरे लिए कुछ नहीं लाए ? देखो रे, तुम्हारे अंकल की नीयत ! वे जानते भी नहीं कि मेरी पसंद की चीज़ अंबोडे है। शायद बनवाया भी नहीं था। लेकर तो आए नहीं।

भला मुझे गुस्सा नहीं आएगा ?" कहते हुए भीतर गई। पैकेट खोलकर चम्मच के साथ प्लेट में डालकर बच्चों को दी। खाना खाकर पेट भरा होने पर भी वे स्वाद से खाने लगे। "देखिए, कल आपके उद्घाटन के भोजन में तो हम लोग नहीं आ सके। लेकिन आप भोजन करके ही जाइएगा। अभी चावल चढ़ाती हूँ, बैठिए।" बच्चों के सामने आग्रह किया।

बच्चो के सामने अमृता के चेहरे पर मुसकान और आत्मीयता झलक रही थी। लेकिन बच्चो को उनके कमरे में ले जाकर कहानी सुनाकर, सुलाकर लौटते समय उसकी सारी मुसकान और आत्मीयता सूखकर चेहरे से गंभीर विषाद टपक रहा था। वास्तव में जो खाना पकाया था वही काफी था। लेकिन पहले बच्चों को सुलाकर, फिर दोनों के एक साथ खाने के इरादे से उसने चावल चढ़ाने की बात कही थी। अब पिछले दिन के अंतिम प्रहर की तरह रसोई-घर की छोटी-सी मेज पर दोनों के लिए खाना लगाकर सोमशेखर को बुलाया। जब वह दाल परोस रही थी तब सोमशेखर ने कहा, "तुमने पहले भी कहा था। लेकिन समझ नहीं पाया था कि क्या दबाव इस कदर बढ सकता है ?"

अपने लिए भी दाल परोस लेने के बाद अमृता बोली, "जिन पर बीतता है वे ही जानते हैं। औरों की समझ में कैसे आ सकती है ?"

मानो मुँह पर थप्पड़ मारा गया हो। सात्वना करने, यह जताने की चेष्टा करने गया कि तुम्हारी पीड़ा मेरी अपनी पीड़ा है, तुम्हारे संकट में भागीदार बनने के लिए मैं हूँ। लेकिन उसने पहली ही बात में कैसा थप्पड़ मारकर सारा सद्भाव ठण्डा कर दिया। सोमशेखर को आगे कुछ न सूझा, वह खामोश हो गया। वातावरण में खामोशी छा गई। बोझिल खामोशी, शून्य और मौन। अमृता ने बात करने की चेष्टा नहीं की। सोमशेखर ने गरदन झुकाए दाल-भात खा लिया।

"हो गया ?" अमृता ने पूछा। सोमशेखर समझ नहीं पाया कि क्या हो गया। गर्दन उठाकर उसका मुँह देखा। "दाल-भात खा चुके हो, यह मैं देख रही हूँ। मैंने पूछा कि क्या सांत्वना देने की तुम्हारी बातें हो गयीं ?" बात को स्पष्ट करने के अंदाज में बोली।

सोमशेखर की पीड़ा और बढ़ गई, "मेरी बात क्या तुम्हें केवल कोरा कथन जैसी लगती है ?"

"पता नहीं, कोरा कथन है या भावनाओं से ओत-प्रोत है। दर असल कथन नहीं तो फिर क्या है ?"

सोमशेखर समझ नहीं पाया। बातें भावनाओं की, दिल की गहराई की, अंतरंग की अभिव्यक्ति का साधन होती हैं। उनके बिना स्नेह-प्यार की अभिव्यक्ति कैसे करे ? वह मन-ही-मन व्याकुल हुआ। मुँह से कुछ नहीं बोला। कुछ देर उसके उत्तर की प्रतीक्षा करके अमृता बोली, "आपके उत्तर की प्रतीक्षा करने

वाली मैं भी एक पागल औरत हूं। आपने जवाब दे दिया है। नहीं, नहीं! इशारा कर दिया है।"

वह अब भी नहीं समझ पाया। इतना समझ पाया कि वह 'तुम' से 'आप' पर उतर आयी है। मैंने क्या इशारा किया है? तुमने क्या समझ लिया है?—पूछने का मन हुआ। लेकिन, वह पुनः मुंह-तोड़ जवाब देगी, इस भय से वह चुप रहा। पहली बार उसे अहसास हुआ कि ऐसे संदर्भों में वह अमृता से डरता है। खामोशी में ही दही-भात रीत रहा था। सोमशेखर ने अपने डर और अमृता के काटते जवाबों की परवाह न करके अपने भीतर जो बात रूपायित हुई थी उसे कहा, "अब मैं क्यों आया हूं, जानती हो? तुम्हारा रिवाल्वर छीनकर ले जाने के लिए।"

अमृता ने गर्दन उठाकर उसका मुंह देखा। अमृता के चेहरे पर नफ़रत टपक रही थी। सोमशेखर उसे पहचान गया। फिर भी नफरत को तुरंत दबाकर प्रकट में प्रसन्नता बिखेरते हुए वह बोली, "शहर के बाहर वाले घर में छोटे बच्चों के साथ रात के समय अकेली रहती हूं। इसलिए आत्मरक्षा के लिए रिवालवर का लाइसेंस दिया गया है।"

"केवल आत्मरक्षा की बात होती तो मैं परेशान नहीं होता।" तुरंत वह बोला।

"तब आप यहीं रह जाइए। रात में किसी का भय नहीं रहेगा। लाइसेंस लौटा दूंगी।"

"रह जाऊंगा।" असंभव बात भी कहने में बड़ा मज़ा आता है, सोचकर वह बोला।

"सच?" अमृता ने घूरते हुए इस गर्भार अंदाज में प्रश्न किया मानो कह रही हो कि झूठी बात अपने सामने नहीं चलेगी। सोमशेखर चुप हो गया। "चुप क्यों हो गए?" अमृता ने तलब किया। वह फिर भी चुप रहा। "मगरमच्छ के आंसुओं से मैं बाज आ गई हूं। सच बताइए।" उसने अपना आग्रह जारी रखा।

"मैं संजीदा बात कर रही हूं।" सोमशेखर ने कहा।

"मै भी संजीदा बात ही कर रही हूं। मैं भी काम की ही बात पसंद करती हूं।"

"रात की रखवाली के लिए किसी गोरखा चौकीदार को रख लेना कैसा रहेगा? पुलिस स्टेशन मे उसका नाम दर्ज करवाएंगे और उन्हीं के द्वारा नियुक्त हो जाए। दफ्तरों में जो दिया जाता है उसी तरह प्रतिमाह वेतन दिया जाएगा।"

"आप खुद गेट के पास खड़े होकर रात को चौकीदारी करें तो कैसा रहेगा? पांच सौ नही, छह सौ प्रतिमाह दूंगी। चाहो तो पुलिस स्टेशन में नाम भी दर्ज करवाएंगे।" उसकी आवाज में नफरत भरी थी।

"बात-बात पर मेरा अपमान करना ही अगर तुम्हारा उद्देश्य हो तो···" कहते हुए वह हाथ धोने के लिए उठ खड़ा हुआ। इस बीच दोनों खाना भी खत्म कर चुके थे।

"आप चालाकी की बातों में ही समय बिताना चाहते है तो समझ लीजिए, उससे मेरा भी अपमान होता है।" अमृता भी खड़ी होती हुई तपाक से बोली।

"चालाकी की बात तुम कर रही हो। अपना घटियापन मुझ पर मत थोपो।" उसने प्रत्युत्तर में कहा।

अमृता ने उसे चुभती आँखों से देखा। सोमशेखर ने उसे कोंचकर निकाल फेंकने के अंदाज में घूरा। अमृता ने झट अपना दाहिना हाथ उठाकर फट से उसकी कनपटी पर एक थप्पड़ जड़ दिया। दही-भात चिपके हुए हाथ की चारो उँगलियों के निशान सोमशेखर के बाएँ गाल पर दिखाई पड़े, और वे चरचराने लगे। उसका भी दायाँ हाथ तनने लगा। लेकिन तुरंत उसे नियंत्रित कर लिया। दो-एक पल के लिए आँखों के सामने अँधेरा छा गया। अमृता उसके चेहरे को उसी धधकती निगाह से देख रही थी। सोमशेखर ने अपनी नज़र हटाकर पिछवाड़े के दरवाजे के पास वाले नल पर अपना हाथ धो लिया। गाल पर पड़ा उँगलियों का लाल-लाल निशान सामने वाले दर्पण में दिखाई पड़ा। मन को काबू में रखने की लाख कोशिशों के बाद भी आँखो में पानी भर आया और उसकी दृष्टि धूमिल होने लगी। गाल पर उभरे उँगलियों के निशान को धो लेने से मन ने इंकार किया। मन में तुरंत तिरस्कार का भाव जागा कि इस लज्जा का प्रदर्शन उसके सामने क्यों करें? उसने बंद नल को पुन: घुमाया। पानी छिड़ककर मुँह धोया। आगे क्या करे, कुछ समझ नहीं पाया। बगल वाली सलाख पर रखा तौलिया न लेकर उसने अपनी जेब से रूमाल निकाला और हाथ-मुँह पोंछकर लाउंज में आया। हेलमेट और स्कूटर की चाभी उठाकर बाहर आया। गेट खोलकर स्कूटर स्टार्ट किया। मुड़कर देखे बिना तेज रफ्तार से मृगालय के मोड़, हार्डिज चौक, अपने नए दफ्तर वाला देवराज अरसु मार्ग पार करके जिला कचहरी के सामने से होते हुए कुक्करहली तालाब के पुश्ते के पास आकर स्कूटर बंद किया। उसे लॉक करके बाँध पर लगभग एक फर्लांग चलकर वहां पत्थर की एक बेंच पर बैठ गया।

आकाश में गहरा अँधेरा था; फिर भी बाँध पर दूर-दूर की बत्तियों की मद-मंद रोशनी थी। तालाब का काला पानी अँधेरे में यों घुल गया था कि उसका फर्क ही नजर नहीं आता था। लेकिन उधर गंगोत्री और सामने वाली हुणसूर सड़क की बत्तियों की छाया के कारण पानी का अस्तित्व पहचाना जाता था। लेकिन मन में अँधेरे का ऐसा विस्तार बन गया था जहाँ कहीं भी कोई प्रकाश-बिंदु नजर नहीं आ रहा था। रोष, प्रतिशोध आदि प्रतिक्रियाओं से मुक्त होकर,

आतंक के भार से भीतर की ओर खींची जाने वली हीन-भावना, सब कुछ भुला देने की चेष्टा से उन्मुक्त होकर पत्थर की बेंच के पीछे लगी लोहे की पट्टियों से टेक लगाकर बैठा था। तभी जूतों की, सीटी की आवाज़ सुनाई दी। बांध के रास्ते पर टार्च की रोशनी भी। वह पहचान गया कि तालाब का चौकीदार है। उसी ने बात शुरू की, "सुनो भैया! वहाँ जो तुमने स्कूटर देखा वह मेरा है। दो-एक पल आराम से बैठकर चला जाऊँगा। देवराज अरसु मार्ग पर मेरा दफ्तर है। मैं एक वास्तुकार इंजीनियर हूँ। सोमशेखर मेरा नाम है। जयलक्ष्मीपुरम में घर है। तालाब में कूदकर जान देने के लिए नहीं आया। तुम जाओ।"

"रात के समय यहाँ आने की मनाही है न, सा'ब!" उसने विनम्र आपत्ति की।

"देखो भाई! मैं जान नहीं दूंगा और न किसी लड़की-वड़की का चक्कर ही है। चाहो तो देखते रहो। कोई भी औरत मेरी खोज मे यहाँ नहीं आएगी। आप आराम से चले जाओ। सवेरे कॉफी पी लेना।" उसके टार्च की रोशनी में ही जेब में हाथ डालकर दो का एक नोट उसके हाथ में थमा दिया।

"सा'ब, अकेले होंगे, कहीं चोर-उचक्के···! फिर वह स्कूटर!" उसने साव-धान किया। सोमशेखर ने कहा कि उसकी देखभाल तुम करना। तब वह सीटी बजाते हुए लौटकर चला गया।

चौकीदार के चले जाने के बाद उसके अवरुद्ध मन की गति में संचालन शुरू हुआ। वह कहाँ चला आया? यह प्रश्न उनके मन में घूमने लगा। जवाब मे कोई रास्ता नहीं खुला। कोल्हू के बैल की तरह वहीं घूमने लगा। बंबई में केवल यांत्रिकता है, मानवीय संबंध बहुत कम होते हैं। वहाँ यहाँ की तरह कुक्करहल्ली का तालाब, चामुंडी पहाड़, ललित-महल का विस्तार आदि नहीं है। जहाँ टिम-टिमाते तारे भी दिखाई नहीं देते। उस जीवन से तंग आकर इस शहर में आया। लेकिन यहाँ आकर कैसी उलझनों में फँस गया! पुनः यही प्रश्न सामने आ गया। चाहे कोई भी पेशा हो, ग्राहकों से सौजन्य के साथ, किंतु अधिक लगाव न रखते हुए, पेश आना चाहिए। इस नियम का उल्लंघन करने के ही कारण यह नौबत आ गई। अपने और अमृता के बीच के संबधों की घनिष्ठता जिस स्तर पर शुरू हुई, उसका स्मरण करने लगा। उसने खुद ही पहल की थी, मैंने नहीं। लेकिन उसकी पहल मात्र से मैंने क्यों लार टपकाते हुए उसका [illegible] किया? अच्छी सजा मिली; इसमें उसका कोई दोष नहीं—अंतिम परिणाम का सारा नैतिक दोष अपने सिर पर मढ़ लिया। बाएँ हाथ की उँगलियों से गाल को सहलाकर अहसास किया। अब भी जलन है। लाल सूजन का थक्का भी पड़ गया होगा। उजाले में दर्पण में दिखाई देगा। अपनी लज्जा, अवमानना की निशानी दर्पण में क्यों देखे? मन को अहसास हो रहा है न! मन और भावनाएँ एक साथ गहरे

आत्मावहेलन में डूब गई।

बड़ी देर तक उसी अवस्था में रहा। फिर वही प्रश्न सताने लगा कि उसमें ऐसी कौन-सी विशेषता थी कि मैं आर्कापित हुआ? खूबसूरत, है, पढ़ी लिखी है, मन को भाने लायक बोल-चाल करती है, और फिर औरत के नाते मन में स्वाभाविक आकर्षण—इन जवाबों के अतिरिक्त भी मन तुलना करने लगा—ऐसी कौन खूबसूरत है? बंबई वाली से ज्यादा तो नहीं? फिर विचारों में अवरोध आ गया कि एक-दूसरे की तुलना ठीक नहीं, फिर भी मन में तिरस्कार का भाव आया कि अमरीका से पी-एच० डी० करके देश-विदेश के भ्रमण का अनुभव पाकर बंबई जैसे ऊँचे सामाजिक माहौल में जीनेवाली के सामने जंगलों के बीच कॉफ़ी के बगीचे, हासन, मैसूर तक ही दौड़ लगने वाली इसी शहर से पी-एच० डी० की हुई इस औरत में कैसा आकर्षण? लेकिन बंबई का नाता हाथ से निकल गया था। पुनः जुड़ने की संभावना नहीं थी, मैं खुद घिन के कारण उससे दूर हुआ। इन दोनों की तुलना करना ग़लत है; यह बड़ी अहंकारी औरत है; उसमें घटिया कामना ही स्थायी है। किंतु जरा भी अहंकार नहीं था। अनचाहे ही तराजू का पलड़ा उठ गया। कुछ समय बाद; छिः! इस तरह दो औरतों की तुलना करते बैठना कैसी क्षुद्रता है! पुनः आत्मावहेलन का दौर आया और उसने अपने को डुबो लिया। कुछ समय बाद मन में केवल यही भावना रही कि अपने को ठीक सजा मिली। इसके सिवा कोई और विचार मन में नहीं आया।

इतने में बदन में थकावट भी महसूस होने लगी। कल सारी रात नींद नहीं आई थी, सवेरे दो-एक घंटे की नींद; वह भी उनींदी अवस्था—इस अहसास के साथ वह उठ खड़ा हुआ। एक बार यों अँगड़ाई ली कि सारे बदन की पीड़ा का सारा कचूमर बाहर निकल जाए। दायीं ओर मुड़कर स्कूटर की ओर क़दम बढ़ाने लगा। आधा फर्लांग चल पाया था कि पाँवों की क्रियावाहिनी नाड़ियाँ मानों मर-सी गईं, वह वहीं खड़ा रहा। अहसास हुआ कि वह आगे कदम बढ़ा ही नहीं सकता। आशंका हुई कि मैं आगे कदम बढ़ा सकूँगा या यहीं ढह जाऊंगा, कहीं अपने पाँवों को लकवा तो नहीं मार गया? हाथ उठाकर देखा। बायाँ हाथ भी उठाकर घुमाया। हाथों को, गर्दन, आंख, कान आदि किसी को भी कोई क्षति नहीं पहुँची थी। अमृता से थप्पड़ खाए गाल को बाएँ हाथ से सहलाकर देखा। अभी जलन है। जलन का अहसास होते ही तत्काल पाँव की नाड़ियाँ सुधर जाने का अनुभव हुआ। कदम बढ़ा पाना संभव हो सका। सरपट कदम बढ़ाया। ऊपर का अंधकार, बायीं ओर का पानी, दायीं ओर नीचे पाँव पसारकर सोया हुआ बोगादी का रास्ता—किसी का भी ध्यान नहीं रहा। बांध के छोर पर आकर स्कूटर का लॉक खोला। स्टार्ट करके उसकी रोशनी में घड़ी देखी।

पौन बज गया था। अभी सोयी नहीं होगी। चाहे कुछ भी बजा हो; सोयी भी हो तो परवाह नहीं; बिस्तर की बगल में ही फोन है। इस बेवक्त डिस्टर्ब किए जाने के लिए माफ़ी माँगी जा सकती है। वह स्कूटर पर चढ़कर देवराज अरसू मार्ग पर अपने नए दफ्तर के सामने आकर रुका। जीना चढकर दफ्तर का ताला खोला। बत्ती जलाई। अपने चेंबर में घुसकर फोन का चोगा उठा लिया। नंबर तो याद था ही। अपनी डायरी या डायरेक्टरी देखने की आवश्यकता नहीं थी। जैसे ही दूसरी बार की घंटी बजने लगी, तुरंत चोंगा उठाकर 'हैलो' की दीर्घ-परिचित आवाज़ ने अपना परिचय दिया। इसने पूछा, "कौन नवीनभाई, नींद लगी थी? डिस्टर्ब तो नहीं हुआ?"

"अभी-अभी बत्ती बुझा रहा था। मेरी चिट्ठी मिली? नवसारी में एक टेक्सटाइल फैक्टरी की इमारत का काम चला है। तुम्हारे नए दफ्तर के उद्घाटन-उत्सव पर लाख कोशिश करने पर भी आ नहीं पाया। कैसा रहा फंक्शन?"

"सब ठीक रहा। मैंने एक ग़लती की है। अब तुम्हें ही सुधारनी होगी।"

"मैं जानता हूँ, तुम प्रोफेशन में ग़लती नहीं करोगे। व्यवहार में करते रहते हो। बताओ, क्या बात है?"

"तुम से लाया हुआ डी० डी० लौटा दिया न, उसे लौटाना नहीं चाहिए था। उस समय जिन्होंने पैसे दिए थे उन्हें अब तुरंत पैसों की आवश्यकता आ पड़ी है। एक लाख बयालीस हजार चाहिए। इंतजाम कर सकोगे?"

"अपना बैंक और एकाउंट नंबर बताओ। कल सवेरे टेलेक्स मैसेज द्वारा जमा करवा दूंगा। तुम्हें घर पर भी फोन लगवा लेना चाहिए, य ! मैं खुद तुम्हें रिंग करने वाला था। क्या तुम वहाँ का हर काम स्थगित करके दस-पंद्रह दिन के लिए बंबई आ सकोगे? फैक्टरी की सारी प्रिलिमनरी कर ली है। तुम आओगे तो साथ बैठकर फाइनल कैलकुलेशन कर सकेंगे। हम दोनों को साथ मिलकर काम करने का अनुभव है, इसलिए तुम रहोगे तो ठीक रहेगा। दोनों के आइडिया मेल खाते है। तुम्हारे आने-जाने का एअर टिकट, भोजन-आवास और लौटते समय बीस हज़ार फीस दूंगा। दिन-रात काम करना होगा। कब आओगे, कल इदु को फोन पर बता देना। अब तुम अपना बैंक और खाता नंबर बताओ, नोट कर लूंगा; एक लाख बयालीस हज़ार कहा न?"

नवीन को आवश्यक सूचना देने के बाद चोंगा नीचे रखा तब अहसास हुआ कि अब वह अमृता के प्रभाव से छूट गया है, छूटकर बाहर निकला है, मन हलका हुआ। कुछ देर तक अपनी घूमने वाली कुर्सी पर बैठा रहा। फिर उठकर ताला लगाकर नीचे आया। स्कूटर पर चढ़कर जयलक्ष्मीपुर वाले अपने घर

आ गया। कपड़े बदलकर खिड़की खोलकर सो गया। उसे खयाल आया कि उसने पलटकर थप्पड़ जो नहीं मारा वह ठीक ही किया। कोई अगर मारे तो उसके बदले में हमारा भी मारना बराबरी का काम होगा—यह एक सामान्य सूत्र है। यह बात मन में आयी। लेटे-लेटे ही एक बार अँगड़ाई लेने का मन हुआ। आँखें बंद कीं। थोड़ी ही देर में वह गहरी नींद सो गया।

सवेरे सात के लगभग आँख खुली। भरपूर न सही, लेकिन काफ़ी अच्छी नींद आई थी। जागने पर भी उठने का मन नहीं हुआ। जँभाई लेते लेटा रहा। अमृता की याद हो आयी। जिज्ञासा जागी कि रात को उसके वहाँ से चले आने के बाद उसने क्या किया होगा? इस भाँति नौकर की तरह थप्पड़ मारने के बाद। नौकरों तक को भी इस भाँति मारना गँवारूपन है, इन दिनों कोई नौकर कुछ सुनता नहीं। क्या अमृता को खेद हुआ होगा? इस प्रश्न का निश्चित जवाब सोच नहीं पाया।

कुछ देर बाद अहसास हुआ कि अपना मन चाहता है कि अमृता को खेद हो और वह इसी कल्पना की उधेड़-बुन में फँस गया। उसने अपने-आप ही अपनी भर्त्सना कर ली। चाहे उसे खेद हो या न हो, जाए भाड़ में, अपने को क्या लेना-देना—इस उपेक्षा भाव से उसने करवट बदली। जाए भाड़ में, इस विचार के साथ ही अनुमान हुआ कि कहीं पिछली रात की तरह पहाड़ की घाटी में जाकर ··। सहसा मन घबरा उठा। अगर व्यक्ति सूक्ष्म मनोवृत्ति वाला हो तो मार खाने वालों से भी ज्यादा पीड़ा-खेद मारने वाले को होता है। क्या वह वास्तव में सूक्ष्म मनोवृत्ति रखती है? बुद्धि तो बड़ी तेज है। स्मरण-शक्ति भी काफ़ी तीव्र है। कुछ मामलों में तीव्र संवेदनशील भी है। मैं एक दिन जब स्क्रूड्राइवर चला रहा था तब नाखून में चोट लग गई थी और चार बूंद खून टपक गया था। तुरत उसने आंखों में आँसू भरकर मेरी उँगली की मरहम-पट्टी करके मेरा हाथ अपने हाथ में लिये बहुत देर तक मुँह से ठंडी हवा फूँकती रही थी, जबकि खुद मुझे ही दर्द का आभास नहीं हुआ था। लेकिन कभी-कभी, या सारा दिन बेवजह हर बात के लिए मुझे कोचकर पीड़ा पहुँचाती है। कैसी पैनी टीस पहुँचाती है! ब्लोइंग हॉट एंड कोल्ड। जी भरकर चू पड़ने लायक प्यार जताकर मुझे वश में कर लेती है और ऐसे जाल में फँसाकर हिंसा करने लगती है कि छूट न जाए—यही इसकी प्रकृति है। इस जाल से बाहर निकलना होगा। होगा क्या, अब तो निकल ही चुका हूँ। बाहर निकलने के बाद उसकी प्रकृति, उसका स्वभाव समझ में आने लगा है। खैर, इतनी जल्दी बात मेरी समझ में आ गई! उसने मन-ही-मन अपनी प्रशंसा की। बायलर का स्विच खोलकर पानी गरम किया और मुँह धोकर शेव बना ली।

नहाते समय मन में एक भय आया। कल रात उसने पहाड़ की पूर्व दिशा वाली घाटी के पास जाकर कहीं रिवाल्वर दाग लिया हो तो! आत्महत्या करने

की चाह कभी-कभी तेज हो जाती है। उस समय अपने-आप पर नहीं, बल्कि जो कोई सामने आए उस पर गुस्सा खौल उठता है—उसी ने एक बार कहा था। कल रात भी ऐसी चाह उत्पन्न होकर अगर गोली दाग ली हो तो ! नहाने समय ही भय के मारे देह एक बार काँप गई। दया-भाव से मन बिलख उठा। लेकिन मुँह में साबुन लगाकर रगड़कर गरम पानी से धोते समय, शेव करते समय जितनी जलन हुई थी, उससे ज्यादा जलन अब होने लगी। दया के बदले क्रोध आया। अगर अचानक दाग लिया हो तो पुलिस तहकीकात करेगी। वह पता लगाएगी कि कल रात मैं उसके यहाँ गया था, बच्चों के सो जाने के बाद भी मैं वहाँ था। खुद बच्चे गवाही देंगे। उसकी आत्महत्या के साथ मेरा संबंध जोडकर पुलिस वाले न जाने किस घटना पर कैसी-कैसी कहानी गढ़ लेंगे ! तब अपना क्या होगा ? इस विचार के साथ देह जोर से काँप उठी। अब पौने नौ बजे है। ऐसी कोई अनहोनी-सी हुई होती तो अब तक पुलिस का मेरे यहाँ आ जाना चाहिए था। या किसी भी क्षण आ सकती है। मन का आतंक बढ गया। जल्दी नहा लिया। जो हाथ लगी वह पेंट और शर्ट पहनकर स्कूटर पर सवार होकर दफ्तर चला गया। नीलकण्ठप्पा अभी-अभी आया था। अपने चेंबर में घुसकर हाथ में चोगा उठाने के बाद आशंकित हुआ कि कहाँ फोन कर रहा है। घर में खाना बनाने वाली पुट्टम्मा और नौकरानी महादेवम्मा रहती है। मालकिन कालेज गई हैं, अगर इस एक वाक्य का भी जवाब मिल जाए तो अपना डर दूर हो जाएगा। अगर अचानक वही रही और उसी ने फोन उठा लिया, फिर मेरी आवाज पहचान ली तो ! लज्जित हुआ। फिर कभी उसका कोई संपर्क या संबंध नही चाहिए: यह विचार उभरकर सामने आया। इसके बदले अगर कालेज को ही फोन करके पता लगा ले कि अमृता मेडम आई हैं या नहीं तो कैसा रहेगा ? एक नया उपाय सूझा। अगर पूछा गया कि आप कौन हैं तो बता देंगे कि कार गराजवाले। डाइरेक्टरी से कालेज का नंबर पता लगाकर वह नंबर मिलाया। जवाब मिला कि आई है, क्लास में है। आप कौन हैं आदि कोई बेतुका सवाल नहीं पूछा गया। उसने तुरंत चोंगा रख दिया। जान में जान आई। राहत की लंबी साँस ली। फिर नीलकण्ठप्पा से कहकर जब नाश्ता करने के लिए बाहर निकला तो बेहद लज्जा हुई। अचानक अगर उसने आत्महत्या की होती तो उसकी जान, उसके जीवन के प्रति आतंकित होने के [illegible] अपने को क्या होगा, इस भय से परेशान होकर, फोन करने के लिए दौड़ पड़ा था। अहसास हुआ कि मैं कायर ही नहीं, बल्कि एक घटिया आदमी हूँ।

नाश्ते से निपटकर दफ्तर को लौट आया। नीलकण्ठप्पा के साथ किसी ऐस्टेट के बारे में चर्चा करते समय फोन की घंटी बजी। बैंक-मैनेजर थे, "आपके नाम पर बंबई से एक लाख बयालीस हजार रुपए का टेलेक्स मैसेज आया है।

टेलेक्स होने के कारण शायद अर्जेंट हो, इसलिए फोन पर बता रहा हूँ।"

"अभी आ जाऊँ तो क्या रक़म मिल सकेगी?"—उत्साहित होकर उसने पूछा।

"श्योर, श्योर।" उन्होंने कहा।

नीलकण्ठप्पा से जल्दी ही लौट आने की सूचना देकर वह उठा। अमृता का बैंक, नम्बर सब कुछ जानता था। उन्हें एक चिट पर नोट करके अपने बैंक के मैनेजर को सूचना देकर तुरंत उस रकम को अमृता के बैंक-खाते में जमा करवाया। अमृता के बैंक-मैनेजर भी उसके परिचित ही थे। अमृता से इसने जो रकम ली थी, यह बात वे जानते ही थे। वहाँ से दफ्तर लौटते समय नवीन की दूसरी बात याद आयी।

"कन्सल्टेशन के लिए मुझे तुरंत दो सप्ताह के लिए बंबई जाना है। जाने से पहले बताओ कि कौन-कौन से काम मुझको करने है। आज उन्हें खत्म कर देंगे। सारा काम निपटाकर मैं रात को बेंगलूर जाऊँगा। कल सवेरे की फ्लाइट के लिए अगर टिकट मिल सकती है तो फोन द्वारा मँगवा सकेंगे?" नीलकण्ठप्पा से पूछा। निकलने से पहले अपने हाथ के कामों को निपटाने में पूरी तरह डूबे रहने पर भी मन हलका नहीं हुआ था। उसका कर्जा लौटा दिया है। मैसूर से बाहर जा रहा हूँ। ये दोनों काम नवीन की कृपा से हुए—यह बात साफ जाहिर थी।

थप्पड़ मारने के बाद अमृता स्वयं भी सकते में आ गई थी। सोमशेखर क्या प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा, इसकी कल्पना तक नहीं हुई। सामने वाला बड़ा दरवाज़ा खुलने की आवाज़ कानों मे पड़ने से समझ गई कि जा रहा है। स्कूटर स्टार्ट करने की आवाज ने इस बात का समर्थन किया। फिर स्कूटर के चलने की, गेट से बाहर जाकर बायीं ओर मुड़ने की, रफ्तार तेज होने की, यानी कि मैसूर शहर की ओर दौड़ने की सारी जानकारी हुई। दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनते ही दौड़कर रोका जा सकता था। रोके लेने के बाद न जाने कैसी बातें, क्या वार्तालाप, कैसा वाद-विवाद, गिड़गिड़ाहट होती, पता नहीं। लेकिन, दौड़कर रोक लेने की बात मन को भायी नहीं। चुपचाप खड़ी रही—स्कूटर के चले जाने के समय तक अडिग, इंच-भर भी कदमों को हिलाए बिना। फिर धीरे से बाहर निकली, गेट बंद करके ताला लगाया; कुत्तों को पुचकार कर भीतर आयी, दरवाजे का भीतरी बोल्ट लगाकर सिटकनी चढ़ाई। बिस्तर पर सोकर बत्ती बुझाने पर भीतर सारा खोखला-सा लगा, लेकिन आत्महत्या के लिए प्रेरित करने वाला शून्य-भाव नहीं था। खोखलेपन का अहसास किसी और ही कारण से होने लगा था। वह चला गया, लौटकर नहीं आएगा। आँसुओं से पाँव धोने पर

भी वह नहीं लौटेगा—इस सूझ के कारण ऐसा अहसास होने लगा है। लेकिन, वह भी जहाँ वह है वहाँ नहीं जाएगी; इस देह को झुकाकर उसके चरण छुएगी नहीं; उसके सामने आँसू नहीं बहाएगी—आंतरिक विश्लेषण का यह अपने-आप अहसास होने लगा। इसके आगे किसी और मंजिल की कल्पना न रहने के कारण मन वहीं स्थिर हो गया। फिर भी मन को हलका-हलका-सा महसूस होने लगा था। कुछ देर में नींद भी आ गई।

सवेरे जल्दी चार बजे ही आँखें खुलीं। मन खाली-खाली। कुछ या सब कुछ खो देने का खेद। अब वह नहीं आएगा, मेरे लिए खो ही गया—यह वियोग भावना उसके मन-प्राण में व्याप गई। मैंने क्यों भला इस तरह उसे मारा? जूठे हाथ से गाल पर, कितनी क्रूर तेजी से! मुझे खुद पता नहीं था, यह कहना झूठ होगा। उसने दिलासा देने की चेष्टा की कि ऐसे आदमी को दूर करना ही ठीक हुआ। वह निष्ठावान है, झूठ नहीं बोलता। लेकिन संबंध के मामले में भी बड़ा कैल्क्युलेटिव, न कम न ज्यादा, निभाकर चलने वाला। असुना ने अपने-आपको निर्देशित किया कि अपने को ऐसा संबंध नहीं चाहिए। फिर भी खोखलापन कम नहीं हुआ। वह खुद इस बात पर चौंक गई कि कल रात सोते ही उसे नींद आ गई थी। सामान्यतया शून्य-भाव रात के समय ही व्यापता है, जब भूमि और आकाश में प्रकाश नहीं रहता, जब सारे जीव-जंतु निष्क्रियावस्था में होते हैं, तब। परसों सारा दिन दोपहर, शाम, रात-भर जान दे देने की उत्कट इच्छा कसमसाती रही। कल दोपहर भी कितनी नींद आई थी, शाम को जब बच्चे घर पर थे तब भी मरने का आकर्षण बना ही था। थप्पड़ खाकर उसके चले जाने के बाद वह आकर्षण बढ़ जाना चाहिए था। शून्य-भाव को भी गहराना चाहिए था। लेकिन गहरी नींद आ गई। ऐसी गहरी नींद कि हर दिन ऐसी नींद की चाह हो गई। चौंक गई। क्या उसके स्नेह ने ही मेरी मरने की चाहत को प्रखर किया था? याद किया। उससे स्नेह होने से पहले भी थी, इतनी ही प्रखर थी। स्नेह के प्रारंभिक दिनों में कम हुई थी। इन दिनों इतनी प्रखर हो गई है कि जितनी पहले कभी नहीं थी। लेकिन, कल मैंने उसका तिरस्कार करके जो बाहर निकाल दिया तब से मानो सहसा सुधार आ गया है। उसे खो लेने का खेद, व्यथा को किसी तरह सह सकूँगी लेकिन शून्य-भाव, मरने की चाहत की पीड़ा से अगर मुक्त हो जाऊँ तो काफ़ी है। उठकर जल्दी नहा ली। अहाते के पेड़ों से फूल चुनकर पूजा-कक्ष में गई। दिया जलाकर पूजा करके प्रणाम किया। फैसला पक्का हुआ। अपने में शक्ति-संचार का अहसास हुआ। 'मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है। इन दो बच्चों की परवरिश करूँगी; बाकी समय पढ़कर शोध-कार्य करूँगी, विद्या प्राप्त करके···इससे बढ़कर और क्या चाहिए?'—अपने-आप से कह लिया। जाकर सोए हुए विकास पर झुककर बाँहों में भरते हुए पुचकारकर

बोली, "स्कूल को देर होगी, उठो मेरे राजा !"

उस दिन कालेज में भी मन लगाकर, खुशी-खुशी बहुत अच्छा पढ़ाया। घर आकर अपने पुस्तकालय के संग्रह पर नज़र दौड़ाकर उन पुस्तकों की सूची बना ली जो अभी पढ़ी नहीं गई थीं। एक किताब हाथ में लेकर लाउंज में सोफे पर जा बैठी। शाम तक पढ़ती रही, फिर बच्चों को लिवा लायी। उन्हें साथ खेलकर खाना खिलाकर सुला दिया। सुलाने के बाद एक और विचार मन को कुरेदने लगा। कल रात जूठे हाथ से थप्पड़ खाकर गया। आज सारा दिन एक बार भी फोन नहीं किया। फिर प्रश्न उठा कि मार खाकर क्या फोन करेगा या मारने वाली आप करे? दूर चला गया, ठीक है। लेकिन वह कड़ुआहट दूर होनी चाहिए थी—यह बात उसके मन को सालने लगी। बेवजह न सही, लेकिन गुस्से में इस तरह मारना ग़लत है। इसका खेद व्यक्त करते हुए बीती बात को भूलने के लिए कहना चाहिए था। कल मैं खुद फोन करके कह दूंगी। इतना नैतिक बल मुझ में है। अगर घर पर फोन होता तो अभी कह देती। घर पर भी फोन लगवा लेने के लिए हज़ार बार कहा है। लेकिन हमेशा यह कहकर टाल दिया कि 'रात के आठ बजे तक तो दफ्तर में ही रहता हूँ। घर के लिए अलग क्यों? नाहक दुहरा खर्च।' इस बात पर गुस्सा आया। न चाहता हो तो न चाहे, अपना क्या बिगड़ता है? उपेक्षा भाव में डूबी वह हाथ में पुस्तक लिये ही सो गई। बीच में यों ही सिर उठाकर घड़ी देखी तो पौने ग्यारह बजे थे। याद आया कि ठीक चौबीस घंटे पहले मैंने जूठे हाथ से उसके गाल पर ज़ोर का तमाचा मारा था। किसी को मारना केवल दैहिक क्रूरता नहीं बल्कि क्रूरता से भी घटिया बात होती है—अकारण यह विचार मन में आया। सोमशेखर की ही बात नहीं, दूसरे किसी को भी, किसी भी व्यक्ति को काटने के लिए दौड़ने वाले कुत्ते को या सींग मारने वाले मवेशी को, किसी को भी कभी मारना नहीं चाहिए। अपना दाहिना हाथ उठाकर उँगलियाँ देख लीं। चारों उँगलियाँ एक साथ! फिर बाएँ हाथ की उँगलियों से दाएँ हाथ की उँगलियों का भीतरी भाग टटोलकर परीक्षा करके देखा कि वे सख्त हैं या मुलायम। सख्त या मुलायम का प्रश्न नहीं है, भविष्य में कभी किसी पर हाथ उठाने की हैवानियत पर उतारू नहीं होगी। इस निश्चय के साथ ही उसे याद आया कि इससे पहले कभी किसी पर उसने हाथ नहीं उठाया था। हाथ में पुस्तक लिये ही लेट गई। सिरहाने की बत्ती जल रही थी। 'मैंने तैश में आकर कभी हाथ नहीं उठाया। पहले कभी न उठने वाला हाथ आज क्यों उठ गया? सहज संयम के साथ क्या वह यह प्रश्न नहीं पूछ सकता था? जहाँ प्यार होता है वहाँ सब्र भी होता है। उसका सारा प्यार केवल ऊपरी तह की तरह है। भविष्य में अगर फिर बोलने या फोन करने का मौका आ जाए तो यह बात मैं पूछूंगी ही,'—उसने अपने-आपसे कहा। यह भी निश्चय किया कि फोन

करेगा तो वही करेगा, वह हर्गिज नहीं करेगी। वह खुद फोन करेगा, खुद मेरी तलाश में आएगा, यह कहता हुआ कि तुम्हारी बातों का इशारा मैं समझ ही नहीं पाया, मुझे माफ कर दो--उसके गिड़गिड़ाने के चित्र की कल्पना करते हुए लेटी रही। रोशनी से इस विचार-शृंखला में बाधा देखकर उसने बत्ती बुझा दी। सोमशेखर के हार जाने की कल्पना ही उसे सांत्वना दे रही थी। कुछ ही देर में नींद भी आ गई।

सवेरे उठते ही विचार आया कि आज किसी तरह संपर्क करना होगा। खुद जाकर उससे बात करनी होगी। अभी इस समय गाड़ी निकाल तुरंत चली जाऊँ तो शायद सोया ही मिलेगा। जगाकर घर मे ही बतियाकर लौटने के बाद बच्चों को उठाकर स्कूल के लिए तैयार करना ठीक रहेगा। लेकिन, लौटने तक बच्चों को देर हो जाएगी। उन्हें छोड़ने के बाद मुझे तुरंत कालेज दौड़ना पड़ता है। कालेज से लौटने तक वह दफ्तर में रहेगा। कोई परवाह नहीं; ऐसा साउंड-प्रूफ़ है कि भीतर की बात बाहर किसी को सुनाई नहीं देती। मैंने इसीलिए ऐसा बनवाया है। कालेज से लौटते समय मिलने का निश्चय किया। लेकिन बारह बजे कालेज खत्म करके कार मे बैठकर जब उसे स्टार्ट किया तब उसके चेंबर में जाकर अपना चेहरा दिखाने में अमृता को डर लगा। उसकी नज़र पड़ते ही अपने बदन मे सिहरन शुरू हो जाएगी, इस बात की आशंका हुई। मुझे क्यों इतना डर लग रहा है, आखिर क्या बिगाड लेगा मेरा? गालियाँ देगा? तू कौन है, क्यों आई है, गेट् आउट कहेगा? या कुर्सी से उठकर मेरे पास आकर मैंने जिस तेजी से थप्पड़ मारा था उससे भी तेज, ऐसा कि मैं चक्कर खाकर गिर पड़ूँ, वह थप्पड़ जमा देगा? सहसा मन हलका हुआ। अगर वह इस तरह पिटाई करेगा तो मेरी सारी पीड़ा दूर होकर मन को सुख-शांति मिलेगी। पल-भर गाल दर्द करेगा। उसकी पीड़ा दस मिनट, आधा घंटा, एक घंटा न सही, दो दिनों तक रहेगी। रहने दो। लेकिन उससे जो सकून मिलेगा वह कल्पना से बाहर है। अब समझ गई। उसके चेंबर का दरवाज़ा खोलकर भीतर घुस जाए। पीछे से दरवाज़ा बंद करके उसकी खिड़की के पास जाकर खड़ी हो जाए। 'एकदम बोलना बंद। अपना दाहिना हाथ उठाकर मेरे गाल पर एक जोर का थप्पड़ जमा दो। एक का मतलब केवल एक ही नहीं। जितने तुम चाहो। जी भरने तक, तुम्हारा जी नहीं, मेरा जी भरने तक एक के बाद एक थप्पड़, एक ही जगह अथवा तुम जहाँ चाहो वहाँ मारो। तुम कुछ नहीं बोलोगे। मैं एक भी शब्द नहीं बोलूँगी।' अपने-आपको उसकी उँगलियों के हवाले करके, उसकी पहुँच में खड़ी रहने का निश्चय किया। कार को पीछे लेकर ठीक दिशा मे मोड़ लेने के बाद विचार आया कि नहीं, वह मारेगा नही, उसका स्वभाव मै जानती हूँ। उसमें दया नहीं, वह कसाई है! इसीलिए सब्र के साथ बदले में थप्पड़ मारे बिना चुप रह जाता है। मैं चाहे कितनी

ही गाली दूं, ताने कसूं वह पलटकर जवाब नहीं देगा। अब अगर उसके सामने भी जाकर खड़ी हो जाऊं तो, और उससे मारने को कहूं तो क्या वह मारेगा ? मूलत: वह बड़ा क्रूर है। इसलिए अब अगर जाकर उसके सामने खड़ी हो जाऊं और वह थप्पड़ भी न मारे और मुझसे बोले भी न; खामोशी के साथ मेरा तिरस्कार करे तो ? डर लगा। उसके दफ्तर की ओर न घुमाकर कार अपने घर की ओर दौड़ा दी।

कुत्तों को सहलाकर बाहर छोड़ा। उन्हें खाना देने के बाद कुछ न सूझकर निष्क्रिय अवस्था मे लाउंज के सोफे पर जा बैठी। भूख लगी थी, लेकिन उठकर थाली लगाकर खाना खाने की हिम्मत नहीं थी; मन भी नहीं था। खाना खा लेने से क्या बनेगा, न खाने से क्या बिगड़ेगा—इस उपेक्षा भाव की कल्पना भी कर पाने की शक्ति प्रज्ञा के स्तर पर नही रही। बैठे-बैठे सोफे से टेक लगाकर आँखें बंद कर लीं। उनींदापन का अहसास हुआ। उससे चेतकर वह इस निश्चय के साथ उठकर खड़ी हुई कि आज मैं उसे यहां आने के लिए विवश करूंगी, फोन पर ही। अगर न बुलाया तो मेरा नाम अमृता नहीं। वह चाहे जितना भी गुस्से में हो, मैं उसके अंतर की हर धड़कन को पहचानती हूं, मैं उस धड़कन को छेड़ूंगी। उसने घड़ी देखी। पौने दो बजे थे। अब तक लंच से लौट आया होगा। वह सरपट बेडरूम में गई, फोन घुमाया। उसी की आवाज 'हैलो' कहेगी। 'मैं' कहकर मैं चुप हो जाऊंगी। अगली बात उसी को बोलनी पड़ेगी। वह क्या बोलेगा, कैसे बोलेगा, उस अंदाज को लेकर मैं उसे अपने जाल में फंसा लूंगी। इस आत्मविश्वास के विधान को वह अपने मन में जब स्पष्ट कर रही थी तभी नीलकण्ठप्पा की आवाज सुनाई दी, "हैलो, शेखर आर्किटेक्ट्स।"

"मिस्टर सोमशेखर हैं ?" इस प्रश्न के साथ ही उसका आधा आत्मविश्वास ढह गया।

"वे बंबई चले गए हैं, मैडम !"

फोन पर नीलकण्ठप्पा मेरी आवाज तुरंत पहचान लेता है। इधर नए दफ्तर के अलंकरण के संदर्भ मे कई बार उसने मुझसे फोन पर बात की है। "कब गए ? अचानक ?" इसने पूछा।

"उनके पार्टनर का फोन आया था। एक जरूरी बड़े काम के कन्सल्टेशन के सिलसिले में। कल रात बेंगलूर गए। आज सवेरे की फ्लाइट से बबई पहुंच गए होंगे। लौटने में दो सप्ताह लगेंगे। आप तो उस दिन भोजन के लिए भी नहीं आईं और रिसेप्शन में भी नहीं आईं, मैडम ?"

इस आखिरी प्रश्न से अमृता को गुस्सा आया। दखल देने वाला यह कौन

होता है ? इस प्रश्न को दबाकर वह बोली, "गाँव से कुछ मेहमान आ गए थे। तुरंत नर्सिंग होम ले जाना पड़ा। बाद में सोमशेखर जी ने बताया कि सब ठीक-ठाक हुआ। जब आपका सहयोग प्राप्त था तो ठीक-ठाक होने में कोई शक था ! उनके लौटने में दो सप्ताह लगेंगे ?"

"जी हाँ, मैडम !"

"ठीक है ! थैंक्स !" उसने संपर्क काट दिया। अचानक सहसा मानो सारे मान में धुआँ भर गया। पार्टनर ने फोन किया था ! कब किया था ? मुझ पर गुस्सा करके नाराज होकर वह खुद चला गया है। अमुक औरत से प्यार किया, उसने गाल पर थप्पड़ दे मारा, अब मैं क्या करूँ---अपने मित्र से इसका कंमन्ट करने गया है। यही जरूरी बड़े काम का कमप्लेशन है। मित्र भला और क्या सलाह देगा ? 'ऐसी औरत के झंझट में क्यों पड़ते हो ? दूर हो जाओ,' विश्वास हुआ कि यही सलाह देगा। रिवाल्वर से हत्या कर लेने की चाह और मेरे मान-सिक [illegible] के बारे में भी बताएगा। यह सुनकर वह विश्वास के साथ यही सलाह देगा कि यही अच्छा मौका है, इसे हाथ से जाने मत दो, तुरंत उससे नाता तोड़ लो। आखिर नवीन शाह एक सफल व्यापारी जो ठहरा। खुद सोमशेखर ने कितनी बार उनके बारे में बताया है। दो सप्ताह बाद जब लौटेगा तब वास्तव में वह सोम बनकर नहीं रहेगा, मिस्टर सोमशेखर बनकर रहेगा। इस बात पर अमृता ने यकीन कर लिया। पेट में पीड़ा होने लगी। एक जलन-सी शुरू हुई। उठकर रसोईघर में गई। थाली में थोड़ा-सा भात लेकर उसके दो भाग किए। एक भाग में दो चम्मच सांबर डाली। पुट्टम्मा ने किस तरकारी का सांबर पकाया था, ध्यान नहीं दिया। दूसरे भाग में दो चम्मच दही डाल लिया एक कोने में सब्जी लेकर एक चम्मच लिये बेडरूम के सोफे पर आकर [illegible] गई और खाने लगी। जब मुझे भूख लगती है तब पेट में जलन शुरू होती है, पेट में पीड़ा होने लगती है, सिर चकराने लगता है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है; किसी और को ऐसा नहीं होता होगा। हर कोई अपना-अपना सुख-चैन देख लेता है। अपना-अपना सुख-चैन ही हर व्यक्ति का उद्देश्य होता है।—इस अंतिम वाक्य के संयोजन के साथ ही उसे तुरंत उस बंबई वाली की याद हो आई। उसके साथ दो सप्ताह मौज उड़ाने के लिए तो नहीं गया ? मन आशंकित हुआ। अब तक जल्दी-जल्दी जो खा लिया सो खा लिया। अब आगे खाना [illegible] नहीं। थाली टीपाय पर रखकर चुपचाप बैठ गई। अब पेट में एक अन्य प्रकार की जलन शुरू हुई —पेट्रोल में लगी आग की तरह निःशब्द जलन महसूस हुई। अब पता चला इसकी औकात का। ऐसे आदमी को चाहकर अपना सब कुछ निछावर कर दिया, यह मेरी मूर्खता थी। इसकी सजा मुझे मिलनी ही चाहिए। आँखें भर आयीं। बचे हुए खाने के साथ थाली उठाकर चौके में रख दी। मुँह साफ़ करके

पलंग पर लेट गई।

उस रात नींद नही आई। एक लहर क्रोध की, एक लहर आत्मावलोकन की आती-जाती रही। मैं कहाँ ठोकर खा गई? अपनी सीमा क्या है? इन प्रश्नों की पृष्ठभूमि में बंबई वाली की तुलना शुरू हुई। क्या नाम है उसका? एक दिन भी सोमशेखर ने उसका नाम नहीं बताया। उसका उल्लेख एकवचन में भी नहीं किया। उसके प्रति सोमशेखर की कैसी भावना रही होगी? उससे घिन खाकर जो लौटा तो फिर उससे सपर्क नही किया। बताया था कि अपने-आप नाता टूट गया था। सुख की तलाश में ही आपस में मिला करते थे। चार-पाँच घंटों की जो निकटता प्राप्त होती उसके किसी भी क्षण को बेकार न खोकर आपस मे हर पल का मजा लूटा करते थे। क्रोध या नाराजगी से कभी पल-भर के लिए भी वह सुख से वंचित नही रहती थी, रति-सुख की गहराई—व्यापकता को शहद के छत्ते की तरह परत-दर-परत उघाड़कर उसका मज़ा लूटने का विधान सिखाकर इसकी गुरु बन बैठी थी। सुख देने वाली इसकी क्षमता को चरमावस्था तक पहुँचाकर उससे आप भी मज़ा लूटती और इसे भी सुख मे सराबोर कर देती थी। उसका जिक्र करते ही चाहे कितना ही मायूस रहा हो, आँखों मे सुखद स्मृतियाँ तैर जाती हैं। उसे वह छिपा नहीं पाता। बार-बार पूछने पर सोमशेखर ने ही यह बात बताई थी।—इन सारी स्मृतियों के साथ अमृता मन-ही-मन अपने को तौलने लगी।

वास्तव में इस मामले मे मेरी जानकारी बहुत कम है। कवि लोग जो सीधा वर्णन करके अभिधा मे कहने की बजाय संकेत के स्तर पर व्यंजनात्मक वर्णन ही करते हैं, वहीं तक मेरा ज्ञान सीमित है। मन में कभी-कभार आकांक्षा पीड़ित करने लगती थी, किंतु लज्जा की यवनिका हटाकर उन्मुक्त होकर आदान-प्रदान करने का साहस मन नहीं कर पाता था। सोमशेखर को चाहिए था कि मेरे मन को उस बिंदु पर लाकर सिखा दे। बीच-बीच में मैं जो शिथिल पड़ जाती थी उससे उसके उद्वेग पर पानी फिर जाता था। जब सुख के चरम बिंदु पर पहुँच जाता तब कई बार सहसा मुझ पर शून्य-भाव छा जाता और मरने की आकांक्षा से मैं गंभीर मौन धारण कर लेती। अति सूक्ष्म अवस्था के बिंदु पर पहुँची हुई उसकी संवेदना तुरत इसे पहचान लेती और वह जगाने लगता, 'अमृता, क्यों अचानक डल हो गई? तुम्हारी आँखों में नाराजगी और नफ़रत दिखाई देने लगी है।' उसकी बातों से बेहद गुस्से में आकर, 'अभी तुम्हारी हैवानी प्यास बुझी नहीं?' मैंने कभी-कभी कहा है। इससे उसके चेहरे पर गहरी व्यथा और निराशा फूट पड़ती थी। तब मुझे अहसास होता कि मैं उसके लायक नहीं हूँ। अनिर्णयात्मक होकर वह जो विराम करने लगता है मैं उससे क्षमा-याचना करती हूँ। मन में एक प्रश्न उठा—पुरुष स्त्री से क्या चाहता है? क्या चीज़ देने वाली औरत से

पुरुष स्थायी रूप से संबंध रखता है ? सुख, संतोष, शांति, आत्मविश्वास ? बंबई वाली ने जितना उसे दिया उतना वह कभी नहीं दे पायी, इस बात का खेद उसके मन को कचोटने लगा। शायद इसीलिए मुझे छोड़कर उसकी तलाश में बंबई गया है—टूटे रिश्ते को पुन: जोड़ने। अपने सुख की तलाश का अधिकार क्या उसको नहीं है ?—इस यथार्थ को स्वीकार करने की चेष्टा वह करने लगी। एक ही करवट लेटे रहने से दर्द महसूस हुआ, इसलिए करवट बदल ली। मन ने प्रश्न किया—सुख की खोज करना ही क्या उसके संबंधों का एक मात्र उद्देश्य है ? अमृता को गुस्सा आया। 'विट' शब्द का निर्माण शायद ऐसे आदमी को देखकर ही किया गया होगा। ऐसे आदमी से मैं अपना कोई संबंध नहीं चाहती। मेरे जीवन से उसका चला जाना ही मेरे लिए ठीक हुआ—उसने अपने-आपको तसल्ली दी। ऐसे आदमी की याद करना भी घटियापन है—इस भावना के साथ ही सहसा आभ्यंतर में एक वेदना शुरू हुई। पेट में खौल होने की-सी वेदना। फूट-फूटकर रोने का मन करने लगा। वजह नहीं जान पायी। रोकने की बेहद चेष्टा की, [illegible] ही पड़ी और उसकी आवाज अपने ही कानों पर आघात करने लगी। बगल के कमरे में सोए हुए बच्चे कहीं जाग न जाएँ, इस भय से साड़ी के छोर का गोला बनाकर मुंह में ठूंस लिया। फिर भी भीतर से रोना फूट-फूटकर निकल रहा था। केवल गला और जबड़ा ही नहीं बल्कि अपनी छाती की हड्डियों के ढाँचे को ही चकनाचूर कर देने वाला खतरनाक रोना। बीच में कदमों की आहट सुनाई दी। मुड़कर देखा; विजय जागकर आया है। पास आकर उसकी बगल में बैठकर कंधे पर हाथ रखकर पूछने लगता है, "क्या बात है, माँ ?" अब रोने का कारण उसकी समझ में आता है। किंतु, विजय को बता नहीं सकती।

"पेट में दर्द होने लगा है, बेटे," अप[illegible] बायाँ हाथ बढ़ा[illegible]र उसे अपनी बाँहों में लेती है।

"डाक्टर को फोन करो, माँ ! उससे दवाई पूछ लो।"

"इस बेवक्त नहीं। कोई टिकिया थी, ले ली है, कम हो जाएगा। तुम जाओ, सो जाओ।" फिर भी वह गया नहीं, बैठा ही रहा। एक पल के बाद वह खुद उठी, चेहरे पर चुस्ती लाकर बोली, "अब काफ़ी आराम महसूस होने लगा है। कालेज में पार्टी थी; समोसा खाया था। उसी का असर रहा होगा। फिर कभी नहीं खाऊँगी। तुम सो जाओ। चलो, मैं सुला देती हूँ। [illegible]कास अकेला है।" उसे बाँहों में भरकर उसके कमरे में ले गई। उसे सुलाया और पास बैठकर उसकी पीठ पर धीरे से थपकियाँ देती रही। कु[illegible] देर बाद उसे नींद आने पर लौटकर आयी।

रोने का कारण अब तक बिलकुल साफ़ हो गया था। ऐसे चालाक व्यक्ति पर मोहित होकर मैं अपनी शुद्धता खोकर पतिता हो गई। इस बात का खेद नहीं

कि रंगनाथ का भोग भंग हुआ। जिस पति से मंगलसूत्र बँधवा लिया है उस पति से दूर रहकर भी, उसका तिरस्कार करके भी अपनी शुद्धता की रक्षा करनी होगी। अगर एक बार खो गई तो पुन: मिलने वाली वस्तु नहीं है। ऐसे कुटिल पुरुष नाश करते ही हैं। मैं शिकार हुई, समर्पण कर दिया। उसने अपनी ओर से नष्ट नहीं किया। मैंने खुद आकर्षित होकर, आगे बढ़कर, इशारा देकर अपने-आपको सौंप दिया। हे भगवान! मुझे जीने का हक़ नहीं। तुम्हारे सामने दीप जलाकर फूल चढ़ाने का हक़ नहीं। मुझ जैसी क्षुद्र किसके लिए जीवित रहे? सहसा रिवाल्वर की याद आयी। बगल वाली दराज़ खोली। अब जीवित रहने के लिए कोई बहानेबाजी नहीं चलेगी। आज, इसी समय खत्म कर लेना चाहिए। वरना भगवान माफ नहीं करेंगे। लेकिन घर में नहीं। आधी रात के समय गोली की आवाज़ सुनकर बच्चे जाग जाएँगे। माँ की इस हालत से भयभीत होकर बेहोश हो जाएँगे। जीवन-भर सँभल न जाने लायक मानसिक आघात का शिकार होंगे। पहाड़ ही ठीक है, पहाड़ की अँधेरी खामोशी ही ठीक है। कार की चाभी, घर और गराज की चाभियाँ लेकर पाँव में चप्पल पहनकर निकली। आज आखिरी दिन है। वास्तव में आखिरी दिन। इस निश्चय के साथ अपनी आत्म-हत्या के पत्र के लिए पैड निकालकर उस पर मामूली परिचित वाक्य लिखा कि अपनी आत्महत्या के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। नीचे हस्ताक्षर करके उसे बिस्तर पर छोड़कर खामोश कदम बढ़ाए। चलते समय देखा कि विजय को गहरी नींद लगी है या नहीं? दरवाजा खोलते समय, गाड़ी स्टार्ट करते समय, या कुत्ते भौंकने समय अगर जाग गए तो! भय और अवरोध दिखाई पड़ा। उसी जगह खड़ी-खड़ी ही आधा घंटे से भी अधिक समय तक रुकी रही। फिर अपने कमरे में लौट आयी। बगल में ही रिवाल्वर रखकर खिड़की का परदा हटाकर बाहर का अँधेरा और अँधेरे में घनीभूत हुए पहाडों को देखते सोफे पर बैठ गई। काफी देर बाद सोफे पर बैठे-बैठे ही आँखें लग गई।

सवेरे जब जागी तब रात में उसने जो-जो विचार किया था उसके लिए लज्जा हुई। अगर मुझ पर गुस्सा आया हो तो मुझे छोड़कर चला जाएगा। लेकिन जिसको एक बार छोड़ दिया है उसकी तलाश में हर्गिज नहीं जाएगा। उससे इतना दूर चला आया है कि उसका जिक्र भी करना पसंद नहीं करेगा। मैं खुद अगर उसका जिक्र करती हूँ, याद दिलाती हूँ तो वह नाराज़ हो उठता है। उस औरत को किसी और की बाँहों में, एक अनपढ़ नबलची की बाँहों में उसने देखा और उस औरत को इस बात का पता भी है। ऐसी हालत में जब पूरी तरह से दूर चला आया है और इतने वर्षों बाद यह खुद उसको खोज में जाएगा भी तो वह पास नहीं आएगी। और यह भी यों उसके पास नहीं जाएगा। सम्भव है, सचमुच ही मित्र के कारोबार में सहायता की आवश्यकता आ पड़ी हो। फोन

आने पर तुरंत चला गया है—इस विचार के साथ मन कुछ हलका हुआ किंतु अपने-आपसे घृणा हुई। उसे लगा कि नाहक मैं सारी रात साधारण-सा, घटिया मनोभाव का शिकार रही। बच्चों को स्कूल में छोड़कर कालेज गई। उस दिन एक के बाद एक लगातार तीन पीरियड थे। सारे पीरियडों में बड़े उत्साह के साथ पढ़ाया। ग्यारह से बारह तक प्रिंसिपल ने कोई मीटिंग बुलायी थी। मन मे एक विचार आया कि मीटिंग खत्म करके घर लौटते समय अगर नीलकण्ठप्पा से बंबई का फोन-नंबर पता लगाकर फोन करूँ तो कैसा रहेगा? ज्यादा बातें करने की आवश्यकता नही। तुमसे माफ़ी माँगने के लिए फोन किया है—यह एक वाक्य कह देना काफी है। अगर ज्यादा बात बढ़ भी गई और वहाँ फोन के पास कोई होगा भी तो वह कन्नड़ में बोलने लगेगा। इधर मैं अकेली हूँगी। जो चाहे बात कर सकेंगे। आज तीसरा दिन है। अब तक उसका गुस्सा भी ठंडा पड़ गया होगा। मन माफ़ करने की स्थिति में आ गया होगा। 'तुमसे माफी माँगना चाहती हूँ,' यह बात कानों मे पड़ने के पश्चात् भी उसका कठोर बना रहना संभव नहीं। मेरे प्रति उसका मन कैसा रहता है, यह मैं खूब जानती हूँ—उसने अपने विश्वास को दृढ किया।

घर आकर यथाक्रम गेट पर बँधे डाक के डिब्बे का ताला खोला, उसमें पड़ी दो चिट्ठियाँ उठाकर पुन. उस पर ताला लगाया। कार को छाँव मे खड़ा किया। एक लिफाफा ऐस्टेट के पते पर आया था और दूसरा बैंक से था। उसे नीचे रखकर पहले ऐस्टेट मैनेजर की चिट्ठी पढ़ी। इस बार की वर्षा का पूर्वानुमान, उर्वरकों की कीमतें आदि का ब्योरा देते हुए लिखा था, "एक बार अगर आप यथाशीघ्र आ जाएँ तो आपकी उपस्थिति में कुछ निर्णय लेने में मुझे सुविधा होगी। यों तो मैं खुद आ सकता था, लेकिन अगर आप आएँगी तो सब कुछ स्वयं खुद देख भी सकेंगी। सोसाइटी वाले अपने कर्ज का तकाजा करने लगे है।"

हाँ, एक बार हो आना चाहिए। इसी शनिवार को जाकर इतवार की शाम को लौट आऊँगी—इस निर्णय के साथ जब बैंक का लिफ़ाफा खोला तो वह चौक गई। उन्होंने परसों की तारीख मे सूचना दी थी कि आपके खाते मे लोकल कलेक्शन द्वारा एक लाख बयालीस हज़ार की रक़म जमा की गई है। छपे फार्म में जमा के कालम में धन की राशि लिखकर शरह के कालम में एल० सी० लिखा गया था। लोकल कलक्शन की इतनी बड़ी रक़म कौन-सी हो सकती है? पल-भर के लिए चौक गई। फिर आशंका हुई कि कहीं सोमशेखर ने तो जमा नहीं करवाई होगी? जमा राशि से तो उसी का अनुमान होता है। मुझसे उसने एक लाख चालीस हज़ार लिया है। बयालीस यानी ब्याज के साथ। एक माह के दो हजार ब्याज यानी सत्रह रुपये सैकड़ा का हिसाब लगाया है। अमृता भीतर-ही-भीतर ढह गई। अपने कमरे मे गई। बैंक से नंबर मिलाकर मैनेजर से पूछताछ करने

पर उन्होंने बताया, "मिस्टर सोमशेखर, आपके आर्किटेक्ट ने अपने बैंक से ट्रांसफर करवाया है, मैडम ! उनके बैंक के मैनेजर ने खुद आदेश भेजा है, दोपहर के लगभग बारह बजे ।"

"मैं यहाँ नहीं थी । आपकी एड्वाइज स्लिप अब मिली । इसलिए पूछा, थैंक्स !" फोन काटकर सोमशेखर के बैंक का नंबर मिलाया । पिछले माह उसने और सोमशेखर ने जो लेन-देन किया था उसके कारण परिचय हुआ था, फिर उस मैनेजर ने दो बार डिपाजिट की प्रार्थना भी की थी । मेरी दिक्कतों से अपरिचित उन्होंने मुझे बड़ा मालदार समझा है ।

"सुनिए, मि० सोमशेखर शहर में नहीं है, बंबई गए है । उनके खाते से आपने मेरे बैंक को इतनी बड़ी रकम भेज दी है । आपको पता होगा कि जब वे शहर मे नहीं रहते तब उनके दफ्तर के लेन-देन की निगरानी मैं करती रहती हूँ । यह रक़म कहाँ से जमा हुई, बता सकेंगे ? यहाँ खाता लिखना है ।" शक की गुंजाइश का मौका न देकर उसने पूछा ।

"हमारी बंबई शाखा से टेलेक्स द्वारा रेमिटेंस आई पौने ग्यारह बजे । उस समय वे खुद शहर में थे । मैंने फोन पर सूचना दी थी । उन्होंने खुद आकर आपके बैंक को तुरंत ट्रांस्फर करने के लिए कहा था । आपको असुविधा न हो, इसलिए मैंने तुरंत भेज दिया । कोई फ़र्क नहीं पड़ा । एक चेक देकर हमें लौटा दीजिए, हमने अब ब्याज की दर बड़ी आकर्षक कर दी है ।"—वे बड़ी देर तक अपनी पेशेवर हँसी हँसते रहे ।

"थैंक्स ! मेरी किसी दूसरी आवश्यकता के लिए मि० सोमशेखर ने तुरंत भेज दिया है । मैं शहर में नहीं थी, थैंक्स !"—चोंगा नीचे रखने से पहले ही सोमशेखर ने बिजली की तरह जो कार्रवाई की थी उसके सारे पहलू जान गई । जूठे हाथ मे थप्पड़ मारते ही तुरंत हाथ धोकर चला गया । सीधा घर गया है अथवा दफ्तर गया । 'इसके कर्ज की मुरव्वत कैसी, फेंक देंगे'— इस फैसले से दफ्तर से फोन करके टेलेक्स द्वारा पैसा भेजने के लिए नवीन शाह से कहा है । वहाँ सवेरे बैंक खुलते ही टेलेक्स भेजा है जो यहाँ पौने ग्यारह बजे मिल गया । इसने तुरत जाकर कर्जा चुकाया है । अपने इस कर्ज की लिखा-पढ़ी करने या और कोई वैकल्पिक व्यवस्था करने के लिए वह बंबई गया है । अमृता को बड़ा गुस्सा आया । दो-चार थप्पड़ और जमाने का मन हुआ । सिली ! बचकाने अंदाज में आचरण किया है ।

कपड़े बदलकर हाथ-मुँह धो लिया । रसोई-घर में जाकर पहले कुत्तों को खाना खिलाया, उन्हें घूमने के लिए छोड़ दिया । फिर अपनी थाली लगाकर रसोई-घर के टेबुल पर बैठकर खाना खाने लगी । साँबर में मिला भात पाँचो उँगलियों में सना हुआ देखकर मन तीन दिन पहले की रात की याद करने लगा । फोन

करके टेलेक्स द्वारा मँगवाकर तुरंत पैसा भर दिया है ब्याज के साथ; मतलब यह कि तिरस्कार किया है। जान गई कि मेरा इस निष्ठुरता के साथ संपूर्ण तिरस्कार किया है कि पुन: मिलेगा नहीं। बदन यों सिहर गया मानो बिजली का करंट लग गया हो। मन में अँधेरा छा गया। सारी आलोचनाएँ, भावनाएँ एकदम कुंठित हो गई। कुछ समय में शरीर का स्पंदन रुक-सा गया, लेकिन मन का अंधकार नहीं हटा। वेदना-शक्ति को खोकर शरीर निश्चेष्ट बन गया। बड़ी देर बाद जब मन को बाहरी आवरण का अहसास हुआ तब तक दाहिने हाथ की उँगलियों में सना दाल-भात सूख गया था। उठकर थाली चौके में रखी। अच्छी तरह भीगने के लिए हाथ नल के नीचे किया, फिर घिसकर धो-पोंछकर अपने कमरे में जाकर लेट गई। यह संबंध खत्म हुआ, मन को विश्वास हुआ कि सोमशेखर ने उसे खत्म कर दिया है। इसे सहते हुए या तो जीवन ढोते रहना होगा या मरना होगा; दूसरा कोई मार्ग नहीं—संकेत-फलक के साथ यह दोराहा दिखाई पड़ा। जब वह उस संकेत को घूर रही थी तभी मन में एक निश्चय जागा—जन्म से क्या मैं इसी के सहारे जीवित रही हूँ, इसके बिना भी जी लूँगी, मरूँगी नहीं। मैं मर जाऊँ, इसी इरादे से वह दूर चला गया है, लेकिन मैं मरूँगी नहीं, दिखा दूँगी कि उसके बिना भी मैं जिंदा रह सकती हूँ, पूरे सौ साल जिऊँगी। झटके के साथ उठकर खड़ी हुई। सख्त कदमों से पुन: रसोई-घर में गई। एक दूसरी थाली लेकर अपनी हर दिन की मामूली खुराक से भी अधिक भात लेकर उसके एक हिस्से में साँबर और दूसरे हिस्से दही डाल लिया। उसे मिलाकर खड़ी-खड़ी गपागप खा गई और थाली साफ की। हाथ धोकर थाली भी धोकर पुन: कमरे में आयी। वहाँ बैठना या लेटना उचित न लगा, इसलिए बाहर आ गई। गराज का दरवाजा खोलकर ताक पर रखी छोटी कुदाल और फावड़ा उठाया। आँचल को कमर में खोंसकर कंपाउंड के पेड़ों की क्यारियाँ खोदने लगी। बाँहों में एक जोश था। काम इतना दिखाई पड़ा कि कभी खत्म होने वाला नहीं। महादेवम्मा से कहना होगा, उसके पति के जरिए चार गाड़ी घूरे की खाद मँगवा दे। मृगालय की खाद मँगवानी होगी। खुद डलियों में भरकर हर पेड़ को देकर उस पर मिट्टी ढाँपकर पाइप से पानी देना चाहिए। साढ़े चार बजे तक लगातार काम करती रही। उसके बाद भीतर गई। पसीने से चिपचिपाये बदन को नहा-धोकर साफ़ किया और दूसरी साड़ी पहन ली। कुत्तों को उनकी अपनी-अपनी [illegible] में बाँधकर कार में बच्चों को स्कूल से ले आयी। उन्हें नाश्ता देकर घर के पिछवाड़े में उन दोनों के साथ शटलकॉक खेलती रही। रात में लेटते ही नींद आ गई; अच्छी गहरी नींद।

रात के दो बजे नींद खुल गई। अचानक नहीं, आराम से बिलकुल सचेत होकर। बाँहें दर्द करने लगी थीं। इस तरह हर रोज पेड़-पौधों की देखभाल करती

रहेगी तो दर्द नहीं होगा, स्वास्थ्य के लिए भी ठीक रहेगा । दोपहर में उसने कुदाल और फावड़े से जो काम किया था उसकी याद में डूब गई । तब सोम-शेखर को पैसा दिए जाने की बात याद आयी । कैश देना चाहा तो उसने मना किया, चेक के लिए अनुरोध किया । केवल एक लाख का ही चेक दिया था । तीस हज़ार मैंने खुद समय-समय पर खर्च किया था । उसका कोई लेखा-जोखा नहीं है । लाख का भी चेक के रूप में दिए जाने के प्रमाण के अतिरिक्त और कोई कागज़-पत्र नहीं था । अगर अदालत जाने की नौबत आती तो कहा जा सकता था कि इन्होंने अपने से नक़द कर्ज लिया था । अदालत में मैं कुछ नहीं कर सकती थी । मैंने इस घर को रेहन रखकर बैंक से उधार लिया था, उसके रजिस्ट्रेशन का खर्च भी मिलाकर लौटाया है । थप्पड़ मारने के अपराध मे सारी रक़म को जुर्मान सहित अदा करके संबंध तोड़ सकता था । लेकिन तुरंत रक़म लौटाकर संबध तोड़ लिया है । अमृता को उससे भय-सा लगा । जलजा की बतायी हुई बात याद आयी । जब रोटी के लाले पड़े थे उस छात्रावस्था मे ही चुपचाप सोने का कीमती हार हड़प लेता तो किसी को कानोंकान खबर न होती, लेकिन ऐसा न करके उसने खुद उसकी सूचना दी थी । ऐसे आदमी का क्या अब बदल पाना सभव है ? मन में प्रशंसा का भाव आया, साथ-ही-साथ गुस्सा भी । सोमु, तुम सौम्य नहीं हो, भयानक हो । उसके बारे में भय हुआ । लगा कि उसमें प्रेम और मार्दवता रहना संभव नही । इसके साथ ही रंगनाथ की, उसकी दीदी की याद आयी । कितना धोखा, कितना फरेब ! पैंतालीस लाख का धोखा ! इंजीनियर रंगनाथ रिश्वत खाता है । इसके न मांगने पर भी ठेकेदार लोगों द्वारा अमुक पर्सेंटेज पहुँचा देने की व्यवस्था है । रंगनाथ की याद से कुछ ही समय मे मन म्लान हुआ । धीरे-धीरे शून्य व्यापने लगा । कुछ समय मे वह गहरा हो गया, रिवाल्वर बाहर निकालने का मन हुआ ।

सवेरे से रात के आठ-नौ बजे तक सोमशेखर लगातार काम में यों व्यस्त रहता था कि गर्दन उठाकर तेरहवीं मंजिल पर स्थित वातानुकूलित शाह एण्ड शेखर की खिड़की से बाहर झांकने की भी उसे फुर्सत नही मिलती थी । इस शहर में इसी तरह उसने बारह वर्ष काम किया है, जब यह याद आती है तो उसका मन करता है कि पुनः यहीं क्यों न आ जाए ? "सोमु भाई, तुम्हारा यहां से जाना ही गलत हुआ । चुपचाप लौट आओ । दोनों साथ मिलकर बिजनैस करेंगे ।" दो बार नवीन ने भी यह आग्रह किया है । सोमशेखर को भी सहसा मैसूर का आकर्षण कम हुआ है । अब मन वहाँ से उचट गया है । काम करने वालों को मैसूर और बंबई में क्या फ़र्क पड़ता है ? बंबई छोड़ते समय उसने सोचा था कि धरती पर चलने वाले उन लोगों के लिए मानवीय सहज संबंध असंभव है जो

लोग आकाश के अबाधित दृश्यों से वंचित रहते है। लेकिन अब लगता है कि उसका विचार एक सीमित पहलू की सच्चाई मात्र था। इसके साथ ही यह सूझ पनपने लगी कि उस अकेली के साथ उसके संबंध और उन संबंधों में उपजे कमीनेपन के कारण मैसूर छोड़ना, जबकि अपना कारोबार अभी-अभी जमने लगा है, और बंबई लौट आना मन की चंचलता होगी । इस नवसारी फैक्टरी के डिजाइन के मुख्य अंशों को यथासंभव जल्दी खत्म करके मैसूर लौट जाने के इरादे में कोई परिवर्तन नहीं आया था। हर रात आठ बजे अपने दफ्तर को फोन करके नीलकण्ठप्पा से वहाँ के कारोबार के बारे में पूछताछ करके सलाह-मशविरा दे देता था। कहीं अपने ग्राहक नाराज़ न हों, इसलिए अपने लौटने की अनुमानित तिथि की सूचना देकर कारोबार को सँभालते रहने की सूचना भी दिया करता था। इस बीच कभी-कभी अमृता की याद भी मन को सालने लगती थी। यहाँ आकर नवसारी जाकर मौके का मुआइना करके नवीन द्वारा बनाई गई प्रारंभिक रूपरेखा को समझ लेने के बाद जब अगले काम में लग गया तब दो-चार दिन में ही अमृता के प्रति जो क्रोध और तिरस्कार की भावना थी वह कम हो गई थी; शांत मन से उसके आचरण को समझ लेने की मनोवृत्ति जागी थी। अकारण ही अमृता का गरम होना, चुभती-सी तीखी बातें करना—यह पहली बार तो नहीं था। जूठे हाथ से जो थप्पड़ मारा वह उसके पिछले सलूक की अगली कड़ी मात्र थी। ऐसे क्यों बोलती है ? जीवन में उसके साथ अन्याय हुआ है, धोखा हुआ है। तीस, चालीस, पचास लाख ही नहीं, बल्कि विरासत में मिली पूरी ऐस्टेट ही हाथ से निकल जाने की नौबत आई है। जिसके साथ सारा जीवन बिताना था उस पति के निश्चय में भी धोखे का शिकार हुई है। उसे सह सकने की क्षमता न होने के कारण विकल्प के रूप में आत्महत्या की प्रवृत्ति ने जन्म लिया है । उसे स्पष्ट दिखाई देने लगा कि इसी प्रवृत्ति के कारण उसे गुस्सा आता है। लेकिन हमेशा मुझ पर गुस्सा करना, जूठे हाथ से मेरे गाल पर थप्पड़ मारना कहाँ का न्याय है ? जिसने अन्याय किया हो उसे चाहे गाली दे, मारे, रिवाल्वर से गोली दाग दे अथवा अदालत में जाकर नालिश करे कि उस चाची ने इतने लाख रुपयों का ग़बन किया है, उसके बच्चों के नाम पर जो जायदाद खरीदी है उतनी रक़म पाने का उसके पास कोई साधन नहीं था। उनके बारे में एक दिन कहानी के रूप में जो कहा, बस वही, उसके बाद फिर कभी जिक्र नहीं किया। गुस्सा नहीं किया। मुझ पर ही सारा गुस्सा, चिढ़न, क्रूरता उतार लेती है, निष्कलुष स्नेह और प्रेम के बदले ! जब बार-बार मन में यह विचार आने लगता तो मन कहता कि उससे दूर रहने में ही समझदारी है। स्कूल के बच्चों की तरह डाँट खाने, पिटने की नौबत क्यों आए ? यह निर्णय और अधिक ठोस हो जाता। लेकिन उसे भुलाने की लाख

चेष्टा करने पर भी मन में उसकी याद हमेशा समायी रहती थी।

एक रात नवीन के घर भोजन के लिए गया था। नवीन कहीं बाहर गया था, लौटा नहीं था। इंदुबेन ने पूछा, "सोमु भाई, पिछले साल जब हम नीलगिरि कोडगु की यात्रा पर आए थे तभी मैंने आपसे कहा था कि ब्याह कर लीजिए। क्या अभी कुछ फैसला नहीं किया?" सोमशेखर खामोशी से मुसकुरा दिया था। "इतने होनहार आर्किटेक्ट बने हैं, बिजिनेस भी ठीक चल रहा है। आज के जमाने में बहुत पुरुष आपकी इस आयु में पहला ब्याह करते हैं। पेपर में मैट्रिमोनियल कालम में विज्ञापन दे दीजिए। अथवा जिन लड़कियों ने दिया है उनके पते पर पत्र लिखिए। वरना, हम पर छोड़ दीजिए, हम पत्र-व्यवहार करेंगे। शाम को घर लौटने पर जब अपना कहलाने वाला कोई परिवार न हो तब कमाई किस काम की भला?"

नवीन घर आया। उनके पुत्र दिगंत के साथ जब वे चारों खाने पर बैठे तब भी इंदुबेन ने यही बात कही, "सोमु भाई से पूछ रही थी कि ब्याह का इरादा क्यों नहीं किया। आप भी अपने मित्र के लिए एक लड़की क्यों नहीं ढूंढते? आप अपने बेंगलूर के इतवार के अखबार-पत्रिकाएँ डाक द्वारा मुझे भेज दीजिए। मैं चुनाव करके बाक्स नंबर पर पत्र लिखूंगी।"

नवीन ने बात जोड़ी, "किसी आर्किटेक्ट या सिविल इंजीनियर लड़की से ब्याह करो। साथ मिलकर काम भी किया जा सकता है।" सोमशेखर ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह चुप सुनता रहा।

लेकिन इंदुबेन ने तुरंत जोड़ दिया, "अपने मित्र की बातें समझ गए न? आज के जमाने की लड़कियाँ अच्छा दहेज नहीं लातीं। उसके बदले आपके दफ्तर में बेगारी में, लाभ में हिस्सा न माँगने वाली पार्टनर बन जाती हैं। नवीन शाह का कैसा उम्दा बिजिनस माइंड है, समझ लीजिए। मैं जो दो लाख नक़द, सौ तोला सोना ले आयी थी उसे अब बताने लगे हैं। चौबीस घंटे गृहस्थी संभालते हुए समय-समय पर गरम-गरम चाय, नाश्ता, गरम खाना बनाकर जो खिलाती हूँ उससे जी नहीं भरा है। कहते हैं कि तुम भी दफ्तर चलो, डुप्लीकेटिंग करो, टाइप करो। मैं घर के काम से ही थक जाती हूँ। कहती हूँ कि तुम्हारे दफ्तर में भी पसीना बहाने मैं नहीं आऊँगी।"

सोमशेखर को पता था कि उसकी पत्नी के देहांत के एक वर्ष बाद से ही इंदु-बेन चाहती है कि वह पुनः ब्याह करे। आज जो कह रही है वह कोई नई बात नहीं थी। उसे यह भी पता था कि बाहर काम करने वाली पत्नियाँ इंदुबेन को पसंद नहीं। वह कुछ बोला ही नहीं। चुपचाप खाना खा लिया। होटल, जो पास में ही था, जाकर जब अपने कमरे में लेटा तब यह बात सिर में मँडराने लगी। इंदुबेन की एक बात उसके मन को लगी। शाम को घर लौटने पर जब अपना

कहलाने वाला कोई परिवार न हो तो यह कमाई किस काम की ? सच है। नवीन का कर्जा डेढ़ या दो वर्ष में वापस हो जाएगा । उसके बाद वह भला क्यों ज्यादा मेहनत करे ? शाम को किसी होटल में खाकर सुनसान घर का दरवाजा खोलते समय मन कैसा भारी हो जाता है ! यह विचार कोई पहली बार नहीं आया। फिर भी न जाने क्यों, मन ब्याह की ओर मुड़ता ही नहीं । ब्याह का अर्थ है एक प्रकार का बंधन । चाहे भावनाएँ प्रस्फुटित होती हों या सूख गई हों, ब्याह एक कर्तव्य-भार होता है, यह अपना स्थायी फैसला पुनः जाग गया । सवेरे आठ से रात के नौ तक दफ्तर में लगातार काम करके थक जाने के कारण आँखें बोझिल होने लगीं । दूसरे सवेरे जल्दी उठकर रेल से नवसारी भी जाना था ।

अगली शाम साढ़े आठ बजे दफ्तर में बैठा काम कर रहा था । दिघे जो पहले से ही इसी दफ्तर में काम करता था, ड्राइंग टेबुल के सामने खड़े होकर इसके निर्देश के अनुसार नक्शा बना रहा था । फोन की घण्टी बजी । दिघे ने उसे उठाकर, बज़र देकर इसको सूचना दी, "सर, आपके लिए कहीं दूर का कॉल लगता है ।"

शायद नीलकण्ठप्पा का होगा, यह सोचकर उसने अपने चेंबर के ऐक्सटेंशन का चोंगा उठाकर, 'हैलो, सोमशेखर बोल रहा हूँ" कहा । उधर से जो आवाज़ सुनाई दी उसे सुनकर सन्न रह गया । मन में जो आश्चर्य-भाव जागा उसकी जड़ में वह प्रसन्न भाव था जिसे वह साफ़ पहचान रहा था । "सोमु, नीलकण्ठप्पा जी से तुम्हारा नंबर लिया है । उन्होंने बताया कि रात के नौ बजे तक काम करते रहते हो, अभी मिलोगे। वहाँ तुम्हारे पास कोई है तो नहीं ? अगर है भी तो तुम कन्नड़ में बोलो । मैंने बेडरूम के दरवाजे बंद किए हैं । सुन रहे हो ? अगर तुम 'हाँ' नही कहोगे तो मैं बोलूंगी कैसे ? 'हूँ' न कहने का मतलब होगा कि अभी गुस्सा ठंडा नहीं हुआ । ग्यारहवें दिन को मौत का भी सूतक उतर जाता है और अगर अभी तुम्हारा गुस्सा नहीं उतरा है तो फिर मैं जिऊँ कैसे ? सोमु, प्यारे सोमु, हाँ बोलो, एक बार कह दो कि सुन रहे हो । तुमसे बोलने के लिए मैं जो तड़प रही हूँ वह केवल एक ही वाक्य है । जब तक तुम 'हाँ' नहीं कहोगे मैं बता नहीं पाऊँगी । तुम बहुत अच्छे हो, हाँ कह दो, मेरे प्यारे सोमु !" सहसा सोमशेखर ने 'हाँ' कह दी । अमृता ने बात जारी रखी, "तुमसे क्षमायाचना करने की क्षमता खोए कितने महीनों बीत गए । यही गलती मैंने पहली बार नहीं की है । फिर भी मैं जानती हूँ कि अब तक तुमने मुझे माफ़ कर दिया है । मेरा मतलब यह नहीं कि तुम कोई सिद्ध पुरुष हो, लेकिन तुम्हारा प्यार महान है । चाहे किसी हद का क्रोध क्यों न हो, उसे तुरंत बुझाकर शांत करने लायक महान । इसीलिए मैं इस तरह बचकानी हरकतें करती रहती हूँ । तुम कब आओगे, बताओ । बेंगलूर के हवाई अड्डे पर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी ।" सोम-

शेखर को जवाब ही नहीं, बल्कि कोई भी बात तक नहीं सूझी। अमृता ने ही बात जारी रखी, "जानती हूँ कि तुम बहुत व्यस्त हो। तुरंत फैसला लेते हुए भी नहीं बनता। जब तुम फैसला कर लो तब खुद फोन कर देना। अगर तुमसे फोन करना संभव नहीं हो सकता हो तो, कहो, किस समय रिंग करने पर तुम अकेले मिलोगे ? इस बात से मत घबराओ कि हर दिन किसी औरत का फोन आये तो तुम्हारे मित्र नवीन को शक होगा। कह देना कि कस्टमर है, उसका घर बनवा रहा हूँ। अच्छा तो सोमु ! बाय कहो। जब तक तुम बोलोगे नहीं मैं फोन नही रखूंगी।" वह खामोश प्रतीक्षा करती रही। सोमशेखर ने बाय कह दिया।

इसके बाद आधा घंटे तक काम करता रहा। फिर होटल जाकर खाना खा लिया। खाते समय उसे अपने में जो परिवर्तन का अहसास हुआ उससे चौक गया। अमृता के प्रति जो भी गुस्सा, कड़ुवाहट थी वह नीचे गहराई मे चली गई और सहानुभूति का भाव मन में भर गया। अमृता ने उस तरह का बर्ताव जो किया उसके लिए कोई उतना ही प्रबल कारण रहा होगा। वरना, जूठे हाथ से, और वह भी मुझे कैसे मार सकती थी ? अत्यंत संवेदनशील, कभी किसी चींटी को भी न दुखाने वाली। उसकी देह की गठन, मांसपेशिया, बाँहें, मुँह, गाल, चर्म ही नहीं, वरन भीतरी मन भी कोमल है। चमेली की तरह नहीं, मालती की तरह कोमल। कभी-कभी वह जो निष्ठुर हो जाती है उसके कारण को जानने की लालसा भीतर से फव्वारे की तरह फूट पड़ी। मन एकदम हलका हुआ। बंबई की रंग-व-रोगनहीन बाहरी दीवार व खिड़कियों वाली इमारतें बाहर धूल से भरी हवा, घूरे में भिन्नाती हुई करोड़ो मक्खियो की तरह लोगो की भीड़भाड़— यह सारा मन से ओझल होकर अहसास हुआ कि एक ऊँची पर्वत-श्रेणी के मार्ग पर आकाश को छूते हुए चल रहा हो। क्रोध, जिद आदि मनुष्य को नीचे डुबाने वाले पत्थर-गोलों को झटक कर आकाश में उड़ते जाने की लहर आ गई। दूसरे दिन उसने खुद अमृता को फोन किया।

उसने बताया कि वहाँ का काम पूरा करके निकलने से पहले उसे फोन करेगा। सवेरे सात बजे बेंगलूर पहुँचकर हवाई अड्डे से सीधा बस-स्टैंड जाएगा और वहाँ से साढ़े ग्यारह या पौने बारह तक मैसूर पहुँच जाएगा। लेकिन अमृता ने कहा कि वह हवाई अड्डे पर कार लेकर पहुँच जाएगी। सोमशेखर ने कहा कि बच्चों को रात में ही किसी के यहाँ छोड़ना पड़ेगा, घर की रखवाली के लिए व्यवस्था करनी पड़ेगी, इसलिए तुम मत आना। आखिर अमृता ने ज़िद की कि वह मैसूर बस-स्टैंड पर तो अवश्य प्रतीक्षा करेगी। सोमशेखर मान गया। अगर अमृता बेंगलूर आएगी तो दोनों का एक साथ मिलकर मैसूर जाने में जो मज़ा, उल्लास रहेगा उसकी कल्पना ने सोमशेखर को भी आकर्षित किया। लेकिन अमृता की तंगी की अवस्था में नाहक उतना खर्च करवाना उचित नहीं लगा।

इसलिए उसे जो मना किया वह ठीक ही किया।

जैसे ही स्टैंड के भीतर बस मुड़ रही थी उसने कार को पहचान लिया। खिड़की के पास बैठा हुआ सोमशेखर अमृता को दिखाई पड़ा। बेंगलूर बस-स्टैंड से ही चमेली का गजरा खरीदकर बैग में ले आया था। कड़वाहट को याद दिलाने वाली बात की चर्चा किए बिना, आपस में परस्पर मिलने की खुशी की उत्कंठा व्यक्त करते हुए कार में सीधे अमृता के घर पहुँचे। सूटकेस डिक्की में ही था। घर का ताला खोलते ही तत्काल दोनों बाँहों में बिधकर गहरी साँस लेने लगे। जब दोनों के मुँह से एक साथ बात निकली "तुम्हारे बिना जीना असंभव है" तब वे एक-दूसरे की आँखों में झाँकने लगे, उनके चेहरे खिल गए। सोमशेखर ने गौर किया कि अमृता का चेहरा रक्तहीन, पीला पड़ गया है। "आज से अगर ढंग से खाओगी नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा"—उसने कहा। खुशी से अमृता की आँखें चमक उठीं। अमृता ने साँबर-भात, दही-बड़ा, पीने के लिए ---म फ्रूटसलाद बनाकर रखा था। एक ही थाली में दोनों ने खाया, एक-दूसरे को खिलाया। भरपेट भोजन किया। बीच-बीच में सोमशेखर बताता रहा कि बंबई में उसका क्या काम था, बंबई में मिलने वाले काम और मैसूर में मिलने वाले काम में क्या फर्क होता है।

भोजन के बाद अमृता ने कुत्तों को खाना खिलाया। उन्हें खुला छोड़कर दरवाजा बंद करके भीतर आयी। जब दोनों बिस्तर पर चले गए तब एक फर्क सोमशेखर के ध्यान में आया। अमृता बेझिझक होकर अधिक कल्पनाशील बन गई है। बीच-बीच मे शृंगारिक कविताओं की पंक्तियाँ सुनाकर व्यंजनात्मक वार्तालाप को काव्यमय बना देती है। सक्रियतापूर्वक सोमशेखर की गतिशीलता को प्रेरित करती है। शुरू-शुरू में सोमशेखर को मजा आता रहा, किंतु धीरे-धीरे लगा कि यह अपनी अमृता का सहज आंतरिक गुण नहीं है। अंतर्मुखी, मार्दवता, गहन भावनाशील, लज्जा में निमज्जित अर्धनिमीलित आँखें, आँखो को पुतली की तरह मुझे अपनी पलकों मे बंद रखने के उसमें जो गुण थे उनके स्थान पर बहिर्मुखी, बाह्य आक्रामक क्रियाएँ मुखरित हुई थीं। सोमशेखर की सूक्ष्म संवेदना के लिए ये गुण अनाकर्षक लगे। "अरे, यह क्या, इतना बदल गई हो ?" अमृता के कानों में मुँह रखकर उसने धीरे से पूछा। "बदलाव कैसा ? मैं कुछ नहीं जानती"—अमृता ने बनावटी आश्चर्य दिखाया। "अगर मैं खुद मुँह खोलकर कहूँ तो यह सारा सहज बन जाएगा। इसे मैं गलत नहीं कहता। लेकिन, तुम्हारे लिए यह सहज नहीं है, बस यही बात है। सच बताओ, ऐसा क्यों ?" अमृता ने जवाब नहीं दिया।

सहसा सारी क्रियाशीलता स्थगित होकर अमृता भीतर की ओर सिमट गई। जब सोमशेखर बताने की जिद करने लगा तब अमृता के चेहरे पर लज्जा फूट

पड़ी। "बताओ अमृता, तुम्हें बताना ही होगा"--उसने कान में कहा। तब वह बोली, "बंबई से अभी-अभी लौटे हो, कहीं मैसूर फीका न लगे, बस इसीलिए।"

सोमशेखर की समझ में कुछ नहीं आया। पल-भर वह टुकुर-टुकुर देखता रहा। फिर पूछा, "तुम्हारी बातों का मतलब क्या है ? साफ़-साफ़ कहो न।"

"मैं मुँह खोलकर सारी बात कह दूं तो क्या वह सहज होगा ?" सोमशेखर के शब्दों में ही उसने जवाब दिया।

एक क्षण बाद सोमशेखर को उसकी बात समझ में आयी। बनावटी क्रोध में उसके गाल पर एक हलका-सा थप्पड़ मारकर कहा, "बंदरिया कहीं की !" अमृता चुप रही। सोमशेखर ने बात जारी रखी, "मैंने सोचा था कि मुझे बंबई क्यों जाना पड़ा, क्या काम था, इसकी सूचना नीलकण्ठप्पा ने तुम्हे दी होगी। रात के साढ़े आठ, नौ बजे तुमने खुद नवीन के दफ्तर में मुझे फोन किया है। फिर भी तुम्हें शक है ?"

"मुझे माफ़ करो, सोमु," सोमशेखर की दृष्टि का सामना करने का साहस उसमें नहीं था, इसलिए निगाह बचाकर अमृता ने दबी आवाज में जवाब दिया; "मुझे बाद में, यानी छह दिनों बाद पता चला कि एक बड़े काम के सिलसिले में सहायता के लिए तुरंत तुम्हारे मित्र ने बुलवा लिया था; इसलिए तुम गए थे। उससे पहले; खैर, अब जाने दो। उन बातों को लेकर अब क्यों इन सुंदर क्षणों का जायका बिगाड़ें !" उसने बात खत्म की।

"सचाई जानना चाहता हूँ, बताओ न !" उसने अनुरोध किया। अमृता बोली, "दूसरे दिन तुम्हारे दफ्तर को फोन किया था। उसके पिछली रात तुम बस से बेंगलूर गए थे। नीलकण्ठप्पा ने बताया कि जब मैंने फोन किया था तब तक तुम बंबई पहुँच गए होगे। उस समय तक मुझे इस बात पता नहीं चला था कि तुमने टेलेक्स द्वारा पैसा मँगवाकर बैंक में जमा करवाया था। तुम्हारे प्रति मेरा गुस्सा अभी कम नहीं हुआ था। मुझे लगा कि तुम बंबई और किस काम से गए होगे ? मैसूर की इस अमृता से जो हमेशा नाक में दम करती है, पीड़ा देती है, डायन जैसी है वह तुम्हारी बंबई वाली सहेली, जो मिलन के चार-पांच घंटों में ऐसा सुख देती है कि उसमें पल-भर के लिए भी खलल नहीं होने देती, लाख गुना बेहतर लगी होगी। मुझे लगा कि उससे मिलकर अपना पुराना प्यार जताने के लिए गए हो। मैंने जो पीड़ा दी, उसे भूलने के लिए तुमने उसके संपर्क की आवश्यकता महसूस की होगी। जब उसका जिक्र करने लगती हूँ तो तुम्हारी आँखें अनजाने में चमक उठती हैं। इसे मैंने देखा है। अगर मैं कह दूं कि उससे मुझे जलन नहीं होती तो वह झूठ होगा। लेकिन इधर चार-पांच दिनों से, जब मैंने तुम्हें बंबई फोन किया था, उसके दूसरे दिन तुमने किया था, तब से मन में ईर्ष्या भी होने लगी है कि जो सुख मैं नहीं दे पायी वह उसने दिया है। पहले दो

दिन गुस्से में उसके बारे में सोचते हुए तुलना करती रही। पिछले चार-पांच दिनों से उसके बारे में पूरा न सही, कुछ प्रशंसा तो जागी है। पुरुष स्त्री को स्नेह क्यों करता है? जहाँ तक समय साथ देता है मजा लूटने के लिए। उसने इस उद्देश्य को सफलतापूर्वक निभाया है। मैं हार गई हूँ। पत. नहीं, मैं अपना क्रोध, चिढ़न, तुम्हे पीड़ित करने वाली क्रूरता पर पूरी तरह नियंत्रण कर पाऊँगी या नहीं। कम-से-कम जब बेड पर मिलते है तब तो क्यों न उसे गुरु मानकर अधिक आनंद का प्रवाह बहने दूं? ऐसा क्यों न करूँ, बताओ?" सोमशेखर से जवाब तलब करके वह चुप हो गई।

सोमशेखर का मन सोच में डूब गया। जहाँ से आनद उमड़ता हो उस स्थान पर गड्ढा खोदकर झरने को अधिक सांद्र, अधिक सुगमता से प्रवाहित होने योग्य बनाना ग़लत नही। वह वांछित ही है। बंबईवाली से मिलन की बात याद आयी। दरवाजा बद करके एक-दूसरे के हाथ पर हाथ धरते ही उल्लास जेट विमान की तरह अपनी चरमावस्था को पहुँच जाता था। उसका व्यक्तित्व ही ऐसा था। अन्य किसी प्रकार के लक्षणो के मिश्रणके लिए वहाँ गुंजाइश नहीं थी। पुरुष का अपनी प्रेयसी से मिलने का उद्देश्य वहाँ स्पष्ट था। उस औरत का मुझसे मिलने का उद्देश्य भी उतना ही स्पष्ट था। वह उसका स्वाभाविक गुण था। "अमू, तुम जानती हो कि उसका जिक्र करना मुझे पसंद नहीं। उसका संपर्क टूटे कितने दिन बीत गए। भले ही मैं भूल जाऊँ, तुम नही भूलती। क्यों? तुम्हारे लिए उससे अपनी तुलना करना ही गलत है। एक पल के लिए भी उसके प्रति आदर का भाव मेरे मन में पनपना मुझे अच्छा नही लगता। उसे मैंने ग़लत समझा था। वरना, ऐसा कोई गुण मैंने उसमें नहो देखा था।"

"मैं भी उसकी तुलना अपने से नहीं कर रही हूँ। मेरा ᠆ पर्य केवल यही है कि वह मेरे से भी उत्तम सहेली थी। इसीलिए कहा कि उसे गुरु मानना चाहिए।"

"खुद मुझ में विरोधाभास दिखाई दे सकता है। उसकी अवज्ञा करना भी मुझे भाता नही। तुम्हारा उसके साथ तुलना करना भी मुझे पसंद नहीं। इसका मतलब यह नहीं कि तुम महान और वह नीच थी। लेकिन, तुम तुलना की पहुँच के बाहर हो, मेरा ख्याल है कि बेमिसाल हो। तुम सदा इसी तरह रहो।" उसने बाँहो मे भरकर अमृता को चूम लिया।

"सुख के बिना क्या उससे मिलने का कोई और उद्देश्य था ही नही? स्नेह, एक-दूसरे के संकट में काम आना, अपना दुःखड़ा कह लेना वगैरह।"

"ऐसा कोई प्रश्न कभी उठा ही नहीं। सुख को झंकृत करने के सिवा अलग ढंग के स्नेह का कोई संदर्भ ही नहीं नजर आया। एक दिन हम छह घंटों तक साथ बिताने के बाद मुँह धोकर, बालो को कंघी करके, कपड़े पहनकर निकले। तब

उसे याद आया कि वह बैंक जाना भूल गई थी। घर पहुँचने के लिए पास टैक्सी के पैसे नहीं थे। बड़े संकोच से मुझ से माँगा। तुरंत मैं सौ का एक नोट निकालकर उसके हाथ में रखने लगा। वह बोली, इतने की जरूरत नहीं, पच्चीस काफी हैं। रखिए, कोई बात नहीं—मैं बोला। लेकिन उसने केवल पच्चीस ही लिए। अगली मुलाकात में उसने पहला काम यही किया कि अपने बैग से पच्चीस रुपये निकालकर मेरे सामने रख दिए। मुझे बड़ा बुरा लगा। मैंने कहा, ऐसी निठुराई क्यों? क्या मैं तुम्हारा कुछ नहीं लगता? वह बोली, कुछ नहीं लगते तो मैं आती ही क्यों थी? इस बहाने अगर मैं तुमसे पैसा लूं तो मैं क्या बनूंगी? अगर तुम इन्हें वापस नहीं लोगे तो मैं तुम्हें अपना हाथ तक छूने नहीं दूंगी। उसके पास पैसा रहा होगा। लेकिन इस संबंध के द्वारा रत्ती-भर आर्थिक लाभ उठाना उसके स्वभाव में ही नहीं था। उस दिन मुझे बुरा लगा। उसके बाद मैं खुद उस गुण का कायल हो गया।"

इतना कहकर सोमशेखर चुप हो गया। आगे कोई बात उसे नहीं सूझी। अमृता अपने-आप में डूबी हुई थी। आँखें खुली रहने पर भी कुछ देख नहीं पा रही थी। सोमशेखर का मन इस प्रश्न में डूबा था कि मैं औरत से क्या चाहता हूँ? बंबईवाली का जब संबंध था तब मन में कभी यह प्रश्न उठा ही नहीं था। लेकिन अब, जब से इसका संबंध हुआ है, और वह भी इन दिनों यह प्रश्न अधिक बेचैन करने लगा है। कभी-कभी यह प्रश्न इस रूप में सामने आता है कि क्या स्त्री के संबंध के बिना, दैहिक सुख के बिना रह पाना संभव नहीं? सोमशेखर इस सोच में डूबा था, तभी अमृता बोली, "तुमने सौ बार कहा है कि उसे भूल गया हूँ, याद मत दिलाओ। लेकिन तुम्हारे अंतरंग में मैं उसके समान ठोस नहीं बनी हूँ, यह बात भी सच है।"

यह बात सोमशेखर को सीधे आरोप जैसी लगी। "कैसी बात करती हो तुम?" आवाज़ में और चेहरे पर पीड़ा, मायूसी, कुचला-सा क्रोध व्यक्त होने लगा था।

"पच्चीस रुपए दूसरे दिन, यानी कि अगले मिलन के समय तुम्हारे सामने रखकर कहा था, अगर तुम नहीं लोगे तो मेरे और तुम्हारे संबंध के मायने क्या होंगे? अगर तुम नहीं लोगे तो मैं तुम्हें अपना हाथ तक छूने नहीं दूंगी। है न? और तुम भी ऐसे ही निकले। बंबई को फोन करके टेलेक्स द्वारा पैसा मँगवाकर मेरा हिसाब चुका दिया। तुम्हारे मन को भी प्रश्न कचोट रहा था कि चुका नहीं दोगे तो मेरे और इसके संबंध का अर्थ क्या होगा? तुम कभी अमृता बनकर अमृता के मन के भीतर पैठकर समझने की कोशिश नहीं करते। तुम्हारी समझ की जड़, भावनाओं का स्थान वहाँ है, बंबईवाली के यहाँ। जब मैं महज तुलना की बात करती हूँ तो तुम्हें गुस्सा आता है।"

इस बीच रति की उत्कटता घटी ही नहीं थी वल्कि उत्साह पूर्णतः समाप्त हो गया था। निकटता खो जाने का अहसास दोनों को हुआ और एक-दूसरे की देह भारी लगने लगी। परिणामतः दोनों ने करवट ली। वे ऐसे लेट गए जैसे एक दूसरे को देख सके और कोई किसी को भारी न लगे। मन की अप्रसन्नता दबाए रखना सोमशेखर के लिए असंभव हो गया। दवाने की चेष्टा करने पर भी अमृता की तेज निगाह से बच पाना संभव नहीं था। यह बात वह जानता था।

लगभग पाँच मिनट तक दोनों बिलकुल खामोश लेटे रहे। फिर अमृता ही पास सरककर अपने बायें हाथ में उसे भरकर बोली, "तुम्हारा कहना ठीक है। मैं अलग हूँ, वह अलग है। आज के अपने समय को समान सांद्रतावाला रसमय बनाने के लिए आज, जब से तुमने परसों फोन पर आने की सूचना दी थी, तब से मैंने योजना बना रखी थी। तुम्हें अधिकाधिक सुख देने के इरादे से कितनी ही बातों की कल्पना कर रखी थी। लेकिन मैं मैं हूँ और वह वह है। पीड़ा-शून्य सुख देने की क्षमता तुममें नहीं है। जिसमें देने की क्षमता नहीं होती उसमें पाने की क्षमता भी नही होती। मुझे क्षमा करना।" वह और पास आयी, सोमशेखर की दोनों आँखों को चूम लिया। उसे प्रतिस्पदित करने की भावना अथवा दिखावे की सौजन्यशीलता भी सोमशेखर मे बची नहीं थी। वह मन-ही-मन सोच रहा था कि अमृता हर बात को वाग्वाद की ओर मोड़कर पता नहीं कब कड़वा अंदाज, कडवा निष्कर्ष निकालने लगती है।

"मेरे अच्छे सोमू, मैं जानती हूँ तुम्हें बुरा लगा है। ऐसे मौके पर बात बढ़ानी नही चाहिए, यह भी जानती हूँ। फिर भी जब बात चल पड़ी है तो कह लेना आसान रहेगा। अभी···" उसकी बात को काटकर सोमशेखर बोला कि "बेमौके ही कैसी भी कड़वी बात कहना तुम्हारे लिए आसान होता है।"

अमृता ने घूर-घूरकर उसका चेहरा देखा। सोमशेखर को लगा कि अब दृष्टि-युद्ध शुरू हुआ। उसकी दृष्टि का अपनी दृष्टि से सामना करने के बदले उनीदेपन का ढोंग करके उसने पलकें सिकोड़ लीं। एक पल उसी को निहारते हुए लेटी अमृता बोली, "बात करने से भी अगर तुम्हें इतनी नफ़रत है, तो ठीक है।" वह करवट बदलकर सोमशेखर की ओर पीठ करके लेट गई। वह खामोश रहा। उसे दिलासा भी नहीं दिया और बाँह बढ़ाकर उसे अपनी ओर मोड़ने की चेष्टा भी नहीं की। इस गहरी खामोशी के शीतयुद्ध में वह कौन-सा अनपेक्षित मोरचा लेकर धावा बोल देगी, इसका अंदाजा न कर पाकर वह चुपचाप लेटा रहा। कुछ समय बाद अमृता झट इसकी ओर मुड़कर उठ बैठी। लेकिन दोनों को ढांके हुई डबल साइज की चादर के बाहर निकली अपनी देह नंगी होने का जैसे ही अहसास हुआ उसमें अपमान, लज्जा और क्रोध की भावनाएँ जागीं। उतनी ही तीव्रता से दूसरी ओर मुड़कर हाथ बढ़ाकर फर्श पर पड़ा अपना पेटीकोट और ब्लाउज उठा

लिया। उनके साथ साड़ी पहनकर सोमशेखर से दो हाथ दूर पलंग के सिरे पर बैठ गई। हारना नहीं होगा, गुस्सा भी नहीं दिखाना होगा। अगर गुस्सा करेगी तो हार जाएगी, इस सावधानी से, निश्चय के साथ हर शब्द को चुन-चुनकर प्रयोग करने के अंदाज में बोली—

"तुम जरूर कहोगे कि दोनों में फर्क है। उसे बैंक जाने का समय नहीं मिला, इसलिए टैक्सी के जो पैसे कर्ज लिये थे उसे लौटा दिया। मुझे टेलेक्स द्वारा मँगवा कर जो दिया उसका कारण कुछ और है; उसके साथ, जूठे हाथ से थप्पड़ मारने का घटिया सलूक मैंने नहीं किया—यही अब तुम्हारे मन में है न ? सच बोलो।" जो बात मालूम है उसे मुंह से कहना मेरी आदत नहीं—यह वाक्य सोमशेखर के मन में रूपायित हुआ था, लेकिन इस बात पर उसने इस प्रकार नियंत्रण कर लिया कि वह गले की ध्वनि-पेटिका में भी प्रवेश न कर सके। अमृता जब कपड़े पहनकर बैठी हो तब स्वयं चादर से ढंका रहने पर भी नंगेपन के अहसास से लज्जा के साथ उसके मन में हीनावस्था का भाव आया। जब निकटता की भावना उमड़कर दोनों का अहंकार भीतर की ओर सिमट जाता है तभी नग्नता के सौंदर्य का उल्लास और उसकी अनुभूति होती है। जब अहंकार जाग जाता है और मन में दूरी आ जाती है तब नग्नता एक संकोच बन जाती है! खुद भी हाथ बढ़ाकर पलंग के इस सिरे पर रखे अपने भीतर के कपड़े लेकर चादर के अंदर ही पहनकर बाहर निकलने का विचार आया। लेकिन अमृता ने जो किया उसी का अनुकरण करना उचित न मानकर वह लापरवाही से खामोश रहा।

"मैंने जूठे हाथ से मारा, इसलिए मेरे साथ सुख-दुःख का हर नाता तोड़ लेने के लिए तुमने पैसा मँगवाकर दिया—तुम कहोगे···" उसकी बात को बीच में ही काटकर सोमशेखर बोला, "मैंने कुछ नही कहा। सारी बात तुम्हीं खुद कह रही हो, खुद कल्पना कर रही हो।"

"सोमशेखर! चालाक मत बनिए। कुछ न कहने का मतलब यह तो नहीं कि आपके मन में कुछ नही चल रहा है, इसे साबित भी नही किया जा सकता। ऐसी बात है तो बताइए—अचानक वह भी टेलेक्स द्वारा, क्यों पैसा मँगवाया ? पैसा मिलने के दस ही मिनट में उसे मेरे खाते में क्यों जमा करवाया ? अगर मैं जिरह करने बैठूं तो जवाब ढूंढ़ने की शक्ति आप में नहीं होगी। सच्चाई मेरे पक्ष में है। खैर, छोड़िए इन बातों को। जूठे हाथ से मारने का अपराध आपको बड़ा भारी लगा। लेकिन क्या कभी सोचा है कि कभी ऐसा नहीं करने वाली, इतनी पढ़ी-लिखी, सुसंस्कृत औरत अगर ऐसा करती है तो इसका भी कोई भारी कारण होगा ? क्या उसे समझने की कभी कोशिश भी की है ? मैं जिस कालेज में काम करती हूँ वहाँ पूछताछ कीजिए, बाहर कहीं भी जहाँ चाहे वहाँ पूछ लीजिए,

अगर मैंने कभी किसी के साथ संयम खोकर ऐसी कोई बात कभी किसी से कही हो। तुम्हें एक बात भी ऐसी कहीं से पता लगे तो चाहे सो सजा दे लेना। मैं अगर आप पर कभी-कभी गुस्सा करती हूँ, गुस्से में अपना आपा खोकर जूठे हाथ से मारती हूँ तो उसका कारण आप जानते हैं। जानते हुए भी उसे व्यक्त न करते हुए बड़ी चालाकी से मुझे दूर, बहुत दूर खड़ा करके नचा रहे हैं।" अंतिम वाक्य कहते समय उसकी आवाज भर्राई हुई थी। अगर वह रुलाई में बदल गयी तो वह अपना अपमान होगा; यह समझकर उसने बात खत्म कर दी।

पल-भर के लिए गर्दन उठाकर धीमे-धीमे घूमते हुए पंखे की ओर देखते हुए उसने बात जारी रखी, "आपसे कहा था कि विकास के नामकरण के अवसर पर भी निराश्रित होने के भाव का शिकार होकर मेरे सामने यही प्रश्न उठा था कि मेरा और इस रंगनाथ का क्या संबंध है, इसे क्यों बुलवाया, इन सारे धार्मिक विधि-विधानों में अपना क्या स्थान है? इन प्रश्नों का शिकार होकर उसी समय जब सारे मेहमान भोजन कर रहे थे, रिवाल्वर से अपने प्राण लेने के लिए कार लेकर मैं पहाड़ पर गई थी। और यह भी बात बताई थी कि आपके दफ्तर के प्रारंभोत्सव में भी जब पंडितजी हवन करने लगे थे तब भी मेरे मन में प्रश्न उठा था कि वहाँ मेरा क्या स्थान है? इसी प्रश्न के चक्कर में वहाँ से कन्नमवाड़ी बाँध पर गई थी; उस विशाल जल-राशि में हमेशा के लिए समा जाने के लिए। एक रात आपने मुझे रिवाल्वर के साथ पहाड़ पर देखा भी है। इतना सब कुछ होते हुए भी आपने केवल सांत्वना की ही बातें कहीं। लेकिन क्या कभी आपके मुँह से, आपके मन में यह बात आयी है कि अमृता तुम्हारा स्थान यहाँ है, उस रंगनाथ को छोड़ दो, आज ही चलो, पंडित को बुलाकर किसी मंदिर में तुमसे ब्याह करूँगा? उसके बाद भी पहाड़ से निकलकर घर जो गए तो आधी रात में ही आए। 'रिवाल्वर छीनकर ले जाने के लिए आया हूँ, घर की रखवाली के लिए पुलिस स्टेशन में नाम-दर्ज किसी गोरखा को तैनात कर लो' जैसी लीपापोती की धूर्त बातें तुमने कहीं। चौदह घण्टों के अंतराल में आपने यह हल ढूंढ निकाला था। मतलब यह कि उस बंबई वाली के साथ जैसा संबंध था वैसा ही संबंध आपको चाहिए। आपने तय किया है कि कोई अधिक जिम्मेदारी, नाता, ममता, कर्तव्य आदि कुछ नहीं चाहिए। परोक्ष रूप से आपने इसका इशारा भी किया है। तब मुझे स्पष्ट पता चला कि आप एक शांत स्वभाव के, निरे हिसाबी-किताबी, हार्दिकता से शून्य और सुख की तलाश करने वाले आदमी हैं। आपकी तरह हर बात का शांतिपूर्वक नाप-तोलकर निर्वाह कर पाना मुझसे संभव नहीं। मैंने कहा कि मुझे स्वाभाविक क्रोध आया। हाथ जूठा था। जाकर उसे धोने के बाद पुन: लौटकर मारने का सब्र या हिसाब-किताब मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाता। अपने किए की अब माफ़ी माँगती हूँ। कृपा करके माफ़ कीजिए।"

सोमशेखर चौंक गया। अमृता के मन की इस आकांक्षा का संकेत भी उसे नहीं मिल पाया था। स्मरण हो आया कि अपने मन में ब्याह का विचार कभी आया ही नहीं। यही बात वह खुलकर कहने लगा, "वास्तव में ब्याह की बात मुझे सूझी ही नहीं। अगर सूझी होती···" उसकी बात काटकर अमृता बोली, "मिस्टर सोमशेखर, रहने दीजिए अब उस बात को। मैं कोई ऐसी कंगाल नहीं हूँ कि उस प्रस्ताव को मान लूँ जो आपके दिल की गहराई से अपने-आप फव्वारा बनकर फूट न पड़ा हो। अब अगर आप खुद मेरे पाँव पकड़कर गिड़गिडाओगे भी तो मैं आपसे ब्याह नहीं करूँगी। आपको केवल मेरी देह चाहिए। दमड़ी भर का खर्च नहीं, खुद मिलनेवाली पढ़ी-लिखी सुन्दर औरत का फोकट का भोग। आपकी सहेली, यानी कि वास्तविक अर्थ में रंडी बनकर रहना मुझे स्वीकार नहीं। मेरा भी आत्मसम्मान है।" इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई। फिर बोली, "अगर मैं यहाँ रहूँ तो आपको कपड़े पहनने में दिक्कत होगी, मैं जानती हूँ। बाहर चलती हूँ। तैयार हो जाइए। आपका सूटकेस कार की डिक्की मे है। इसलिए ऑटो-स्टैंड तक पहुँचाकर आऊँगी। मुझे अकेले में रहने को मन चाह रहा है। आपको अभी पाँच मिनट के अंदर इस घर से निकल जाना होगा। अगर शरम-हया कुछ है तो जबान नहीं हिलाओगे।" अपना वैनिटी बैग कार और घर की चाभियाँ लेकर वह कमरे से बाहर चली गयी। सोमशेखर दो पल सन्न पड़ा रहा। कुछ बोलने की, ऊपर उठने की क्रिया-शक्ति सूख गई थी। लेकिन, बाहर कार स्टार्ट किए जाने की आवाज़ सुनकर तुरंत उठा। फटाफट कपड़े पहनकर दो बार बालों में कंघी फेर ली, पाँवों में जूते पहनकर बाहर निकल पड़ा। इतने मे अमृता कार को गेट के बाहर ले आई थी। उसी समय सामने वाली बड़ी सड़क पर एक खाली ऑटो आ रहा था। उस रास्ते पर ऑटो का मिलना ही मुश्किल था। उसे देखकर अमृता ने ही हाथ के इशारे से उसे रोका। सोमशेखर इशारा समझ गया। अमृता ने डिक्की का ताला खोल दिया। सोमशेखर अपना सूटकेस उठाकर ऑटो मे जा बैठा। ऑटो वाले ने इंजन बंद नही किया था, मानो वह जल्दी में था। सोमशेखर के बैठते ही, 'किधर, कहाँ' कुछ पूछे बिना सीधा शहर की ओर भगाने लगा। न सोमशेखर ने मुड़कर अमृता की ओर देखा और न अमृता ने ही उसकी ओर देखा।

सोमशेखर मन-ही-मन सोचता रहा कि अमृता की बातों का अंदरूनी अर्थ अपनी समझ में क्यों नहीं आया? अगर कोई अर्थ समझ में न आता हो तो इसका मतलब हुआ कि उसे समझने वाली पार्श्व-भूमि के अंश मन और बुद्धि में नहीं हैं। अपने मन की ऐसी कौन-सी भीतरी प्रवृत्तियाँ हैं जो अमृता के इशारे को समझने में बाधक बनती हैं? वह आत्मानुशीलन में लग गया। चार-पाँच दिनों

के चिंतन के बाद कुछ बातें स्पष्ट हो गई। मैं उससे वास्तव में प्यार करता हूँ। यह जानते हुए भी प्यार करता हूँ कि उससे एक समान शांति, समाधान, सुख मिलते नहीं। प्यार का गुण केवल पाना ही नहीं; पाने से बढ़कर देना होना है। उसकी खुशी के लिए मै कुछ भी कर सकता हूँ। लेकिन ब्याह ? मन मे यहाँ तक स्पष्ट हुआ कि चाहे तो ब्याह भी कर लूँगा। ब्याह के बारे मे कभी अपने को कोई खास बात दिखाई नही दी थी। जब अपनी पत्नी थी तब वह मेरी रुचि के अनुसार खाना पकाती थी। मेरे कपड़े धोकर इस्त्री करती थी। किसी भी मामले में तंग न करते हुए, 'आप क्यों मुझ पर पर्याप्त ध्यान नही देते' इस प्रकार की कोई शिकायत नहीं करती थी। मात्र एक पत्नी होकर रहती थी। काफी खूबसूरत भी थी। उसकी मौत पर मुझे दु:ख हुआ था। लेकिन दूसरी पत्नी को लाने की तीव्र आवश्यकता महसूस ही नहीं हुई। इस भावनात्मक कारण से नहीं कि पहली पत्नी के प्यार को भुला नहीं पाया था और उसकी जगह किसी दूसरी को लाना असंभव था। एक वैवाहिक जीवन था, जो खत्म हो गया। पुन: उसकी अनिवार्यता महसूस नहीं हुई। कुछ मित्रों ने ब्याह का अनुरोध किया। मैंने सुनकर भी अन-सुनी कर दी। बस, यों ही चल रहा है। घर मे एक रसोइया रखने की आव-श्यकता जान पड़ रही है, और कुछ नहीं। अगर ब्याह का इरादा होता तो निश्चित रूप से इसी से करने को मन चाहता। जब इरादा ही न हो तब ? मन में यह बात साफ हुई। एक दिन पूरी तरह इसी बात को सच मानता रहा। लेकिन बाद में अहसास होने लगा कि यह बात पूरी तरह सच नहीं है। एक और बात समझ में आई कि मैंने किसी औरत से ऐसा प्यार किया ही नहीं जिसके बिना जिया न जा सकता हो। लेकिन अमृता का आकर्षण किसी और ढंग का है। जूठे हाथ से मारा है, नफ़रत की बातें तो जब चाहे तब करती ही रहती है। सभ मुझे ग़लती करने वाले स्कूली बच्चे के स्तर पर उतार देती है। अगर कोई और व्यक्ति ऐसा करता तो यों मुँह फेर लेता और जीवन-भर कभी उसकी सूरत न देखता। इतना सब कुछ सहकर भी क्यों मन बार-बार उसकी ओर खिंचा जाता है ? क्या इसी को प्यार कहते है ? आत्मगौरव को पीस डालने की दुर्बलता ! वह इसका विश्लेषण करके देखने की चेष्टा करता है; लेकिन समझ नहीं पाता। टेलेक्स द्वारा पैसा मँगवाकर कर्जा चुकाने की बात से उसके मन को दु:ख पहुँचा है। लेकिन, उसके मन को दु:खी करने के इरादे से मैंने हड़बड़ा कर कर्जा नही चुकाया। जब तक वह कर्ज रहता तब तक उसका क्रोध, तिरस्कार, तीखा बातें सहते रहना मेरे लिए संभव नहीं था। अब, जबकि पैसे की या किसी प्रकार का बंधन नहीं है, वह जो भी कहेगी उसे सह पाना संभव-सा लग रहा है। मन सोचने लगा कि क्या अभिमान को बचाए रखना प्यार की अनिवार्यता है ? फिर यह भी अहसास होने लगा कि शायद अपना प्यार सच्चा है ही नहीं, यह केवल दो अहंकारों की

आकर्षण-अपकर्षण की प्रक्रिया मात्र है ! यह आकर्षण शायद बहुत दिनों तक टिककर रह भी न सके, हमारे मिलन के किसी भी सुखद क्षण में वह तानेबाजी और तिरस्कार पर उतर आएगी और मुझे दोषी ठहराकर यहाँ तक कह देगी कि अगर मान-मर्यादा कुछ है तो यहाँ एक पल भी न रहो।—ये विचार भी मन में कभी-कभी आने लगते है। उसके साथ ही यह उपेक्षा भाव भी जागता है कि मान-मर्यादा की बाजी लगाकर इसके पीछे चापलूसी करते फिरने की क्या आवश्यकता है ?

बंबई से लौटकर उसके घर से ऑटो में अपना सूटकेस लेकर घर आने के आठवें दिन जब दफ्तर का काम खत्म करके रात के दस बजे खाना खाकर घर पहुँचा तो डाक का एक लिफ़ाफ़ा पड़ा पाया। पते की लिखावट से ही पहचान गया कि अमृता का है। लिफ़ाफे के ऊपर लाल अक्षरों में 'व्यक्तिगत' लिखकर उसे रेखांकित भी किया था। लिफ़ाफ़ा देखकर ही वह उत्तेजित हो उठा। इन आठ दिनों में अमृता के साथ किसी प्रकार का संपर्क नहीं था। उसने भी फोन नही किया था। मन कहता था कि इस संबंध के लगभग टूट जाने की स्पष्ट सूचना है, फिर भी मन कहता कि ग़लती उसने की है, वह खुद क्यों एक बार फोन नहीं कर सकती ? कपड़े बदले बिना उसी तरह बिस्तर पर बैठकर लिफ़ाफा खोला। लिफाफ़े में दो कागज़ थे। दोनों पर उसका नाम, पता, फोन नंबर छपा लैटर-हैड था। पहला पत्र उतावली में पढ़ लिया। किसी प्रकार के संबोधन के बिना पत्र शुरू हुआ था। कल की तारीख मात्र दर्ज की गई थी।

"आपको पत्र लिखने लायक कुछ बचा नहीं है। फिर भी अपना कर्त्तव्य मानकर यह लिख रही हूँ। इसके साथ वाली चिट्ठी पढ़ने के बाद आप खुद जान जाएँगे कि वह कैसा कर्तव्य है। बेकार की बातें करने की बजाय सीधे विषय पर आती हूँ। अपने संबंधों के बारे में मैंने बहुत सोच-विचार किया है। हमारा यह संबंध बढ़ने से पहले भी मुझे कभी-कभी शून्य-भाव व्याप लेता था। मरने की उत्कट चाह बेचैन कर देती थी। उस भावना के बीज तो आप हर्गिज नहीं हैं। आपसे संबंध बढ़ने के प्रारंभिक दिनों में वह काफ़ी हद तक कम हुआ था। लेकिन जैसे ही संबंध गहरा होता गया, शून्य-भाव अधिक तेज, अधिक क्रूर बनकर मुझ पर आक्रमण करने लगा। अब तो मुझमें उसके अतिरिक्त कोई और भाव है ही नहीं। स्नेह, प्यार, सांत्वना, उत्साह, उल्लास, मादकता जैसा अन्य कोई भाव मुझमें नहीं है। उनका स्राव करने वाली शक्ति मुझमें पूरी तरह जलकर राख हो गई है। आपको दोषी ठहराने के लिए यह पत्र नहीं लिख रही हूँ। मैं आपको इसका जिम्मेदार ठहराती भी नहीं। लेकिन यह बात सच है कि आपके संबंध के कारण मुझ में शून्य भाव, मरने की अभिलाषा दुर्दमनीय होती जा

रही है। इसलिए इस संबंध को काट लेना आवश्यक है।

" मैंने कई बार संदर्भों को कड़वा बनाया है। मैंने जो-जो हरकतें की हैं, जो-जो बातें की हैं, उसका पूरा ब्यौरा, हर शब्द मुझे याद है। मैं उस भुलक्कड़ अवस्था में कभी नहीं रहती कि मुझे बात याद न रहे, प्रज्ञाहीन बनी रहूँ। मेरी गलतियों को आप समय-गति के अनुसार भुला भी सकेंगे; लेकिन, उसका एक अंश भी मेरे स्मृति-पटल से धूमिल नहीं होगा। इसी तरह आपकी खामोशी और सलूक भी मुझे स्मरण रहेगा। उस दिन मैंने कहा था, 'आपका सूटकेस कार की डिक्की में है। इसलिए ऑटो-स्टैंड तक पहुँचाकर आऊँगी। मुझे अकेले में रहने को मन चाह रहा है। आपको अभी पाँच मिनट के अंदर इस घर से निकल जाना होगा।' फिर बाहर जाकर मैंने कार स्टार्ट की थी, सच है। आप उठकर हड़बड़ी में कपड़े पहनकर बाहर निकले और संयोग से मिले ऑटो में चढ़कर चले गए, यह बात भी उतनी ही सच है। 'तुम जो चाहे कह लो, तुम्हारी पागलों की-सी बक... सुनकर मैं जाऊँगा नहीं। यह घर मेरा है। बाहर निकालने का अधिकार तुम्हें नहीं है'—यों न कहकर क्यों आप चुपचाप नहीं रुक गए?

" मर जाने की ऐसी कोई जिद भी नहीं है। लेकिन जब शून्य भाव का दबाव बढ़ जाता है तब आत्महत्या की भावना पर नियंत्रण करने की शक्ति मुझमें नहीं रह जाती। कब ट्रिगर दबा लूँगी, इसका मुझे पता नहीं। शायद उस भगवान को भी पता नहीं होगा। ट्रिगर दबाने से पहले पुलिस को संबोधित एक मृत्यु-पत्र लिखकर रखना कभी नहीं भूलती। लेकिन, बिना लिखे भी मर सकती हूँ और अगर लिखकर भी रख दूँ तो हो सकता है कि वह चिट्ठी पुलिस के हाथ न लगे। उनके हाथ लगने पर भी दूसरों को तंग करने के उद्देश्य से उसे नष्ट कर सकते हैं। आपका मेरे यहाँ आते रहना, आपके दफ्तर का भीतरी अलंकरण मेरी खुद की निगरानी में किया जाना, बहुत सारे लोगों को मालूम है। स्वाभाविक रूप से पुलिस वाले पहले आप पर शक करेंगे। इसलिए इस पत्र के साथ जो चिट्ठी नत्थी की गई है। उसे बड़ी सावधानी के साथ बचाकर रखिए। कभी काम आएगी।"

बस, इतना ही। इस पत्र पर हस्ताक्षर आदि कुछ नहीं था। सोमशेखर ने पन्ना पलटकर दूसरा कागज देखा। वह संक्षेप में स्वयं को [illegible] करके उसने लिखी थी। अपना नाम भी लिखा था। ऊपर के बायें कोने में डा० सी० आर० अमृता, एम० ए० पी-एच० डी० छपा था। दायें कोने में उसके घर का पता, फोन नंबर, नीचे, खुद की लिखावट में तारीख लिखकर 'श्री सोमशेखर जी को—विश्वासपूर्वक नमस्कार' संबोधन किया था। उसके बाद :

"मैं जानती हूँ कि परसों जब आप मेरे घर आए थे उस समय आपने जो हार्दिक बातें कहीं, उसके लिए अगर मैं कृतज्ञता व्यक्त करूँ तो वह औपचारिकता होगी। लेकिन, कुछ लिखे बिना, स्मरण किए बिना रहने को मेरा मन मानता नहीं। इन बातों को रू-ब-रू कहने में संकोच के कारण शायद मेरी वाणी ही बंद हो जाए, फोन पर भी कहना चाहूँ तो वाक्यों का गठन ठीक ढंग से न हो पाए; इसलिए चिट्ठी लिख रही हूँ। मुझे कभी-कभी शून्य-भाव व्याप लेता है और उस समय आत्महत्या करने का दुर्दमनीय दबाव बढ़ जाता है—यह बात मैंने आपके सिवा किसी और को नहीं बतायी। यह बात बताने लायक है भी नहीं। आपके चाहे कितने ही आत्मीय मित्र क्यों न हों, अपने किसी भी मित्र से यह बात नहीं कहेंगे इसका मुझे पूरा विश्वास है। (जानती हूँ इस बात के लिखने की भी आवश्यकता नहीं है, फिर भी लिखा है, माफ़ कीजिए।) बड़े सब्र के साथ मेरी राम-कहानी सुन-कर आपने मुझे दिलासा दिया था। मुझसे अनुरोध करके भगवान की कसम दिलवायी कि मैं फिर कभी आत्महत्या की चेष्टा नहीं करूँगी। मेरे पास जो रिवाल्वर है उसे पुलिस को सूचना देकर बेच डालने की सलाह भी आपने दी थी और उस रिवाल्वर को छीनकर ले जाने की धमकी भी। घर की रखवाली के लिए पुलिस में नाम-दर्ज गुरखा को रखकर रिवाल्वर को लौटाने की आपके आग्रहपूर्वक सूचना पर मैं भी विचार कर रही हूँ। लेकिन ऐसा करने से पहले एक बात ध्यान रखनी होगी। प्राण देने वाले के लिए रिवाल्वर की अनिवार्यता नहीं। एक टुकड़ा रस्सी, थोड़ा-सा मिट्टी का तेल, एक पुड़िया जंतुनाशक, एक पैकेट नींद की गोलियाँ, इसी प्रकार के कितने साधन नहीं हैं? फिर भी आपकी हमदर्दी के पीछे जो भावना है उसे मैं समझ गई हूँ।

"उस दिन जब आप आए थे तब इसी बात के चक्कर में मैं एक असल बात ही भूल गई थी। अब तीन सप्ताह पहले ही मुझे बैंक से सूचना मिली थी कि आपने मेरा पूरा पैसा मेरे खाते में जमा करवा दिया है। उसी समय मैंने फोन करके पूछने का प्रयत्न किया था इतनी जल्दी भी क्या थी! आपके सहायक श्री नीलकण्ठप्पा ने बताया कि आप शहर से बाहर दो-सप्ताह के लिए बंबई गए हैं। अब पुनः हार्दिक रूप से कह रही हूँ; मेरे बैंक का कर्ज चुकाने की ऐसी कोई जल्दी नहीं थी।

"सादर प्रणाम के साथ

भवदीया,

सी० आर० अमृता"

बड़ी सहजता के साथ इस तरह हस्ताक्षर भी किये थे कि कोई भी न्यायाधीश

मान जाए। इस चिट्ठी की शैली, अंदाज़ और सहजता का भाव देखकर वह झूम उठा। कर्जा अदा करने का उल्लेख बड़ी चतुराई से किया था। कागज़ों को मोड़-कर पुन: उसी लिफाफ़े में रख दिया। दुबारा पढ़ने की सुविधा के इरादे से उसे बिस्तर पर ही छोड़कर कपड़े बदलने के लिए खड़ा हुआ।

दुबारा पढ़ा नहीं। लेटकर बेडस्विच दबाया और बत्ती बुझा दी। लगा कि यह सारी चिट्ठी अपने को कोंचने के लिए चिढ़ाने के लिए लिखी है। मेरे मर जाने से तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा नहीं। तुम्हें सिर्फ यही डर है कि उससे कहीं तुम्हें पुलिस के चक्कर में न फँसना पड़े। यह चिट्ठी रख लो। तुम्हे अभय-दान दिया है।—चिट्ठी से यही अर्थ स्पष्ट लक्षित होता था। साथ वाला पत्र लगा कि बड़ी उदारता से गूँथा है। ग़लती अपनी होते हुए भी मुझ पर ग़लती का आरोप करके परिस्थिति का सारा भार मुझ पर थोप देना उसका स्वभाव है। 'अगर मान-मर्यादा है तो पाँच मिनट में यहाँ से मुँह काला करो' कह कर उस दिन खुद ने घर से भगा... और आज इस बात को यों मोड़ रही है कि 'यह घर मेरा है, यहाँ से निकालने का अधिकार तुम्हें नहीं है—कहकर मैं रुका क्यों नहीं ?' बड़ी चालाक है। साहित्य पढ़ा है न ! क्या साहित्य का मतलब बात को मोड़ना है ? या अर्थ को अपनी इच्छा के अनुसार मरोड़ना है ? उसने जो पढ़ा है, पढ़ा रही है, वह वास्तव में साहित्य का गला घोटना है, उसके साथ धोखा करना है। सोचने-विचारने पर इस नतीजे पर पहुँचा। कुछ ही देर में नींद आ गई।

लेकिन तीन बजे आँख खुली। बत्ती जलाकर हाथ की घड़ी देख तुरंत बत्ती बुझा दी। स्मरण हुआ कि सवेरे के साढ़े छह-सात तक अगर नहीं सोएगा तो दिन में काम का स्तर और चुस्ती कम हो जाएगी। उसकी धारणा थी कि काम के समय मुँह लटकाए रहना, जँभाई लेना, अँगड़ाई लेना संस्कारहीनता, दरिद्रता के लक्षण हैं। सोने की कोशिश में आँखें बंद कर लीं। योगशास्त्र में बताई गई चित्तवृत्ति-निरोध की अवस्था को पाने का प्रयास करने लगा। लेकिन जितना ही वह प्रयत्न करता गया समय उतने ही पाँव फैलाने लगा और चित्त में आलोड़न-विलोड़न चलता रहा। काफ़ी समय बाद पुन: स्विच दबाकर घड़ी देखी जो अभी सवा तीन का समय ही बता रही थी। उठकर लघुशंका के लिए गया। लेटकर पुन: बत्ती बुझा दी। अब वह क्या कर रही होगी ?—मन ने प्रश्न किया। लगा नहीं कि सो रही होगी। मेरे घर में भी अगर फोन होता तो तुरत पता लगाया जा सकता था कि सो रही है या नहीं। अथवा हाथ में रिवाल्वर लिये सोफ़े पर बैठी है। या चामुंडी पहाड़ के पूर्वी चढ़ाव पर कार रोककर मरने की कोशिश कर रही है। फोन तो नहीं है। स्कूटर चढ़कर जाकर आजमा लूँ ? उसके घर के सामने जाकर स्कूटर रुकने की आवाज़ से जब कुत्ते भौंकने लगेंगे तब वह खुद बाहर निकलकर दरवाजा खोलेगी। अगर खोला नहीं तो सीधा पहाड़ की ओर

जाऊँगा; चढ़ाई पर कार तो मिलेगी ही।

लेकिन उठकर, कपड़े पहनकर, नीचे उतरकर, स्कूटर निकालकर चलने की चेतना जमी नहीं। इसी उधेड़बुन में कुछ किए बिना चुपचाप लेटा रहा। बाथ-रूम जाकर आते समय मच्छरदानी में एक मच्छर घुस गया है। भिन्नाते हुए तंग कर रहा है। बत्ती जलाकर अगर उसे मारा नहीं तो सोने नहीं देगा। उसने टटोलकर स्विच दबाया। दो-एक पल भीतर ढूंढ़ने पर मच्छर दिखाई पड़ा। बड़ी सावधानी से बिना किसी आहट के दोनों हथेलियों का निशाना बनाकर फट के साथ मारा। मच्छर मर गया। बड़ी बहादुरी का काम किया, बड़ी बहादुरी का! उसने अपने-आप पर ताना कस लिया। बत्ती तो जल ही रही है; अब नींद आने की संभावना नहीं लगती। इसलिए तकिए के नीचे रखा उसका पत्र निकाल कर शुरू से दुबारा पढ़ा—'हमारा यह संबंध बढ़ने से पहले भी मुझे कभी-कभी शून्य-भाव व्याप लेता था। मरने की उत्कट इच्छा बेचैन कर देती थी। उस भावना के बीज तो आप हर्गिज नहीं है। आपसे संबंध बढ़ने के प्रारंभिक दिनों में वह काफी हद तक कम हुआ था। लेकिन जैसे ही संबंध गहरा होता गया, शून्य-भाव अधिक तेज, अधिक क्रूर बनकर आक्रमण करने लगा। अब तो मुझमे उसके अतिरिक्त कोई और भाव है ही नहीं। स्नेह, प्यार, सांत्वना, उत्साह, उल्लास, मादकता जैसा अन्य कोई भाव मुझमें नहीं है। उनको स्राव करने वाली शक्ति मुझमें पूरी तरह जलकर राख हो गई है। आपको दोषी ठहराने के लिए यह पत्र नहीं लिख रही हूँ। मैं आपको इसका जिम्मेदार भी नहीं ठहराती। लेकिन यह बात सच है कि आपके संबंध के कारण मुझमें शून्य-भाव, मरने की आकांक्षा दुर्दमनीय बनती जा रही है। इसलिए इस संबंध को काट लेना आवश्यक है...।'

डेढ़ साल पहले अपना जो संबंध बढ़ा था उसे मन ने स्मरण कर लिया। वास्तव में संबंध को एक-एक कदम आगे बढ़ाने का काम भी उसी ने किया था। ऐसी बात नहीं कि मैं चाहता नहीं था, लेकिन जहाँ तक याद है, उसी की प्रेरणा-शक्ति अधिक थी। जलती रोशनी में आँखें मच्छरदानी को ही घूर रही थीं। मच्छरदानी की धूमिल छाया सामने दीवार पर विचित्र अर्थों का संकेत कर रही थी। लगा कि यह सारी दुनिया ही ऐसे एक जाल की छाया है। स्पष्ट न होने पर भी कोई निगूढ़ अर्थ का स्फुरण हुआ। केवल स्फुरण मात्र। बहुत सिर पीटने पर भी कोई अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ। फिर प्रश्न उठा कि उसने क्यों पहल करके संबंध को प्रोत्साहित किया? मेरे संबंध के फलस्वरूप कुछ हद तक शून्य-भाव को जीत लिया होगा या जीतने का आभास हुआ होगा। इसलिए उसने पहल की थी। लेकिन जब अहसास हुआ कि उसके जीतने की शक्ति मुझमें नहीं है तब सम्भवतः निराश हो गई है। यह संबंध निरर्थक, निष्प्रयोजक लगा। इतनी बात समझ में

आयी कि इस संबंध के कारण ही अमृता का शून्य-भाव बढ़ने लगा है। आँखें मच्छरदानी की छाया को ही घूर रही थीं। अमृता के लिए मैं कौन हूं, क्या लगता हूँ? मेरी वह क्या है, क्या लगती है? यह प्रश्न सामने आया। प्रश्न का रूप बड़ा आकर्षक लगा। मच्छरदानी की छाया के साथ उसका कोई संबंध होने का भाव मन में आया। कुछ समय बाद विचार आया कि ऐसे संबंध की कल्पना दो गोल पत्थरों को जोड़कर भी की जा सकती है। इस विचार पर वह अपने-आपमें मुसकुराकर आगे पढ़ने लगा—'फिर बाहर जाकर मैंने कार स्टार्ट की थी; सच है। आप उठकर हड़बड़ी में कपड़े पहनकर बाहर निकले और संयोग से मिली ऑटो पर चढ़कर चले गए। यह बात भी उतनी ही सच है। तुम जो चाहे कह लो, तुम्हारी पागलों की-सी बकवास सुनकर मैं जाऊँगा नहीं। यह घर मेरा है। बाहर निकालने का अधिकार तुम्हें नहीं है—यह कहकर क्यों आप चुपचाप रुक नहीं गए?' सोमशेखर का मन यहाँ उलझ गया। वह केवल मेरी गलतियाँ ढूँढ़ रही है या सच कह रही है? मैंने ऐसा क्यों नहीं कहा? कहकर चुपचाप वहीं क्यों नहीं सो गया? वह सोचने लगा। समझ नहीं पाया। समझ नहीं पाया का मतलब समझाने की भूमिका वाले अंश, मन और बुद्धि में नहीं थे। फिर विचार आया कि अगर इसी तरह कपास को सुलझाने जाएँ तो किसी का भी कोई अर्थ लगाया जा सकता है! क्यों समझ पाया, इसका विवरण दिया जा सकता है। वह कोई माइने रखता है। लेकिन क्यों समझ नहीं पाया, इस अधूरे प्रश्न के लिए इसी अंदाज का जवाब देने की चेष्टा करने पर हाथ कुछ नहीं लगेगा, कपास को सुलझाकर आँधी में उड़ा देने के समान होगा। सोमशेखर को केवल जँभाई आ रही थी, नींद नहीं आई।

सवेरे साढ़े छह बजे झपकी आई और आधा घंटे बाद आँख खुल गई। बत्ती जलती ही रही थी। कागज पकड़ा हुआ हाथ सीने पर था। आँख खुलने के बाद दूसरी चिट्ठी पर नज़र दौड़ायी। उसकी शैली, अंदाज और सहज अभिव्यक्ति के साथ यह विचार आया कि अगर अचानक उसने आत्महत्या कर ली तो मुझे किसी प्रकार की दिक्कत न हो, इस सत्यनिष्ठ भावना से प्रेरित होकर ही लिखी होगी उसने यह चिट्ठी।

उस दिन सवेरे जब साढ़े नौ बजे दफ्तर पहुँचा तब कोई डाक्टर प्रतीक्षा कर रहे थे। लगभग चालीस वर्ष की अवस्था वाला वह व्यक्ति अमरीका में सर्जन था। उसकी पत्नी भी अमरीका में प्रसूति-विशेषज्ञ बनकर काम कर रही है। भारत लौटकर मैसूर में अपना एक निजी नर्सिंग होम शुरू करके यहीं टिकने का उनका विचार है। लक्ष्मीपुर में उनका अपना बहुत बड़ा पुराना घर है। उसे तुड़वाकर एक नर्सिंग-होम और उसके पिछवाड़े में घर बनवाना है। पति-पत्नी दोनों ने

मिलकर अपनी आवश्यकताओं के बारे में सोचकर दोनों का खाका तैयार किया है। वे चार सप्ताह की छुट्टी पर आए हैं। पत्नी नहीं आयीं। इस अंतराल में अगर सविस्तार प्लान बनाकर देंगे तो नगर-निगम की अनुमति लेकर वे अमरीका लौट जाना चाहते हैं। दो आपरेशन थिएटर, दो कमरे रोगियों की जाँच के लिए, दो प्रसूति कमरे, कुल तीस वार्ड, दो प्रतीक्षालय, गाड़ियाँ पार्क करने की जगह, रोगियो को लिटाकर ले जाने के लिए लिफ्ट, रिसेप्शन का कमरा—इस तरह सुसज्जित होना चाहिए। विभिन्न कमरों के नक्शे व नमूने बताने के लिए अमरीका से ढेर सारी तसवीरें ले आए हैं। इमारत के सामने और पार्श्व के लिए भी कुछ नमूने के चित्र लाए हैं। बिजली की व्यवस्था के बारे में भी उनको काफी जानकारी है और इस मामले में भी अमरीका जैसी सुविधा चाहते है। उन्हें वास्तुकार की तकनीकी भाषा का पूरा ज्ञान है। वे बोले, "हमने जो खाका तैयार किया है वह अनुमान से किया है। तकनीकी ज्ञान के बिना किया है। इमारत के लिए जो सामग्री यहाँ मिल सकती है, उसके गुण-दोष का ज्ञान हमें नही है। मेरे पास एक कार है। पहले मौके का मुआइना कर लीजिए, चलिए। मुझे कोई और काम नही है। चाहें तो आपके दफ्तर में ही बाहर सोफे पर बैठकर प्रतीक्षा करता रहूँगा या अपने घर का नंबर दे दूंगा। आप जब कहेंगे, तब आ जाऊँगा। आठ दिन मे अगर रफ़ प्लान बनाकर देंगे तो अनुमति के लिए नगर-निगम में आवेदन-पत्र दर्ज करा देंगे। पूरा अंतिम प्लान मेरे जाने से पहले बनाकर भीतर की बारीकियाँ सुधारते जाएँगे।" उनके साथ जाकर सोमशेखर ने जगह देख ली। दो-सौ फुट लंबी और दो-सौ फुट चौड़ी जगह। कंपाउंड के पास नीम, आम आदि के बड़े-बड़े पेड़। जब सोमशेखर ने सलाह दी कि उन पेड़ो को बचाकर ही इमारत बनानी होगी तब डा० राममूर्ति को बड़ा संतोष हुआ। वे बोले, "मेरे मन मे भी यही बात है।"

दफ्तर लौटकर सोमशेखर के वातानुकूलित कमरे में बैठने के बाद वे बोले, "मैं सीधा आपके यहाँ कैसे आया, बताता हूँ। आपने जलजा का घर बनवाकर दिया है। वह मेरी दीदी लगती है। यानी कि मेरे ताऊ की बेटी। उसकी माँ के भाई की यानी कि मामा की बेटी ही मेरी बीवी है। उसने कहा कि सारी जिम्मेदारी सोमशेखर पर छोड़ दो। बड़े नेक आदमी है। तुम्हारी एक दमड़ी भी फिजूल खर्च नहीं होगी। उसी के घर में मैं ठहरा हूँ। वह खुद मेरे साथ आने वाली थी। लेकिन, कालेज जाना था। बारह के लगभग शायद आ भी जाए। किसी ठेकेदार को क्या आप तय कर देंगे? उस पर नियंत्रण रखना, लेन-देन आदि सारी जिम्मेदारी आप पर रहेगी। कुल लागत पर आपका क्या पर्सेंटेज होगा, बताइए।"

"जलजा मैडम ने बताया होगा न; चार।"

"यह ज्यादा जिम्मेदारी का काम है। एकदम ऊँचे दर्जे का होना चाहिए। हिसाब-किताब की जिम्मेदारी भी आप ही की होगी। आपके निर्देश के अनुसार ठेकेदार के नाम चेक काटने का हक़ जलजा को दे जाऊँगा। एक घर बनवाकर उसने अनुभव पा लिया है न! फिर भी आप जैसा कहेंगे वैसा वह करेगी। आपका पर्सेंटेज मैं खुद छह तय करता हूँ। क्योंकि जिस स्तर के काम की मैं अपेक्षा करता हूँ वह ऊँचे दरजे का है। फिर जब यह काम चलता रहेगा तब मैं तीन अवस्थानों में खुद आकर देख लूँगा। बीच-बीच में सविस्तार पत्र लिखता रहूँगा। आपको उसी विस्तार के साथ जवाब देना होगा। मैं कभी-कभी आपको फोन करता रहूँगा। आप भी जब कभी आवश्यकता महसूस करें 'कलेक्ट-काल' करके मुझे फोन कीजिए।"

इस काम ने तुरंत सोमशेखर की कल्पना को कैद कर लिया था। डा० राममूर्ति सोच विचार करके जो खाका बनाकर लाये थे, वह भी काफी सुंदर कल्पनाओं से प्रेरित था। तसवीरें नयी-नयी कल्पनाओं का निर्देश करती थीं। पैसा बचाने के लिए काम की गुणवत्ता बिगाड़ लेने की दृष्टि उनकी नहीं थी। इसी बहाने गुणवत्ता और अलंकरण के नाम पर वह कभी किसी से फिजूल खर्च करवाना भी नहीं। उसने सोचा कि यह काम अपने को आत्म-तृप्ति और कीर्ति दोनों देनेवाला है। अभी काम इतना बढ़ गया है कि अकेले नीलकण्ठप्पा से सँभलता नहीं, किसी एक और को नियुक्त कर लेना है। अगर यह प्रोजेक्ट शुरू करना हो तो जल्दी ही नियुक्त कर लेना होगा। मन ने तुरंत निश्चय किया कि इसके साथ एक एकाउंटेंट को भी नियुक्त कर लेना होगा।

इस काम को हाथ में लिये तीन सप्ताह हुए थे। जब तक डा० राममूर्ति यहाँ रहेंगे तब तक हर घड़ी कीमती होगी, उसे बेकार गँवाया नहीं जा सकता था। अब जो अन्य कामों की निगरानी चल रही है, उनके साथ ही डटकर इस काम को भी करना होगा। राममूर्ति को सवेरे और शाम के आठ बजे दो बार दफ्तर आने के लिए कहा था। जब वे अमरीका चले जाएँगे तब अर्थव्यवस्था की जिम्मेदारी ढोकर चेकों पर हस्ताक्षर करने वाली जलजा होगी। इसलिए सोमशेखर ने सूचना दे रखी थी कि जलजा को हर बात का विवरण देना आवश्यक है ताकि वह राममूर्ति के साथ रहकर उनकी चर्चा की सारी बातों को समझ ले। इन्हीं व्यस्तताओं के कारण सोमशेखर का तथा उसके दो सहायकों का दफ्तर बंद करके रात दस बजे से पहले निकल पाना संभव नहीं हो पाता था और सवेरे नौ बजे से ही काम शुरू करना पड़ता था। उन्होंने इतवार की छुट्टी भी छोड़ दी थी। अभी एक सप्ताह तक इसी तरह काम करके सारी कल्पना और हिसाब-किताब के मामले में सक्रिय भाग लेकर जब राममूर्ति अमरीका चले जाएँगे तब काम अपने सामान्य ढर्रे पर आ जाएगा।

ऐसी व्यस्तता में दोपहर के एक बजे अमृता का फोन आया। राममूर्ति शाम के आठ बजे जलजा के साथ आने की सूचना देकर अभी-अभी घर चले गए थे। नीलकण्ठप्पा और नया सहायक नंजुंडेगौड दोनों बाहर वाले कमरे में काम कर रहे थे। इसलिए चेंबर में दूसरा कोई नहीं था। "आप चौंक गए होंगे—यह आवाज़ सुनकर। पहचान सकते हैं ?" अमृता ने पूछा।

सोमशेखर को एक साथ आश्चर्य, उद्वेग, दिग्भ्रम हुआ। "क्या मतलब ?" वह बोला। रह-रहकर उसे अमृता की याद सताया करती थी। लेकिन काम के भारी दबाव में, और वह भी ऐसी हालत में जबकि डा० राममूर्ति हर बात का पूरा ब्यौरा जानने के लिए सामने बैठे हों, तब काम के सिवा मन का इधर-उधर भटक पाना संभव ही नहीं था। चिट्ठी लिखने के बाद अमृता ने फिर कभी उससे संपर्क नहीं किया था। उसने जो वाक्य लिखा था, इस संबंध को काट लेना अत्यावश्यक है, वह मन में कभी-कभी मँडराता रहता था। उसने लिखा था कि जवाब के रूप में एक पंक्ति या एक फोन-काल—इस बात की याद आते ही सोमशेखर को कोई जवाब सूझा नहीं। पता नहीं उसके मन में अब हमारा संबंध कैसा है ? बचा भी है या नहीं ? अगर बचा नहीं होता तो अब फोन क्यों करती ? इस उलझन में पड़कर वह यों अवाक् रह गया कि कहने के लिए कोई बात ही नहीं सूझी। दो-एक पल के लिए फोन के तार ने खामोशी का सवहन किया।

"आपको बातें करना पसंद नहीं है तो फोन रख दूंगी।"—अमृता उस ओर से बोली।

"छि: छि:, ऐसा मत कीजिए।" वह बोला।

"यह क्या 'मत कीजिए' वाला आदरसूचक ? बात करने की चाह नहीं हो तो आप खुद फोन रख दीजिए। आदरसूचक शब्दों का प्रयोग करके मन की दूरी जताने के बदले फोन रख देना ठीक है।" तुरंत मुँहतोड़ जवाब दिया।

"काम के बीच···" सोमशेखर ने बात काट ली।

"क्या आपके सामने कोई है ?" अब अमृता की आवाज़ की सख्ती कम हुई थी।

"नहीं।"

"तब, क्या कृपा करके घर आ सकेंगे ? अभी। खाना खाते हुए बातें की जा सकेंगी।"

"अभी ?"

"हाँ, अभी।"

"बहुत, सचमुच बहुत बिजी हूँ। एक बहुत बड़ा काम है। तीन बजे ठेकेदार को आने के लिए कहा है। रात के दस बजे छुट्टी मिल सकेगी। अभी एक सप्ताह तक इसी तरह।"

"मैं जानती हूँ। अमरीका से आए हुए डा० राममूर्ति के लौटने से पहले सारे डिटेल्स पूरे करने हैं। एक सप्ताह तक रुकने का अगर सब्र होता तो मैं फोन करके डिस्टर्ब करती ? सॉरी। अब आपकी मर्जी।"

"एकवचन, बहुवचन एक समान होने चाहिए।" तुरंत सोमशेखर ने कहा।

लेकिन अमृता ने कोई जवाब नहीं दिया। फोन नीचे रख दिया। सोमशेखर समझ गया कि एकवचन, बहुवचन एक समान होने चाहिए वाली अपनी बात सुनने के बाद ही अमृता ने फोन नीचे रख दिया था। अब चोंगा अपने हाथ में पकड़े रखने में कोई अर्थ नहीं, लेकिन इस बात से बेखबर वह दो पल उसे हाथ में लिये ही बैठा रहा। अमृता का स्वभाव ही ऐसा है। तुरत भड़क उठती है, तिरस्कार के अंदाज में बोलती है। बातों के अंदाज में तथा समवेत संदेश में मुझे दोषी ठहराती है। चोंगा नीचे रखकर उसने घड़ी देख ली। एक बजकर बारह मिनट हुए थे। मन में आया कि क्यों न हो आए। भीतर के वातानुकूलन यंत्र और बत्ती के स्विच बुझाकर बाहर आया, "नीलकण्ठप्पा, तीन बजे जब ठेकेदार नागराज आएँगे तब हमारे द्वारा जाँचे गए उनके रेट्स दुबारा एक बार देखने के लिए कहकर उन्हें बिठा लीजिए। मेरे लौटने में दस-पंद्रह मिनट की देरी भी हो सकती है।" जीना उतरकर स्कूटर लेकर निकल पड़ा। याद आया कि बीते बाईस दिनों में लंच के लिए यह पहली बार दफ्तर से बाहर निकला है। अहसास हुआ कि हार्डिंज चौक, मृगालय वाला मोड़ और अगली पहाड़ की सीधी सड़क पर गए मानो कितने ही युग बीतकर प्रायः रास्ता ही भूल गया हो। हिसाब लगाकर देखा तो पता चला कि अपने को ऑटो में चढ़कर उसके घर से निकले आज पूरे तीस दिन हुए हैं। अमृता का कितना ही तिरस्कार करने भी, उससे दूर होने का लाख निर्णय लेने पर भी जब उसका एक फोन आ जाता है तब वह सारा काम छोड़कर उसकी ओर दौड़ पड़ता है। तभी मृगालय का मोड़ आ गया। अपने-आप रफ्तार कम करके बाईं ओर आकर, आगे देखते हुए गाड़ी आगे बढ़ायी। जैसे ही चामुंडी पहाड़ नज़र आया एक माह की अवधि बीत जाना उसे सहसा एक युग-सा लगा।

अमृता गेट के पास नहीं खड़ी थी। घर के मोहार का बड़ा दरवाज़ा भी नहीं खुला था। कॉलिंग-बेल दबाने के एक मिनट बाद उसने दरवाज़ा खोला। आँखें सोमशेखर को टटोल रही थीं। किन्तु इस भाव को छिपाने की चेष्टा चेहरे पर साफ़ झलक रही थी। भीतर आकर सोमशेखर उसका चेहरा निहारता रहा। कोने की ओर मुड़कर पंप शूज उतारे। अमृता ने दरवाजा बंद कर दिया। बरांडे से चलकर सोमशेखर लाउंज में सोफ़े पर जा बैठा। एक पल बाद अमृता भी वहाँ आकर सामने वाले सोफे पर बैठ गई। सोमशेखर ने उसका चेहरा देखा।

अमृता ने सोमशेखर का चेहरा निहारने की चेष्टा करके दृष्टि फेर ली। दो पल बीत गए। किसी को कोई बात नहीं सूझी।

अमृता उठकर भीतर चली गई। सोमशेखर अपनी जगह बैठा रहा। पाँच मिनट बाद अमृता लौटकर लाउंज के दरवाजे में खड़ी होकर बोली, "एक बजकर पचास मिनट हुए है। तीन बजे अगर आपको वहाँ रहना है तो पौने तीन बजे निकलना पड़ेगा।" सोमशेखर कुछ बोला नहीं। "बहुत ही जरूरी हो तो अभी जा सकते हैं। जो नहीं चाहता उसको जबरदस्ती धूप में इतनी दूर बुलाने के लिए माफ़ी चाहती हूँ।" वह बोली।

'अगर एक सप्ताह तक रुकने का सब्र होता तो मैं फोन करके डिस्टर्ब न करती'—अमृता की बात याद आयी। शायद कोई जरूरी बात होगी, उसे जानना चाहा। लेकिन बातों की शुरुआत कैसे करे, इस उधेड़बुन में खामोश निगाहों से एक बार अमृता की ओर देखा। अमृता उसी पर नज़र गड़ाए खड़ी थी। एक पल बाद बोली, "तीन लाख का लाभ देने वाले नर्सिंग होम की इमारत, सारा मन उधर लगा हुआ है। आप जा सकते हैं।" वह मुड़कर अपने बेडरूम में चली गई।

सोमशेखर चौंक गया। इसने इन सारी बातों का पता कैसे लगाया होगा? जलजा ने बताया होगा। उसी की सिफारिश पर उनके घर का काम उसे मिला था। कालेज में उन्होंने जिक्र किया है। इसने पूछ-ताछ करके सारी जानकारी प्राप्त की है। इमारत की कुल लागत पचास लाख, अपनी फीस छह पर्सेंट, इस बात को भी जान गई है। दो मिनट बाद लगा कि अब अधिक तनाव ठीक नहीं। वह उठकर अमृता के कमरे में गया। दरवाज़ा बंद था, ठेलने पर खुल गया। वह बिस्तर पर लेटी थी। सोमशेखर ने उसकी बगल में लेटकर उसे जोर से अपनी बाँहों में कस लिया। उस आलिंगन से अरुचि के अंदाज में अमृता सूखे पेड़ के ठूंठ की तरह प्रतिक्रिया-हीन रही। वह अमृता के सारे बदन को अपने आगोश में कैद करके निकटता प्राप्त करके बोला, "बोलती क्यों नहीं, गूंगी?"

"दरवाजे में कदम रखते ही प्यार कहाँ भाग गया था?" अमृता ने चिढ़कर पूछा।

"मुझे बेल करने की प्रतीक्षा में क्यों खड़ा किया?" छूटते ही सोमशेखर ने पूछा।

"बड़े लाट साब के आने का पता कैसे चले, भला?" उसने भी उतनी ही तेजी से पूछा।

"जरा आँखों में आँखें डालकर कहो कि मैं जरूर आऊँगा, इसका पता तुम्हें नहीं था।" जबरदस्ती जब उसने अमृता के चेहरे को अपने दोनों हाथों से पकड़कर अपनी ओर घुमा लिया तब उसने होंठ चबाकर मुँह बंद कर लिया था।

"मेरी आँखों से आँखें मिलाकर सच बोलो।" जब सोमशेखर ने दुबारा आग्रह किया तब रुकी हुई हँसी बाढ़ की तरह फूट पड़ी और उसके चेहरे पर बौछारे उड़ा दिए। इसे देखकर अमृता के चेहरे पर हँसी खिल गई। लेकिन उसकी जड़ में गहरी पीड़ा, और विषाद का आभास सोमशेखर को हुआ।

सोमशेखर के आगे बढ़ने से पहले वह उठकर बैठी और बोली, "चलो, पहले खाना खा लें; पेट में चूहे दौड़ रहे हैं।" डायनिंग टेबुल के पास जाने पर देखा कि दो थालियाँ और दो गिलास सजकर तैयार हैं। "साहबजादे पंद्रह मिनट में आएँगे, तब तक भोजन की तैयारी करने की खटपट में मैं उलझ गई। और आप हैं कि इंतजार करते हुए 'स्कूटर आते ही गेट क्यों नहीं खोला' इस बात पर चिढ़ जाते हैं। खाना पकाने के लिए क्या किसी सौत का बंदोबस्त कर लूं?" कहते हुए वह सब्जी परोसने लगी। सोमशेखर खामोश रहा। "मौन सम्मति सूचकम्। आप चाहते हैं कि मेरी एक सौत आ जाए। मुझसे अच्छी; झगड़ालू नहीं, आज्ञा-कारी, [illegible] रहने वाली। केवल मक्लेशपुर और मैसूर का ही रास्ता नापने वाली नहीं। मद्रास, बंबई का भी अनुभव रखने वाली, एकदम चालाक। ठीक है न? सच बताओ।" कहते हुए सोमशेखर का मुँह ताकने लगी। अमृता की आवाज़ में छेड़छाड़ का अंदाज छलकने पर भी सोमशेखर ने देखा कि उसकी आँखों की चमक स्याह पड़ गई है।

अपनी कुर्सी को पास सरका लिया और अमृता के कंधे को अपनी बायीं बाँह में भरकर बच्चों को दुलारने के अंदाज में पूछा, "कह लेने की कोई बात मन के भीतर सालने लगी है? पहले उसे कह डालो। फिर खाना खाएँगे।" अमृता ने गर्दन उठाकर उसका चेहरा देखा। सोमशेखर ने अपने दाएँ हाथ से उसका सिर सहलाकर उसे अपनी ओर खींच लिया और गरमाई हुई भावना के साथ चूम लिया। अमृता स्पंदित नहीं हुई। उसी को निहारती रही। सूखकर कांति के प्रतिफलन की शक्ति खोयी हुई आँखें धीरे-धीरे भर आयीं। पानी छलकने की अव-स्था में जब दृष्टि धूमिल हुई तब झुककर अपना मुँह सोमशेखर के सीने में गड़ाकर बिलख-बिलखकर रोने लगी। सिर सहलाकर, पीठ पर हाथ फेरकर सांत्वना देने के सोमशेखर के सारे प्रयत्न बेकार गये। सारे बदन को यों झझोड़कर रोयी कि हड्डियाँ चटक जाएँ। "अमू, बताओ। जो भी बात हो बताओ। अब मैं आ गया हूँ, बताओ।" सोमशेखर की सांत्वना ने उसके आवेग को शांत नहीं किया। वह चुपचाप अमृता को बाँहों में भरकर बैठा रहा।

कुछ समय बाद सोमशेखर को अहसास हुआ कि अब अमृता सँभल गई है। सोमशेखर के सीने से अपना मुँह बाहर निकालकर वह बोली, "अब जल्दी खाना खा लें। अगर सुनाने बैठ जाऊँ तो बीच में ही खाना छोड़ना पड़ेगा। हाँ, क्विक, शुरू करो।" वह अपनी थाली में दाल-भात मिलाने लगी। जब से नर्सिंग होम

का काम शुरू हुआ है तब से भोजन और नाश्ता झटपट खत्म कर लेने की आदत पड़ गई थी। इसलिए सोमशेखर ने अमृता से पहले खाना खत्म कर दिया।

दोनो ने उठकर हाथ धोये और उसके बाद अमृता सोमशेखर को लाउंज में ले आयी। सोफे पर उसके साथ बैठते हुए बोली, "मेरे कहे बिना समझ लेने की क्षमता तुममें नहीं है । इसलिए कहे देती हूँ।" पुनः उसका दुःख उमड़ पड़ा। जब सोमशेखर उसे बाँहों में लेकर पीठ सहलाने लगा तब बोली, "मैने क्यो जबर-दस्ती खाना खाया, जानते हो ? मैं भूखी रह सकती हूँ। लेकिन, पेट के अंदर के भ्रूण को भूखा रखना पाप है, इसलिए।"

सोमशेखर के कानो से मानो खामोशी फूट पड़ी। एक नई उलझन मे फँसने का अहसास होकर मन टूट गया। अमृता ने गर्दन घुमाकर अनुसंधाता की निगाह से उसका मुँह देखा। धीरे से यों बोली मानो उसके दिल की बात को पहचान गई, "इसकी आशका शुरू हुए आज पच्चीस-छब्बीस दिन हो गए हैं। मैंने तुमको पत्र लिखा था, पहुँच गया न ? उसके लिखते समय यह स्पष्ट हो चुका था। मैं जान गयी थी कि तुम मुझसे ब्याह नहीं करोगे। यहाँ से चले जाने के लिए कहते ही तुम ऑटो पर चढ़कर चले गए न ! तुम पर आरोप लगाने की बात मैं नहीं कह रही हूँ। ब्याह करने का इरादा तुम्हारा नही है और मैं इधर गर्भवती हो गई हूँ। आगे क्या होगा ? रिवाल्वर दाग लेने का निश्चय करके मैंने यह पत्र लिखा था। अचानक अगर मैंने ऐसा कुछ कर लिया तो तुम पर कुछ आंच न आए, इस विचार से। उसे सुरक्षित रखा है न ? बताओ, रखा है न ?"

सोमशेखर समझ गया कि इस प्रश्न द्वारा वह अपने को नीचे उतार रही है। अपना व्यक्तित्व, नैतिक शक्ति को पाताल में धकेल रही है। "सुरक्षित नही लेकिन घर में कहीं पड़ा होगा—बाकी रद्दी के साथ अगर नौकरानी ने झाड़कर कूड़े में नहीं फेंक दिया हो तो।" वह बोला।

"मेरी चिट्ठी की यह कीमत ?" तपाक से अमृता ने उल्टा प्रश्न किया।

"दुधारी छुरी की तरह बातें किए बिना तुम्हे चैन नही पड़ता। खैर, आगे क्या हुआ, बताओ। मुझे उसी समय क्यों नहीं बताया ? फोन क्यो नहीं किया ?"

"उस चिट्ठी के मिलते ही तुमने क्यों फोन नहीं किया ? दौड़कर आए क्यों नहीं ?" उसने प्रतिप्रश्न किया।

"वाद-विवाद करने बैठेंगे तो बात पूरी कहीं नहीं हो सकेगी। पहले बात क्या है, बताओ।"

"मेरी बात पूरी तरह सुन लो। मेरे बोलने में तुम पर आरोप भी लग सकता है। ऐसा इसलिए कहती हूँ कि उस समय मेरे मन में क्या-क्या भावनाएँ

उठीं उसे तुम्हारे सामने खोल लूं या नहीं ? अब जो मैं करने जा रही हूं वह एक वर्णन है। गाली-गलौज या आरोप-प्रत्यारोप नहीं । मेरे मन में कैसी-कैसी भावनाएँ आयीं, इसे तुम्हारे अलावा और किसके सामने कहूं ? प्रसन्न भावनाओं को तुमसे कह लूं और क्रोध की भावनाएँ तुमसे न कहूं तो क्या यह बनावटीपन नहीं होगा ?"

सोमशेखर ने 'हाँ' कहा ।

"तुमने कहा कि मैं अपनी बातो में दुधारी छुरी रखती हूं । यही नहीं बल्कि मैं यह भी जानती हूं कि तुम्हारे साथ बात करना शुरू करती हूं तो वह दुज्जत की ओर खीचने लगती है, आखिर कड़वाहट का रुख ले लेती है । यह तुम्हारी ग़लती नहीं। ऐसी बातें करना मेरा स्वभाव है । तुम्हें अपनी बातों की पकड़ है । जितना चाहिए उतना ही, जिस हद तक चाहिए उसी हद तक उन्हें अभिव्यक्ति देने की क्षमता है । तुम्हारा व्यक्तितव बुद्धि-प्रधान है । इसलिए उसमें धूर्तता का अहसास करके मेरा क्रोध बढ़ने लगता है ।"

"अगर मैं भी तुम्हारी तरह बोलने लगूं तो क्या परिस्थिति शात हो जाएगी ?" सोमशेखर के इस प्रश्न पर वह भौचक हो गई ।

"मेरी तरह का मतलब क्रोध से ? यानी कि मैं गुस्सैल और तुम शात मिज़ाज, यहीं तुम्हारा आशय है न ? तुम्हारी बातो की छुरी भीतर ही है, बड़ी पैनी होती है । मेरा बाहर दिखाई पड़ता है, भोथरा होता है, है न ?"

"छोड़ो इन बातो को । अब बताओ कि तुम्हारे मन में क्या-क्या भावनाएँ आयी ?" उसने वार्तालाप को मुख्य विषय की ओर मोड़ने की चेष्टा की ।

"मैं गर्भवती हूँ, ब्याह करने का तुम्हारा मन नहीं । ऐसी हालत मे हमारे देश की औरत साधारणत: क्या करती है ? मिट्टी का तेल, रस्सी, पानी—आत्म-हत्या के लिए इससे बेहतर माध्यम और कोई नहीं हो सकता । अपने-आपको रिवाल्वर से खत्म कर लेना निश्चित मानकर मैंने वह चिट्ठी लिखी थी । तुम से एक पंक्ति का जवाब, एक फोन कॉल आएगा, इसकी प्रतीक्षा में थी । हर रोज़ बड़ी उत्सुकता से डाक का डिब्बा खोलकर देखा करती थी । जब फ़ोन की घंटी बजने लगती तो वह तुम्हारे अलावा किसी और का हो ही नहीं सकता, इस तरह अपने-आप से शर्त लगाकर रिसीवर उठाती थी । किसी वजह से जब कुत्ते भौंकने लगते तब अहसास होता कि तुम ही आए हो और मैं दौड़कर खिड़की से झांकने लगती । लेकिन तुम नहीं आए । यह तुम्हारी ग़लती नहीं। मैंने खुद कहा था कि लाज-हया कुछ है तो पांच मिनट में मुँह काला करो । चिट्ठी में भी लिखा था कि इस संबंध को काट लेना अति आवश्यक है। तुमने कभी कहा नहीं कि अमृता यह घर मेरा है, यहां से बाहर निकालने का हक़ तुझे नहीं है। तुमने जवाब में नहीं लिखा कि अगर तुमने इस संबंध को काटने की कोशिश की

तो मैं तुम्हारी जबान काट लूंगा, फोन पर भी तुमने यह बात नहीं कही। दर-असल पुलिस से तुम्हें कोई दिक्कत न हो, इसी कारण से वह चिट्ठी लिखी थी। इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। इतने में एक नई भावना पनपने लगी। जीव का अंकुर फूटा है। मैं अननुभवी नहीं हूँ, तुम भी अननुभवी नहीं हो। दोनों की सावधानी बरतने पर भी संयोग से एक जीव के अंकुर फूटे है। मेरे प्राण खोने का हक़ मुझे है। लेकिन जो मेरा नहीं, फिर भी मेरी कोख में जड़ जमाकर जो अंकुरित हुआ है उस जीव को नष्ट करने का क्या मुझे हक है? अपनी हत्या करना उसका नाश करना ही तो है। इसे बचाकर इसकी परवरिश करना मेरी जिम्मेदारी है। वरना भगवान माफ़ नहीं करेंगे। मुझे यह अहसास होने लगा। हाथ में रिवाल्वर पकड़े रहने पर भी उसकी नली को खोपड़ी की ओर या मुँह के अंदर मोड़ लेने को मन नहीं करता था। यकीन हो गया कि जब तक यह अंकुर मेरी कोख में होगा तब तक आत्महत्या करना मेरे लिए संभव नहीं। एक बार मन में यह भी भावना आई कि मुझे जीने के लिए यह एक बहाना या साधन मिल गया। मुझे अपने-आप से घिन होने लगी। अपने जीने के लिए इस जीव को एक निमित्त के रूप में साधन बना रही हूँ, इस बात की घिन। फिर एक बार, जानते हो सहसा इसके प्रति कैसा प्यार उमड पड़ा? ओऽफ्! ऐसे गहरे प्रेम की भावना का मैंने कभी, किसी मामले में भी, विजय और विकास के मामले में भी अनुभव नहीं किया था। क्यों, पता है? बताओ। बताओ न; तुम्हारे मुंह से सुनना चाहती हूँ। बताओ।" कहकर सोमशेखर की दोनों बाँहें पकड़ ली।

"यह अपना बच्चा है। हमारे प्रेम का साकार रूप इसलिए।" उसने जवाब दिया।

"सोमु, सोमु, मेरे प्यारे सोमु! तुम्हें मुझसे प्यार है, इसका यही सबूत है। मुझे समझ सकते हो, इसका भी यही सबूत है। तब तुम गुस्से में थे। तुम्हें बुलाकर कहने का मन हुआ कि मैं गर्भवती हूँ, गुस्सा छोड़कर चले आओ। जब औरत गर्भवती हो तब उससे प्रेम करने वाले पुरुष का रूठकर दूर रहना न्यायसंगत नहीं। लेकिन मन में ऐसे आत्म-गौरव ने फन फैलाया कि आम गर्भवती औरतों की तरह मुझे असहायता का शिकार नहीं होना चाहिए; मैं उसके चरणों में जाकर नाक नहीं रगड़ूंगी। मेरे गर्भ की जिम्मेदारी मेरी अपनी है। वह मेरी समस्या है; मैं खुद उससे निपट लूंगी। ऐसा मैंने फैसला किया। मेरा फैसला ठीक था न?"

"मुझे कुछ पता नहीं था।"

'कुछ पता न रहना तुम्हारा अनुभव है। यह जो कुछ बीत रहा था, जो कुछ भावनाएँ उठ रही थीं वह सब मेरी थीं। मुझे क्या-क्या हुआ, इसका विवरण मैं दे रही हूँ।"

"इसी बीच नर्सिंग होम का काम मिल गया। सवेरे आठ से रात के दस बजे तक काम करता रहा।"

"मतलब यह कि अमू की बिलकुल याद नहीं रही।"

"ऐसी बात नही। सूक्ष्म भावनाएँ प्रस्फुटित होने का अब मौका ही नहीं था।" कहते हुए उसने अपनी कलाई की घड़ी देख ली। सवा तीन बजा था। "तीन बजे ठेकेदार के साथ मीटिंग है। मैं रात के दस बजे आऊँगा। साथ खाना खाएँगे। दिन निकलने तक बातें करेंगे।" झुककर अपनी अंजली से अमृता का मुँह उठाकर उसके होंठों को चूम लिया। फिर उठ खड़ा हुआ।

"जाना ही पड़ेगा? तीन लाख आमदनी का कारोबार तुम्हारे लिए महत्त्व का बन गया!" वह नाराज़ होकर बोली।

"केवल आमदनी की ही बात नहीं। अनुबंध कर लेने के बाद उनके समय को महत्त्व देना होगा। उनसे खर्च होने वाले हर पैसे का सद्विनियोग करवाना अपने पेशे का कर्तव्य है। रात में आ ही रहा हूँ न।" सोमशेखर की आवाज में नाराजगी थी।

"जब तक तुम्हारा अपना धर्मात्मा होने का अहंकार कम नहीं होता तब तक मुझे तुम पर विश्वास नहीं आता।" अमृता बोली। सोमशेखर समझ गया कि यह झगड़े के लिए न्योता है। फिर खामोशी से दुबारा उसका चुंबन लेकर अमृता को विदा देने की प्रतीक्षा न करके बाहर निकला और गेट बंद कर लेने के लिए कहकर स्कूटर चढ़कर तेजी से निकल पड़ा।

उसके चले जाने के बाद अमृता आग-बबूला हो गई। उठकर गेट बंद करने के बदले उसी सोफे पर जलते हुए बैठी रही। कुछ समय बाद घड़ी देख ली। तीन चालीस हुआ था। अब तक दफ्तर पहुँचकर वातानुकूलित चेंबर में ठेकेदार के साथ जलजा के भाई को भी साथ बिठाए चौरस, घन, रुपए, पैसों का हिसाब कर रहा होगा। उठकर फोन पर बताने का मन हुआ कि रात में तुम्हें आने की जरूरत नहीं, कभी आने की जरूरत नहीं। लेकिन उस निश्शब्द चेंबर में मेरी बातें दूसरों को भी सुनाई दे सकती है। अचानक अगर जलजा भी सामने होगी और अपनी आवाज़ पहचान गई तो! इस सावधानी के कारण चुप रही। कह गया है कि रात के दस बजे आऊँगा, साथ खाना खाएँगे, दिन निकलने तक बातें करेंगे। बात करने के लिए रखा क्या है? उस नालायक के साथ!— दाँत चबाते हुए जिह्वा हिलाकर अपने-आपसे कह लिया। जाकर बिस्तर पर लेट गई।

अपने चेंबर में ठेकेदार से, बाद में डॉ० राममूर्ति और जलजा से हिसाब-किताब की चर्चा करते समय, बीच में दो-चार बार फोन पर विभिन्न दूकानदारों से लोहा, शीशा, प्लाइवुड आदि वस्तुओं के भाव की पूछताछ करते समय सोम-

शेखर में एकाग्रता नहीं आयी। साथ में बैठकर नीलकण्ठप्पा ने सारे ब्यौरे का ध्यान रखा था इसलिए सोमशेखर को तसल्ली रही। उसे अहसास होने लगा कि वह और अमृता सहसा बहुत निकट आने लगे हैं। अमृता चाहे कितना ही गुस्सा दिखाए, उससे संबंध इतना गहरा हो गया है कि भविष्य में कभी उसके टूटने की संभावना नहीं। लेकिन, एक अवांछित परिस्थिति पैदा होने की परेशानी उसे सताने लगी। प्रेमी जनों के मिलन में नारी का गर्भवती होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। जीवन का अनुभव न रखने वाले, जिनके हाथ में पैसा न हो, जिनको कभी बाहर निकलने की आजादी न हो, ऐसे कमउम्र के लड़के-लड़कियों के लिए यह एक जटिल समस्या हो सकती है; हम लोगों के लिए नहीं—अपने-आपको इस ढाढ़स और दिलासा दे लेने की चेष्टा करने पर भी मन नियंत्रण में नहीं आ सका और उसकी मन:स्थिति डावाँडोल होने लगी। वास्तव में ऐस्टीमेट और दरों के मामले में काफ़ी अनुभव रखते हुए भी उस दिन का सारा कार्य-व्यवहार नीलकण्ठप्पा पर छोड़कर वह इस अंदाज में बैठ गया मानो इस मामले में उसके स्तर की दखलंदाजी अनावश्यक है। दो बार चाय और बिस्किट वहाँ मँगवाकर डटकर लगातार काम करने के कारण रात के साढ़े-आठ बजे तक सारा काम निपट गया और ठेकेदार के साथ अनुबंध हो गया। कुछ प्रमुख फिटिंग की वस्तुएँ बेंगलूर से मँगवाने का और बाजार भाव पर उनके दाम देने का निश्चय किया गया।

उन सभी के चले जाने के तुरंत बाद नीलकण्ठप्पा और नंजुडेगौड को सूचना दी कि कल जल्दी आकर अनुबंध-पत्र और अन्य कागजातों को दो दिन में टाइप करवाके तैयार कर लें। फिर वह स्कूटर पर सवार होकर मार्केट गया। काफी ढूँढ़ने पर भी चमेली के फूल नहीं मिले। उसकी भीनी-भीनी खुशबू के बदले तेज गंध वाला मोगरा लिये जब वह अमृता के घर पहुँचा तब तक बच्चे सोए नहीं थे। 'अंकल' कहते हुए विकास दौड़कर आया। बड़ा विजय दूर से ही 'हैलो' बोला। उसके चेहरे पर हलकी-सी नाराजगी थी। "ओऽफ़, ऐस्टेट के नौकरों के ब्लाक का प्लान। मैं तो भूल ही गयी थी। बैठ जाइए," अमृता ने स्वागत किया। "जलजा बता रही थी। आप सवेरे से रात के नौ-दस बजे तक लगातार उनके काजिन का काम करके थक जाते हैं। अब मेरे काम की खातिर आए हैं, सॉरी!" वह बोली।

सोमशेखर ताड़ गया कि यह बात विजय को सुनाने के लिए कही गयी है। साढ़े आठ साल के इस लड़के का सोमशेखर को उस घर में देखकर इस प्रकार की ठण्डी भावनाएँ प्रदर्शित करना वह पहचान गया था। अमृता ने उसे इस बात का ध्यान दिलाया था।

"एक मिनट, अभी आई। बच्चों को सवेरे जल्दी उठना होता है। उन्हें

सुलाकर आऊँगी।" अमृता दोनों बच्चों को उनके बेडरूम में ले गयी। पंद्रह मिनट बाद लौटकर आयी, "चलिए, भोजन करते हुए प्लान देख लेंगे।" वह रसोई-घर में ले गई। सोमशेखर जब पिछवाड़े के दरवाज़े के पास वाले सिंक पर हाथ-मुँह धोकर लौटा तो अमृता ने दबी आवाज में कहा—"विजय कह रहा था, अंकल मोगरे के फूल लाए हैं; उनके आते ही खुशबू आयी थी।" सोमशेखर को लगा कि कहीं फूल लाकर गलती तो नहीं की! दो थालियाँ लगाकर सोम के सामने बैठने के बाद वह बोली, "न जाने क्यों, मुझे विजय की ओर से डर लगने लगा है। कहीं कोई उसके कान तो नहीं भर रहा होगा! वरना, इतना छोटा बच्चा और तुम भी हमेशा उसके साथ हमदर्दी से पेश आते हो। फिर भी क्यों नाराजगी-सी दिखाता है ?"

"क्यों, कुछ कहा उसने ?"

"कहा नहीं। लेकिन मुझे ऐसा लगने लगा है। बच्चों के मन की गहराई [illegible] पहचान लेती है। खैर, बताओ, क्या बात है ?"

"कौन-सी बात ?"

अमृता बोली नहीं। उसके चेहरे पर गुस्सा चढ़ते हुए सोमशेखर ने पहचान लिया। तुरंत उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। "तपाक से तुमने पूछा कि क्या बात है बताओ; मैंने उधेड़बुन में ऐसा कहा। इस मामले में तुम जो भी निर्णय लोगी, उसके लिए मेरी सहमति है।" अमृता को दिलासा देते हुए वह बोला।

अमृता ने तुरंत कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। गर्दन झुकाकर खाना खाती रही। फिर बोली, "दोपहर जाते समय तुमने कहा था कि [illegible] के दस बजे आओगे और हम दिन निकलने तक बातें करेंगे। बातें करेंगे यानी कि चर्चा करेंगे—यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य था न ?"

"हम दोनों को मिलकर निर्णय लेना होगा न ?" उसने धीरज के साथ जवाब दिया।

वह तुरंत खामोश हो गयी। दो पल बाद बोली, "मिलकर निर्णय लेना होगा ? दोपहर जब इस बात का पता चला तब तत्काल तुम खुशी के मारे गज-भर ऊपर फुदक पड़ते और कहते, अमू, यह मेरा बच्चा है। इसकी अच्छी परवरिश करनी होगी। तुम्हें अब बिना किसी देरी के समय-समय पर खाना-नाश्ता खाते रहना होगा। उसके पोषण में अगर तुमने लापरवाही बरती तो मैं थप्पड़ जमा दूँगा—इतना कहना काफ़ी था। रात के दस बजे आकर दिन निकलने तक अनेक पहलुओं की छान-बीन करके उनकी चर्चा करने लायक इसमें क्या है ? चर्चा करने का मतलब उसके साधक-बाधक अंशों को तौलेंगे यानी कि अनुकूलता-अनानुकूलता के तराज़ू में रखेंगे, यही अर्थ है न ? अगर प्यार होता तो अपने-आप

तुरंत उमड़ पड़ता। हृदय का अमृत-कलश निकालकर उसकी सिंचाई करने के लिए तैयार होता। उसके अभाव के कारण तुमने चर्चा का प्रस्ताव रखा। अब तुमने उपेक्षा से कहा कि कौन-सी बात ? फिर कहा कि तुम जो भी निर्णय लोगी उसके लिए मेरी सहमति है। अर्थात् निर्णय की सारी ज़िम्मेदारी मुझ पर छोड़कर खुद इससे खिसक गए।"

अमृता के तर्क की इस पैनी धार का विरोध कर पाना सोमशेखर की बुद्धि के लिए संभव नहीं था। हां, ठीक ही है। मैंने क्यों नहीं कहा कि यह मेरा बच्चा है, इसे बचाना होगा, यह मेरा आदेश है ? भ्रूण के प्रति औरत के मन में जो तादात्म्य भाव उत्पन्न होता है वह शायद पुरुष में नहीं होता। तादात्म्य करने वाले पुरुष भी शायद होंगे। मेरा स्वभाव कुछ और होगा। जो स्वभाव में नहीं है, जो भीतर से स्फुरित नहीं होती उस भावना को किस प्रकार अभिव्यक्ति दे, यक्षगान के पात्रों की तरह कैसे फुदक पड़े ? वह अपनी ओर ही परीक्षक की निगाह से देख रही है। मुझे कुछ-न-कुछ जवाब देना ही होगा, इस अहसास के साथ वह बोला, "यह मेरा बच्चा है, इसकी परवरिश होनी चाहिए। तुम्हारे भोजन के माध्यम से उसका पोषण होता है इसलिए तुम्हें नियमित रूप से समय-समय पर पौष्टिक भोजन करते रहना चाहिए, अच्छा आहार लेना चाहिए।—ये बातें कहना आसान है। तुमने साहित्य पढ़ा है। वार्तालाप को बुन सकती है। कल्पना चाहे कितनी ही सुंदर क्यों न हो, जब तक लोहा, फौलाद, रेत, सीमेंट, ईंट आदि के द्वारा एक वास्तविक रूप ग्रहण नहीं करती तब तक मैं उस कल्पना की कीमत नहीं करता। और तुम्हारी मर्जी के अनुसार बाँधना संभव भी नहीं है। घर की रचना इस ढंग से करनी पड़ती है जो घर से संबद्ध सारे व्यक्तियों को—मालिक, मालकिन, बच्चे, अतिथि-अभ्यागत आदि सभी को—मान्य हो। अगर इसे बचा लिया गया तो भविष्य में इसका परिणाम क्या होगा ? अब तुमने रंगनाथ को दूर रखा है। अगर उनको पता चल गया कि तुम्हें ऐसा हुआ है तो क्या वे इसी तरह खामोश रहेंगे जैसे अब हैं ? तुम्हारी चाची क्या कहेगी ? अभी-अभी तुमने विजय की बात कही न, उसको इस नई परिस्थिति के लिए कैसे मनाओगी ? विकास से क्या कहोगी ? तुम्हारे कॉलेज के सहयोगी, उन सबका दृष्टिकोण क्या होगा ? क्या इन सब बातों के बारे में हमें सोचना नहीं होगा ? इसे अपना बच्चा मानकर, यह लो···" वह थाली में हाथ धोकर उठा। अपना दायाँ हाथ अमृता के पेट पर रखकर बोला, "इसकी कसम, भगवान, की क़सम, सारी दुनिया के सामने स्वीकार करने के लिए मैं तैयार हूँ। उससे पहले ब्याह करने के लिए भी तैयार हूँ। लेकिन हर एक समस्या का, हर एक के मन का निर्वाह कैसे किया जाए—इस बात के बारे में क्या सोचना नहीं पड़ेगा ? मेरी हद तक तो कोई समस्या नहीं है। सारी समस्या तुम्हारी ही हैं। इसीलिए कहा कि तुम जो भी निर्णय लोगी

वह मुझे स्वीकार है। इन सबका निर्णय करने वाली तुम हो। तुम्हारी सारी समस्याओं के सुख-दुःख का मैं भागीदार हूँ। इसलिए कहा कि दोनों मिलकर बातें करेंगे, चर्चा करेंगे, कोई निर्णय लेंगे। इसमें क्या गलत है ?"

अमृता का गुस्सा और चढ़ गया। उसे लगा सोमशेखर ने समझ का भय दिखाकर उसे धराशायी किया है। उसका चेहरा तमतमाने लगा, लाल सुर्ख हो गया। अपनी बगल में झुककर खड़े सोमशेखर का दाहिना हाथ उसके पेट पर ही था। उसकी कनपटी पर कसकर एक थप्पड़ जमाने के लिए अमृता का दाहिना हाथ उठा। लेकिन तुरंत पिछली घटना को याद करके उसने अपने आपको सँभाल लिया। उसने थाली में ही हाथ धोकर अपने पेट पर रखा है। अपना हाथ अभी जूठा ही है, यह बात बाद में समझ में आयी। अमृता के दाएँ हाथ की हरकत और चेहरे की लाली-क्रोध सभी बातें सोमशेखर की नजर से छिपी नहीं रहीं थीं। फिर भी दूर न हटकर उसके पास ही झुककर अपना हाथ उसके पेट पर रखे वह खड़ा रहा। "तुम्हें वकील बनना चाहिए था। आपने असल मुद्दे की बात कही कि अब तुम्हारे लिए कोई रास्ता बचा नहीं, गर्भपात कर लो। मेरी भावनाएँ कभी आपकी समझ में नहीं आएँगी। औरत की भावनाएँ कभी किसी पुरुष की समझ में नहीं आतीं। व्यवहार के स्तर को छोड़कर कभी आपकी भावना गहराई में उतरती ही नहीं।" —यह बात कहते हुए अमृता का गला रुँध गया।

तभी कदमों की आहट सुनाई दी। दोनों ने एक साथ मुड़कर देखा तो रसोई-घर के दरवाजे से विजय आता दिखाई पड़ा। नींद में डूबे रहने पर भी आँखें खुली थीं। सोमशेखर ने अमृता के पेट से झट अपना हाथ हटा लिया। अमृता एकदम घबरा गई। पल-भर में सँभलकर बोली, "आओ बेटे ! क्या नींद नहीं आयी ?" उठकर उसे बाँहों में भरकर पीठ सहलाते हुए दुलारने लगी। विजय ने 'प्यास' कहा।

"मैसूरपाक खाने का नतीजा है। मुन्ना, अब कोई मैसूरपाक नहीं खाएगा। उसी के कारण मेरे पेट में भी जानलेवा दर्द शुरू हुआ था। अंकल ने दर्द की जगह को दबाकर पकड़ लिया था। आओ, लो पानी। ओऽफ्, अभी दर्द है, मुन्ना, यहाँ।" कहते हुए बच्चे की दाहिनी हथेली पकड़कर अपने पेट पर रख ली और बोली, "कुछ अहसास हो रहा है ? ऐंठन-सी हो रही है, घटिया बेसन का आटा।" दर्द का स्वाँग रचकर फिर अपना हाथ धो लिया। उसे एक गिलास में पानी भरकर दिया। उसके पानी पीने के बाद बोली, "चलो, सुला दूँ।" कंधे पर हाथ रखकर उसे कमरे में ले गयी। इस घटना से सोमशेखर भी चिंतित हो गया। किन्तु, तुरंत अमृता ने जो स्वाँग रचाया उससे प्रसन्न होकर पुनः उसी कुर्सी पर बैठ गया जहाँ पहले वह खाने के लिए बैठा था। दस मिनट में लौटकर अमृता फुसफुसाहट में बोली, "जब उसे नींद आयी थी तब तुम घर में थे। नींद में भी शायद उसका भीतरी मन इसका विरोध कर रहा होगा। इसीलिए जागकर आया है। तुम अब

चले जाओ। कल दोहपर खाने के लिए जरूर आना। कम-से-कम दो घंटे का समय निकाल कर आना। बहुत सारी बातें करनी हैं। अब तुम्हारे स्कूटर के जाने की आवाज भी सुन लेगा तो उसे गहरी नींद आ जाएगी।"

आप जो मोगरे के फूल लाया था उन्हें अमृता को देना भूल गया था। लाउज में हेल्मेट के अंदर रखे थे उन्हें निकालकर विदा करने आयी अमृता के जूड़े में पहनाकर उसके होठों का निश्शब्द चुंबन लिया। फिर बाहर निकलकर स्कूटर स्टार्ट करके चला गया। लगा कि बाहर की खामोशी पर उसका स्कूटर अत्याचार कर रहा है। यह सोचते निकला कि ऐसी एकांत-निर्जन रात्रि में चलने से स्थिति का अर्थ सम्भवतः स्पष्ट होगा। घर जाकर खिड़कियाँ खोलकर जब मच्छरदानी में लेट गया तो दिमाग में अमृता की वह बात मँडराने लगी। उसने कहा था कि औरत की भावनाएँ किसी पुरुष की समझ मे नही आतीं। उसकी पत्नी का तीसरे महीने में गर्भपात हुआ था। उसके लिए वह कितना रोयी थी? कितने दिनों तक उसकी याद में रोती रही थी? मैंने जब चिढ़कर कहा था कि क्यो इतने आँसू बहाती हो, तो वह बोली थी, औरतो का दुःख तुम्हारी समझ में कैसे आ सकेगा? अपने पेट में अंकुरित होने वाला भ्रूण उसके तन-मन का एक अंग बन जाता है। अब बात समझ में आने लगी है कि इसीलिए इतनी ममता, इतना तादात्म्य होना है। इसके अतिरिक्त उसको एक और कारण समझ में आया। यह अपने प्यार के फलस्वरूप अंकुरित बच्चा है इसीलिए अमृता को उससे अधिक लगाव है। लेकिन स्मृति का विश्लेषण करते समय, प्यार करते समय यानी कि रति की उत्कटा-वस्था में जो तादात्म्य होता है, वैसा तादात्म्य उसके बाद, स्त्री जब गर्भ धारण कर ले तब पुरुष में नहीं होता। पुरुष की जो भी भावना होती है वह दूर की ही होती है। मन ही मन मान गया कि शायद अमृता की बात ही सच है।

बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। अब जो परिस्थिति पैदा हुई है, उसका निवारण कैसे होगा, कुछ समझ नहीं पा रहा था। एक बात याद आयी। बंबई वाली की कही हुई बात। एक बार मैंने पूछा था, "हम इतनी बार मिलते रहते हैं, अगर तुम्हें गर्भ ठहर गया तो?" तब छेड़ने के अंदाज में वह बोली थी, "ब्याह करोगे?" मैं बोला था, "अगर हम दोनों ब्याह करेंगे तो तुम्हारी युनिवर्सिटी भी छूट जाएगी और मेरा दफ्तर भी छूट जाएगा। दोनों को फाके करने होंगे।" वह बोली थी, "ब्याह करेंगे तो यह उत्कटता चौबीसों घंटे, तीसों दिन, बारह महीने नहीं रहेगी। प्रेमी बनकर कभी-कभी मिलते रहने पर ही यह उत्कटता संभव है, जान लो।" तब मुझे यह बात सच नहीं लगी थी। मेरी धारणा थी कि अगर हम दोनों मिल जाएँगे तो जर-जर बूढ़े होने पर भी इसी तरह रहेंगे। "तीसरी बच्ची के पैदा होते ही मैंने आपरेशन करवा लिया है। गर्भ ठहरने का डर नहीं।" उसने

कहा था। "क्यों करवा लिया ?" पूछने पर बताया था, "आगे सोमशेखर नामक एक पागल प्रेमी मिलेगा। उसके लिए निरातंक आजादी रहे इसलिए।" यह कहते हुए पुचकार कर उसने मुझे उकसाया था। फिर उसी ने बताया था। ब्याह हुए एक वर्ष बीता था, अभी बच्चे नहीं हुए थे। पति भी बड़ा रँगीला था और वह स्वयं तो रसिक-रानी थी ही। गर्भ-निरोधक विधान को अपना लिया था। इसी बीच प्रशिक्षण के लिए पति एक वर्ष के लिए कनाडा चला गया। इसने बंबई में एम० एस-सी० ज्वाइन की। सहपाठी के साथ स्नेह बढ़ा। गर्भ ठहरा। क्या करें ? "क्या करे ?" उसने मेरा मुँह ताका। यों दिग्भ्रांत होकर मेरी आँखे झुक गई मानो समस्या का भार मुझ पर पड़ा हो। वही मुसकुराकर बोली, "सहपाठी परेशान हो गया, वह घबरा गया, अविवाहित था, अनुभव नहीं था। मैंने खुद मुसकुराकर उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा, 'घबराओ नहीं। औरत के नाते यह मेरी जिम्मेवारी है।' फिर मैं अकेली डाक्टर के पास गई। दो सौ रुपए देकर इलाज करवा लिया। तीसरे ही दिन उसे बुलाकर कहा, 'सब ठीकठाक हो गया' और उसे अपने फ्लैट पर ले गई।" कहकर मेरा मुँह परीक्षक की निगाह से देखने लगी थी। "देखो अब कैसे तुम्हारे चेहरे से परेशानी दूर भागी हुई-सी दिखाई देती है। ये सारी समस्याएँ औरत की होती हैं। उसे खुद निपटना पड़ता है। पुरुष को आरोपित करना, उसके मन को ठेस पहुँचाना ठीक नहीं। मैंने कभी ऐसा क्रूर बर्ताव नहीं किया। एक बार पति से ही ऐसा हुआ था। डाँट दिखाकर उनमें कभी दोष-प्रज्ञा पनपने का मौका नहीं दिया कि यह सारा उन्हीं की असावधानी के कारण हुआ। ऐसा हुआ है, बट्, डोंट वरी, मैं गाइनिकालजिस्ट से मिल लूँ, कहकर मुसकुराई और उन्हें भी हँसाकर दफ्तर भेज दिया था। फिर दफ्तर को फोन करके बताया, 'डीयर, डाक्टर मिले थे, सब साफ हो गया। लेकिन आपको [illegible] भर के लिए भूखा रहना पड़ेगा।" उसकी और अमृता की तुलना न करने की [illegible] लेने पर भी तुलना होने ही लगती है। उस बंबई वाली के संबंध में गहनता नहीं थी, एकमेव, नैवेद्य भाव नहीं था; लेकिन वहाँ आतंक, पीड़ा और दुःख भी नहीं था। यह सब सोचते-सोचते सोमशेखर को नींद आ गई।

सवेरे जल्दी दफ्तर गया। दस बजे डॉ० राममूर्ति आए। उन्हें नीलकण्ठप्पा के साथ नगर-निगम भेजा। डॉ० राममूर्ति का काम लगभग उस दिन पूरा हो चुका था। सिर्फ ऐसा काम बचा था जिसे ये लोग उनके बिना भी कर सकते थे। अगले दिन चार रोज के लिए उन्हें बेंगलूर जाना है। आज उन्होंने सोमशेखर को डिनर पर बुलाया है। नंजुंडेगौड़ के साथ बैठकर बारह बजे तक काम करता रहा। फिर नीलकण्ठप्पा से कहकर स्कूटर लेकर मार्केट की ओर गया कि वह तीन बजे तक लौटकर आएगा। ढूंढकर चमेली के ही फूल लिए। अमृता के घर की ओर स्कूटर दौड़ाते समय सोचता रहा, आज क्या निर्णय लिया जाए ? इससे बढ़कर वह

कैसा सलूक करेगी, यह आतंक मन को कचोटने लगा था। एक अकल्पित परिस्थिति सामने आ गई थी। उससे निपटने की पूरी आजादी अपने को नहीं है। पूरी न सही वैधानिक रूप से अपने हक की आधी आजादी भी नहीं है। उसे जो रुचे, उसे जो सूझे उसी को न्यायसंगत मानकर जिद करने लगती है। इस कुढ़न के साथ स्कूटर चलाते हुए सोमशेखर उसके घर पहुँचा। इंजन बंद किए बिना झुककर गेट की सिटकनी हटायी। गेट को ठेलकर स्कूटर भीतर ले गया। छाया में उसे स्टैंड पर लगाया। मुड़कर गेट बंद करने तक अमृता मोहार का दरवाजा खोलकर मुसकुराते हुए सामने आयी। भीतर आते ही उसके जूड़े में चमेली के फूल पहनाकर मुँह को अंजुली में भरकर होंठों पर चुंबन अंकित कर दिया। उसके कमरे में जाकर लुंगी पहन ली। हाथ-मुँह धोकर आने तक अमृता ने टेबुल पर दोनों के लिए खाना लगाया था। अपनी कुर्सी पर बैठकर दही मिली कच्ची कोसंबरी को चमचे से उठाकर मुँह में डालते हुए वार्तालाप की शुरुआत के अंदाज में बोला, "उसके बाद विजय ने सोकर अच्छी नींद ली ?"

अमृता बोली नहीं। चेहरे पर कठोर मौन फौलाद-सा बना था। एक पल बाद शुद्ध व्यावहारिक अंदाज में बोली, "पहले रसम् डालूं या सांबर ?"

"कुछ भी चलेगा।" वह बोला।

अमृता ने गर्दन उठाकर दुत्कार के अंदाज में उसका मुँह घूरकर कहा, "धूर्तता की बातें नहीं चाहिए। निश्चित रूप से कहो।"

"इसमें धूर्तता कहाँ से आयी ? पहले किसके साथ खाने में तुम्हारी रुचि है, वही क्रम मुझे भी प्रिय है।" उसने संयम के साथ कहा, फिर भी आवाज में दर्द था।

"यानी कि मैं जो निर्णय लूंगी, तुम उसका अनुसरण करोगे। अपनी ओर से कोई जिम्मेदारी नहीं लोगे। यही आशय है न ?" वह बोली।

तुरंत अमृता की ध्वनि की व्यंजना ताड़कर सोमशेखर को लगा कि हर बात मनमुटाव की ओर मुड़नी है। वह बोला, "पहले सांबर डालो। एक कप रसम् पी लूंगा। दोनों के साथ खा लूंगा तो ज्यादा हो जाएगा। तीन बजे फिर काम पर जाना है।"

"हाँ, आप हमेशा के कामकाजी व्यक्ति ठहरे। मेरी तरह निठल्ले नहीं हैं।" कहते हुए उसने सांबर परोसा। इसके बाद सोमशेखर बोला नहीं। वह भी कुछ नहीं बोली। चेहरा पहले की तरह ही कठोर बना रहा। जब दोनों का सांबर-भात खत्म होने को आया तब अमृता बोली, "तुमने पूछा कि विजय ने ठीक नींद ली या नहीं। अगर नहीं ली होती तो क्या तुम उसे ठीक कर देते ?" सोमशेखर ने जवाब नहीं दिया। गर्दन भी नहीं उठायी। जो मुँह में था उसे धीरे-धीरे चबाने लगा। "क्यों ? निगलने में कोई तकलीफ़ हो रही है ?" अमृता बोली। इसका

दुहरा अर्थ सोमशेखर की समझ में आया। फिर भी वह बोला नहीं। "विजय के बारे में आपने क्यों पूछा ?" अमृता ने पुनः वही बात पूछी।

"यों ही, जान लेने के लिए। अगर पूछना नहीं चाहिए था तो सॉरी। मेरी गलती हो गई।" वह बोला।

सॉरी, गलती जैसी बातों से अमृता चिढ़ गई। "देखिए, आप मुझे चिढ़ा रहे हैं। अगर मैं इसकी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करूँ तो जीवन-भर द्वेष साधोगे कि इसने जूठे हाथ से थप्पड़ मारा। अगर आप इस शकुनी चाल को छोड़ देंगे तो मुझे कम-से-कम थोड़ी-सी तो मानसिक शान्ति मिलेगी।"

सोमशेखर सॉरी बोला।

"फिर वही बात करने लगे है; चिढ़ाने वाली बात !" वह बोली।

"अपनी गलती मान लेने के लिए और दूसरा कौन-सा शब्द है अपनी भाषा में ? किस तरह व्यक्त करूँ? भाषा, साहित्य पढ़ा है तुमने। मुझे सिखाओ।" वह बड़े धैर्यपूर्वक बोल रहा था। फिर भी उसे अहसास हुआ कि जड में बात गरमाने लगी है।

"चालाक लोगों के लिए बातों के सिवा दूसरी कोई अभिव्यक्ति नहीं है।" अमृता बोली।

वह सोमशेखर की दायीं ओर बैठी थी। तुरंत सोमशेखर ने अपनी कुर्सी पीछे की ओर सरकायी। दायीं ओर मुड़ा। दायाँ हाथ जूठा होने के कारण झुककर बाएँ हाथ से अमृता के चरणों को छू लिया। अमृता ने झट अपने पाँव समेट लिए। फिर भी सोमशेखर का हाथ उसके दोनों चरणों पर पहुँच गया था। क्रोध में अमृता ने अपना बायाँ हाथ बढ़ाकर सोमशेखर की कुहनी को [illegible]या। दबाव की तेजी के कारण कुहनी टेबुल से जा टकराई और उससे जो खट् की आवाज़ हुई वह पीड़ा बनकर सोमशेखर के चेहरे से चू पड़ी। "आज कमर कसकर लड़ने पर उतारू होकर ही आए हैं।" अमृता ने आरोप लगाया।

"सॉरी, गलती हो गई कहूँ तो उसे धूर्तता कहती हो। बिना बोली के गलती को स्वीकार करने के लिए चरण छूना ही एक मात्र विधान मेरी समझ में आया।" लाचारी की आवाज में वह बोला।

अब अमृता बोली नहीं। कुछ और भात परोसने के लि[illegible]। मना करने के लिए सोमशेखर ने हाथ आड़े कर दिए। "क्यों, बस ?" गलती किए छात्र के मुँह से जवाब उगलवाने के अंदाज में अमृता ने पू[illegible]।

"कहा न, जाकर काम पर बैठना है। कल राममूर्ति बेंगलूर जाने वाले हैं।" उसने एक आज्ञाकारी के अंदाज में जवाब दिया।

"मैंने भी कहा न, आप कामकाजी व्यक्ति हैं; मेरी तरह निठल्ले नहीं।" आरोप पर आरोप थोपने के अंदाज में बोली। सोमशेखर से कुछ जवाब नहीं बना

और वह चुप रहा। भात-परोसनी हाथ में लिए सोमशेखर के जवाब की प्रतीक्षा में बैठी रही। वह खामोश बैठा रहा। परोसनी में उठाया हुआ भात पुनः भगोने में डालकर वह बोली, "आपका उद्देश्य मैं जान गयी। आप नहीं खाएँगे तो मैं भी नहीं खाऊँगी। गर्भवती के पेट में काफी अन्न न जाकर पौष्टिकता के अभाव में शिशु भीतर ही मर जाए, तब आपको छुटकारा मिलेगा, यही न ?"

सोमशेखर की निश्चय-शक्ति जो सब्र से रहना चाहती थी, उसके भीतर दरार पड़ गई। वह बोला, "बोलना जानती हो, इसलिए कैसी-कैसी व्यर्थ की कल्पनाएँ करने लगती हो ?" उसकी आवाज भी गरमा गई थी।

"उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे। झूठ अपने में भरा है, उसे उल्टा मुझ पर थोप रहे है !" वह बोली।

"कौन-सा झूठ मुझमें है ?" छूटते ही उसने पूछा।

"क्या आपका मन नही चाह रहा है कि यह भ्रूण भीतर ही दम तोड़ दे ? भीतर ही जड़ें कटकर नष्ट होने की मनौती क्या आपने भगवान से नही माँगी ? सच कहिए।"

"मुझे भगवान के अस्तित्व में पूरा विश्वास नही है। अगर है भी तो तुम जानती हो कि मनौती-वनौती करना, उस मनौती को भगवान मजूर करेगा—इस कार्य-कारण संबंध में विश्वास करना मेरा स्वभाव नहीं है।" सोमशेखर ने जवाब दिया।

"अगर विश्वास होता तो जरूर मनौती करते। बिना विश्वास के ही अब मनौती कर चुके हो।" वह दुबारा बोली।

"सुनो, इस बात का जवाब देने के लिए भी अपना मन तैयार नही। इस कारण अगर चुप रहूँ तो तुम बात को यों मोड़ देती हो कि मैं मान गया। इसलिए जवाब दे रहा हूँ। यह सरासर झूठ है।"

"यही नहीं बल्कि तुमने अपने गांव की माटी से मन-ही-मन मनौती की है कि इसका गर्भपात हो जाए और गर्भपात के समय यह भी मर जाए। सब झंझट खत्म हो जाएगा। अपने दिल से पूछिए। सच्चाई जान जाएँगे।" सोमशेखर ने अपनी दोनों कुहनियाँ कानों पर यों दबा ली कि यह सुनने योग्य बात नही।

अमृता सोमशेखर की ओर मुड़कर जलती आँखों से उसका मुँह देखने लगी। बड़ी देर तक पलकें बंद नहीं हुई। चेहरा पथरा गया। केवल होंठ मात्र बीच में कुछ कहने की चेष्टा में फड़क उठते थे। सोमशेखर के हाथ कानों को दबाए ही थे। "निकालो हाथ !" अमृता ने आदेश दिया। सोमशेखर ने अपने हाथ नहीं हटाये। "हटाओ हाथ !" वह पुनः जोर देकर बोली। सोमशेखर के हाथ, मुख, गर्दन कुछ भी नहीं हिली। "मैं कहती हूँ, हाथ हटाने होंगे !" आखिरी चेतावनी के रूप में वह ऊँची आवाज में बोली।

वह निश्चेष्ट बना रहा। अमृता पल-भर प्रतीक्षा में रुकी फिर उसने तेजी से हाथ बढ़ाकर सोमशेखर के दोनों हाथों को झटके से अलग-अलग दिशा मे हटा दिया। विरोध करे या मान जाए, विरोध करे तो किस ढंग से—वह इस उधेड़-बुन मे पड़ा था तभी अमृता ने अपने दाहिने जूठे हाथ से बाएँ गाल पर कसकर थप्पड़ जमा दिया। सोमशेखर मे मानो सहसा अंतःस्फूर्ति आई और वह बिना किसी प्रतिरोध के मुँह, जिह्वा, हाथ आदि किसी भी अंग की हरकत किए बिना चुपचाप बैठा रह गया।

जलती आँखों से उसकी प्रतिक्रिया का इंतजार करते हुए अमृता ने दस मिनट बिताए और बोली, "जीसस के नीतिपाठ के ढोंग को मै अच्छी तरह पहचानती हूँ।" सोमशेखर ने जवाब नही दिया। "बको, जवाब दो। इस गाल पर मारा जाए तो उस गाल को बढ़ाने का स्वाँग रचो।" डाँटकर बोली।

सोमशेखर के मन में एक गहरा अर्थ कौंध गया, ऐसा भाव स्फुटित होकर जार पकड़ गया जिसका आज तक उसने अनुभव नही किया था। जलती आँखो को ज्वालामुखी बनाकर जवाब तलब करने वाली अमृता मे उसने सावधानी से कहा, "जीसस के सीख का बड़प्पन मुझमे नहीं है। उसने कहा था कि अगर तुम्हारे शत्रु ने बाएँ गाल पर मारा तो दायाँ गाल भी उसके सामने बढ़ा दो। तुम मेरी शत्रु नही हो। हमारे बीच द्वेष नही है, प्यार है। इसलिए अगर मैं अपना दायाँ गाल बढ़ा भी दूँ तो उसमे कोई बड़प्पन नहीं है।"

अमृता पुनः चार-पाँच सेकेंड उसी तरह घूरती रही फिर बोली, "बात को घुमाने मे बड़े चालाक हो।" और इसके साथ उसने उसी जूठे हाथ से सोमशेखर के दाएँ गाल पर भी तेजी से एक थप्पड़ जड़ दिया। वह खामोश बैठा रहा। अब अमृता का क्रोध उबल पड़ा। हाथ उठाकर उस गाल, इस गाल, उस गाल, इस गाल, उसे, इसे—इसी तरह उसने सोमशेखर के गाल पर फटाफट आठ-दस और जड़ दिए। सोमशेखर फिर भी अटल रहा। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। अपने क्रोध का ठिकाना न पाकर अमृता उठ खड़ी हुई। टेबुल पर रखा रसम् का बर्तन उठाकर सोमशेखर के सिर पर बहा दिया; फिर दही उँडेल दिया। भात उठाकर उसके सिर पर उलट दिया। सोमशेखर उसी तरह चुप बैठा रहा। अमृता मुड़कर पाँव पटकते हुए बच्चो के कमरे मे चली गयी। वह वहीं बैठा रहा। अपने मन को उसी अविचल स्थिति मे रखने की प्रेरणा उसके मन में होने लगी थी। फिर भी सिर पर उँडेला गया रसम् बहकर दोनों आँखें जलने लगीं। उठकर हमाम मे गया। कलाई की घड़ी निकालकर रखी। नल घुमाकर ठंडे पानी के नीचे सिर रखा। पहले सिर फिर मुँह और आँखें धो लीं। फिर भी आँखों की जलन कम नहीं हुई। रसम् की दाल गलाते समय डाला गया तेल, छौंक का घी और दही की चिकनाई ठंडे पानी में भीगकर बालों में चिपकने लगी। आँखें

खोलकर शिकाकाई की पुड़िया कहाँ रखी है ढूंढकर हमाम का दरवाजा बंद कर लिया । शिकाकाई का पाउडर डालकर पहले सिर, फिर मुँह और सारा बदन धोकर नहा लिया। अब आँखें कुछ खुलने लायक बनीं। उसने जो लुगी और बनियाइन उतार कर रखी थी वे रसम् और दही मे भीग कर बदरंग हो गई थीं। खूब साबुन का पाउडर डालकर दो-तीन बार दोनों को धोया। धोबी के यहाँ पूरा दाग जा सकेगा। फिलहाल ठीक है। लुगी निथारकर उसे बाल्टी में ही छोड़ दिया। तौलिया से सिर और सारा बदन पोंछकर उसी तौलिया को लपेटकर बनियाइन हाथ में लिए बाहर निकला। अमृता की आहट कहीं सुनाई नहीं दी। उसके बेडरूम में जहाँ अपने कपड़े रखे थे वह नहीं थी। उस कमरे में जाकर बनियान और जाँघिये के बिना ही पेंट और कमीज़ पहन ली। बाल जो अभी नम थे उनमें कंघी कर ली। पाँव में जूते पहनकर बाहर निकला और घड़ी देख ली। दो बजे थे। चाहे तो अभी पौन घंटा रुक सकता है। लेकिन मन को पीडा होने लगी थी। बच्चों के कमरे का दरवाज़ा कुछ खुला था। झाँककर देखा। वह विकास के पलंग पर खिड़की की ओर मुँह किए लेटी थी। केवल उसकी पीठ दिखाई दे रही थी। "अमू, मुझे देर हो रही है, दरवाजा बंद कर लो।" शांत स्वर में बोलकर बाहर निकला। गेट बंद करने के बाद स्कूटर स्टार्ट करके तेजी के साथ चल पड़ा।

अमृता का घर जब लगभग दो फर्लांग पीछे छूट गया तब सोमशेखर के चित्त में खलबली-सी मची और आँखें डबडबा आईं। दृष्टि धूमिल हो गई। स्कूटर चलाना असंभव-सा महसूस होकर उसे ब्रेक लगाया। बाईं ओर पेड के नीचे लाकर स्टेंड पर लगाने तक आँखों से पानी बहने ही नहीं लगा बल्कि बिलख-बिलखकर रुलाई भी फूट पड़ी। सारा माहौल, सड़क, पेड़-पौधे, बाईं ओर वाला चामुंडी पहाड़, ऊपर आकाश सभी मानो दुःख के पारावार में डूबे हुए हो, ऐसी भावना के साथ गले से रुलाई की आवाज़ भी फूटने लगी। उस प्रदेश में लोगो का आना-जाना बिलकुल कम था। फिर भी वाहनो का संचार करने वाले या कोई इक्के-दुक्के पैदल राहगीर देख लेंगे और पूछताछ करने लगेंगे, इस बात का संकोच छोड़कर दो मिनट खुलकर खूब रो लिया। फिर पेंट की जेब से रूमाल निकालकर आँखे पोंछ लीं। आँखों का पानी साफ़ हो गया और सड़क स्पष्ट दिखाई देने लगी। पुनः स्कूटर स्टार्ट करके आगे निकलते समय फव्वारे वाले तालाब के बाँध पर पत्थर की बेंच पर बैठने का मन हुआ। दायीं ओर घुमाया। छायादार पत्थर की बेंच मिली। बगल में स्कूटर खड़ा करके जब बेंच पर जा बैठा तब भी मन इस अवस्था में था कि कुछ सूझ नहीं रहा था, उसमें गति नहीं थी, किसी चीज के लिए वहाँ आकर्षण नहीं था। सामने तालाब का पानी यों सपाट था कि उसमें कहीं आधे इंच की भी लहरें नहीं थीं। पेड़-पौधे, धूप आदि

मानो सारे के सारे समस्त कल्लोल को आत्मसात् करके निश्चल स्थिमितावस्था में हो। कुछ समय बाद घड़ी देख ली। पौने तीन बजे थे।

तभी उसे अहसास हुआ कि अब तक दोनों गाल चरचराने लगे थे। उठकर स्कूटर के आईने में देख लिया। दोनों गालों पर लाल खरोंच के निशान उभर आए है। इस हालत में दफ्तर जाना ठीक नहीं लगा। सोचा कि रात के डिनर के लिए भी कोई बहाना बनाना कैसा रहेगा? किसी होटल में रखा है। तब तक सूजन कम नही होगी। फिर भी अगर भरपूर स्नो लगाकर ऊपर से पाउडर का हल्का-सा लेप कर लेने से कैसा रहेगा? यह उपाय सूझा। कभी पाउडर डालने की आदत नही और आज डाल लूँ तो क्या समझेंगे—खासकर राममूर्ति! अगर अभी फोन कर दूँ कि मुझे अर्जेट मंड्या या किसी और जगह जाना पड़ा है, रात को लौटकर आने की संभावना नहीं! लेकिन सोचा कि व्यवहार चाहे कितनी ही निष्ठा और तृप्ति के साथ क्यों न संपन्न हो, किंतु भोज-सत्कारों मे ही सम्पर्क बढ़ता है। मेरे और उसके बीच व्यवहार से अलग कोई बात हुई ही नहीं। इस बात [illegible] होने से कार्यक्रम रद्द करने का मन नहीं हुआ। लेकिन एक पल बाद एक बाधा दिखाई पड़ी, वे एक एक्सपर्ट डाक्टर हैं; कैसा ही स्नो-पाउडर लगाने पर भी उनकी नज़र से कैसे बचा जा सकता है? इसी सोच में आईने के सामने दो मिनट खड़ा रहा।

फिर फैसला किया कि किसी तरह इससे निपट लूँगा; जिसे स्वीकार किया है उसे रद्द नहीं करूँगा। स्कूटर चढ़कर मृगालय के सामने वाले होटल से दफ्तर को फोन किया, "सिर मे कुछ दर्द हो रहा है, जुकाम है। अब दफ्तर नहीं आऊँगा। शाम के साढ़े सात बजे आऊँगा। डॉ० राममूर्ति मेरी तलाश में आएँगे। अगर वे मुझसे पहले आ जाएँ तो उन्हें बिठाइए।" फिर याद आया कि राममूर्ति आठ बजे आने वाले हैं। इतने सालों से अमरीका में रहने की आदत बना ली है। जो समय दिया हो उसमें देर होना संभव नहीं। उस समय से पहले भी नहीं आएँगे। पिछले चौबीस दिन से देख रहा हूँ।

वहाँ से सीधा अपने घर आया। अपने पास कोई पुरानी जो क्रीम थी उसे जलते गाल पर लेप करके चित लेट गया। करवट लेकर गाल को तकिए से दबा-कर लेटने में ज्यादा जलन होने का अहसास हो रहा था। यों ही आँखें बंद कीं। सहसा अपनी पत्नी की याद हो आयी। जो मर गए हैं उनकी याद में शोक का पुनरावर्तन करना बेकार है—इस विचार से जब कभी उसकी याद आती थी तब मन को प्रयत्नपूर्वक दूसरी ओर मोड़ देता था। अब तो छह वर्ष पुरानी घटना है। यों सताने वाली याद आती ही नहीं थी। लेकिन, अब उसका चेहरा आँखों के सामने साफ़ नज़र आ रहा था। बिरले ही उसे गुस्सा आता था। आता भी हो तो वह उतना उग्र नहीं होता था। डायन बनना तो उसके स्वभाव में

ही नहीं था। चुस्ती कम थी। लेकिन हमेशा शांत, सहनशील स्वभाव था। नाहक क्यो याद सताती रहे इसलिए अपने साथ खिंचवाई गई उसकी बड़ी तस्वीर को दीवार पर टाँगने के बदले अलमारी में रखी पुस्तकों की कतार पर रख दी थी। उठकर उसे निकाला और उस चेहरे को देखते खड़ा रहा। लगा कि किसी को कभी उँगली उठाकर भी मारना उसके लिए संभव नहीं था।

एक दिन बंबई के अपने फ्लैट के नीचे सड़क पर दो मजदूर आपस में मार-पीट कर रहे थे। बालकनी से उन्हें लडते देखकर दौडकर आई थी और मुझे हाँक लगाते हुए रो पड़ी थी। पाँच मिनट उस तस्वीर को घूरता रहा फिर उसे यथा-स्थान रखा। एक नंबर पर फैन चालू करके कपड़े बदलकर चित लेट गया। जब आँखें बंद कीं तो मन समीक्षा करने लगा कि यह राक्षसी सलूक क्या इसका स्वभाव है या···या···।

एक और बात ध्यान में आयी। मैं काफ़ी शांत था, बड़े धीरज के साथ पेश आया; फिर भी मन घायल हुआ है। इस बात से इंकार करूँ तो वह झूठ होगा। लेकिन राक्षस की तरह पीटकर सिर पर जो रसम् और दही उँडेला है, उसके मन को क्या पीडा नहीं हुई होगी? इस समय, घड़ी देख ली, चार बजा है, उसकी मानसिक स्थिति कैसी रही होगी? जो लोग एकदम अनाड़ी हैवान होते हैं केवल उन्हीं लोगों को दूसरों को पीटने के बाद भी पीडा नहीं होती। अमू शांत मिजाज नहीं है; लेकिन सूक्ष्म, अति सूक्ष्म संवेदनशील है; साथ-ही-साथ बहुत तेज, और विश्लेषण शक्ति वाली है। लगा कि इस समय अपने से भी अधिक पीड़ा उसको हो रही होगी। सोचा, घर पर फोन होता तो कितना अच्छा था। घर पर फोन न लगवाने का एक कारण तो यह था कि दिन-रात की परवाह न करके कारोबारी लोग घंटी बजा-बजाकर तंग करेंगे; लेकिन दूसरा कारण यह भी था कि जब तक अपना कारोबार ठीक तरह से जमता नहीं, तब तक दो-दो फोन रखने की फिजूलखर्ची क्यों?

मन में विचार आया कि किसी दुकान से उसे फोन करूँ? हाँ, करना चाहिए, इस निश्चय के साथ वह उठ बैठा। तभी उसके मन में यह बात आई कि अगर इतनी जल्दी करूँ तो शायद उसकी लहर उसी प्रकार ही होगी, और अधिक चिढ़ जाएगी। मेरा फोन भी चिढ़ा सकता है। इसलिए नहीं। वह पुनः लेट गया। गलती करती है; पछताती है। पुनः गलती न करना ही पछतावे की सच्ची पहचान है। लेकिन उससे भी अधिक भारी प्रमाण में पुनः वही गलती दुहराती है। इतनी भी समझ नहीं? मैं जितना धीरज रखता हूँ उतनी उसकी चिढ बढ़ जाती है। उलटा अगर मैं चिढ़ जाऊँ तो? इसी ऊहापोह में सोमशेखर का मन उलझ गया। हाँ, जब वह बेकार ही चिढ़ने लगती है तब मैं धीरज के साथ समझाने की बात करता हूँ तो वह और चिढ़ती है। इसके बदले अगर मैं

भी चिढ़ जाऊँ तो ? वह सोचने लगा। चिढ़ने का मतलब है, डाँटना, फटकारना, चुभती बात करना, अहंकार में फूलकर हुंकारना। चिढ़ने का स्वाँग रचा जा सकता है, वास्तव में चिढ़ना संभव नहीं। स्वाँग रचना यानी तार्किकता के दायरे मे ही रहना पड़ता है। उसमें ऐसी गरमी नहीं आ सकेगी जो उसे स्पर्श कर जाए। जब अहसास हुआ कि दरअसल प्रतिक्रिया का कोई मार्ग ही नहीं सूझता तब लगा कि शायद पुन: कभी ऐसा मौका हो न आए। अगर मैं उसके घर जाना ही बंद कर दूँ तो ! अब तो बंद हो ही गया--मन में यह निर्णय झाँकने लगा। लेकिन साथ-ही-साथ यह प्रज्ञा भी जागी कि जब तक उसके गर्भ का कोई ठिकाना नहीं लगता तब तक उसके यहाँ आना-जाना बंद करना अपनी जिम्मेदारी से मुँह मोड़ना होगा। इसके लिए क्या समाधान है ? इस प्रश्न के समाधान में सोमशेखर उलझ गया।

चुपचाप लेटा रहा। थोड़ी देर के लिए आँख लग गई; सिर्फ पंद्रह मिनट के लिए। जागने पर भी करवट लिए बिना चित लेटा रहा। तब तक पौने सात बज गए थे। गालों पर केवल ठंडा पानी छिड़क लिया। माथा, आँख, नाक आदि अच्छी तरह साबुन लगाकर धो लिया। दोपहर अमृता के घर में शिकाकाई के धुले बालों मे तेल डालकर बाल काढ लिए। सारे मुह पर स्नो लगाकर पसीने वाले पाउडर की एक हलकी-सी परत चढ़ाकर दर्पण मे देख लिया। फिर भी गालों का फर्क दिखाई दे रहा था। एक और उपाय सूझा। थोड़ी-सी सर्दी हुई है। वातावरण में अगर जरा-सी भी आर्द्रता रही तो माइनस् होने का बहाना बनाया जा सकता है। इस इरादे से एक लंबे गुलूबंद से दोनों गाल ढक लिए। एकदम ठीक लगा। धुलकर आए हुए कपड़ो मे से अच्छा-सा पेंट और शर्ट निकालकर पहन लिया। स्कूटर को घर पर ही छोड़कर ऑटो [illegible] पौने आठ बजे दफ्तर पहुँचा। उनकी पूछताछ के पहले ही उसने अपनी ओर से सारा विवरण दे दिया। इसलिए डॉ० राममूर्ति ने शंका व्यक्त नहीं की। सोमशेखर जान गया कि नाहक दूसरों के मामले में दखल देने की हिंदुस्तानियों की आदत अपने अमरीका के अनुभव के अनुसार उन्होंने छोड़ दी है। गुलूबंद लपेटकर ही नीचे उतरकर कार में उनकी बायीं बगल में जा बैठा। राममूर्ति ने कहा, "पहाड़ी वाली होटल मे टेबुल रिजर्व करने के लिए फोन किया है। वहीं चलेंगे।" यह उनकी मर्जी और रुचि की बात थी। "फाइन्" सोम ने सिर्फ़ इतना ही कहा। जब कार अमता के घर के सामने से गुज़र रही थी तो उसका कलेजा मुँह को आ गया। पहाड़ चढ़ते समय भी मन न जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा था। यों तो म[illegible]ली वार्तालाप उल्ला[illegible]यी था। अपना पेशा, अमरीका का जीवन-विधान, अच्छी आमदनी के बावजूद पति-पत्नी के बीच का एकाकीपन, बच्चों पर अमरीकी संस्कृति का प्रभाव आदि बातें वे बड़ी आत्मीयता के साथ कर रहे थे। भोजन से पहले ड्रिंक्स लेने की उनकी भी

आदत नहीं थी। सोमशेखर का 'चलता है' जैसा नाता था, कोई खास रुचि नहीं थी। फिर भी होटल के बाहर बेंत की कुर्सी पर बैठकर चुस्की लेते हुए दो घंटे बिताए। फिर भीतर जाकर खाने बैठ गए। अब तक दोनों में स्नेह और अनौपचारिकता का खासा नाता जुड़ गया और इसीलिए बातों-बातों में कुछ ज्यादा ही खा गए। भोजन के बाद भी बातें करते रहे। जब दोनों ने घड़ी देखी तो साढ़े-ग्यारह बज रहे थे।

कार में बैठकर पहाड़ उतरते समय भी उनमें बातें चल रही थीं। लगभग दो मील तक उतरने के बाद पूर्व दिशा में बायीं ओर मुड़ने पर दूर के चढ़ाव पर खड़ी कार पर पहले सोमशेखर की दृष्टि पड़ी। बहुत दूर थी। कार की सिर्फ़ छत दिखाई दे रही थी। फिर भी वह तुरंत पहचान गया कि उसी की है; मन में तुरंत विचार कौंध गया कि रिवाल्वर लेकर आई होगी। दिल धड़कने लगा। तब तक कार की आकृति साफ नज़र आने लगी थी। अपनी कार की तेज रोशनी की चकाचौंध में वह पुराना रंग तुरंत पहचाना नहीं गया; लेकिन विश्वास दृढ़ हुआ कि कार उसी की है। इतने में उस कार की फ्लड् लाइट जल उठी। उससे राममूर्ति, जो अपनी कार चला रहे थे, सहसा चौंधिया गए। आमने-सामने दो रोशनियों के टकराव से बचने के लिए राममूर्ति ने कार की रोशनी बुझा दी और सामने खड़ी कार की रोशनी में रास्ता टटोलते हुए धीरे से निकले। उस कार को पार करने के बाद अपनी बत्ती जलाकर कार की गति बढ़ाते हुए बोले, "दूसरों को तकलीफ़ होती है इस बात का अहसास हम भारतीय लोगों को नहीं होता।" सोमशेखर समझ गया कि सामने आने वाली गाड़ी के लोगों की नजर से बचने के लिए ही अमृता ने ऐसा किया है। राममूर्ति से कहकर वहीं उतरकर अमृता से बातें करने को उसका मन हुआ। आत्महत्या की तंद्रा में रहने वाली पता नहीं कब ट्रिगर दबा ले! डर गया। रोकने को कहा जाए तो ये यों ही नहीं रोकेंगे। जहाँ वह कार खड़ी है वहाँ तक लाकर छोड़ेंगे। उससे परिचय करेंगे, फिर जलजा···ऊँहूँ ठीक नहीं होगा। इस विचार से वह चुप रह गया। उसके घर के सामने से गुजरते समय बंद गेट दिखाई पड़ा।

"बड़ी देर हो गई, सॉरी। लेकिन आपकी कंपनी मुझे बहुत पसंद आई, मैं पसंद करता हूँ। ऐसे और मौके मिलते रहें।" राममूर्ति ने सोमशेखर को उसके घर के सामने उतारते हुए कहा। और वे जलजा के घर की ओर निकल गए। उनके जाते ही सोमशेखर ने तुरंत सीढ़ियाँ चढ़कर अपने घर का दरवाजा खोला। स्कूटर की और स्कूटर के अपने हिस्से वाले गराज की चाभी लेकर हेलमेट पहनकर बाहर निकला। फिर स्कूटर चढ़कर बड़ी तेजी से दौड़ाने लगा। हुणसूए मार्ग से होते हुए वहाँ से देवराज अरसु मार्ग हार्डिंज चौक, मृगालय मार्ग, आगे मोड़ पर सामने आते हुए वाहन की रोशनी देखकर स्कूटर की रफ्तार कम

कर ली। करीब आते ही सामने वाला वाहन झटके के साथ रुक गया। 'सोमु' की आवाज़ से पुलकित होकर समझ गया कि अमृता अपनी खोज में निकली है। पल-भर में कार उसके पास लाकर बोली, "तुम सीधा जयलक्ष्मीपुर वाले घर चलो, मैं वहीं आऊँगी।" स्कूटर को कुछ आगे लेकर सोमशेखर ने उसे घुमा लिया। पहले सोमशेखर को आगे बढ़ने दिया, फिर अमृता धीमी गति से उसके पीछे-पीछे चलने लगी। सोमशेखर ने स्कूटर गराज में रखा। अमृता ने कार सड़क पर ही छोड़कर उसमें ताला लगा दिया। दोनों सीढ़ियाँ चढ़कर घर में प्रवेश कर गए। दरवाज़ा बंद करते ही अमृता उल्लास के साथ बोली, "क्या हुआ जानते हो? ऊपर से आती हुई कार की रोशनी देखी। इस बेवक्त, उसी जगह कार लेकर अकेली औरत का रहना उस रोशनी में पहचाने जाने के डर से मैंने अपनी फ्लड्-लाइट जला दी। किसकी कार थी मुझे क्या पता? चौंधियाकर तुम्हारी कार की रोशनी बुझा दी गई। तुम और तुम्हारे अमरीका के ग्राहक राममूर्ति दिखाई पड़े, सोमु!" कहते हुए आगे बढ़कर सोमशेखर की भुजाएँ कसकर पकड़ लीं, "तुम्हें देखते ही मुझे लगा कि मरना नहीं चाहिए, जीना होगा। तुमसे मिलने की चाह हुई। कार कुछ आगे ले जाकर घुमाने लायक जगह पर घुमाकर सीधा निकली; दरवाजा बंद कर लेने से पहले तुम्हें पकड़ने के लिए। लेकिन तुम उससे पहले मुझे पकड़ने के लिए निकले, सोमु, सोमु!" उसकी भुजाओं में कसकर लिपटते समय अमृता के चेहरे पर मुसकान खिल गई और आँखों में पानी भर आया।

सोमशेखर उसके चेहरे को निहार रहा था। अपनी भुजाओं को पकड़े हुए अमृता के हाथों की ओर जब कनखियों से देखा तो पाया कि हाथ में चूड़ियाँ नहीं थीं, घड़ी नहीं थी, कुहनी से लेकर कलाई तक जगह-जगह खून बहने के निशान थे, घाव बन गए थे, जगह-जगह गोल-गोल सूजन थी। "यह सब क्या है?" आखों से इशारा करते हुए पूछा।

"कौन-सा?" अनजान होकर अमृता ने पूछा।

"इन दोनों हाथों के घाव!"

"ये?" हँसते हुए लापरवाही से जवाब दिया, "तुम्हारी गलती के कारण लगे हैं।"

"क्या मतलब?"

"वह बात कहते हुए भी मुझे शरम आती है। लेकिन तुम्हें जवाब दिए बिना बच नहीं सकती। मैंने दोपहर में जो राक्षसी व्यवहार किया था उसके बदले में अगर तुम दो-चार थप्पड़ मारकर, लात मारकर कमर तोड़ देते तो मुझे कितना चैन मिलता। लेकिन तुमने कभी ऐसा नहीं किया। तुमसे ऐसा करते बनता भी नहीं। जिन हाथों ने तुम्हें पीटा उन्हें सजा कौन देगा? मैंने खुद इन्हें सजा दी है,

तुम्हारे चले जाने के लगभग एक घंटे बाद। निश्चयपूर्वक कहना हो तो ठीक चार बजे।"

सोमशेखर को याद आया कि ठीक उसी समय वह अमृता की मनोदशा की कल्पना कर रहा था, "किससे मार लिया ?"

"कुत्ते की साँकल से। मुझे पूरी तरह याद है। तुम्हारे एक-एक गाल पर मैंने सात-सात थप्पड़ मारे हैं। जब बुद्धि पर राक्षसी गुण सवार होता है तब भी मेरी स्मरण-शक्ति घटती नहीं। और तेज हो जाती है। इसलिए इस हाथ को चौदह उस हाथ को चौदह गिन-गिनकर मार लिए।" उसके चेहरे पर मासूम खुशी दिखाई दे रही थी।

सोमशेखर ने अपनी कलाई घड़ी देखी। पौन बजा था। तुरंत उसने पूछा, "लोहे की साँकल और वह भी कुत्ता बाँधने वाली! खून बह गया है, मांसखण्ड निकल पड़े हैं, बीस, तीस, चालीस जगहों पर। एंटी-टाइटनिस सुई लगवा ली ? अभी चलो। डाक्टर मेरे परिचित हैं। जगाकर लगवा दूंगा।"

"श् श् श्। तुम्हारी अमू मरेगी नहीं। मरने की शक्ति न उनमें है और न मारने की शक्ति टाइटनिस में है। मैं यहाँ बातें करने के लिए आई हूँ; डाक्टर के यहाँ जाने के लिए नहीं।" उसने विरोध किया।

"पास में ही एक डाक्टर रहते हैं, मेरे परिचित हैं। चलो, कार स्टार्ट करो। लौटकर बातें करेंगे।" कहकर उसे ठेलते हुए बाहर ले गया और दरवाजे पर ताला लगा दिया। ओंटिकोप्पलु के इलाके में ही डाक्टर का घर और क्लिनिक दोनों थे। सोमशेखर के जाने-पहचाने। सोमशेखर ने बताया कि बाड़ा लगवाने के लिए लाया गया कँटीला तार का बंडल गिरने से ऐसा हुआ है। बिना कुछ कहे डाक्टर मान गए और इंजेक्शन दे दिया। घाव जल्दी भरने के लिए एक और इंजेक्शन लगाया। खाने की गोलियाँ, लगाने के लिए मरहम भी दिए। उनके माँगे बिना सोमशेखर ने उनके हाथ में पचास रुपए रखकर इस बेवक्त के कष्ट के लिए क्षमा-याचना करके अमृता के साथ लौट पड़ा।

कार चलाते समय वह बोली, "मेरे दोनों हाथों के घावों में जो पीड़ा हुई उससे शायद जी नहीं भरा इसलिए उसमें इंजेक्शन की पीड़ा और जोड़ने के लिए मुझे यहाँ ले आए। तुम्हारी नीयत मैं अच्छी तरह जानती हूँ।" लौटकर जब वे घर पहुँचे तब दोनों सोमशेखर के पलंग पर बैठ गए। अमी सोमशेखर के सिर से गले तक बँधा गुलूबंद देखकर बोली, "कार में जब तुम दोनों को देखा तब यह गुलूबंद दिखाई पड़ा था। मैं तुरंत समझ गई कि तुमने क्यों बाँध रखा है। रिवाल्वर में भरी गोली की ताकत कुछ भी नहीं है। ऐसी शर्म आयी मुझे।" उसने दोनों हाथ उठाकर गुलूबंद खोल दिया। खरोंच नरम पड़ गई थी। फिर भी साफ दिखाई दे रही थी। उसी को घूरते हुए बोली, "तुमने कहा कि कुत्ते की साँकल

में टाइटनिस विष का भय रहता है। लेकिन तुम्हें मारने वाली इन उँगलियों में" अपने दाएँ हाथ की चारों उँगलियाँ सामने बढ़ाकर दिखाते हुए बोली, "कार्कोटक विष का लेप है। इन चारों को काट दिया जाए···" कहते हुए उसने अपना हाथ पलँग पर जोर से दे मारा।

"अरे, पागल मत बनो !" गुस्से में आकर सोमशेखर ने उसके गाल पर एक चपत रसीद कर दी, लेकिन उसके हाथ को अपने हाथ में लिया।

अमृता क्षण-भर सोमशेखर का चेहरा घूरती रही फिर चिढ़कर बोली, "तुम्हें गुस्सा आया है, लेकिन मारने की शक्ति तुम्हारे हाथों में नहीं है। कितनी तेजी से टूट पड़ने के लिए हाथ उठा था, लेकिन निशाने तक पहुँचते-पहुँचते वह इस तरह बनावटी मार बन जाती है जैसे तीन माह के अबोध शिशु के गाल पर माँ की उँगलियाँ आघात करती हैं। आवाज़ भी नहीं होती। प्यारा-सा स्पर्श मात्र बन जाता है।" उसने अपने मुँह को सोमशेखर के सीने पर टिका दिया।

सोमशेखर उसकी पीठ सहला रहा था। कुछ समय बाद अमृता सोमशेखर की पीठ सहलाने लगी। फिर उसके सीने पर हाथ फेरने लगी। अपने स्पर्श के लिए बाधक बने शर्ट के बटन झटपट खोलकर सीना मसलना शुरू किया। सोमशेखर इशारा समझ गया। लेकिन मन में चाह नहीं थी। इतने सारे मानसिक ऊहापोह के बाद मानसिक स्थिति अभी पूरी तरह सामान्य नहीं हुई थी, तब उसे यह असंभव-सा लगा। अमृता का हाथ रोककर बोला, "अभी नहीं। मन नहीं करता।"

अपने मुंह को सोमशेखर के खुले वक्ष पर टिकाकर वह फुसफुसायी, "अगर तुमने सच्चे दिल से मुझे माफ कर दिया है तो तुमसे संभव हो सकेगा। मेरे राक्षसीपन की ओर ही यदि तुम्हारा ध्यान है तो स्वीकृति कष्टदायक होगी। यह राक्षसी नहीं, तुम्हारी प्यारी अमू है, यह भाव अगर मन है तो उत्साह अपने आप उमड़ पड़ेगा।" लगा कि हमेशा इसकी यही बात होती है : बांधना, फँसाना, पिंजरे में बंद करना। लेकिन इतनी ही तेजी के साथ उत्साह फूट पड़ा। स्वीकार करने की, समर्पण की, मार्दवता की, मृदुता की, दूरी को पाटकर निकटता में तिरोभूत होने की लहर उमड़ पड़ी। दोनों को ऐसे जोश ने आ घेरा जहाँ कड़वाहट की याद नहीं थी। खेद, विषाद आदि स्मृतियों की छाया तक नहीं थी। गालों की वेदना, कुहनियों की पीड़ा आदि किसी का अहसास नहीं था।

अमृता जब सोमशेखर के घर से निकली तब साढ़े आठ बजे थे। निकलने से पहले, "आज दोपहर आ जाओ, बहुत सारी बातें करनी हैं। सिर्फ बातें, और कुछ नहीं।" शरारती गुस्सा दिखाकर नीचे उतर कर चली गई।

बच्चों को स्कूल छोड़कर आयी। कालेज में फोन करके छुट्टी ले ली।

पुट्टम्मा और महादेवम्मा से अपने को बीच में बाधा न डालने की हिदायत देकर अपने बेडरूम का दरवाजा बंद करके साढ़े बारह तक अच्छी नींद ली। मोहार का इण्टरलाक डालकर जाने के लिए नौकरानियों से कहा था। जागते ही उठी और अपनी चाभी से लाक खोला। फिर नहाकर दोनों के भोजन की व्यवस्था करने तक सोमशेखर आ गया। खाने के लिए बैठते ही वह बोली, "पता है रात में क्या हुआ ? विजय आधी रात मे जाग गया। परसों रात की तरह। उठकर मेरे कमरे में आया। मैं नही थी। फिर रसोई-घर, लाउंज, गेस्ट रूम, दूसरा रूम, लाइब्रेरी इस तरह उसने सारा घर छान मारा। घर पर बाहर से ताला पड़ा था। डरकर ऱट गया। उसे नीद नहीं आ रही थी, बेचैन हुआ। जब मैं घर पहुँची तब पौने पाँच बजे थे। कार की आवाज़ सुनते ही दौड़कर खिड़की मे आ खड़ा हुआ। रोते हुए पूछा, 'कहाँ गई थी ?' 'मर्द बच्चे होकर रोते हो ?' मैंने डाँटा। 'हाथो में घाव थे न, बेहद दर्द होने लगा था। तुरत इंजेक्शन न लेती तो टाइटनिम हो जाता, मर जाने का डर हुआ। इसलिए डाक्टर की तलाश मे गई थी। डाक्टर को जगाकर उनके क्लिनिक जाकर मरहम-पट्टी-इंजेक्शन वगैरह लेकर आने में इतनी देर हो गई'—यह सफाई देकर उसे उसके बिस्तर पर सुलाया।"

"हाथों के घाव क्या उसने शाम को ही देखे थे ?"

" 'क्या हुआ है माँ'—उसने पूछा था। 'पिछवाड़े के बाड़े का कटीला तार निकल गया था। उसकी मरम्मत करने के लिए दोनो हाथों से खींचने गई तो चोट लग गई'—उससे मैंने कहा था। उसने पूरी तरह विश्वास किया था। आधी रात को जागकर माँ को ढूंढने की उसकी आदत-सी बनती जा रही है। छुड़ानी पड़ेगी।"

खाना खाकर दोनों उसके बेडरूम में जाकर एक साथ सो गए। करवट लेकर सोते समय गालों पर तकिए का दबाव न पड़े इसकी सावधानी सोमशेखर को लेनी थी। अमृता केवल चित होकर ही सो सकती थी करवट लेकर नही। दोनो कुहनियों का कोई भी भाग अगर बिस्तर या कपड़े को स्पर्श कर जाता तो जान-लेवा दर्द होने लगता था। डाक्टर के पास जाकर बेंडेज लगवाने के लिए वह तैयार नहीं हुई। खुद मरहम लगा लिया था। "सुनो" उसने बातों की शुरुआत की, "कल तक तुम्हें सोमु कहा करती थी। यों कहने में प्यार, स्नेह, निकटता का भाव आदि सभी की अभिव्यक्ति होती थी। लेकिन आज सवेरे से क्या महसूस होने लगा है, पता है ? तुम्हें मुन्ना कहकर पुकारने को मन करने लगा है। लग रहा है कि इसी संबोधन से मेरी सारी भावनाएँ अधिक-से-अधिक संपूर्ण रूप से व्यक्त हो सकती हैं। तुम मेरे मुन्ने हो, मेरे नन्हे मुन्ने, भोंदू मुन्ने।" दर्द में भी करवट लेकर सोमशेखर के चेहरे पर हाथ फेरते हुए उठ बैठी। अपनी छाती से आँचल हटाकर उसका सिर उठाकर यों सुला लिया कि उसका मुंह अपनी छाती

में दब जाए । फिर, नौनिहाल बच्चों को थन पिलाने के अंदाज में उस पर आँचल ढँककर जाँघ हिलाती हुई सुरीली आवाज में लोरी गाने लगी, "सो जा, मेरे राज-दुलारे, सो जा ।" सोमशेखर को ऐसा अनुभव हुआ जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था । दिल भर आया, शैशव की जड़ें भीग गई—इसी भावविभोर अवस्था में उसने आँखें बंद कर ली । गाना पूरा कर लेने के बाद भी सुर का आलाप करती हुई जांघ को झुलाते हुए मानो अपने आपमें कहने लगी, "कल मुझसे पिट कर जाते समय तुम्हारा चेहरा उस छोटे बच्चे की तरह हो गया था जिसे माँ का सहारा न हो, जो अपने अस्तित्व की कल्पना भी न कर सकता हो । क्या तुमने प्रतिरोध किया ? पूछा कि तुम कौन होती हो मुझे पीटने वाली ? क्या तुमने मुझे धक्के देकर दूर ठेला ? पीटोगी भी तो तुम मेरी माँ हो, फट-कारोगी भी तो तुम मेरी माँ—इस भावना से दौड़कर पीटने वाली माँ से जैसे बच्चा लिपट जाता है उसी तरह तुम्हारा चेहरा बना था । राक्षस की तरह रसम्, दही, भात तुम्हारे सिर पर उँडेलने पर भी, मुन्ने, कल मैंने वास्तव में राक्षस जैसी क्रूरता दि[illegible] तुम बेमौत मारे गए, लेकिन उसी के फलस्वरूप मुझे यह मुन्ना मिला ।" झुककर आँचल में छिपे सिर के तीन-तीन बार जोर के चुंबन लिये । "वरना मुन्ना सोमु बनकर ही रह जाता । सोमु कहने में दूरी, चंद्रमा जितनी दूरी । देखने में सुहावना, लेकिन पहुँच के बाहर । पीछे-पीछे दौड़ाते रहने वाले सपने के खेल की तरह । लेकिन यह मुन्ना ऐसा नहीं । जाँघों पर सुलाकर इस तरह बाँध कर रखा जा सकता है कि कहीं भाग न जाए। हाथ छोड़ने पर भी कहीं भाग नहीं सकेगा । आँचल में उलझा ही रहता है । है न ? सच है न, बताओ, सच बताओ ।" अमृता की बातों में पूरी तरह लीन सोमशेखर ने बस 'हूँ' कहा ।

अपने और सोमशेखर के संबंध के नए स्वरूप की उपपत्ति की भावना में अमृता बेसुध होकर आँखें बंद करके बैठी रही । एक हथेली सोम[illegible]र की पीठ पर थी, दूसरी पर सिर टिका था । मन में परिपूर्णता का भाव, मानो अब कभी शून्य-भाव व्यापेगा ही नहीं, उसके लिए गुंजाइश ही नहीं । इस समय ऐसा परि-पूर्ण भाव भरा था उसके मन में । ऐसी ही भाव-ऊर्मियों पर चढ़ती-उतरती अमृता बड़ी देर तक बैठी रही । सोमशेखर भी निश्चल लेटा था । तभी अमृता ने पूछा, "कितने बजे जाना है तुम्हे ?"

"वे बेंगलूर गए हैं । सोमवार को लौटेंगे । तब घंटे की बैठक काफी होगी । सोमवार की रात को लौटकर व मंगलवार की सुबह हवाई-[illegible] से बंबई होते हुए अमरीका चले जाएँगे ।" सोमशेखर ने बताया ।

"देखो, अपने काम से गाफ़िल मत हो जाना । तुम्हारे काम में अगर रुकावट आ गई तो मुझे बहुत दुःख होगा । सवेरे कितने बजे तक सोये ? नींद अच्छी आई ?"

"तुम्हारे चले जाने के बाद जो सोया तो दस बजे तक बेखबर सोता रहा।" इस बात पर अमृता ने शरारत से उसकी पीठ पर मुक्का मारकर 'अई' कहा। सोमशेखर उसके इस ध्वनि-संकेत को समझ गया।

"सुनो, तुमसे बहुत सारी बातें कहने का मन है। तुम्हारे बिना और किसको सुनाऊँ? और किसी को सुनाना क्या संभव है? अब जो समस्या उत्पन्न हुई है उसके बारे में खूब सोचा है। पता नहीं मैंने सोचा या उसने सोचने पर मजबूर किया, दरअसल जब तक वह है तब तक मेरे मन में दूसरी और कौन-सी बात आ सकती है? गर्भपात की बात से ऐसा अहसास होने लगता है जैसे मेरे भीतर के प्राण को बाहर निकाल दिया जायेगा। उसके बदले मर जाना आसान है। लेकिन इसे बचा पाना भी संभव नहीं। मेरी छीछालेदर करने के लिए रंगनाथ की दीदी इसे एक हथियार बना लेगी। रंगनाथ कुछ नहीं कर पाएगा। व्यभिचार के आरोप पर तलाक की माँग कर सकता है। खुशी से तलाक दे दूँगी। लेकिन ये दोनों बच्चे क्या सोचेंगे यही बड़ा प्रश्न है। दूध पीते बच्चे नहीं हैं। वह साढ़े आठ का है और यह पाँच का। दोनों काफी समझदार हैं। बड़े के मन के भीतर ही भीतर बाप के प्रति लगाव है। ऐसी हालत में इस बच्चे को उन दोनों ने दूर किया तो? मेरे मन में एक और बात है, अब जो बच्चे है, क्या वे काफी नहीं है? गर्भपात कराने का मैंने फैसला कर लिया है।"

"कब फैसला किया?" उठकर उसके कंधे पर हाथ रखकर सोमशेखर ने पूछा।

"कल! अपने आपको साँकल से मार लेने के बाद जब शांत हुई तब।"

"सब शांत हो जाने के बाद भी कल रात पहाड़ पर क्यों गई थीं?"

"मेरे मन की विचित्रता तुम समझ नहीं पाओगे। जब पेट में भ्रूण हो तब मेरा आत्महत्या करना संभव नहीं था। क्योंकि भ्रूण की हत्या होती। जब उसे निकलवाने का फैसला किया तब लगा कि किसी भी तरह उसकी हत्या तो हो ही जायेगी। मेरी हत्या के साथ अगर उसकी भी हत्या होती है, उससे कोई अतिरिक्त पाप नहीं होगा। लेकिन, कल जो शून्य-भाव व्याप गया था उसके लिए यही एक कारण नहीं था। दोपहर को तुम्हारे साथ जो क्रूर और हिंसात्मक व्यवहार किया था वह भी एक कारण था। उस पाप को ढोते हुए जीवित रहना असंभव-सा लगा। रिवाल्वर हाथ में लेकर ट्रिगर दबा लेना बहुत आसान है; लेकिन उसके लिए मन का संपूर्ण रूप से तैयार हो पाना क्या उतना आसान है? छटपटाहट, बेचैनी, मजबूरी इसी बिंदु पर होने लगती है। लेकिन कल ऐसी छट-पटाहट, बेचैनी रत्ती-भर भी नहीं हुई। तुम्हें पीडित-प्रताड़ित करने का पाप-बोध आत्महत्या के बिंदु तक ले जाने के लिए पर्याप्त था। कल की भाँति आसानी से ट्रिगर दबा लेने की मानसिक स्थिति इतने सालों में कभी प्राप्त नहीं

हुई थी। मैंने वहाँ पहुँचकर कार रोकी ही थी कि तभी पहाड़ के सन्नाटे में कहीं दूर पर वाहन चलने की आवाज़ सुनाई दी। चढ़ रहा था या उतर रहा था पता नहीं चला। जो भी हो, उसे उसी रास्ते से गुजरना था। उसके निकल जाने की प्रतीक्षा में रुकी रही। कुछ ही समय में तुम्हारी कार ऊपर से आयी। मेरी कार की रोशनी में मफलर में लिपटा तुम्हारा चेहरा दिखाई पड़ा। तुम्हारी कार की फ्लड् लाइट अगर बुझाई न गई होती तो मुझे कुछ भी दिखाई न पड़ता। सामने से मेरी कार की सीधी रोशनी पड़ने के कारण तुम्हारी कार धीरे चल रही थी। अगर तेज रफ्तार से चलती तब भी शायद तुम्हें पहचान न पाती। इतने सारे अचानकों के साथ तुम्हारा चेहरा देखते ही मरने की मेरी सारी इच्छा एकदम काफूर हो गई। पल-भर में क्या विचार आया, पता है? अचानक अगर मैं मर गई, बीमारी-वीमारी से नहीं, दुर्घटना से नहीं, आत्महत्या करके मर गई तो उसका तुम पर क्या परिणाम होगा? यह प्रश्न सताने लगा। पुलिस का डर नहीं था। उनके लिए चिट्ठी लिखकर पर्स में रखी थी। यह काम मैं हमेशा करती हूँ। तुम्हारे नाम पर भी एक चिट्ठी लिखकर पोस्ट की थी न, ताकि वक्त पर काम आए। मुझे लगा कि अगर मैं आत्महत्या करके मर जाऊँ तो क्या यह व्यक्ति जिसका नाम सोमशेखर है—शांति से जी पाएगा? इसका अपना कौन है? मेरे बिना इसकी देखभाल कौन करेगा? तुरंत मैंने कार स्टार्ट की, वापस घुमाने के लिए सुविधाजनक जगह पाने तक आगे बढ़ती रही।" इतना कहकर वह चुप हो गई। फिर सहसा अपने जोश की दिशा बदलते हुए बोली. "एक बात ध्यान रखो। जब तक एक अच्छी लड़की से तुम्हारा ब्याह न करा दूँ तब तक मुझे आत्महत्या करने की आजादी नहीं। यही तुमसे मुझे मिला हुआ वरदान है।' हाथ बढ़ाकर सोमशेखर की नाक कसकर मरोड़ दी।

एक और बात ध्यान में आते ही संजीदगी से बोलने ल[illegible] "अब जो गर्भ ठहरा है वह तुम्हारी गलती नहीं है। दो बच्चों को जन्म देकर इतनी उम्र हो जाने के बाद भी मैं एक नासमझ औरत नहीं हूँ। तुम भी कोई नासमझ नहीं हो। दोनों सावधान थे। लेकिन असावधानी की सीमा तक पहुँच जाते थे। जो साव-धानी की परिसीमा का निर्वाह करते हैं उनको जीवन की कौन-सी गहराई, कौन-सा विस्तार समझ में आ सकते हैं? फिर भी जानते हो मुझे तुम पर कितना गुस्सा था? धारणा [illegible]न गई थी कि अब जो कुछ हुआ है, उसके लिए तुम ही जिम्मेदार हो, सारी गलती तुम्हारी ही है। सच्चाई कुछ [illegible] होती है और समझ कुछ और कहती है। कई बार इन दोनों में मेल नहीं खाता। जब [illegible] दोनों में सामजस्य स्थापित हो जाता है तब कई बार भावना इसका अनुसरण नहीं करती, न जाने कहाँ-कहाँ भटकने लगती है। अपात्रता की जानकारी रहते हुए भी प्यार करने लगते हैं और पात्रता की पहचान होने पर भी प्यार नहीं उमड़ता, उपेक्षा

कर देते हैं। मनुष्य का यही स्वभाव है। इसी तरह कई बार मेरी बुद्धि कहती रही कि इस बेचारे की कोई गलती नही, फिर भी तुम्हारे प्रति गुस्सा कम नहीं हो पाता था। यही नही बल्कि मन को विश्वास हो गया था कि अब भविष्य में फिर कभी मेरा और तुम्हारा मिलना संभव ही नही। जब तुम्हें मेरी इस अवस्था का पता चला तब से तुमने कभी मुझ पर उस आशय की दृष्टि तक नहीं डाली। कैसे डाल सकते थे, मैं सदा राक्षस की तरह पेश आया करती थी न। कल रात जब तुम मुझे डाक्टर के घर से इंजेक्शन लगवाकर लाए तब उसी क्षण मुझे अहसास हुआ। मेरा गर्भपात करवाना पक्का हो गया। इस कारण मुझमें क्रोध को पनपाना और तुममें अपराधी भाव जगाना उचित नहीं। इन दोनों को यहीं इसी समय मारकर हमें पहले की भांति सोमु, अमू बनना होगा। तुम्हारे गालों का दर्द और मेरी बाँहों का दर्द रहते हुए भी मै इस नतीजे पर पहुँची कि जीतना हमें है, हम अपनी भावनाओं को अपने ऊपर विजयी नही होने देंगे। इंतजार कर रहा है न यह बच्चा!" छेड़ने के अंदाज में उसने हाथ उठाकर सोमशेखर के दाएँ गाल पर झूठमूठ को प्यार-भरी हल्की-सी चपत मारी और तत्क्षण याद आते ही उसके चेहरे पर वेदना उमड पडी। "सॉरी, सॉरी यार! मैं भूल ही गई थी कि तुम्हारे गालों की सूजन अभी है।" उसने झुककर जहाँ झूठी चपत लगाई थी उस जगह को धीरे से चूम लिया। "अब दर्द चला गया? कहो चला गया। वरना फिर ऐसा ही सलूक करूँगी।" कहते हुए कोई बात याद करके बोली "शायद हिडिंबा भी भीम को इसी तरह तंग करती होगी। प्यार उमड़ने पर भी मारो, गुस्सा चढ़ने पर भी मारो। काट-खरोंचकर तंग करो। वह भीम था फिर भी सह नहीं पाया और एक ही साल में उसे छोड़कर चला गया। राक्षसी का प्यार भी पीडादायी होता है, लेकिन उसके प्यार जैसी शक्ति, सयम, गहनता साधारण शांत गुण वाली नारी के प्यार में नहीं होती। मेरी कल्पना है कि हिडिंबा को भूल पाना भीम के लिए शायद कभी सम्भव नही हुआ। इस संबंध में कोई कहानी या कविता लिखने का विचार है। अपना तो यही विचार है, भई! अब किसी तुलनात्मक सूझ-बूझ रखने वाले व्यक्ति को बताना पड़ेगा कि वास्तविकता क्या है।" शरारत से आँखें मटकाते हुए अमृता बोली, "लेकिन मैं तुम्हें केवल मारती रही हूँ। कभी एक दिन भी काटा नही, खरोंचा नही, कान-नाक नही तोड़े, उँगलियाँ नहीं तोड़ीं। मेरा प्यार और भी गहन होना चाहिए न? और भी समर्थ होना चाहिए न? तुम्हीं बताओ···।" सहसा उसका ध्यान सोमशेखर के चेहरे की ओर गया। वह खोया-खोया-सा था। "ऐ, कहाँ भाग रहा है तुम्हारा मन? बंबई वाला क्या सोच रहा है, मुझे यह राक्षसी प्यार नहीं चाहिए, चार लोगों में बाँटा जाने वाला द्रौपदी का प्यार ही काफी है—यही सोच रहा था न?" वह बोली।

उसका आखिरी वाक्य सोमशेखर के कानों में पड़ा ही नहीं। अपना दाहिना

हाथ बढ़ाकर अमृता का दाहिना हाथ दबाकर पकड़कर वह बोला, "अमू, मेरी एक बात सुनो, बड़ी गंभीरता से कह रहा हूँ। उल्टा जवाब दिए बिना सुनकर उसके बारे में सोचो।"

सोमशेखर की बात की गुरुता अमृता को छू गई। उसके हाथ में फँसे अपने हाथ की पकड़ पर उतना ही दबाव देते हुए वह बोली, "कहो।"

अमृता का चेहरा घूरते हुए वह बोला, "रंगनाथ और उनकी दीदी दोनों को भूल जाओ। विजय और विकास के मन में उथल-पुथल होना स्वाभाविक है। उसे दोनों सब्र के साथ सुधार लेंगे। वे दोनों मेरे बच्चे हैं। मैं भेदभाव नहीं करूँगा। इस बच्चे को बचा लेंगे। यह मेरा फैसला है। मेरा कहा मानो।"

अमृता संजीदा हो गई। अपनी पकड़ और भी मजबूत बनाई। खामोश उसका चेहरा निहारने लगी। फिर, पास सरककर उसके सीने में मुँह खोसकर बैठ गई। कुछ देर बाद आँखें नम हो गईं। लेकिन रोयी नहीं। गर्दन उठाकर उसका मुँह देखते हुए बोली, "मुन्ने, तुम्हारी भावना मैं समझती हूँ। बच्चों का मन मैं तुमसे अधिक समझ पाती हूँ। बहुत सोचा है। अब केवल एक ही काम किया जा सकता है। यह मैसूर यों तो छोटा शहर है। किसी भी डाक्टर के पास जाएँगे तो कहीं-न-कहीं दूर के सूत्र का पता लग जाता है। तुम बेंगलूर के किसी डाक्टर से मिल कर बात पक्की करके आओ। दो-तीन दिनों के लिए बच्चों का कहीं बंदोबस्त करके छुट्टी ले लूँगी। दोनों साथ जाकर खत्म कर देंगे इसे। एक बात और है, मुझे सेंटिमेंटल कहकर डाँटना मत।"

"क्या है, बताओ।"

"एक सप्ताह और जीने दो। उसका जाना तो पक्का है, लेकिन जितने दिन हो सके रख लेने की चाह है। तब तक तुम्हें एक रेशम की साड़ी लाकर देनी होगी। उसे पहनकर हमें साथ-साथ तिरुमकूडल संगम, तलकाडु की रेत, श्रीरंगपट्टण के नदी का किनारा आदि घूमना होगा। मेरे पच्चीस तीस फोटो खींचने होंगे। तुम्हीं खींचोगे। तुम्हारे बच्चे को पेट में लिए, तुम्हारी लाई हुई साड़ी में कैसी लगूंगी यह चित्र सालों तक, जर-जर बूढ़ी होने तक मेरे पास रहे।"

सोमशेखर चिढ़ गया, "फोटो के बदले बच्चे को ही रख लेंगे।"

"मेरा कहा मानो। मुझसे ज्यादा समझदार बनने की कोशिश मत करो।" अमृता की आवाज चिढ़चिढ़ायी हुई थी।

एक दिन बेंगलूर में रुककर सारा इलाज करा लिया। दूसरे दिन दोपहर की रेलगाड़ी के पहले दर्जे की सीट में दोनों बैठ गए। सामने की सीट पर जो बैठे थे उनकी बोलचाल, साथ वाले सूटकेस, होल्डाल आदि से पता चलता था कि वे कोई उत्तर भारत के यात्री दंपति थे। इन्हें आपस में कन्नड़ में बोल लेने में कोई

दिक्कत नहीं थी। फिर भी अमृता एक शब्द तक नहीं बोली। नर्सिंग होम से होटल लौटकर उस दिन वहीं रुककर दूसरे दिन निकलने की सोमशेखर की सलाह को उसने अस्वीकार किया था। परीक्षा के काम के सिलसिले में तीन दिनों के लिए जाने का बहाना बताकर सुशीलम्मा को बच्चो की जिम्मेदारी सौंपी थी। दिन-रात यहीं रहकर घर की रखवाली करने की जिम्मेदारी नौकरानी मादेवम्मा और उसके पति ने ले ली थी। दो दिन और होटल में रुककर इलाज में कुछ गड़बड़ी हो गई तो पुनः डाक्टर से मिल लेने की सुविधा की बात पर भी अमृता ने मुंह बिगाड़ लिया था। गाड़ी छूट पड़ी।

"तुम बैठी मत रहो, लेट जाओ। मैं किनारे पर बैठ जाऊँगा।" वह बोला।

"किसी की दया की आवश्यकता नही।" उसने दो टूक जवाब दिया।

संयोग से अगर सामने वाले कन्नड जानते हों तो! सोमशेखर इस बात से आतंकित हुआ कि भाषा न समझने पर भी इसके चेहरे के हाव-भाव से भी वे समझ सकते हैं कि हममें तकरार हुई है। गाड़ी दौड़ने लगी। अमृता खिड़की से बाहर देखती रही। किंकर्त्तव्यविमूढ सोमशेखर स्टेशन से खरीदी पत्रिका के पन्ने उलटने-पलटने लगा; पांच-एक मिनट किसी लेख के पहले पन्ने पर नजर दौड़ायी।

"किसी दूसरे कैबिन मे कोई खाली जगह हो तो मैं चली जाऊँ?" अमृता ने मुड़कर तीखी आवाज में पूछा। पत्रिका बंद करके बगल में रखकर सोमशेखर चुपचाप बैठा रहा। अमृता पुनः खिड़की से बाहर झाँकने लगी। किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी। सामने वाला पुरुष उठा। निचली बर्थ पर चादर बिछाकर तकिया लगाकर बीबी के सोने की सुविधा कर दी और खुद ऊपर की बर्थ पर तकिया लगाकर लेट गया। गाड़ी जब पुनः आगे बढ़ी तब तक वे दोनों सो गए थे।

"तुम भी लेट जाओ।" सोमशेखर ने दुबारा कहा।

"मेरे बैठे रहने में तुम्हें क्या तकलीफ़ है?" आवाज़ धीमी होने पर भी उसमें फौलाद को पिघलाने वाला ताप था।

"ऐसी बात नहीं; तुम्हारे स्वास्थ्य की दृष्टि से कहा।" दंडित बालक की तरह उसकी आवाज़ बुझी हुई-सी थी।

अमृता ने जवाब नहीं दिया। खिड़की के बाहर ही झाँकती रही। चार मिनट बाद सोमशेखर की ओर मुड़कर बोली, "मेरा स्वास्थ्य—तुम पर हँसी आती है, नफरत उमड़ती है। इसीलिए बार-बार ऐसा कहते हो, है न?"

सोमशेखर जानता था कि जब वह इस तरह चिढ़ जाती है तब प्रत्युत्तर देना

समझाना, कारण बताना सब बेकार ही नहीं जाता बल्कि उससे वह और अधिक चिढ़ती है। चुप्पी साधना आरोप को स्वीकार करना है —यह बात भी साफ थी। अतः लाचारी की भावना आ जाती थी। ऐसी हालत में गर्दन झुकाकर चुपचाप बैठे रहने के सिवा कोई और रास्ता दिखाई नहीं दिया। नीची नज़र किए बैठा रहा। अमृता ने इस पर गौर किया। फिर भी लापरवाही से खिड़की के बाहर झांकती रही। गर्दन उठाकर उस ओर मुड़ना भी सोमशेखर के लिए पीड़ादायक हुआ। वह जमीन को ही घूरता रहा।

दस मिनट बाद अमृता ने जब उसकी ओर मुड़कर देखा तब भी वह उसी तरह बैठा था। अमृता तपाक से उठी। सोमशेखर के पाँवों को लाँघकर कैबिन का दरवाजा खोला और बाहर जाकर पीछे से दरवाजा बंद कर लिया। उसके चप्पलों की आहट सोमशेखर को सुनाई देती रही। शायद बाथरूम गई होगी इस विचार से वह चुप बैठा रहा। दो पल इसी तरह बीत गए। फिर कोई और विचार आ गया। यहाँ, मेरे साथ बैठने से ऊब कर शायद किसी और कैबिन में जगह ढूंढने गई होगी। महिलाओं के लिए कोई अलग कैबिन नहीं है। किसी दूसरे अपरिचित पुरुष के कैबिन में बीच रास्ते में घुसकर जगह की याचना करके बैठना कितना बुरा और असभ्य लगेगा! कहाँ चली गई? इसका पता लगाना भी अपना कर्तव्य है। उठकर होले से दरवाजा खोलकर बाहर निकला। देखा कि तीन कैबिन के उस पार तेज रफ्तार से दौड़ते हुए डिब्बे का दरवाजा पूरा खोलकर उसके किनारे पर खड़ी है। हवा के तेज झोंके से सिर के बाल, साड़ी का आँचल और चुनट पागल की तरह आपस में टकराने लगे हैं। यों तो हैंडिल पकड़ रखा है। फिर भी अगर अचानक मोड़ पर गाड़ी झुक गई और वह फिसलकर गिर पड़ी तो उसी क्षण प्राण निकल जाएँगे और देह का कचूमर बन जाएगा। सोम-शेखर का दिल धड़क उठा।

सरपट वहाँ दौड़ते गया, "यहाँ क्यों खड़ी हो? अचानक अगर हाथ छूट जाए तो?" अमृता कुछ बोली नहीं। रेल की खड़खड़ाहट के साथ हवा की साँय-साँय में शायद सुनाई ही न दिया हो; इसलिए उसने ऊँची आवाज में अपनी बात दोहरायी।

उसकी ओर मुड़े बिना वह बोली, "मैं एकांत चाहती थी, तुम क्यों मेरे पीछे-पीछे चले आए?"

"अकेले में रहना चाहती हो तो तुम कैबिन में चली जाओ; मैं यहाँ ठहरूँगा। या दरवाजा बंद करके खड़ी रहो, मैं कैबिन में चला जाऊँगा।"

"मैं जैसा चाहूँ वैसा करने की आजादी मुझे है। मुझ पर हुक्म चलाने का अधिकार किसी को नहीं। अगर मान-मर्यादा है तो दूर चले जाइए।" सोमशेखर बोला नहीं। लेकिन पास ही खड़ा रहा। "अगर आपमें गैरत है तो दूर हट

जाइए।" वह पुनः बोली।

"जब तक तुम दरवाज़ा बंद करके भीतर नही आतीं मैं यहाँ से नहीं हटूंगा।" जिद करते हुए वह बोला। तपाक् से वह मुड़ी और चुभती नज़र से उसे घूरा। वह चुप रहा। पीछे हटकर उसने दरवाज़ा धड़ाम से बंद किया, फिर चप्पल चटकाती कैबिन में चली गई। सोमशेखर वहीं खड़ा रहा। अमृता ने कैबिन का दरवाज़ा बंद कर लिया। अकेले में रहना चाहती है, रहने दो—इस विचार से सोमशेखर चुपचाप वहीं खड़ा रहा। चन्नपट्टण पहुँचकर गाड़ी थोड़ी देर के लिए रुकी और फिर चल पड़ी। गाड़ी की गति जब तेज हो गई तब अमृता कैबिन का दरवाज़ा खोलकर पुनः बाहर आयी। वह कुछ कहने के अंदाज में आ रही है, अपने को प्यार से ही जवाब देना चाहिए—इस प्रेरणा से सोमशेखर निकट आती हुई अमृता का चेहरा निहार रहा था। निकट आने पर पता चला; उसके हाथ में सौ-सौ के नोटों का एक बंडल था।

सोमशेखर की ओर हाथ बढ़ाते हुए बोली, "लीजिए।"

"क्या है?" सोमशेखर ने चौंककर पूछा।

"परसों जब हम निकले थे तब से आज तक का खर्चा। एक हजार है। कम पड़े तो बताइए और दे दूंगी।" सोमशेखर को कटार भोंके जाने का अहसास हुआ।

सोमशेखर के अनुभव ने बता दिया था कि जब कभी उसे गुस्सा चढ़ता है तब उसे कोंचने के नए-नए विधानों के निर्माण करने में उसकी बुद्धि बड़ी तेजी के साथ काम करने लगती है। अतः बड़े संयम के साथ वह बोला, "इसकी मुझे आवश्यकता नहीं है। उतना पैसा मेरे पास था, अभी है।"

"जानती हूँ कि आप एक बड़े आर्किटेक्ट हैं। यह ट्रीटमेंट मेरा अपना निजी मामला है; पर्सनल। मैं नहीं चाहती कि इसके लिए कोई खर्च करे।" उसने तत्काल जवाब दिया।

"दूसरा कोई और खर्च नहीं कर रहा है। मैं इसका एक हिस्सा हूँ। इसलिए कर रहा हूँ।" सोमशेखर ने फैसले के रूप में सुनाया।

अमृता ने भभकती आँखों से उसकी ओर घूरा। उसके होंठों में हलकी-सी थिरकन थी। फिर वह बोली, "देखिए; आप यह लेंगे या खिड़की से बाहर फेंक दूं?"

"काफी पैसे वाली हो, खिड़की से फेंक सकती हो। यह तो मामूली-सी रकम है। फेंकना चाहो तो फेंक दो। आखिर तुम्हारी ही तो रकम है।"

"आखिर मेरी ही रकम?" कहते समय अमृता की चढ़ी हुई आवाज़ काँप रही थी। भभकती निगाह को सोमशेखर के चेहरे से हटाया भी नहीं था। "लेंगे या नहीं? आखिरी बार पूछ रही हूँ।"

"नहीं।" सोमशेखर के मुँह से निकलने की देर नहीं थी कि उसने झुककर खिड़की के बाहर हाथ बढ़ाकर नोट फेंक दिये। हवा के तेज झोंके में तितर-बितर नोटों का उड़ना अमृता को दिखाई पड़ा। सोमशेखर जो भीतर खड़ा था उसे केवल फेंकना मात्र दिखाई दिया। तितर-बितर उड़ जाने की उसने केवल कल्पना कर ली। हाथ वापस लेकर वह सोमशेखर की ओर देखे बिना लौटकर कैबिन में गई और दरवाज़ा बंद कर लिया।

दौड़ती गाड़ी के भीतर दरवाजे की खिड़की से तेज हवा आ रही थी। इस सारी यात्रा और इलाज का खर्च कौन निभाए इसकी बात नहीं हुई थी। सोमशेखर ने सोचा था कि बात तो अलग रही, इस संबंध में सोचना भी दोनों घटियापन समझते थे। कम-से-कम उसके मन में तो यह विचार नहीं आया था। अब क्रोध के आवेग में ही सही अमृता का इस बारे में जिक्र करना उसे ऐसा पीड़ाकारी लगा था कि किसी ने पेट को निशाना बनाकर लात मार दी हो। न लेने पर खिड़की से बाहर फेंकने की धमकी देकर उसने जो फेंक ही दिया उससे सोमशेखर को अहसास हुआ कि मानो लताड़ के कारण भीतर की सारी अंतड़ियों को चूर-चूर करके काटकर फेंक दिया गया हो। शून्य-भाव क्रोध को भड़काता है, असभ्य हरकतें करवाता है। लेकिन जो भीतर नहीं है उसे क्या बाहर लाया जा सकता है? यह प्रश्न उठा। शर्त लगाई कि अगर तुम नहीं लोगे तो नोट बाहर फेंक दूँगी, और आखिर फेंक भी दिये; मेरी नैतिक शक्ति को पाँव तले रौंद डाला। यह केवल क्रूरता नहीं है, झक्कीपन है, विनाश-शक्ति है। रेल किसी मोड़ पर दौड़ रही थी। उसने दरवाजा खोलकर गर्दन बाहर निकालकर आगे देखा। छह-सात बोगियों के आगे पटरियों पर इंजन भागता हुआ दिखाई पड़ा। वह दृश्य एक प्रकार की अंधी विनाश-शक्ति जैसा लगा। फिर भी उसमें एक प्रकार आकर्षण था। यों ही देखते खड़ा रहा। कुछ समय बाद मोड़ पार करके इंजन और अन्य बोगियाँ नजर से ओझल हो गईं। दरवाजा बंद करके वह पहले की तरह खड़ा रहा।

कुछ समय बाद कैबिन का दरवाज़ा खोलकर अमृता फिर बाहर आयी। दाहिनी मुट्ठी में नोटों का एक और बंडल दिखाई दे रहा था। अदालत का हुक्म जारी करने के अंदाज में आकर उसने सोमशेखर के सामने हाथ बढ़ाया, "दो हजार हैं। लेंगे या नहीं, बता दीजिए। अगर नहीं लेंगे तो इस बार खिड़की से पैसे फेंकूँगी नहीं। मैं खुद दरवाजे से कूद पड़ूँगी। बताइए।" बंद दरवाज़ा खोलकर वह दरवाजे के किनारे पर खड़ी हो गई। [illegible] का सामर्थ्य रखने वाली हवा भीतर घुसने लगी। शर्त के अनुसार आगे-पीछे कुछ सोचे बिना अमृता ने नोटों का बंडल जो फेंक दिया था, उसे याद करके अब सोमशेखर डर गया। बाहर काले चट्टान पीछे की ओर इस तरह दौड़े जा रहे थे मानो उनका आकार पिघल

कर प्रवाह की गति में बहता जा रहा हो। उन पर कूद पड़ने से रेल की गति टकराव की गति बन जाएगी और पल-भर में सारी देह मांस का एक लोथड़ा बन कर रह जाएगी—जब यह भय उसकी आँखों में रिसने लगा तब अमृता बोली, "लेंगे या नहीं ?"

"इतना तो खर्च नहीं किया।" उसने अपना विरोध इस रूप में व्यक्त किया।

"कितना खर्च हुआ है इसके पाई-पाई का हिसाब मुझे मालूम है। लेकिन आप कारोबारी आदमी हैं। दो दिन काम छोड़कर आए हैं। इसलिए हर्जाने के रूप में इतनी रकम दे रही हूँ। लीजिए, हाथ बढ़ाइए; दो सेकंड का समय देती हूँ।" वह बोली।

रेल की गति टकराव की गति में बदल जाने की कल्पना से भयभीत सोमशेखर ने तुरंत हाथ बढाया। नोटों का बंडल उसके हाथ पर रखकर अमृता दरवाजे के किनारे से भीतर आई। धमाके के साथ दरवाज़ा बंद करके चटखनी लगायी और चटपट आवाज़ करते हुए कैबिन में जाकर दरवाजा बंद कर लिया।

सोमशेखर का मन हुआ कि अपने हाथ के नोटों को तुरंत खिड़की से बाहर फेंक दे। फेंकना हो तो कैबिन मे जाकर उसके सामने, उसे दिखाकर वहाँ की खिड़की से फेंकना चाहिए। यहाँ उसकी नज़र से दूर नही—एक शात तर्क मन में आया। वे दोनों सहयात्री अभी सोए होंगे। क्यो न ऐसा ही किया जाए ? मन ने एक निश्चय-सा किया। दो कदम कैबिन की ओर बढ़ा। 'देखो तुमने दो हज़ार दिए हैं। तुम्हारे सिर का कर्जा उतर गया। लेकिन जहाँ तक मेरा सवाल है, लो, इधर देखो,' उसे बताकर फेंक दे और कहे कि मेरा पैसा था, फेंक दिया है—इतना कहकर चुप हो जाए। सोमशेखर के मन मे यह क्रिया निर्देश स्पष्ट हो गया। दो कदम और बढ़ाते-बढ़ाते पुनः विचार आया, उसने अहंकार किया, उसका अहंकार कभी-कभी सिर चढ़कर बोलता है, लेकिन मैं क्यो अपने अहंकार को इसकी छूट दू ? वह लौटकर दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया।

रेल की रफ्तार कम होने लगी। उसने झुककर देखा। कोई स्टेशन—मद्दूर निकट आ रहा था। वह प्लेटफार्म पर उतरा। अमृता खिड़की के पास बैठी है। पास जाकर पूछा, डाभ है, ला दूं ? अमृता ने जवाब नहीं दिया। वह अधिक देर वहाँ रुका नहीं। दूसरी दिशा से कोई गाड़ी आने वाली थी उसके निकल जाने तक सोमशेखर की गाड़ी को उसी स्टेशन पर रुकना था। इस बीच वह प्लेटफार्म पर टहलता रहा। फिर मंड्या आया; पाण्डवपुर आया; श्रीरंगपट्टण आकर निकल गया। वह बाहर ही खड़ा रहा। कुछ ही समय में खिड़की से चामुण्डी पहाड़ यों दिखाई देने लगा मानो मैसूर शहर का सारा गुरुत्व उसी में समाया हो। तभी कैबिन के दोनों सह-यात्री अपना सूटकेस, होल्डाल खींचते हुए दरवाजे के पास

आ खड़े हुए। वहाँ, वह अकेली है। मैसूर स्टेशन के आने में अभी आत-आठ मिनट लगेंगे। गाड़ी रुकने तक मुझे यहीं रहना होगा। अकेले में रहने की उसकी इच्छा को भग करके उसे खिझाना ठीक नहीं। लेकिन फिर सोचा कि स्टेशन आने की उतावली मे उठकर ऊपर वाली बर्थ पर रखा अपना भारी सूटकेस उतारने लगी···अभी-अभी जो इलाज हुआ है उसका घाव भरने तक डाक्टर ने वजन उठाने की मनाई की है—इस विचार के साथ ही वह कैबिन में गया; अपना और उसका, दोनो सूटकेस उतारकर नीचे रखे। अमृता ने, जो आँखमिचौली खेलते पहाड़ को ही देख रही थी, मानो अपने आप से कह लिया, "जब तक वह पेट में रहता तब तक ट्रिगर दबा पाना संभव नही था। अब कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती।" सोमशेखर ने उसका चेहरा देखा। उसकी आँखें खिड़की के बाहर दिखाई पड़ने वाले पहाड़ से अधिक पथराई हुई थीं।

अमृता को एक अलग ऑटो में बिठाकर भेज दिया और खुद दूसरा ऑटो पकड़कर सूटकेस के साथ अपने दफ्तर आया। रात के नौ तक वहाँ रहा। पास में ही खाना खाकर घर पहुँचा। लेटा तो केवल जँभाई आई नींद नही। मन को परा-भव ने घेर लिया था। अकारण ही अमृता का अपने से चिढ़ना और उसका संयम से काम लेना अब कोई नई बात नही थी। उसकी कुढ़न का कोई कारण नहीं होता, कोई आधार नही होता। बाद में बहुत सोचने पर कभी-कभी कारण दिखाई पड़ता है। उसके क्रोध को एक निकास, एक लक्ष्य चाहिए होता है। हमेशा मै ही लक्ष्य बनता हूँ। मैं रहूँ तो ही क्रोध की अभिव्यक्ति होती है। लेकिन, मैं क्यो उसके क्रोध का लक्ष्य बन जाता हूँ? जहाँ प्यार होता है वही क्रोध भी होता है। द्वेष और प्रेम दोनो एक ही प्रेरणा के दो पहलू है—अ' जैसी मनो-विज्ञान की बाते वह पढ चुका है। लेकिन पीड़ा की जिस तीव्रता से वह गुज़र रहा था उसमे वे सारी बातें अर्थहीन कल्पना मात्र रह जाती है एक हज़ार रुपए तिरस्कार के साथ बेमुरव्वती से हवा में उड़ा दिये और उतने ही तिरस्कार के साथ दो हजार मेरे सामने बढ़ाकर मुझे उसे लेने पर मजबूर किया। उसकी निगाह मे हवा में फेक देना और मेरे सामने फेंक देना बराबर है मानो तिरस्कार के एक जैसे धरातल मे निकले हुए दो झरने हो। दोनो ने मुझे रौंदकर पीस डाला। पीसने के लिए ही उसने ऐसा किया। इसी विचार के साथ उसकी समझ मे यह बात आयी कि उसमें और अमृता मे कितना व्यापक अंतर है: इलाज के खर्चे में मैं तनिक भी भागीदार न बनूं बल्कि गाँव में दो दिन की मेरी अनुप-स्थिति के नुकसान की भरपायी भी वह करेगी; इस बात की प्रतीति उसने आज करा दी। ऐसे संबंध में क्या प्यार का कभी कोई अर्थ हो सकता है? उसने अपने आप से प्रश्न किया। बड़ी देर तक यह प्रश्न एक प्रश्न ही बना रहा। फिर अपने मन

की दुर्बलता में उसका उत्तर पाया, दूर चले जाने की सूचना बुद्धि देती है; लेकिन मन बिना किसी बहाने के उसकी ओर बढ़कर जा मिलता है। दुर्बलता के लिए काव्यात्मक, भावात्मक समर्थन का निर्माण करने लगता है। भ्रूण का निवारण कर लेना ही एक मात्र विवेकपूर्ण निर्धारण मानकर उसने खुद निर्णय किया। जब तक वह पेट में था तब तक नई साड़ी पहनकर हर्ष-उल्लास में थी। परसों बेंगलूर जाते समय खामोश हो गई। भीतर की दुर्दमनीय पीड़ा को व्यक्त किए बिना हठपूर्वक खामोशी बरती। उसका निवारण होते ही खोखलेपन की भावना से संकुचित होने लगी। नर्सिंग होम से बाहर निकलते ही भीतर बलपूर्वक दबाया गया सारा क्रोध मुझे निशाना बनाकर मुझ पर आग की तरह बरसने लगा। मेरी क्या गलती थी ? अपने अंश का विनाश उसकी पीड़ा का कारण बना होगा, लेकिन उसे विनाश से बचाने की बात मैंने ही तो कही थी। वह इस निर्णय पर पहुँचा कि अमृता में रत्ती-भर भी तार्किकता का धरातल नहीं है। यही सब सोचते-सोचते कुछ देर बाद उसे नींद आ गई।

लेकिन आधा घंटे में ही आँख खुल गई। घड़ी देखी। बारह बजे थे। हर तरफ खामोशी की घुटन। अब वह क्या कर रही होगी ? मन में कल्पना जागी। मन ने कहा, सोयी नहीं होगी; नींद नहीं आयी होगी। जब तक वह पेट में रहता तब तक ट्रिगर दबा लेना संभव नहीं था; अब मुझे रोकने की ताकत किसी में नहीं—इस बात को कहते समय उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को भीतर की ओर संकुचित करने वाली उसकी आँखों की वह रिक्तता याद आ गई। इस धिक्कार की भावना में ही एक हज़ार के नोट एक ही झटके में हवा में उड़ा दिये। दुबारा लाई नोटों को, अगर मैं हाथ बढ़ाकर ले न लेता तो आगा-पीछा कुछ भी सोचे बिना कूद ही पड़ती। ये भारी बातें याद करके उसे लगा कि यह एक बहुत खतरनाक रात है। यह रात, कुछ भी कर सकती है—इस निश्चित बोध के साथ मन बेचैन हो उठा। उसी क्षण स्कूटर लेकर जाने का निश्चय किया। उठकर बैठा। बत्ती जलायी। मच्छरदानी से बाहर निकल कर पेंट-शर्ट पहनने लगा; तभी यह विचार आया कि दफ्तर जाकर घर पर फोन करके देख लेना ठीक रहेगा। ताला लगाकर नीचे उतरा। अपने गराज़ का दरवाजा खोलकर स्कूटर बाहर ले आया। स्टार्ट करते समय मन में हिचक हुई कि इस सुनसान रात में आवाज़ करेगा तो अड़ोस-पड़ोस वालों की नींद टूटेगी और वे क्या सोचेंगे ? रात के सन्नाटे में आवाज़ करते हुए सोमशेखर ने देवराज अरसु मार्ग पर जाकर स्कूटर खड़ा किया। गश्त करते हुए गोरखा को अपनी पहचान देकर जीना चढ़ गया। दफ्तर का दरवाज़ा खोलकर भीतर से बंद कर लिया और बत्ती जलाकर फोन का नंबर मिलाया। उधर की घंटी बजने लगी है। अब, इसी पल वह उठाएगी—इसी उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा में हाथ में रिसीवर लिए अमृता के बात करने के अंदाज की

कल्पना करने लगा। घंटी बज रही है। उठा नहीं रही। कार में बैठकर कहीं पहाड़ पर तो नहीं गयी ? अथवा ट्रिगर दबाकर स्थायी शांति का निर्माण तो नही कर चुकी ? मुशीलम्मा के घर से बच्चों को लिए बिना क्या अकेली घर गई है ? रिसीवर वाला सोमशेखर का हाथ काँप उठा। मन की गहराई मे 'हाय भगवान, निकल गया। घंटी बजती ही जा रही है। पीड़ा का शमन करने वाली टिकिया, उस पर दो-तीन दिन नींद की गोलियाँ भी दी गई थीं। कहीं बेखबर सो तो नहीं रही ? हे भगवान् ऐसा ही हो। लेकिन कैसे पता चले कि यही बात है ? वह स्कूटर पर चढ़कर उसके घर जाने का फैसला कर ही रहा था कि उधर से फोन उठाने की सूचना मिली। डूबते को तिनके का सहारा। जान में जान आ गई। "हैलो" उसी की आवाज। लेकिन सारी जीवनी-शक्ति जलकर राख हो गई है, केवल ध्वनि का ढाँचा मात्र बचा है। "मैं हूँ" सोमशेखर बोला। आगे बात नहीं सूझी। अमृता ने भी आगे कुछ नही पूछा। खामोशी छा गई। सोमशेखर ने बुद्धि से काम लिया, "बहुत नींद आयी थी ?" अमृता ने जवाब नही दिया। "सुनती हो? अमू, मैं बोल रहा हूँ। 'हाँ' तो कहो।" उसने ऊँची आवाज में कहा। वह 'ऊँ' बोली वह भी क्षीण और डूबी हुई आवाज़ में।

"नीद नही आयी। तुमसे मिलने का मन हुआ। सीधा आने के लिए निकला। बच्चे शायद जागते होंगे, ठीक नहीं; इस विचार से दफ्तर आकर फोन कर रहा हूँ। सुनती हो ?" अमृता ने जवाब नहीं दिया। पुन: खामोशी।

एक मिनट की इंतजार के बाद वह झल्लाकर बोला, "अरे, सुनती नहीं क्या ?" तब धीरे से तुतलाते हुए अमृता ने जवाब दिया, "जब आपने सुनाने की जिद ही ठानी है तो सुने बिना कैसे रहा जा सकता है ?" सोमशेखर की साँस में साँस आई।

"जल्दी फोन क्यों नहीं उठाया ? नींद में थीं ?" पुन: जवाब नहीं, खामोशी। "अमू, नींद आयी है ? साधारणत: ऐसी हालत में जो दवाई दी जाती है उसमें नींद की दवा भी कुछ मिला दी जाती है।"

"इसीलिए मैंने दवा नहीं ली।"

सोमशेखर को गुस्सा आया। "दवा न लेने से कुछ का कुछ हो गया तो ? क्यों नहीं ली ?"

"सुनिए, जो बात आप जानते हैं उसे मेरे मुँह से सुनकर तमाशा देखने की इच्छा है आपकी ? यह झूरना अब बंद कीजिए। आपके चरणों पर माथा रगड़कर कहती हूँ।" धिक्कारपूर्ण आवाज में वह बोली।

अब सोमशेखर की आवाज अटक गयी। उधर अमृता भी खामोश हो गई। मुझे कुछ कहना चाहिए; लेकिन क्या, सूझता नहीं। वह छटपटाता रहा। आखिर बोला, "जाग रही थीं, तो भी तुरंत फोन क्यों नहीं उठाया ? क्या कर रही

थीं ?"

"वह पूछने का अधिकार किसी को नहीं।" वह बोली। आवाज में कुढ़न थी।

"किसी और को नहीं रहा होगा; मुझे है।" वह बोला।

"आपके भ्रम के लिए मैं जिम्मेदार नहीं। मैं जानती हूँ कि किसी को नहीं है।" उसने दो टूक जवाब दिया।

"भ्रम का शिकार तुम हो गई हो। सचाई मैं जानता हूँ तुम भी जानती हो। लेकिन तुम झूठ बोल रही हो।" आधिकारिक शक्ति से डाँटने के अंदाज में यों बोला कि अब बहानेबाजी की गुंजाइश नहीं है।

वह बोली नहीं, खामोश रही। लेकिन सोमशेखर जान गया कि उसकी बात उसके हृदय के अंतराल में यों जड़ जमाकर बैठ गई है कि अब उसे निकाला नहीं जा सकता। इसलिए अमृता से जवाब न मिलने पर भी वह निश्चिंत रहा। कुछ समय बाद फोन में ऐसी आवाज़ सुनाई दी जो साफ-साफ समझ में नहीं आ सकी। सारा ध्यान केंद्रीकृत करके चोगे को दबाकर पकड़े सुनने की कोशिश करता रहा, फिर भी समझ नहीं पाया। अस्पष्ट, कहीं दूर लहरों के ज्वार-भाटे की आवाज़-सी। धीरे-धीरे वह साफ हो गई। वह रो रही है। बिलख-बिलखकर नहीं, बल्कि उमड़-घुमड़कर। शुरू में रोकने की, अपने-आप में छिपा लेने की चेष्टा की है। अब खुलकर रो रही है। उसके हाथ का चोंगा भी हिल रहा है। उसे दूर रखने की या उसके मुँह पर हाथ रखकर आवाज़ को रोकने की चेष्टा किए बिना रो रही है। गहरे गह्वर से निकलकर आजाद होने के लिए तड़पने वाले बवंडर की तरह उसके गले से रोना निकल रहा है। "अमू, अमू," उसने आवाज लगायी। अमृता ने 'हाँ' कहने की चेष्टा की। "अमू, सुन रही हो ?" दुबारा आवाज़ लगायी। 'हाँ' कहने की चेष्टा में गले के नीचे फँसे दुःख के बवंडर का रास्ता साफ होकर वह बाहर निकला और वह फूट-फूट कर रोने लगी। ऊँची आवाज में, बड़ी देर तक रुके बिना, उतार-चढ़ाव में भी किसी परिवर्तन के बिना साँस अवरुद्ध कर देने वाला क्रंदन फूट पड़ा। साँस रुक ही गई। "अमू, अमू, मेरी बात सुनो।" सोमशेखर के पुनः आवाज देने से अवरुद्ध साँस को रास्ता मिल गया। कुछ देर तक खामोशी छा गई। सोमशेखर चुपचाप चोंगा पकड़े रहा।

फिर अमृता ने ही बातों की शुरुआत की, "मुन्ने, अब तुमने मुझे बचा लिया। आख़िरी फ़ैसला करके रिवाल्वर लेकर बाहर निकली थी। आखिरी फैसला का मतलब बिलकुल आखिरी फैसला। इतना ठोस फैसला पहले कभी नहीं किया था। एक चिट्ठी भी लिखकर बिस्तर पर छोड़ी थी। निकलने ही वाली थी कि, फोन की घंटी बज उठी। पता है कितना गुस्सा आया ? ऐसे वक्त कौन फोन कर रहा होगा, नान्-सेंस। फिर लगा कि तुम ही होगे। इसीलिए उठाया नहीं। अगर

तुम्हारा फोन हो तो मेरा फैसला टूट जाने का अहसास मुझे उस हालत में भी हुआ। इसीलिए नहीं उठाया। इतनी देर हो गई, उठाया नहीं इस विचार से क्या तुमने भी चोंगा नीचे रखा? मुझमें मेरी लंबाई-चौड़ाई तक गुस्सा रहा होगा, तुम्हें अपनी ऊँचाई तक जिद है। मेरे उठाने तक छोड़ा नहीं। पकड़े ही रहे।"

सोमशेखर का मन हलका तो हुआ ही साथ ही धन्यता का भाव आया। उनींदा झटके से जाग गया था। दो मिनट में हो वहाँ से निकल गया था। अगर स्कूटर पर उसके घर जाता तो तब तक वह कार में पहाड़ की ओर निकल गई होती। उस ठोस फैसले के साथ निकल कर उसने अगर एक पल की भी देरी किए बिना ट्रिगर दबा लिया होता तो? फोन करना ही ठीक रहा। फोन करने का यह विचार उसको पहली बार आया। इस आश्चर्य और मुक्त भाव में जब वह निमग्न था तब अमृता ने पूछा, "मुन्ने, तुमसे एक प्रश्न पूछती हूँ। तुम्हारे साथ मैं जितनी क्रूरता से पेश आयी हूँ उतनी क्रूरता से कोई अपने शत्रु के साथ भी पेश नहीं आया होगा। फिर भी तुम क्यों मुझसे प्यार करते हो? बोलो, सच बोलो।"

"मैं वास्तत में कुछ नहीं जानता। लगता है तुम्हारे प्यार के बिना मैं जी नहीं सकता।" अपने दिल को टटोलते हुए वह बोला।

"मुन्ने, तुम्हारी बातें सुनने के बाद मुझे जीने की चाह होने लगती है। तुम झूठ नहीं बोल रहे हो, मुझे खुश करने के लिए झूठ नहीं बोल रहे हो। लेकिन एक झूठ से अगर कोई जीव बच सकता है तो वह झूठ बोलना गलत नहीं—इस आशय का समर्थन भी हो सकता है। तुम्हारी बातों का उद्देश्य महान् है। मैं उसकी कद्र करती हूँ, मुन्ना!" अपने प्यार पर शक किए जाने के कारण वह मन मसोसकर रह गया। इतना भारी हो गया कि अमृता की बातों का धि[illegible]र भी नहीं कर सका। बिन बोले खामोश हो गया। कुछ समय बाद अमृता बोला, "मेरे मुन्ने, अब तुम्हें गुस्सा आया है। प्यार पर शक किए जाने से गुस्सा चढ़ना स्वाभाविक है। लेकिन, मुझसे प्यार किए बिना जी न सकने वाली बात पर विश्वास करने में मुझे कष्ट होता है। तुम मुझसे अब भी क्यों प्यार करते हो, पता है? नहीं, मैं नहीं बताऊँगी।"

"बताओ।"

"यों ही आकर्षण बढ़ा। देह का संपर्क भी हुआ। स्वभावत: तुम एक कमिटमेंट के आदमी ठहरे। तुम्हारे स्वभाव में दया-करुणा भरी है। इन सबके साथ कल जो इलाज हुआ उसके पश्चात् दया न दिख[illegible]ाना तुमसे संभव ही नहीं था। इसलिए मैं चाहे कितना ही अपमान करूँ, तुम उसे सहते जा रहे हो। यह फोन भी इसीलिए किया है न? सच बोलो।"

सोमशेखर को गुस्सा आया। वह बोला, "बुद्धि तेज है, इसलिए अंट-संट मत बको।"

"मुन्ने," उसने जवाब दिया, "मुझ पर तुम जितना गुस्सा करते हो मुझे उतनी ही खुशी होती है। इससे यही जाहिर होता कि तुम्हें मुझ पर गुस्सा करने का हक है, लेकिन यह साबित नही करता कि मेरी बात झूठ है। अपने मन के झूठ का किसी दूसरे के द्वारा पता लगाये जाने से किसी को भी गुस्सा आ ही जाता है।"

सोमशेखर ने डाँटकर पूछा, "तब तुम मानती हो कि तुम्हारा मुझसे प्यार करना भी झूठ है?"

"हाँ, बिलकुल। मैं तुमसे प्यार नहीं करती। प्यार करने वाला कोई भी आत्महत्या के लिए प्रेरित नही होता। जी लेने से प्यार तो रहेगा, यानी कि प्यार की भावना तो रहेगी। मरने पर कुछ नही बचेगा। शून्य, एक दम ऐसा विराट शून्य जिसके बारे में कुछ कह पाना भी संभव नहीं। ऐसे शून्य के आकर्षण में रहने वाली मैं क्यों झुठ कहूँ कि मैं तुमसे प्यार करती हूँ? तुम्हारे बारे में भी यही बात है। सच बोलो। ऐसी बात नही कि तुम चाहकर झूठ बोलते हो। अपने भीतर की सचाई को टटोलकर बताओ—प्यार क्या होता है, जानते हो? अगर जानते तो मेरे प्रति तुम्हारा जो भाव है क्या वह प्यार है? अगर प्यार ही है तो क्यों प्यार करते हो? इन प्रश्नों के बारे में सोचो।"

सोमशेखर पहले से ही जानता था कि कभी-कभी जब वह तर्क पर उतर जाती है तब उसकी बुद्धि रक्त, मांस, मज्जा, नर-मण्डल आदि की चीर-फाड़ करके प्राण कहाँ है, तलाशने लगती है। इसलिए तुरंत जवाब नहीं दिया। कुछ समय बाद बोला, "कारण न मिलने पर यह साबित नहीं होता कि प्यार झूठा है। तर्क बाद में लड़ाना।"

अमृता खामोश रही। एक पल बाद बोली, "सुनो, तुम्हारी लुंगी, शर्ट, बनि-याइन मेरे सूटकेस में आ गई हैं। मेरा लहँगा, ब्लाउज, दो साड़ियाँ तुम्हारे सूट-केस में होंगी। उन सबको तुम्हीं ने पैक किया था। गलती तुम्हारी है, दोपहर को अपने साथ ले आना।"

"मैं दोपहर नहीं आऊँगा।" सोमशेखर बोला।

"हाँ, तुम्हें गुस्सा चढ़ा है। अब दफ्तर में ही रहो। दस मिनट में कार में वहाँ पहुँचूंगी। तुम्हारे पाँव पकड़कर माफी माँग लूँगी। तुम्हारी जेब में रखे दो हजार रुपए वापस ले लूँगी।"

सोमशेखर डर गया कि वह आ भी सकती है। मुझे इस समय यहाँ आकर स्कूटर नीचे रखते हुए गोरखा ने देख लिया है। अगर वह आकर कार रोककर ऊपर आ जाएगी तो गोरखा को शक होगा। इसलिए सोमशेखर बोला, "अब घर

छोड़कर मत निकलो। मैं ही आ रहा हूँ।"

"मुन्ने, अब तुम भी मत आना। मैं बिलकुल ठीक हूँ। तुमने मुझे एकदम चंगा कर दिया है। पैसा हवा में उड़ाने की मूर्खता पर लज्जा आ रही है। लेकिन वह गलती अब सुधारी नहीं जा सकती। कल आते समय तुम वह रकम लेते आओ। मेरे हाथ में मत देना। भगवान के सामने रखना। मेरे मुन्ने के सिवा भला मुझे और कौन देगा? उसके बिना भला और किसके हाथों खर्च कराऊँ? भगवान के सामने अपनी गलती को स्वीकार करके पैसा उठा लूंगी। अब तुम जाओ, घर जाकर सो जाओ।" वह बोली।

"अब तुम वे गोलियाँ ले लो।"

"जैसे मालिक का हुक्म।" उसकी आवाज़ में फरमाबरदारी छलक रही थी।

स्कूटर पर सवार होकर आधी रात के सन्नाटे में घर आते समय मन में एक विचार आया। दस हजार रुपए भर देने पर डाक-तार विभाग वाले तुरंत फोन लगा देंगे। घर पर भी एक फोन लगवाना चाहिए। रात में सोने से पहले कुछ समय तक उसके साथ बातें की जा सकती हैं। मेरा मन भी आश्वस्त हो जाएगा और उसे भी शून्य-भाव के घेरे से बाहर निकलने में सहायता मिलेगी। कह देना होगा कि मैं भी तुम्हारी तरह बिस्तर की बगल मे ही फोन रख लूंगा। जब चाहे तब करो। मेरी नींद में खलल पड़ने की चिंता मत करो। बहुत बढ़िया विचार लगा। आज ही जाकर पूछताछ करनी होगी। कहीं से जोड़कर डिपाजिट भरना होगा। घर आकर उसने गैराज का दरवाज़ा खोला। स्कूटर भीतर छोड़कर दरवाजा बंद करते समय ऐमी रात में शोर करके पड़ोसियों की नींद खराब करने का विचार उसके मन को सालने लगा। ऊपर जाकर कपड़े बदलकर लेट गया। नींद नहीं आयी। बिना किसी उलझन के सब ठीकठाक हो जाने की तसल्ली मन में थी लेकिन इसी बेचैनी ने अमृता के मन में ऐसे शून्य-भाव को जन्म दिया था जो पहले कभी उसके मन में नहीं आया था। इस बात से वह बेहद परेशान हो गया था। किसी भी क्षण अगर उसने ट्रिगर दबा लिया तो क्या होगा? इस बेचैनी ने उसके हृदय के समस्त तन्तुओं को झकझोर दिया। आज रात-भर के लिए शून्य की लहर टल गई है। अब तक गोलियाँ खाकर शायद सो भी गई हो। लेकिन कल, परसों, तरसों इस तरह हर रात उसे कौन रोक सकेगा? क्या मैं खुद हर रात उसके यहाँ चला जाऊँ? एक हल नज़र आया, लेकिन, वह बाल-बच्चों वाला ... । रोज रात को वहाँ जाना ठीक नहीं रहेगा—तुरन्त बाधा खड़ी हुई। अचानक अगर उसने हत्या कर ली तो क्या मैं जी सकूंगा? अपने आप से उसने प्रश्न किया। आत्महत्या तो सम्भवतः नहीं करूं; लेकिन जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा, कोई आकर्षण ही नहीं बचेगा। वैसे भी अपने जीवन में ऐसा कौन-सा आकर्षण है? मन ने प्रश्न

किया। साल-भर में दस-पाँच इमारतों का प्लान बनाकर देना जीवन निर्वाह का एक मार्ग हो सकता है। उसमें आकर्षण नहीं रहेगा। फुर्सत के समय कुछ पढना, खान-पान आदि जो भी हो उसकी उपस्थिति में ही रुचिकर लगेगा। लगा कि उसके बिना इन सब बातों का कोई अर्थ नहीं। ऐसे स्नेहपाश में मैं कैसे फँस गया ?— अपने-आपको टटोलकर खोजने लगा। अपने दोनों को पास लाने वाली हर घटना, हर पड़ाव का स्मरण कर लिया। अमृता के कथन के अनुसार क्या अपना प्यार सहज रूप से विकसित नैतिक प्रतिबद्धता है ? इतना सब कुछ हो जाने के बाद कैसे छोड़ा जा सकेगा ? या यह तथाकथित काम उसकी लाचार अवस्था के प्रति सहज रूप से उत्पन्न दया-भाव है ? सोमशेखर मन-बुद्धि की परत-दर-दर उघाड़कर उनका विश्लेषण करने लगा। इनमें कोई बात झूठी नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि यह अहसास भी हुआ कि इन सबकी समष्टि से परे किसी शक्ति ने अपने को उससे बाँधा है। कौन-सी शक्ति है वह ? शायद उसी का दूसरा नाम प्यार होगा। लगा कि केवल संज्ञा से वस्तु की पहचान नहीं होती। विचार आया कि पहचान से बढ़कर उसे बचा लेना सबसे महत्त्व का है। लेकिन कैसे ? प्रश्न सताने लगा। इसी उधेड़बुन में दिन निकल आया। अब नींद आने की सम्भावना नहीं थी, फिर भी अगर थोड़ी देर के लिए आँख लग जाए तो दफ्तर में कुछ काम कर सकेगा अन्यथा मुश्किल होगा। इस आतंक के कारण दरवाजे बंद करके परदे खींचे; पंखा चालू करके लेट गया। आँखें बद कर लीं। टेलिफोन के दफ्तर जाने की बात याद आयी।

मुन्ने, मेरे मुन्ने, 'मेरे' कहने का हक मैंने खो दिया है। फिर भी लिख रही हूँ। अब तुम कहाँ हो, कैसे हो, किन विचारों में, किन यादो में खोये हो, मैं नहीं जानती। जिसको जानने का हक़ ही नहीं है उसे पता भी कैसे चले ? किस पते पर लिखूं ? यह चिट्ठी, नहीं, इस संदेश के पहुँचने की विधि न जानते हुए भी लिखना पागलपन नहीं तो और क्या है। फिर भी लिख रही हूँ। बैठकर अगर तुम्हें पत्र न लिखूं तो मैं जी नहीं सकूंगी। लिखने के बाद उसे मोड़कर मैं खुद उसे तुम्हारे हाथों में लाकर थमा दूंगी। जब मुझे खुद लाकर देना है तब लिखूं किसलिए ? पूछ सकते हो कि क्या खुद आकर बता नहीं सकती ? जो बात प्रत्यक्ष कह सकना संभव नहीं उसे कागज पर लिख देना अपेक्षाकृत आसान होता है; रू-ब-रू होने पर शरम आने लगती है। अवमानना की भावना कंठ को अवरुद्ध कर देती है और बात जबान तक आते कुचलकर निगल लेनी पड़ती है। मैं केवल यही जानती हूँ कि तुम मेरे मुन्ने हो। तुम्हारे रूप की कल्पना तक मुझे नहीं है। तुम्हारा रूप स्पष्ट होने से पहले ही मैंने तुम्हारा गला घोंट दिया है न ! तुम उस अवस्था में थे कि बेटी हो या बेटा इसका पता भी नहीं चला था। ऐसी हत्यारी माँ की यह चिट्ठी क्या

तुम पढ़ोगे ? तुम्हारा गला घोंटकर मैं बेंगलूर से आयी। कार लेकर सुशीलम्मा के घर से दोनों भाइयों को लाते समय तुम्हारे छोटे दादा विकास का चेहरा देखते ही पाप की भावना ने मुझे घेर लिया। उसने धोखे से जीवन पाया था। धोखे के ब्याह का बंधन जब शिथिल होते देखा तो उसकी दीदी ने अपने भाई के कान भरकर जीव की स्थापना करवाई। उस जीव का निस्तारण करके उस औरत और उसके भाई के उद्देश्य को विफल बनाने की प्रबल इच्छा थी। लेकिन उसको इस विचार से बचा लिया कि मुझे तो उस औरत और उसके भाई को सज़ा देनी है इस मासूम जीव को सज़ा कैसी जिसने अभी स्वरूप भी ग्रहण नहीं किया है। तुमने जो जीव रूप लिया वह धोखे से नहीं था। सावधानी की सीमा के पार उत्साह के क्षणों में तुम्हारा अवतरण हुआ था। तुम्हें रख लेने का अनुरोध तुम्हारे जनक ने भी किया। फिर भी मैं डर गई। मैं इस बात से डर गई कि तुम्हारे दोनों भाई तुमसे कैसा सलूक करेंगे ? उन दोनों के पिता के पक्ष वाले निरंतर तुम्हें कितना सताएँगे, तुम जिस स्कूल में पढ़ोगे उस स्कूल के अध्यापक, सहपाठी, घर के नौकर-चाकर कितनी बुरी नज़र से तुम्हें देखेंगे ? तुम पर तरस आ गया। नहीं मुन्न, मेरे मन ने मुझसे झूठ कहा। मैं इसलिए नहीं डरी कि तुम्हें दु:ख होगा, तुम्हारी थू-थू होगी; यह पीड़ा तो मुझे होने वाली थी, दुतकार, फटकार, निरादर, अपमान इस सबकी शिकार तो मैं होने वाली थी। मैं अपनी पीड़ा से डर गई; अब समझ रही हूँ कि वास्तव में मैं अपने अपमान से डरी थी। इस प्रवंचना, पीडा और अपमान से रक्षा करने की शक्ति क्या तुम्हारी इस माँ में थी ? बच्चे, मै हत्यारिन हूँ, शिशुहंता हूँ, जीवहंता हूँ, भ्रूण-हंता हूँ, फिर भी, क्या मुझे माफ करोगे ? किसी अन्य अपराध के लिए माफी माँगी जा सकती है। लेकिन हत्या के बाद हत से माफी कैसे माँगी जा सकेगी ? अब तुम जहाँ हो वहाँ आकर ही माफी माँगी जा सकती है। मुझे बुला लो। यहाँ से उठ आने की शक्ति दो। दो घटे पहले इस मोह को त्याग देने का संकल्प कर लिया था। इतने में तुम्हारे जनक बीच में आ गए। पुरुष को नारी चाहिए; उससे उद्भूत बच्चा उसके लिए महत्त्व नहीं रखता। नारी को सन्तान चाहिए; पुरुष उसके लिए एक साधन मात्र होता है। अपने बच्चे से जा मिलने की यात्रा में बाधक उस पुरुष की हत्या करके अपने इष्टमार्ग पर अग्रसर होने का संकल्प ठोस होने लगा है। बेटे, माफ करोगे ? इस नालायक, घटिया माँ को माफ करोगे ? तुम्हारी हत्या से पहले उस डाक्टर ने मुझे बेहोशी का इंजेक्शन दिया था। उसी में अगर मैं मर गई होती तो यह पीड़ा नहीं रहती। हम दोनों साथ-साथ रहते···निराशा-हताशा के इस ऊहापोह में गोलियों के असर से नींद आ गई। पेन का ढक्कन बंद किए बिना पलक बंद करके सो गई।

सवेरे जब उठी तब दौड़ती रेलगाड़ी से हज़ार रुपए फेंक देने की याद से मन

उदास हुआ। साढ़े तीन हज़ार में सोने की एक चूड़ी बेचकर इस काम के लिए पैसा इकट्ठा किया था। ऐसी रकम हवा में उड़ा दी, इस बात का इतना पछतावा हुआ कि दीवार से सिर फोड़ लेने का मन हुआ। लेकिन बच्चों के स्कूल के लिए देर हो रही थी। उन्हें कार में स्कूल छोड़ने के बाद मन में विचार आया कि क्यों न कालेज ही चले। वास्तव में उस दिन की भी उसने छुट्टी ले रखी थी। मन हुआ था कि छुट्टी रद्द करा ले; घर में बैठकर भी क्या करना है? जल्दी घर आकर कालेज के लायक कपड़े पहनकर तुरंत निकल पड़ी। रसोइन पुट्टम्मा और नौकरानी महादेवम्मा अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। कालेज पहुँचने में कुछ देर हो गई थी। उस दिन अपने को कौन-कौन-से क्लास पढ़ाने हैं, वह भी याद नहीं था। झट अपनी टाइम-टेबुल देख ली। अध्यापन के लिए कुछ तैयारी भी करनी थी। इससे पहले अपनी आज की छुट्टी कैंसिल करवानी थी। एक प्रार्थना-पत्र लिखकर भेज दिया और अध्यापन की तैयारी करने लगी। कुछ समय बाद प्रिंसिपल के चपरासी ने आकर बताया कि प्रिंसिपल साहिबा बुला रही है। किताब उठाकर रख ली और तुरंत जीने की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। तब अहसास हुआ कि मानो चामुण्डी पहाड़ ही आकर सामने खड़ा हो गया हो। उसी को देखते हुए ऊपर दालान से होते हुए प्रिंसिपल के कमरे के फ्लाप् डोर खोलकर भीतर गई। पचास की उम्र वाली प्रिंसिपल साहिबा ने सिर के बालों में काला रंग, नाक पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा चढ़ा रखा था; रेशम की साड़ी पहनी थी। उनके चेहरे पर मुसकान नहीं थी। अमृता ने ही अभिवादन किया। उनके सामने ढाई फुट चौड़ी और दस फुट लंबी टेबुल के गिर्द रखी गई सोलह कुर्सियों में से उनके निकट वाली एक कुर्सी पर जा बैठी। प्रिंसिपल ने घंटी बजाई। चपरासी आया। 'भीतर किसी को मत आने देना' उसको ताकीद करके भेज दिया। अमृता समझ गई कि कोई गंभीर, बुरी बात है। अमृता की ओर मुड़कर वे बोलीं, "डा० अमृता, आपने चार दिन की कौन-सी छुट्टी ली थी?"

"सी० एल०।"

"सी० एल० के लिए अप्लाई करने से पहले आपको पता कर लेना चाहिए था कि आपके खाते में कितनी सी० एल० हैं? साल-भर के लिए केवल बारह सी० एल० होती हैं और आप पहले ही तेरह ले चुकी हैं। दफ्तर वालों ने देखा नहीं। अब पुनः चार दिन के लिए चिट्ठी फेंक कर चली गईं। क्या यह जिम्मेदारी का काम कहलाता है?"

अमृता के चेहरे का पानी उतर गया। याद आया कि इस साल उसने बहुत सी० एल० ली हैं। जो रात आँखों में बिता दी हो उसके अगले दिन कक्षा में पढ़ा पाना संभव नहीं था, इसलिए कई बार छुट्टी के लिए फोन किया है। सोमु के दफ्तर के अलंकरण के सिलसिले में उचित सामान की खरीद के लिए खुद

तीन बार छुट्टी लेकर बेंगलूर गई थी। उसके दफ्तर के प्रारंभोत्सव के दिन, दो बार ऐस्टेट जाने के लिए—इसी तरह, ठीक ही है; बारह की सीमा लाँघ गई होगी। "सॉरी मैडम, ये चार दिन नहीं, तीन दिन के लिए मेडिकल लीव लेती हूँ, वास्तव में मेरी तबियत ठीक नहीं थी।"

"सुनिए डा० अमृता, सी० एल० नहीं है तो मेडिकल अप्लाई किया, मेडिकल नही है तो ई० एल० अप्लाई किया, वह नहीं तो बिन वेतन की छुट्टी की माँग करना, यह सब ठीक नहीं। मेडिकल के लिए वास्तव में बीमार होना चाहिए। किसी काबिल डाक्टर का इस आशय का प्रमाण-पत्र चाहिए कि इनको अमुक बीमारी है या थी—मैंने इलाज किया है; काम करने की स्थिति में नहीं थीं इसलिए मैंने विश्राम की सलाह दी थी। अर्थात् सच्चा प्रमाण-पत्र चाहिए।"

'सच्चा' वाली बात अमृता को सालने लगी। "मैं कोई झूठ बोल रही हूँ, मैडम ?" उसने पूछा।

"मैंने कब कहा कि आप झूठ बोल रही है। मैंने कहा कि मेडिकल सर्टिफिकेट का प्रमाण चाहिए। आलराइट, क्या बीमारी थी आपकी ?" अमृता का ही चेहरा घूरते हुए यों बोली मानो कह रही थी कि झूठ बोलोगी तो उसे पहचान लेने की सूझबूझ, अनुभव, अधिकार मुझमें है।

अमृता के चेहरे पर पसीने की बूँदें छलकने लगी। फिर भी वह सँभलकर बोली, "वह पर्सनल बात है, मैडम।"

"किसी की पर्सनल बातों में मुझे रुचि नही।" प्रिंसिपल चिढ़ गई, "लेकिन आपको एक बात कह देती हूँ; छुट्टी आपका हक नही बनता। आपका काम कहाँ तक हुआ है, ठीक समय पर सिलेबस खत्म करने की स्थिति में हैं या नहीं आदि बातों का ध्यान रखकर छुट्टी मंजूर करने का अधिकार प्रिंसिपल ा होता है। आपको इस नौकरी की शायद जरूरत न हो। लेकिन, वेतन देने वाला कालेज वेतन के अनुपात में काम की भी आशा रखता है। आपकी तरह एम० ए०, पी-एच० डी० करके सौ-पचास लोग बेकार भटक रहे हैं, जानती हैं ? सोचिए; काया वाचा मनसा निष्ठा के साथ अगर काम कर सकती है तो कीजिए। वरना, त्याग-पत्र दे दीजिए। गौरव की बात होगी। मैं यह बात इसलिए कह रही हूँ कि चाहे हम चपरासी हों या लाटसाब हममें आत्मसम्मान होना चाहिए और आत्म-गौरव काम के प्रति निष्ठा से ही व्यक्त होता है।"

अपने जीवन में पहली बार बड़े अधिकारी से ऐसी बातें सुनकर व भीतर-ही-भीतर टूट गई। अगर कोई और मौका होता तो शायद मुँहतोड़ जवाब दे देती; लेकिन उस समय कोई बात दिमाग में नहीं आई। उसकी मानसिक स्थिति कुछ ऐसी थी कि क्रोध तक नहीं आया। किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी प्रिंसिपल का चेहरा ताकती रही। अपनी मेज की बाईं ओर रखी फाइलों में से ऊपर की फाइल उठा-

कर चश्मा ठीक करके प्रिंसिपल साहिबा उसमें यों उलझ गईं मानो अमृता को जिस काम के लिए बुलाया था वह हो गया। इतने में घंटी बजी। उन्होंने गर्दन उठाकर कहा, "ठीक है, मेडिकल लीव के लिए ही प्रार्थना-पत्र भेज दीजिए।" छुटकारे की भावना से अमृता उठकर अभिवादन वगैरह कुछ किए बिना लौटकर बाहर आ गई। तुरंत कक्षा में जाकर पढ़ाने लगी तो कमजोरी महसूस करके कुर्सी पर बैठ गई। याद आया कि उसने पढ़ाने के लिए तैयारी नहीं की है। जितनी तैयारी है उसी के बल पर एक घंटे तक कक्षा को उलझाए रखना कोई कठिन काम नहीं था। लेकिन वह ईमानदारी नहीं होगी। क्या मैं इन दिनों बिना तैयारी के या काफ़ी तैयारी किए बिना कक्षा में प्रवेश कर रही हूँ ? ऐसा तो नहीं कि मेरे अध्यापन का स्तर गिर गया हो और किसी ने प्रिंसिपल से शिकायत कर दी हो ? —आशंका हुई। मन इस आशंका में उलझ जाने के कारण खुद उसी को लगने लगा मानो उसका लेक्चर फीका हो गया है। फिर भी एक घंटा बिताकर बाहर निकली। बीच के एक घंटे के अवकाश में अगली कक्षा की तैयारी कर ली।

कार में घर लौटते समय वह सोचने लगी कि आज इस औरत ने क्यों इतनी बातें सुनाईं! उसके 'क्या बीमारी थी'—इस प्रश्न का जवाब मैंने उसे 'पर्सनल' बताया था। शायद इससे चिढ़ गई हो! सवाल करते समय उसका चेहरा तहकीकात करने वाले पुलिस अधिकारी की तरह बन गया था। इसे कहीं पता तो नहीं चल गया ? वह आशंकित हो गई। कैसे पता चल सकता है ? कौन बताएगा ? मेरी स्थिति ऐसी तो नहीं थी कि किसी को मेरे गर्भ का पता लगता। आशंका हुई कि शायद हो। मेरी और सोमु की निकटता अनेक लोग जानते है। दोपहर के समय हमारे कंपाउंड में उसका स्कूटर कुछ लोगों ने पहचाना भी होगा। ये सारी बातें उसके कानों तक पहुँच गई होंगी। जब मैंने 'पर्सनल' कहा तब इन सारी बातों को ध्यान में रखकर ही कहीं उसने मुझे इतना नीति-पाठ तो नहीं पढ़ाया ? यही सब सोचते-सोचते वह घर पहुँची। कुत्तों को खाना खिलाते समय ध्यान आया कि पूरे कालेज में सिर्फ़ उसी के पास कार है। प्रिंसिपल होकर भी वह सिटी-बस से आती है। शायद इसीलिए जलती भी होगी। इस प्रकार के अनेक बाहरी कारणों की कल्पना कर लेने पर भी उसकी बातों के मूल आरोप को मन इंकार नहीं कर सका। वह बेचैन हो उठी। तभी उसका मन अपनी पढ़ाई की ओर चला गया। उसे लगा कि अपना शोधकार्य तो उसने छोड़ ही दिया है। पढ़ाने के लिए जितना जरूरी है उतना ही, पढ़ती है, उससे अधिक कुछ नहीं। कर्तव्यनिष्ठा का मतलब क्या पाठ्यक्रम के अतिरिक्त भी बहुत कुछ पढ़ना नहीं है ? इस अतिरिक्त अध्ययन का परित्याग क्या अपने कर्तव्य से विमुख होना नहीं है ? उसका मन छोटा होने लगा। आधी रात के बाद तक जागती रहती हूँ। एक पन्ना तक नहीं पढ़ती। दोपहर घर आने के बाद शाम के पाँच तक जो समय रहता

है उसमें सोमु की प्रतीक्षा करती हूं। उसके आने के बाद लड़ती हूं। इस प्रकार जितना समय बेकार गंवाती हूं, उसका आधा समय भी अगर पढ़ाई में लगा दूं तो! उसे बड़ा खेद हुआ। भीतर आकर दोनों के लिए थाली लगायी। टेबुल पर खाना सजाकर घड़ी देखी। डेढ़, अभी नहीं आया। सोचा कि तीन दिन से बाहर था, दफ्तर का काम ज्यादा होगा। फिर भी गुस्सा आया। बड़ा आया कर्तव्यपरायण। मेरी अपेक्षा उसका काम ही महत्त्वपूर्ण है। तू अपने कर्त्तव्य-पथ से भ्रष्ट हो गई है, काम की अपेक्षा उसी को अधिक महत्त्व देने लगी है—तराजू के पलड़े की भांति मन का संतुलन डावांडोल होने लगा। बिना खाए क्रोधित मन लिए सिर झुकाए खाने की मेज पर बड़ी देर तक गुमसुम बैठी रही। फोन की घंटी बजी। उसी का होगा, यह बताने के लिए किया होगा कि खाने के लिए नहीं आ सकेगा। यही सोच कर वह चुप बैठी रही। फोन बड़ी देर तक बजता रहा, फिर बंद हो गया। उसके रुक जाने के बाद अमृता को खेद हुआ। कम-से-कम आवाज तो सुनी जा सकती थी। उससे भी ...िन हुई। उसे खेद हुआ। फिर भी गुस्सा आया कि आने के बदले फोन करने की क्या आवश्यकता थी? इतने में फिर घंटी बजने लगी। तपाक से उठकर दौडी। कुर्सी लुढ़क पड़ी, उस ओर ध्यान नहीं था। एक ही सांस में दौड़कर फोन उठाया, वही था, "क्या कर रही थीं, फोन नहीं उठाया?"

"इधर मुझे प्रतीक्षा में बैठाकर अब फोन क्यों कर रहे हो?" उसने डांटकर पूछा।

"मेरे घर को फोन सेंक्शन हुआ है। कहा कि आज ही लाइन जोड़ देंगे। आफिस की सारी फार्मालिटी खत्म हुई। अब उनके साथ घर जा रहा हूं। लाइन जोड़कर फोन फिक्स करने तक वही रहना पड़ेगा। तुम खा लो।"

घर पर फोन लगने का अर्थ समझकर वह फूली नहीं समायी। "नंबर का पता चला हो तो अभी बता दो। या रात के दस बजे बात करो। तुमने कुछ खाया भी या नहीं?"

"अभी तक तो कुछ नहीं।"

"तब तो मैं भी नहीं खाऊंगी।"

"फोन विभाग वालों के साथ मैं खा लूंगा। तुम तुरंत खाकर दवा ले लो।" उसने रिसीवर रख दिया।

पेट में कुछ डालकर दवा लेकर अमृता लेट गई। नीद आने तक मन भारी ही रहा। जिसको इतना भी ध्यान नहीं कि कितने दिन की छुट्टी ली है और अभी कितनी छुट्टी बची है उसमें कर्तव्यपरायणता की बात ही कहां हो सकती है? उसने अपने आपको फटकार लिया। दिन-ब-दिन साल-ब-साल अच्छी अध्यापिका तो नहीं बन रही हूं। पढ़ाने की जरूरत भर का ही पढती हूं—इस अहसास के साथ आत्मभर्त्सना और तेज़ हो गई। किसी काम न आनेवाला घटिया जीवन,

लाख चेष्टा करने पर भी बेशर्म बचा हुआ है। जीवन के हर पहलू में असफलता निश्चित है। अमुक मामले में जीत हुई है, जीत सकूंगी इसका कोई भरोसा नहीं···

रात में बच्चों को खाना खिलाकर सुलाते समय उसने घड़ी देखी। साढ़े नौ बजे थे। लगा कि साढ़े दस बजे वह फोन करेगा। आज ही सारा काम पूरा होकर फोन लग गया होगा। अथवा यह भी हो सकता है कि कोई तार या कील विभाग में उपलब्ध न होने का बहाना बताकर एकाध दिन के लिए फोन लगाना टाल दिया हो। आखिर सरकारी दफ्तर जो ठहरा। अगर ऐसी कोई बात होगी तो वह दफ्तर जाकर फोन करेगा ही, छोड़ेगा नहीं, मेरा मुन्ना। अपने आप को उसने तसल्ली दी। कल के अध्यापन की तैयारी में कोई पुस्तक लेकर बिस्तर पर पढ़ते लेट गई। हर पाँच मिनट पर मन फोन की ओर दौड़ जाता था। उसके बज उठने के भ्रम में उधर मुड़ने का मन होता था। कहीं अपना ही फोन बिगड़ गया हो और उधर वह नंबर मिलाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा हो—इस आशंका से उसने बगल वाले चोंगे को उठाकर कान से लगा लिया। डायल की आवाज़ सुनकर यकीन कर लिया। फिर उसे यथास्थान रख दिया। साढ़े दस, दस-पैंतालीस, दस-पचास—काल् का पता ही नहीं। न, फोन लगा नहीं। फोन नहीं लगा इसकी सूचना देने की भी तमीज नहीं है इस गधे मे। यह गधापन नहीं है, बल्कि उपेक्षा है। मेरे जीने-मरने से उसका क्या लेना-देना है?—पारा चढ़ने लगा। उसके फोन की प्रतीक्षा में दवा की गोलियाँ खाए बिना लेट गई। मेरे खाने या न खाने से उसका क्या बिगड़ने वाला है?—क्रोध कई कारण ढूँढने लगा। अब गोली खा लूंगी। पंद्रह मिनट में नींद आ जाएगी। तब घंटी बजेगी भी तो सुन नही पाऊँगी तब उस गधे को अक्ल आएगी। वह ऊब उठी। फिर विचार आया कि रिसीवर उठाकर रख दे; वह नंबर मिलाएगा भी तो घंटी नहीं बजेगी, निराश होगा; उसकी यही सज़ा है। फिर उसने रिसीवर उठाकर अलग रख दिया। इस तरह उठाकर रखना वह दो मिनट भी सहन नहीं कर पायी। तुरंत उसे ठीक जगह रख दिया। इन दो मिनटों में ही कहीं उसने करने की कोशिश तो नही की होगी! नंबर खराब होने की आशंका से चुप तो नहीं रह गया होगा! उसे शक हुआ। शिकार के समय कुतिया···अपनी मूर्खता पर कुढ़ते हुए वह दस-पंद्रह मिनट प्रतीक्षा करती रही। फिर तुरंत फोन उठाकर उसके दफ्तर का नंबर मिलाया। घंटी बजने लगी। अचानक अगर दफ्तर में ही हो तो? नहीं; कोई नहीं उठा रहा है। इस समय कोई नहीं रहेगा। रहकर भी अगर उठाया न हो तो···मेरी तरह पल-पल पर तुनक उठने का कच्चा स्वभाव उसका नहीं है। इसने निश्चय कर लिया कि वास्तव में दफ्तर में नहीं है। चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए आज वह कहीं-न-कहीं से फोन करेगा ही—इस आत्मविश्वास के साथ वह उठी।

एक ग्लास पानी पीकर पुस्तक लेकर लेट गई।

आखिर बड़ी देर बाद फोन की घंटी बजी। अमृता ने पहले घड़ी देखी। बारह बजकर पाँच मिनट हुए थे। फोन न उठाकर चुपचाप बैठे रहने का मन किया। शायद सो रही होगी इस विचार से उसने लाइन काट दी तो। इस डर से तुरंत उठाकर 'हैलो' कहा। सोमु की ही आवाज़, "अमृ, घर से बोल रहा हूँ, नंबर लिख लो···"

पेंसिल बगल में ही रखी थी। सरपट लिख लिया और पूछा, "इतनी देर क्यों लगायी? लोग भी कैसे लापरवाह होते हैं? सोचते है पड़ी रहने दो प्रतीक्षा में।" तुरंत गुस्सा चढ़ गया। लेकिन अमृता का अपने गुस्से पर ध्यान ही नहीं गया।

"आज क्या हुआ, जानती हो?" वह ठंडे दिल से समझाने लगा, "फोन लगाकर उनके जाने तक सवा-पाँच बज गया था। यहाँ से दफ्तर गया। एक मकान का पिल्ल [illegible] डिजाइन गत सप्ताह ही देना था। सोमवार को तैयार रखने का आश्वासन दिया था: नहीं बन पाया। बुधवार का वायदा करके समझाकर भेज दिया था। ठेकेदार हो-हल्ला करने लगा कि मजदूरों को फोकट की मजदूरी देनी पड़ रही है। अगर वे एक बार हाथ से निकल गए तो पकड़कर लाना कठिन हो जाएगा। लेकिन मंगलवार ही हम लोग बेंगलूर गए थे न, तीन दिन के लिए। आज दोपहर सारा दिन दफ्तर में प्रतीक्षा करते बैठा रहा था। मैं फोन लगवाने की हड़बड़ी में था। उससे मिला ही नहीं। साढ़े पाँच बजे जब दफ्तर पहुँचा तो वह एकदम बौखला उठा। गलती मेरी थी। किसी तरह समझा-बुझाकर उसी समय काम पर बैठ गया। बीच में मौका-मुआइने के लिए जाना पड़ा। उसके साथ जाकर टार्च की रोशनी मे देखकर आया। फिर दफ्तर में आ[illegible]र काम पूरा करके निकलने में ग्यारह-दस हो गए थे।"

"यानी तुम्हारे कहने का मतलब हुआ कि 'तुम्हारी वजह से मैं अपने कारोबार में ठीक तरह से ध्यान नहीं दे पा रहा हूँ। तुम्हारे साथ तीन दिन बेंगलूर जाकर काम बिगाड़ लिया, आज का दिन भी तुम्हारी खातिर फोन लगवाने की दौड़-धूप में बेकार गया। फलस्वरूप रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ा।' यही न?" फटाफट एक मँजे हुए वकील की तरह बोल गई।

"मैंने ऐसा कब कहा? तुमने परेशान होकर पूछा कि फोन करने में क्यों इतनी देर हुई। इसलिए हकीकत बता दी कि क्या हुआ।" वह कुंठित और पीड़ा से भरी कमजोर आवाज़ में बोला।

लेकिन उसकी बात अमृता की समझ की पहुँच में नहीं आयी, "सुनिए, मेरा मतलब यों नहीं त्यों है—ऐसी धूर्तता की बातें कहकर बच निकलना संभव नहीं। मैं इतनी बेअक्ल नहीं कि बातों की ध्वनि पहचान न सकूँ। ध्वनि अर्थ का

अभिन्न अंग होती है। वाच्यार्थ में भी ध्वनि प्रधान होती है। मुझे व्याकरण का पाठ पढ़ाने की चेष्टा मत कीजिए।" तपाक से उसने उल्टी मार मारी।

"ठीक है। कहो, तुम कैसी हो? गोलियाँ लीं?" सोमशेखर ने और अधिक संयम बरतते हुए पूछा।

"देखिए, इससे मुझे चिढ है। आप सब्र का स्वाँग रचकर यह जताना चाहते हैं कि आप मुझसे भले हैं। मेरी अवज्ञा का यह सूक्ष्म विधान है। यह मत समझो कि मैं इसकी ध्वनि नहीं समझती। मैं समझ लूं इसी इरादे से तो आप कहते हैं। 'गोलियाँ लीं?' का मतलब क्या हुआ? उसमें नींद का अंश होता है। खाकर चुपचाप पड़ी रहो, बोलना बंद करो। यही बात अगर आप सीधे मुंह, डाँटकर कह देते तो मुझे बड़ी खुशी होती। घुमा-फिराकर मेरी चाची की तरह मक्खन से बाल निकालने की कला तुम में भी कम नहीं है। मैं आपके पाँव पड़ती हूँ, यह चाल छोड़ दीजिए।" सोमशेखर उलझन में पड़ गया। रिसीवर कान से लगाए चुपचाप बैठा रहा। अमृता उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में थी। जवाब न पाकर अवमानित-सी हुई। "अगर आपको बोलना पसंद नहीं है तो साफ़-साफ़ कह दीजिए अथवा फोन रख दीजिए। सामने नचाने से जी नहीं भरा, अब फोन पर भी नचाने लगे हो? इसीलिए तो दौड़-धूप करके आपने फोन लगवा लिया है।" तपाक से उसने अपना रिसीवर पटक दिया।

सोमशेखर के सारे बदन में चिपचिपाहट थी। पिछली सारी रात सो नहीं पाया था। सवेरे जो थोड़ी-सी झपकी लगी थी, बस वही। सारा दिन टेलीफोन का दफ्तर, दस हज़ार रुपए की जुगाड़ आदि के लिए दौड़धूप रही। शाम से अब तक लगातार ठेकेदार के साथ काम। घर आते ही नहाकर सो जाना चाहा था। फोन का शुभ उद्घाटन करने के उद्देश्य से जूते भी उतारे बिना अमृता को फोन किया था। उसके लाख चिढ़ने पर भी अपना धीरज न खोने का निश्चय याद करके वह शांत रहा। लेकिन इस प्रयत्न की थकावट, और मन का दुःसह्य बोझ शरीर पर अपना प्रभाव दिखाने लगा। अब दुबारा उसको फोन किया जा सकता है। लेकिन उससे उसके क्रोध को भड़काने का ही काम होगा। यह सोचकर जूते-मोजे उतार कर कपड़े बदले। हमाम में जाकर दो बाल्टी ठंडे पानी से ही नहा लिया। बदन पोंछकर बाहर निकलने तक शरीर बहुत थकावट महसूस कर रहा था। फिर भी बदन की चिपचिपाहट धुल जाने के कारण हल्का-सा महसूस होने लगा। लगा कि अब गहरी नींद के सिवा कुछ नहीं चाहिए। तभी भूख का अहसास हुआ। दोपहर खाना नहीं खाया था। रात में ठेकेदार को बिदा करने तक सारे होटल बंद हो चुके थे। याद आया कि घर में कार्नफ्लेक्स और मिल्क-पाउडर है। पाउडर घोल-कर उसमें कार्नफ्लेक्स भिगाकर नहीं खाएगा तो नींद नहीं आएगी, यह सोचकर वह तुरंत रसोई-घर में घुस गया।

इतने में फोन बजने लगा। अवश्य उसी का है। अपना फोन आज ही लगा है। नबर कोई नहीं जानता। मैंने फैसला किया है कि किसी को बताऊँगा भी नहीं। इसी सोच में रिसीवर उठा लिया। "सोमु, मैंने फोन पटक दिया, इसलिए नाराज हो गए ?" उसने पूछा।

"नहीं।" वह शांत स्वर में बोला।

"देखो, जब गुस्सा आये तो साफ़-साफ़ मान लेने में क्या हर्ज है ?"

सोमशेखर समझ नहीं पाया कि चिढ़े बिना कैसे जवाब दे। मुझ पर झूठ बोलने का आरोप लगाने वाली तुम्हारी ध्वनि मैं समझता हूँ—कहने का मन हुआ। फिर भी उसे दबाकर बोला, "जब गुस्सा आया ही न हो तब कैसे कहूँ कि आया है ?"

"तुम्हारा सब्र देखकर गुस्सा आता है, प्यार भी आता है। शायद तुमने यह समझ लिया है कि अपने सब्र से मेरा क्रोध शांत कर सकोगे। वास्तव में उससे मेरा क्रोध और बढ़ने लगता है, मुझे चिढ़ होने लगती है। इस उफनते हुए क्रोध की प्रतिक्रिया सामनेवाले पर व्यक्त कर देने से बहुत दिलासा मिलती है। अगर व्यक्त न हो तो व्यक्ति निराश होकर और अधिक भड़क उठता है। जरा इसे समझने का प्रयत्न करोगे ?"

"ठीक है।"

"क्या ठीक है ? बड़ा आदमी बनने का, शांतचित्त होने का बड़ा अहंकार है तुम में। तुम्हारे इस अहंकार से ही मेरा गुस्सा चढ़ने लगता है। मुझसे भी अच्छा बनने का संकल्प तुम में है। अर्थात् मुझे नीचा दिखाने का निहित उद्देश्य तुम्हारा है। है न ? सोचकर बताओ।" इन बातों का अर्थ सोमशेखर की खोपड़ी में नहीं उतर रहा था। जल्दी से थोड़ा-सा कार्नफ्लेक्स खाकर सो जाने का मन हो रहा था। "क्या लगता है, बताओ।" उसने तलब किया।

"तुम्हारी सलाह पर विचार करूँगा। यह आत्मविश्लेषण, आत्मशुद्धि का प्रश्न है। इसके बारे में तत्काल कुछ कह पाना कठिन है—कि ऐसा लगता है—ऐसा नहीं लगता।" इस बात के साथ उसे जंभाई आयी। जंभाई की आवाज़ सुनकर वह समझेगी कि उसकी बात की लापरवाही की जा रही है और वह और ज्यादा चिढ़ जाएगी। इसलिए फोन पर हथेली रख ली। फिर पूछा, "कालेज गई थीं ?"

"यह प्रश्न क्यों पूछ रहे हो ?"

'आराम किया है या नहीं, इसलिए पूछा।"

"हाँ, याद आया। मैं सवेरे कालेज गई थी।" यह कहकर अमृता ने प्रिंसिपल से हुई अपनी सारी बातों का ब्यौरा सोमशेखर को सुना दिया। फिर पूछा, "तुम्हें कैसा लगता है, बताओ।"

"अकेली नौकरी की ही बात नहीं। निजी कारोबार में भी ग्राहकों से ऐसी बातें सुननी ही पड़ती है। इसका इतना बुरा नहीं मानना चाहिए। अपने फैमिली डाक्टर से कहो; अर्जंट काम से ऐस्टेड जाना पड़ा। कोई छुट्टी नहीं है। तीन दिन की बीमारी का कारण बताकर एक प्रमाण-पत्र लिखवा लो।"

"मैं कितनी परेशान थी, तुम क्या जानो! कितनी आसानी से तुमने परेशानी मिटा दी। ऐसी बातें सुनने के मौके आते ही रहेंगे। इसलिए जी करता है कि त्याग-पत्र लिखकर उसके मुँह पर फेंक दूं।"—ऊँची आवाज़ में बोली।

"मुझे बताए बिना ऐसा कुछ मत करो। तुम्हारा कालेज जाना रोटी कमाने के लिए नहीं; पढ़ाने के लिए, अपने ज्ञान का विकास करने के लिए है।"

"मैं ठीक तरह से पढ़ा नहीं पा रही हूँ। पढ़ नहीं रही हूँ।"

"तुम अच्छा पढ़ा रही हो। लेकिन काफी पढ़ती नहीं, अलबत्ता यह बात सच है। कुछ कारणों से ऐसा हुआ होगा। बहुत जल्दी ही सब ठीक होगा। अब दवा लेकर सो जाओ।"

"क्यों, तुम्हें बोर कर रही हूँ? सच कहो। बोरियत से बचने के लिए ऐसा कह रहे हो न?"

"बिलकुल गलत। दिन में तीन बार यानी रात के भोजन के आधा घंटे बाद तुम्हें दवा लेनी थी। अब दो बजने में पाँच मिनट बाकी है। अगर दवा को खुराक लेने में साढ़े चार घंटे की देरी की जाए तो ठीक कैसे होगी?" अब तुरत दवा ले लो। कल बातें करेंगे। कल अपने डाक्टर से प्रमाण-पत्र ले लेना।"

"यानी कि झूठा प्रमाण-पत्र। झूठ बोलने के लिए कहते हो?"

"सच-झूठ के फर्क की मीमांसा बाद में कर लेंगे। फिलहाल दवा ले लो।" —इतना कहकर भी उसने पहले फोन नहीं रखा। साधारणतः यह समय अमृता के लिए रिवाल्वर लेकर बैठने का या पहाड़ की चोटी पर चढने का है। लगा कि अगर अब आप फोन रख देंगे। तो उसे वह लापरवाही मानकर रिवाल्वर निकाल सकती है।

लेकिन अमृता ने बात खत्म नहीं की, "झूठ बोलने की क्या पड़ी है मुझे?" इसी तरह बातों का सिलसिला बढ़ाते हुए जब उसने बात खत्म की तब पौने तीन बजे थे। अमृता ने ही पहले फोन नीचे रखा। फिर झटपट सोमशेखर ने थोड़ा-सा कार्नफ्लेक्स खा लिया। मच्छरदानी लगाकर सो गया। कल सवेरे नौ बजे ठेकेदार दफ्तर में आएँगे। तब तक उनका काम पूरा कर देना होगा। अब कम-से-कम दो घंटे की नींद तो ले ही लेनी चाहिए। सात बजे भी दफ्तर पहुंच जाऊँ तो उनके आने तक काम पूरा हो जाएगा। प्रतीक्षा करवानी भी पड़े तो दस-पंद्रह मिनट से अधिक नहीं। इस चिंता के बावजूद उसे नींद ने अपने आगोश में समेट लिया।

सवेरे जब आँख खुली तो साढ़े दस बज रहे थे। उसे अपनी ही आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। हड़बड़ाकर उठा, मंजन किया। शेव, स्नान कुछ किए बिना शर्ट-पेंट पहनकर स्कूटर लेकर जब दफ्तर पहुँचा तब ग्यारह बज रहे थे। ठेकेदार बोरलिंगेगौड़ ही नहीं बल्कि घर बनवाने वाले मालिक डॉ० गजशेखर शेट्टी भी इन्तजार कर रहे थे। "रात में साढ़े ग्यारह तक काम करता रहा, अब बिल्कुल थोड़ा-सा बचा है।" दाँत निपोरकर वह बोला।

ठेकेदार बोला, "मैं पौने नौ बजे ही आया। दस बजे तक मैंने अकेले इंतजार किया। फिर फोन करके इन्हें भी बुला लिया। आगे जो कुछ कहना है इनसे कहिए।" सोमशेखर जानता था कि बात अब क्षमायाचना की सीमा को पार कर गई है। कल रात ही वे काफ़ी गरम हो उठे थे। आज सवेरे नौ तक डिजाइन देने का वादा करके किसी तरह उन्हें मना लिया था। अब पुनः उनके सामने गिड़गिड़ाना उसे लज्जाजनक लगा।

भावी मकान के मालिक बोले, "एक-एक दिन की देरी से कितना नुकसान होगा, इसका ब्यौरा ठेकेदार ने दिया है। आज का दिन भी बेकार गया। इस नुकसान की भरपाई कौन करेगा? वे करेंगे? या मुझे खुद करनी होगी? अथवा आप करेंगे? मकान बनवाने वाले सभी लोग आर्किटेक्ट को नहीं रखते। मैंने यह सोचकर आपको मुकर्रर कर लिया कि चलो रहने दो। आप ठहरे बड़े आदमी, बंबई के लोग। जो कुछ बनता है हिसाब चुकता कीजिए। नमस्कार।"

उसे समझाना भी सोमशेखर को लज्जाजनक लगा। वास्तुकार के पूरे जीवन में उसके सामने कभी ऐसी स्थिति नहीं आयी थी। सच है कि उनका नुकसान हो रहा है; उनकी बेसब्री भी स्वाभाविक ही है। लगा कि मेरे आने से पहले ही उन दोनों ने परस्पर सोच-विचार करके फैसला कर लिया था। गर्दन उठाकर उनसे बोला, "मेरे हिस्से का चौथाई काम हुआ था। यानी आपको तीन हज़ार की पहली किश्त अदा करनी थी। मेरे कारण पंद्रह दिनों की मजदूरी का नुकसान हुआ है। यानी लगभग अढ़ाई हज़ार। समझ लीजिए कि आपको मुझे कुछ नहीं देना और न मैं आपको कुछ देने वाला हूँ। ग़लती मेरी है। माफ़ कीजिए। मन में कड़आहट नहीं होनी चाहिए। गृह-प्रवेश के दिन बुलाइए। मैं आकर मीठा खा लूंगा।" उसने उठकर हाथ जोड़ दिए।

उन दोनों के लिए यह अकल्पित बर्ताव था। "माफ़ कीजिए मुझे बाहर कुछ काम है।"—कहकर वह अपने चेंबर से बाहर निकल गया। सीढ़िया उतरकर पास के मामूली होटल में चला गया। नाश्ता करते समय यह बात सालने लगी कि मैंने व्यवहार के अंत में केवल उसे प्रतिष्ठा का रूप दिया। लेकिन ग़लती तो मेरी ही थी। सोमशेखर के नाश्ता करके लौटने तक वे दोनों जा चुके थे। अपने चेंबर में आ बैठा। लेकिन किसी काम में मन नहीं लगा। पराभव का अहसास होने लगा।

यह बात अपने कारोबार में कोई काम हाथ से चले जाने की या बारह हज़ार की आमदनी खो देने की नहीं थी। अहसास हुआ कि जीवन में, अपने संपूर्ण जीवन में वह पराभव की पहली सीढ़ी उतर चुका है, हाथ बाँधकर चुपचाप दफ्तर में बैठने का मन नहीं हुआ। कहीं दूर, आबादी से दूर किसी पेड़ की छाया में बैठने का मन हुआ। अब पहले ही कई दिन दफ्तर के समय अनुपस्थित रहा है। बीते सात-आठ दिनों से दफ्तर में बैठा नहीं। खुद ही अगर इस तरह भटकता रहेगा तो अधीनस्थ लोगों में निष्ठा कैसे आ सकती है? इस अनुभूति के बावजूद अपने मानसिक दबाव को वह सह नहीं पाया। नीचे उतर आया। स्कूटर पर चढ़कर बोगादो पार करके तीन मील दूर चला गया। सड़क से हटकर कुछ दूर एक पीपल का पेड़ था। उसकी छाया में चुपचाप बैठा रहा। अपनी मानसिक पीड़ा, अपनी हताशा को किसी मित्र के सामने कह देने की इच्छा हुई। लेकिन इस शहर में ऐसा कोई मित्र नहीं है। जो है वह अभी नया-नया मित्र बना है और उसे इस प्रकार की भावनाओं की बारीकियाँ समझ में नहीं आयेंगी। ऐसी बातों पर वह विश्वास भी नहीं करता। अलबत्ता कारोबार में लाजवाब योग्य और सच्ची सलाह दे सकेगा। सोमशेखर ने निश्चय किया कि आज जो काम रद्द हुआ, और उसके साथ तीन हजार का जो नुकसान हुआ उसका अमृता को पता नहीं चलने देगा। अगर पता चल गया तो सारा दोष अपने सिर मढ़ लेगी और पहले ही हताश और अधिक ढह जाएगी। तुरंत एक और बात याद आई। रेलगाड़ी में उसने दो हज़ार रुपए दिए थे उसे वापस लेने के लिए खुद राजी हुई है। लौटाना होगा। फोन के लिए जो दस हज़ार जमा किए गए थे उसमें ठेकेदार नंजप्पा से उठाए गए आठ हजार के कर्ज के साथ ये दो हज़ार जोड़कर जमा करने की बात याद आई। अब किसी के यहाँ से दो-हजार का जुगाड़ करके अमृता की रकम लौटानी होगी। वे सौ-सौ के नए नोट ही होने चाहिए। वरना वह समझ लेगी कि यह अलग रकम है। इस निश्चय के साथ उठकर उसने स्कूटर में किक लगायी।

जब से सोमशेखर के घर फोन आया है तब से अमृता की उस पर इतनी निर्भरता बढ़ गई है कि हर रात खाना खाकर बच्चों को सुलाने के बाद उसके कान और आँखें हर पल फोन में ही गड़ी रहती हैं। उत्तर-मुखी को आप चाहे किसी भी दिशा में घुमाकर रखिए, वह उत्तर दिशा की ओर ही मुड़ जाती है। बेडरूम छोड़कर पल-भर के लिए भी कहीं बाहर जा पाना संभव नहीं होता था। मैं दूर चली जाऊँ और इधर फोन की घंटी बजने लगी तो! भीतर से दरवाजा बंद करके चाहे कितनी भी देर तक बातें करो, कोई सुन नहीं पाएगा। इसलिए जल्दी ही बेडरूम में प्रवेश कर जाती थी। सामान्यतः फोन साढ़े ग्यारह बजे आता था। सोमशेखर के लिए घर लौटकर कपड़े बदलकर आराम के साथ बातें करने का सुविधाजनक

समय वही है। उससे पहले दस बजे एक बार दस-पंद्रह मिनट के लिए बातें करके पुनः फुर्सत से साढ़े ग्यारह बजे क्यों नहीं करता ? इस बात से उसे कुढ़न होती थी। लेकिन दस बजे वह होटल में खाना खाने जाता है। खाना खाने यहीं क्यों नहीं आ जाता ? हर रोज भी आएगा तो क्या बिगड़ेगा ? बच्चों से क्यों डरे भला ? वह मन-ही-मन में कुढ़ती रही। फिर भी पता नहीं क्यों इस आशय का निश्चित निमंत्रण देने का साहस उसे नहीं हो पाता था। सोमशेखर भी क्यों डरे भला ?

'अमू, रात को दफ्तर खत्म होते ही सीधा यहाँ आऊँगा। साथ मिलकर खाना भी खाएँगे और बातें भी करेंगे। बच्चे तो जानते ही हैं कि हम अच्छे मित्र है। इससे अधिक जानकारी आगे भविष्य में छिपी नहीं रहेगी। हम किससे डरें ? क्यों डरें भला ?'—वह खुद कहता क्यों नहीं ? दूर-दूर रहने का ही फैसला किया है, इसलिए चुप रहता है। उसकी असलियत जानती हूँ।—सोम-शेखर पर कुढ़ने लगती है। फोन का वार्तालाप कभी-कभी बहुत ही आत्मीय दो प्रेमियों का रंगीन वार्तालाप बन जाता है। आपसी प्यार का, दुलार का, छेड़ छाड़ का, मान-मुरव्वत का, शृंगार-रस का वार्तालाप बढ़ते जाता है। लेकिन ऐसी लहर संयोग से उठती है। वरना अमृता का क्रोध, चिढ़, आरोप आदि गरमा कर उसकी सारी बातें चुभती-सी, काटती-सी, धारदार हथियार-सी बन जाती है। बात करते समय उसे अपने-आप पर नियंत्रण नहीं रहता। जब दूसरे दिन उसका विश्लेषण करने लगती है तब अहसास होता है कि मैंने ऐसा क्यों किया ? वह इस फैसले पर आ चुकी थी कि लहर कब किस दिशा में किस अवस्था में अपना रूप बदलेगी यह उसके नियंत्रण के बाहर है; कोई आंतरिक प्रेरणा उसी को निर्देशित करती है। सोमशेखर की बात ऐसी नहीं है। जब मैं ललित लहरी का दामन थाम लेती हूँ तो वह उसी लहरी में अपने समान ही सक्रिय भागीदार बन जाता है। लेकिन कभी-कभी ही उसके मन में यह विचार आता है कि जब मे झगड़ा-फसाद का मार्ग अपना लेती हूँ तब शांति के साथ मेरी हर बात को यों सह लेता है जैसे समुद्र-मंथन का सारा विष खुद पीकर शिवजी ने सभी के लिए अमृत छोड़ दिया था। लेकिन यह विचार बहुत समय तक नहीं रहता था। मेरे क्रोध का वह तिरस्कार करता है, इसीलिए वह प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता—इस भावना के कारण उसका मन और भी भड़क उठता है।

इतना सब कुछ होते हुए भी फोन आने के बाद उसमें जो परिवर्तन आया उसे खुद अमृता जानती है। रात के भोजन के बाद उसके फोन का इंतजार करने लगती हूँ। उससे बँध जाती हूँ। कितनी ही रातें मैं, दस में सात-आठ रातें मैं गहरी निराशा का शिकार होकर हाथ में रिवाल्वर ले लेती हूँ। कार चढ़कर पहाड़ पर जाने का दबाव मन में बाढ़ की तरह उफनता है। चाभी लेकर निकलने के लिए

तैयार हो जाती हूँ। तब मन डर जाता है कि मेरी अनुपस्थिति के कारण कहीं फोन चूक न जाए। फिर बैठकर उसका इंतजार करने लगती हूँ। मेरे मरने की आजादी में यह कंबख्त फोन रोड़े अटकाता है। जैसे शराबी शराब का गुलाम बन जाता है उसी तरह मैं इस यंत्र की दासी बन गई हूँ। फोन आता है तो आने दो ! कुछ देर बजता रहेगा। मैं नहीं हूँ यह समझ कर वह फोन रख देगा। न ! चुप नहीं रहेगा। वह समझ लेगा कि मैं पहाड़ पर गई हूँ। स्कूटर लेकर पहुँच जाएगा। फिर लगातार फोन के बजने से रात के सन्नाटे में कहीं बच्चे जागकर आ जाएँ और उन्हें मेरी अनपस्थिति का पता लग गया तो ! रिसीवर उठाकर अलग रखकर चली जाऊँ तो घंटी बजने का सवाल ही नहीं—बड़ा आसान हल सूझा। लेकिन वह मानेगा नहीं; इतनी रात गए फोन का एंगेज रहना संभव नहीं, वह समझ लेगा कि उद्देश्यपूर्वक ऐसा करके मैं बाहर चली गई हूँ। तुरंत वह स्कूटर चढ़कर आ जाएगा। मुझ पर खुफियागीरी करने के लिए ही घर पर फोन लगवाया है, रास्कल, प्यार के वार्तालाप के लिए नहीं, मेरी आजादी में फाँसी का तार डालकर फंदा खींचने के लिए यह तार का संपर्क कायम किया है।

एक दिन जब यही भावना उत्कट हुई थी तब इसी ने रात के सवा ग्यारह बजे उसका नंबर घुमाया था। तब सोमशेखर बोला था, "अमू, तुम्हीं ने किया ? जानती हो मुझे कितनी खुशी हुई तुम्हें फोन करते देखकर ? अभी-अभी आया।"

"खुशी की बात रहने दीजिए। एक सीधा प्रश्न पूछती हूँ। क्या आप सीधा यानी कि ईमानदारी से जवाब देंगे ?"

"बेईमानी कभी किसी के साथ मैंने नहीं की। तुमसे तो हर्गिज़ नहीं। क्या बात है कहो।"

"यानी आप सच्चे हैं, सत्यवान हैं; मैं झूठी हूँ—यह है न आपका आशय !"

"मैं जानता हूँ कि तुम भी उतनी ही सच्ची हो। इसके सिवा किसी और भावना के लिए मेरे मन में गुंजाइश नहीं है।"

"बातों में हवाई-महल बाँधने में आप लाजवाब है। खैर छोड़िए इन बातों को। अब यह बताइए कि आपने घर पर फोन क्यों लगवाया है ?"

"अपनी अमू से बातें करने के लिए। वह भी जब चाहे तब मुझसे बात कर सके, इसलिए।"

"आपकी बेईमानी का, झूठखोरी का, रैस्कलपन का, लोफरी का क्या इससे बढ़कर कोई और सबूत चाहिए ?" कहकर चोंगे को उसके स्थान पर पटक दिया।

रोना आ गया। मानो वह फँस गई है; एक ऐसे पुरुष के जाल में फँस गई

है जिसका स्वभाव ही औरतों को मोहित करना है और जो इस काम में काफ़ी महारत रखता है। अमृता के मन में ऐसी लाचारी की भावना भर गई कि मानो इस जाल से छूट पाना उसके लिए असम्भव हो गया है और लाचार-सी छटपटाने लगी है। तुरंत उठकर रिवाल्वर लिए कार में बाहर निकलने की इच्छा हुई। रिसीवर उठाकर अलग रख दिया। नाइटी उतार कर जो साड़ी हाथ में आई उसे पहन लिया। पाँव में चप्पल पहनकर हाथ में रिवाल्वर लिए कमरे के दरवाज़े तक आई। दरवाज़ा खोलने से पहले ख्याल आया : जब से उसके घर में फोन लगा है तब से वह रात में कार लेकर पहाड़ पर गई ही नहीं। गहन अंधकार की खामोशी से वंचित हुई है। क्यों वंचित रहे वह ? आज जाकर ही रहूँगी। केवल जाऊँगी ही नहीं, मुँह में रिवाल्वर की नली रखकर ट्रिगर दबा लूंगी। मुझे कौन रोक सकता है ? रोकने की शक्ति किस में है ? हक किसे है ? मैं किसी की बाँदी नहीं हूँ; किसी की दासी नहीं हूँ—इस निश्चय के साथ उसने दरवाजा खोला।

फिर, गोद्दार के दरवाजे के पास आने के बाद विचार आया : मेरे फोन पटकने के बाद उसने बार-बार फोन किया होगा। लगातार एंगेज आवाज सुनाई दी होगी। वह तुरंत जान गया होगा कि मैंने जान-बूझकर रिसीवर उठाकर रखा है। अगर स्कूटर चढ़कर आ गया तो ! शायद अब तक निकल भी चुका होगा। मेरी कार सड़क तक पहुँचते-पहुँचते अगर उसने आकर घेर लिया और पूछा कि 'अमू, कहाँ जा रही हो ?'—इस संभावना की कल्पना से न जाने क्यो वह लजा गई। लजाने जैसा कोई काम मैंने नहीं किया। किसी से डरने की आवश्यकता नही। फोन उठाकर ठीक तरह रख दूंगी। उसके साथ दो-चार बातें करके उसका इधर आना टालकर फिर निकलूंगी—इस निश्चय के साथ लौटकर कमरे में आई। दरवाजा बंद कर लिया। रिसीवर को उसकी जगह रखकर फोन को घूरते खड़ी रही। एक, दो, तीन, चार सेकंड हुए। अभी वह बज नहीं रहा है। उसने किया नहीं। इस बीच मैंने जो पटक दिया उससे गुस्से में आकर ऐसा तो निर्णय नहीं लिया होगा कि अब इसको फोन करेगा ही नहीं ! इस सोच के साथ कुछ खो देने का-सा अहसास हुआ। मानो सभी कुछ खो दिया हो। अपने क्रोध को नियंत्रण में रखना चाहिए। मन में यह खेद की भावना जागी कि फिर कभी उसे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए। फिर सोचने लगी कि मैं किसके साथ ऐसा सलूक करती हूँ भला ! केवल उस अकेले के साथ ही। ऐसी साधारण बातों से अगर इसका भी पारा चढ़ता है तो आम लोगों में और इसमें फर्क ही क्या रहा ? क्या उसका प्यार केवल ढोंग नहीं है ?—इस विचार के साथ जैसे ही क्रोध चढ़ने लगा, सहसा फोन की घंटी बज उठी। दिल को धड़काने वाली उत्सुकता जाग गई। पलभर में हाथ बढ़ाकर रिसीवर उठा लिया।

"अमू, कब तक रिसीवर उठाकर रखोगी ?" सब्र किंतु किंचित् अधिकारपूर्वक उसने पूछा।

"मेरी मर्जी।" वह बोली।

"फिर अब क्यों ठीक तरह से रखा ?" उसने पूछा।

"वह भी मेरी मर्जी।" बोली।

"मर्जी के लिए भी कोई कारण होगा न ?"

"वह भी मेरी मर्जी।" अपनी इस बात की अर्थहीनता पर उसे खुद ही हँसी आ गई।

हँसी की खिलखिलाहट सुनकर वह बोला, "यह हुई मेरी मर्जी की बात।" इसके पश्चात् दोनों एक घंटे से भी ज्यादा बातें करते रहे। एक बार बात शुरू हुई तो बस विषय की कोई कमी नहीं रहती थी। विषय का अपने-आप निर्माण होकर यथासंभव आगे—आगे ही दिखाई पड़ने वाले भूमि के छोर की तरह उसका विस्तार होता चला जाता था। बीच-बीच में छेड़छाड़, मीठी-मीठा बातें भी झांक गईं।

दूसरे दिन सवेरे से ही एक प्रकार का अपराधी मानोभाव दिखाई पड़ा। बेंगलूर से लौटकर डेढ़ महीना हुआ था। सोमशेखर कई बार दोपहर के खाने के लिए आ चुका था। पास बैठा था। बिस्तर में साथ विश्राम किया था। कुछ दिन संल्लाप और कई दिन कोपताप के एकतरफा झगड़े से दुःखी भो हुआ था। लेकिन इस बीच एक बार भी दैहिक संपर्क नहीं हुआ। भ्रूण का निवारण कर लेने के पश्चात् अपने में ही पाप-प्रज्ञा कचोटने लगी थी। बिना किसी रति-भाव के स्पर्श के सहज स्नेह-भावना से भी अगर सोमशेखर अपने कंधे पर हाथ रखता तो मैं चिढ़ जाती थी। कई बार उस पर कामुक-पशु का लांछन लगाकर उसे शर्मिंदा भी किया था। फोन पर भी भ्रूण-निवारण की याद क्रोध बनकर उसकी सारी जिम्मेदारी उसी पर थोपकर कई दिन गालियाँ दी थीं। पिछले सप्ताह दोपहर के समय जब मैं उमंग की लहर में थी और रंगीन छेड़छाड़ करने लगी थी तब वह रति की दिशा में आगे बढ़ा था। तब मैंने उसकी ऐसी अवमानना की थी कि चेहरे पर खून और आँखों में पानी उतर आया था। इतना मार सहकर भी उसने पलटकर जवाब नहीं दिया। मेरे सारे आरोपों को ढोकर वह यों झुक गया मानो सारी ग़लती उसी की थी। छिः ! अमृता को लगा कि उसकी जैसी क्रूर, घटिया, नालायक औरत दूसरी नहीं है। मेरे बदले अगर उसने झाड़ू लगाने वाली औरत को भी रख लिया होता तो कम-से-कम शारीरिक सुख तो मिलता रहता। मैं ऐसी पापिन हूँ कि वह सुख भी नहीं दे सकती—उसने अपने गालों पर दो-चार चपत मार लिए। फिर भी कालेज गई। पढ़ाते समय भी इसी भावना का शिकार हो जाने से उसे अहसास हुआ कि उसका लेक्चर यांत्रिक-सा बन गया था।

लगा कि यह काम उससे संभव ही नहीं।

कालेज से घर लौटते समय अमृता को यह अहसास होने लगा था कि आज सवेरे से उसके मन में मधुर भावनाएँ जागने लगी हैं। मन में ऐसी उत्कट इच्छा उत्पन्न होने लगी कि रास्ते में उसके दफ्तर जाकर उसे कार में घर ले चलूं। कार को उस ओर मोड़ा भी था, फिर सोचा कि उसका जाना ठीक नहीं होगा। घर पहुँचकर फोन करूंगी। वरना ऐन भोजन के समय फोन पर वह कह सकता है कि आज बहुत जरूरी काम है, आ नहीं सकूंगा। वह सीधी घर गई। सोमशेखर को फोन मिलाया। "बड़ी मजेदार बात है। तुमसे कहनी है। जल्दी आ जाओ, इसी क्षण।" वह बोली।

"आधा घंटे में," वह बोला।

"पंद्रह मिनट में क्यों नहीं ?" बनावटी नाराजगी से अमृता ने पूछा।

"कोशिश करूंगा।"

अमृता ने जल्दी उठकर कुत्तों को खाना खिलाया। कपड़े बदलकर हाथ-मुँह धो लिया। चेहरे पर स्नो लगाकर हल्का-सा पाउडर का लेप कर लिया। हल्के गुलाबी रंग की साड़ी पहनी। कंपाउंड में जाकर खिला हुआ एक गुलाब का फूल तोड़कर जूड़े में पहन लिया। जल्दी भीतर जाकर टेबुल पर थाली, खाने की सामग्री आदि सजा कर रखी। फिर दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई और अपनी कलाई की घड़ी में घूमती हुई सैकंड की सुई को निहारने लगी। सोमशेखर के आते ही पूछा, "पाँच मिनट की देर हुई। जुर्माना जानते हो ?"

अमृता के चेहरे की भंगिमा, नैनों की चितवन, साड़ी का रंग, जूड़े मे खिला हुआ गुलाब का फूल—सोमशेखर ने देखा। लेकिन उसकी विशेषता न पहचान कर अमृता के भीतर उठने वाली भाव-तरंगों को समझते हुए, "कैसी चिलचिलाती धूप है बाहर !" कहते हुए भीतर आया। लाउंज में हेल्मेट रखकर जूते उतारे।

अमृता उसका हाथ पकड़कर भीतर ले गई। लुंगी देकर कपड़े बदलवाए। खुद पानी डालकर उसके पाँव धोए। सोमशेखर को खुशी हुई। "स्वामी के चरण धोकर पूजा न करूँ तो शायद रुष्ट हो जाएँगे।" वह बोली।

"दरिद्र का क्रोध दाढ़ की साँसत" जब सोमशेखर ने कहावत कही तो अमृता को इस बात की निराशा हुई कि वह अभी उसकी लहर के सम प्रवाह नहीं हुआ है। इस बात का गुस्सा आया कि अपने गाल पर थप्पड़ को याद करके कहीं ताने तो नहीं कस रहा। लेकिन क्रोध से अपनी लहर किरकिरी हो जाने का अहसास हुआ। आज इसे अपनी लहर में खींच लाऊँगी ही, वरना मेरा नाम अमृता नहीं—उसने जिद की।

तौलिया से उसने खुद पाँव पोंछे। हाथ पकड़कर थाली के सामने ले गई। दोनों के लिए एक ही थाली में परोसकर अपने हाथ से कौर उठाकर सोमशेखर

के मुँह में रखा, "मुन्ना, आज तुम्हें खाना खिलाने की इच्छा हुई", फिर बोली, "पाजी, समझ लेना, भई," वह मुसकुराई। सोमशेखर अब समझ गया। सोमशेखर समझ गया है इस बात को अमृता भी जान गई। सोमशेखर की इस भावना को सूचित करते हुए अमृता ने सायास लाकर दृष्टि झुका ली।

अमृता ने जहाँ छोड़ा था उसके आगे वाली अर्धाली उठा पाना सोमशेखर को कठिन लगा। भ्रूण निवारण से पहले अमृता ने अपनी अवनत भावना को दो-चार बार आग्रहपूर्वक जगाया तो था। लेकिन, बेंगलूर में और वहाँ से लौटने के बाद समागम को ही एक नीच क्रिया मानकर तिरस्कारपूर्वक बार-बार धिक्कारती रही है। कामुक पशु शब्द का प्रयोग तो उसने सौ से भी अधिक बार किया होगा। उन सारी बातों को भूलकर अब ! अमृता के संदर्भ में सब्र और धीरज को उसने अपना स्वभाव बना लिया था। एक हद तक यह उसकी प्रकृति बन गयी थी। लेकिन···भीतरी उथल-पुथल को मुखरित न करते हुए उसने भी हाथ बढ़ाकर अमृता के मुँह में कौर रख दिया। सरस-विनोद में खाना खत्म हुआ। सोमशेखर पहले बिस्तर पर जाकर लेट गया। थालियाँ वगैरह उठाकर, मेज साफ करके अमृता के आने तक उसके मन में गदर मची रही। लेकिन उसे मसोसकर संयम और शांति के कवच से बाँधे रखने की चेष्टा करता रहा था। कोई और समझौता हो तो सब्र के साथ आराम से किया जा सकता है; लेकिन जब नर-नारी के दैहिक संपर्क की चरमावस्था का प्रश्न हो तो मन कैसा होने लगता है। सहयोग न देने पर आज उसमें अवश्य शून्य-भाव घिर जायेगा। आत्महत्या के दबाव और उसकी पीड़ा से कराह उठेगी। अंत में उसका सारा दोष मुझ पर थोप देगी। क्रोध का शिकार होने का डर उसे नहीं था। पहले से ही काफी आदत बन चुकी है। लेकिन उससे स्वयं उसे भी कोई कम पीड़ा नहीं होगी। जानबूझ कर कौन भला पीड़ा का आह्वान करता है ? इसके अतिरिक्त शून्य-भाव का शिकार होने पर उसे जो पीड़ा होने लगती है उसे देख पाना ही उसके लिए असहनीय हो जाता है। अगर अब स्पंदित न हुआ तो वह समझ लेगी कि मैंने उसे ठुकराया है, उसका तिरस्कार किया है। इसलिए मुझे अपनी सारी संकल्प-शक्ति का आह्वान करके अपने प्यार और सहनशीलता को झकझोर कर उसे रति के रूप में प्रवाहित करना होगा। यह एक परीक्षा है। सहनशीलता एक सरल स्तर है। क्रियात्मक रूप से स्पंदित होना मूर्त स्तर है। सोमशेखर जब इन विचारों में डूबा था तब अमृता भीतर आई। आकर पलंग के सिरे पर बैठ गई। सोमशेखर ने उठकर हाथ बढ़ा कर उसे बाँहो में भर लिया। अब वह उत्साहहीन होकर सिर झुकाकर बैठ गई। सोमशेखर ने कसकर आलिंगन करते हुए हाथ पकड़कर उसका चेहरा ऊपर उठाया।

"अगर तुम्हारा मन नहीं करता हो तो न सही।"

"क्यों ऐसा कहती हो ?" वेदना भरकर सोमशेखर बोला।

"तुम्हारी सहिष्णुता मैं समझती हूँ। लेकिन इस मामले में मैंने तुम्हें कितनी पीड़ा, कितनी ठेस पहुँचाई है वह भी जानती हूँ। सच कहो, क्या तुमने वे सारी बातें भुला दी हैं ?" गर्दन उठाकर उसके मन की सारी गहराइयों को पढ़ लेने के अंदाज में सोमशेखर का चेहरा घूरते हुए उसने पूछा।

"अब बोलो नहीं।" कहते हुए उसके गाल पर एक हल्की-सी चपत मारकर उसकी निगाह से बचने के लिए अपना चेहरा उसके सीने में खोंस लिया।

"मेरे मुन्ने !" बच्चे की भाँति अमृता लिपट गई। उसे लगा उसकी आँखों का पानी उसके सिर पर टपक रहा है और सिर के बाल भीग गए हैं। गर्दन उठाकर देखा। वह रो रही है। मन की कड़वाहट आँसुओं की इस बाढ में बह गई। मन में एक उमंग, एक उत्साह भर गया। बिन बोले शुद्ध मौन में आपस में एक दूसरे का अन्वेषण करते हुए, आपस की चाहत को अभिव्यक्ति देते और उसकी आपूर्ति करते हुए आपस में एक ऐसी समान भावना में घुल गए। ऐसे समावेश की अवस्था उन्हें कभी नहीं आई थी। तन्मयता की एकाग्रता में बाहरी दुनिया का बोध विस्मृत हो गया।

जब संतुष्टि की शांति शरीर में व्याप गई तब सोमशेखर बोला, "लगता है कोई आया है। बडी देर से कुत्तों की आवाज़ सुनाई दे रही है।"

"अर्थात् तुम्हारा ध्यान कहीं और था !" अमृता ने अपनी तन्मयता को ही महान बनाने के अंदाज में उसे छेड़ा।

इतने में सामने वाला कुत्ता फिर भौका। "सुना ?" सोमशेखर ने उस ओर कान देकर पूछा।

"वे बड़े संवेदनशील कुत्ते हैं। हवा के झोंके से जमीन पर गिरा कोई सूखा पत्ता भी हिल उठता है तो भौंकने लगते हैं। चुपचाप लेट जाओ, पास आओ, एक सेंटीमीटर भी दूर जाओगे तो बताये देती हूँ।" सोमशेखर की पीठ पर एक मुक्का मारकर बाँहों में यों कस लिया कि साँस घुटने-सी लगी। "आँखें बंद कर लो।" उस भीतरी दुनिया से बाहर निकलने से इंकार करते हुए वह बोली। इतने में कुत्ता पुन: जोर से भौंका। सामने की आवाज़ विश्रांत की थी, पिछवाड़े से विश्वास ने उसके स्वर में स्वर मिलाया। इसे अमृता ने भी सुना। कौन होगा इस समय ? कहीं मादेवम्मा का पति पैसे उधार लेने···यह सोचते हुए उसने सोमशेखर से कहा, तुम चुपचाप लेटे रहो, उसे रजाई ओढ़ाकर वह उठी, और सरपट नाइटी पहनकर पाँव में हवाई चप्पल डालकर बाहर आई। कमरे का दरवाज़ा बंद करके हाल और बरामदा पार करके सामने वाला दरवाजा खोलकर देखा : उसकी चाची खड़ी है—शायद बड़ी देर से। नीचे जमीन पर एक सूटकेस और एक थैला है। उसका चेहरा शांत है, मानो कह रहा हो कि मैं सब कुछ जानती हूँ, मुझे

कोई आश्चर्य नहीं हुआ। अमृता का चेहरा काला पड़ गया। पल-भर के लिए गले की साँस गले में ही अटकी रह गई। फिर सँभलकर बोली, "यह क्या चाची, बेल नहीं दबा सकती थीं ?"

"तुम घर पर होगी या कालेज गई होगी इसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं था।" अमृता इस सोच में पड़ गई कि अब क्या करूँ ? अब कर भी क्या सकती, कस्बे के बाहर का घर। "तुम्हारे आने तक प्रतीक्षा करने के सिवा दूसरा रास्ता ही क्या था," कहते हुए उसने सूटकेस और थैला उठा लिया।

"आओ, पल-भर के लिए आँख लग गई थी," भीतर बुलाकर बरामदे की कुर्सी पर बिठाया। कपड़े बदलने का बहाना बनाकर भीतर अपने कमरे में गई। भीतर से दरवाज़ा बंद करके बोल्ट लगाकर लेटे हुए सोमशेखर के पास आयी। "मेरी चाची को आए बड़ी देर हुई है। कम्पाउंड में रखा तुम्हारा स्कूटर देख लिया है। बड़ी पाजी औरत है। मुँह नहीं खोलेगी। तुम कपड़े पहनकर तैयार हो जाओ। तुम्हारे जूते यहीं ला दूँगी। उसे हमाम में भेजकर तुम्हे इशारा करूँगी। तुम चुपचाप बाहर निकल जाना। स्कूटर को सड़क तक ठेलते जाकर वहाँ स्टार्ट कर लेना। रात में तुम फोन मत करना। मैं खुद करूँगी।" सरपट लहँगा पहन कर उसने साड़ी पहन ली। बाथरूम में जाकर मुँह धो लिया। बालों में कंघी फेर कर बाहर निकली। अपने कमरे का दरवाज़ा बंद करके बरामदे में आई। "चलो चाची, बस से आई ? कैसी धूप है ! पसीने से तुम्हारा चेहरा चिपचिपा रहा है। हमाम में चलो। तौलिया देती हूँ।" उसे भीतर ले गई।

वास्तव में चाची के चेहरे पर यात्रा की थकावट दिखाई नहीं दे रही थी। फिर भी वह हमाम और उससे लगे संडास में चली गई। अमृता का दिया तौलिया लेकर दरवाजा बंद कर लिया। अमृता झट दौड़कर सोमशेखर के जूते और हेल्मेट भीतर पहुँचाकर आई। चाची बड़ी देर तक हमाम में रही। अमृता को आशंका हुई कि चाची को पता चल गया है, उद्देश्यपूर्वक ही हमाम में देर लगाकर मौका दे रही है। अपने कमरे का दरवाजा खोलकर सोमशेखर को इशारा किया और फिर हमाम के दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गई। पुन: कुत्ते भौंक उठे, दूर पर स्कूटर स्टार्ट होने की आवाज सुनाई दी, फिर भी चाची बाहर नहीं निकली। अमृता सरपट अपने कमरे में आई। दरवाजा बंद कर लिया। बिस्तर का बेडशीट निकालकर धुला हुआ दूसरा बेडशीट बिछाकर जब बाहर निकली तब सिटकनी की जबरन आवाज़ करते हुए दरवाजा खोलकर चाची बाहर आई और वहीं पाँव पोंछते खड़ी हो गई, "क्या उमस है ? सकलेशपुर की बस में यों ठसाठस लोग भरे थे कि बस पूछो मत। मुझे खिड़की वाली जगह मिली थी, इसलिए हवा लग रही थी।" ऐसी ऊँची आवाज में बोली कि घर के हर कोने में उसकी आवाज पहुँच जाए।

रति में गुंथकर खिला चेहरा उस पाजी अनुभवी औरत की पहचान से कैसे बच सकता है ? मन-ही-मन अमृता सोच रही थी । "चलो, खाना लगाती हूँ"—वह रसोई घर की ओर चली ।

चाची क्यों आई है, इसकी कल्पना अमृता नहीं कर सकी । ऐस्टेट के सारे दस्तावेज लौटाने के बाद परस्पर भेंट की बात तो रही, कभी कुशल समाचार की चिट्ठी-पत्री भी नहीं हुई थी । शायद अपने भाई की गृहस्थी सुधारने का प्रस्ताव लेकर आई होगी । इसी कल्पना से उसने चाची का मुँह निहारा । वह थाली के सामने तो बैठी थी, लेकिन भूख न होने का सबब देकर उसने सिर्फ एक गिलास रसम् और एक कौर मट्ठा-भात खाया । अमृता सोचने लगी कि शायद अपनी नजर का वहम होगा । चाची का संपूर्ण व्यक्तित्व धूर्तता के ढांचे में ढला है । बालों पर यों काला रंग चढ़ाया था कि कहीं जड़ में भी सफेदी नहीं झांक रही थी । बड़ी किनारी वाली रेशम की साड़ी, बड़े दानों वाला हार, हीरे के कर्णफूल, बेसर, हर कलाई में छह-छह वजनदार सोने की चूड़ियाँ ।

खाना खाते हुए बोली, "तुम्हारे भैया का ब्याह रचाकर जिम्मेदारी से बरी होना चाहती हूँ । वह कहता है, 'धत् माँ तू क्या जाने लड़की पसन्द करना ? मैं उसी लड़की से ब्याहूँगा जिसे अमृता दीदी पसंद करेगी । वरना मैं ब्याह करूँगा ही नहीं । आठ-दस लड़की वाले चक्कर काट रहे हैं ।"

अमृता समझ गई कि यह इसका बातों का पैंतरा है । लेकिन उसने चेहरे पर कोई भाव व्यक्त नहीं किए । भोजन के बाद उसे गेस्ट रूम में ले गई और सूटकेस वहाँ रखकर बोली, "यात्रा से थक गई हो, थोड़ा आराम करो ।" अधिक लगाव या आवभगत उचित न मानकर तुरंत अपने कमरे में चली गई । यकीनन वह जान गई है । बरामदे में उसे बिठाकर जब मैं अपने कमरे में चली आई थी तब क्या लाउंज में छोड़े हुए जूते उसे दिखाई नहीं पड़े होंगे ? हेल्मेट जो सोफे पर ही रखा था । मुंह से कहती नहीं । भीतर ही रखती है; समय आने पर उगलेगी । अमृता का मन भयभीत हुआ । नींद नहीं आएगी इस बात का विश्वास होते हुए भी कुछ समय के लिए नींद लेने की चेष्टा की । पाँच के लगभग उठकर कपड़े बदल कर चप्पल पहने बाहर आई । चाची कंपाउंड के झाड़ों पर हाथ फेर रही थी । सामने वाला विक्रांत जान गया था कि चाची ऐसी व्यक्ति है जिसे घर में प्रवेश मिल गया है । उसे देखकर भी भौंके बिना चुपचाप खड़ा उसकी ओर देखता रहा ।

"मैं बच्चों को लाने जा रही हूँ ।"

"अब छुट्टी होती है स्कूल की ?"

"दो बजे हो जाती है । लेकिन कालिज में मेरी क्लास अलग-अलग दिन अलग-अलग समय तक चलती है, इसलिए वहीं मैडम के घर में रहते हैं ।" कार स्टार्ट करके कंपाउंड के बाहर ले आई । कार सड़क पर भगाते समय विचार

आया कि बच्चों को चाची के साथ छोड़ना उचित नहीं होगा। बनावटी प्यार-दुलार जताकर उनका मन मोह लेती है। उन्हीं के द्वारा मेरे घर की सारी जानकारी प्राप्त कर लेती है। बच्चों में बाप के प्रति मोह बढ़ाती है। उसके आचरण में भी कोई दोष ढूंढा नहीं जा सकता। लेकिन सारा काम चौपट करके चली जाती है—इस बात का विश्वास हो गया। लेकिन क्या करे ? तुम क्यों आई ? कल सवेरे ही चली जाओ—यों सींक तोड़कर क्या जाने के लिए कहा जा सकता है ? यह काम कठिन लगा। या बच्चों को किसी और जगह, अचानक कहाँ ? अगर कह दूं कि परीक्षा के काम के सिलसिले में मुझे बेंगलूर जाना है तो बोलेगी कि तुम हो आओ मैं बच्चों की देखभाल करती रहूँगी। इसी उलझन में फँसी थी कि सुशीलम्मा का घर आ गया।

दोनों बच्चे जब कार में बैठ गए और कार चल पड़ी तब विकास ने पूछा, "क्या नानी हमारे घर नहीं आई, माँ ?"

"कौन नानी ?"

"अपनी नानी, और कौन ?" अपनी तो एक ही नानी है इस अंदाज में बोला।

अमृता को आश्चर्य हुआ, रहस्यपूर्ण लगा। "तुम्हें कैसे पता चला ?" उसने पूछा।

"राजी बता रही थी कि तुम्हारे घर की नानी हमारे घर आई है। क्या तुम्हारे घर नहीं आई ?"

राजी यानी सुशीलम्मा के घर से पाँचवें घर वाले राजाराम की बेटी। इन्हीं की उम्र की। इसी स्कूल में पढ़ती है। कई बार खेलने बच्चे उनके घर भी चले जाते हैं। राजी की माँ चंद्रकला सकलेशपुर के पासवाले आलूर गाँव की है, चाची की बेटी लीला की क्लास मेट। उसकी प्यारी सहेली। अमृता को सारी पृष्ठभूमि समझ में आ गई। "कब आई रे ?" अमृता ने पूछा।

"आज स्कूल में। नानी से मिलने के लिए स्कूल छूटते ही खाना खाकर मैं उनके घर गया तो वहाँ नानी थी ही नहीं। उनकी माँ ने राजी की पिटाई करके कहा कि तुम्हारी नानी तुम्हारा घर छोड़कर भला हमारे घर क्यों आने लगी ? यह झूठ कह रही है। राजी बोली, मैं झूठ नहीं बोलती; तब उसने डाँटकर मुँह बंद कराया।"

"नानी कब आई थी राजी के घर ?" कार की गति कम करते हुए उसने पूछा। विकास ने कहा, "मुझे पता नहीं।"

अपने ऐस्टेट से सकलेशपुर आकर वहाँ से हासन होते हुए बस की यात्रा करके पहले चंद्रकला के घर जाकर फिर अपने यहाँ आई हो, ऐसा नहीं लगता। उसके चेहरे पर बस यात्रा की थकावट, धूल-पसीना कुछ भी तो नहीं था। लगा कि

शायद कल शाम को ही आ गई होगी। विजय दखल दिए बिना खामोश बैठा था। विकास की तरह वह बातूनी नहीं है। अमृता ने बारीकी से उसका चेहरा देखा। याद आया कि मन की बात मन में ही रख लेने का उसका स्वभाव है। इसका पता लगाऊँगी, छोड़ूँगी नहीं। इसी बीच विकास बोला, "बताया कि नानी चक्कर्ली, कोडुबले, रवा के लड्डू लायी थी। बड़े अच्छे थे, राजी ने बताया।" अमृता के मन को एक और सबूत मिल गया। चाची चबेनी लायी होगी, जानती है। लेकिन अभी बाहर निकाला नहीं। निकालकर मेरे हाथ में देती और मैं बच्चों को देती तो वह बात केवल बच्चों की बुद्धि के स्तर पर ही रह जाती कि नानी का लाया हुआ है। इनकी भावना जीती नहीं जा सकेगी। इसलिए उन्हें अपनी जाँघों पर बिठाकर थैली से खुद निकालकर सीधा उनके मुँह में डालकर दुलारना उसकी आदत है। घर जाने पर यही हुआ।

वह गेट के पास ही प्रतीक्षा करते खड़ी थी। कार के रुकते ही दरवाजे के पास आई; बच्चों को बाँहों में लेकर सहलाने लगी, "कितने बड़े हो गए हो! कितने होशियार हो गये हो!" अपने हाथों से उनका मुँह-हाथ धुलाकर लाई। सोफे पर दोनों को एक-एक जंघा पर बिठाकर अपनी चबेनी की थैली खोली। सीधा उनके मुँह में चबेनी डालते हुए बोली, "कहीं मेरी उँगली मत काट लेना लाला।" कोडुबले, चक्कली, रवा के लड्डू के साथ तेंगोलल भी था।

अमृता देखती ही रह गई। उसे चाची की यह धारणा दिखाई पडी कि ये मेरे भाई के बच्चे हैं; तेरे द्वारा संबंध स्थापित करने की मुझे आवश्यकता नहीं। इसके बाद चाची ने उन्हें पल-भर के लिए भी अपने से अलग नहीं होने दिया। रात का भोजन करते ही उनको लेकर उनके कमरे में घुस गई। दोनों के पलंग जोड़कर दोनों को अगल-बगल लिटाकर बीच में खुद लेट गई। बी- में अमृता ने आकर कहा, "चाची, साढ़े नौ बजे उन्हें नींद आ जाती है। बीच में तुम्हें बाथरूम वगैरह जाना पड़ा तो दिक्कत होगी। तुम आराम से अपने कमरे में सो जाओ।" विजय ने 'ना' कहा। वह बोला कि नानी के साथ ही सोएगा। विकास ने भी जिद की कि उसे नानी चाहिए।

चाची बोली, "मुझे भी उनका साथ चाहिए। एक ओर बेटी के बच्चे, दूसरी ओर भाई के बच्चे। दोनों ओर से अपना खून ही तो है।" अमृता को दुबारा अहसास हुआ कि चाची इस बात का इशारा कर रही है कि तुम्हारे अतिरिक्त भी उन पर मेरा हक़ है।

जब अपने कमरे में अकेली सो गई तब इस प्रश्न से बेचैन हो उठी कि, मैंने इन बच्चों के लिए किस बात की कमी की है? हर शाम चाहे मेरा मन अच्छा रहा हो न रहा हो, इनके साथ खेलती हूँ, खाना खिलाकर पढ़ाती हूँ, साथ लेटकर कहानियाँ सुनाती हूँ, उन्हें सुलाने के बाद अपने कमरे में आती हूँ। कभी-कभी

कार में कन्नंबाडी, पहाड़, रंगनतिट्टु, ऐस्टेट आदि कहीं-न-कहीं ले जाती हूँ। उनकी पसंद के कपड़े सिलवाती हूँ। हमेशा चुस्त-दुरुस्त रखती हूँ। फिर भी क्यों उस ओर फुदक पड़ते हैं? मेरे लाख प्रयत्नो के बावजूद क्या उनका रक्त उसी की ओर आकर्षित होने लगता है? उसे लगा, मेरा जीवन एक भारी पराभव का जीवन है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अपने जीवन मे कभी विजय, सफलता प्राप्त होगी ही नहीं। भविष्य में भी नहीं। बड़े होकर ये बच्चे मुझे धिक्कारेंगे, उन्हीं से जा मिलेंगे। उनका धोखा-फरेब इनकी खोपड़ी में उतरेगा ही नहीं। अमृता को भविष्य साफ़ दिखाई देने लगा। उससे लिपटकर कैसे सोए है। क्यो न उसी को इनका पालन करने दे? मेरे जीने से उन बच्चों का क्या बनने वाला है, मरने से क्या बिगड़ने वाला है? दराज़ खोलकर अमृता ने रिवाल्वर उठा ली। कही बाहर जाने की आवश्यकता नहीं; यही खत्म कर लूंगी। पुलिस अगर इस चाची पर शक करती है तो करने दे, निगोड़ी को भोगने दे। गर्दन घुमाकर दरवाज़े की ओर देखा। बोल्ट नहीं लगी थी। न लगना ही ठीक है; अगर बोल्ट लगी रहेगी तो इस चाची पर शक करने का सबूत नहीं रहेगा। ठोड़ी पर उँगली रखकर बड़ी देर तक बैठी रही। अचानक दीवार पर नज़र गई। खामोश घूमती हुई घड़ी साढ़े ग्यारह बजा रही थी। सोमु को फोन करने का समय। आज मैंने ही उससे फोन न करने को कहा था। मैं ही करूँ? वह प्रतीक्षा कर रहा होगा। फिर सावधान हुई कि चाची अपनी सारी जान कानों में लिए सोये बिना खामोश प्रतीक्षा कर रही होगी। कुछ नहीं कर सकी; रिवाल्वर लेकर कक्ष में बाहर भी नहीं जा सकी, फोन भी नहीं कर सकी और ट्रिगर दबा लेने की संपूर्ण मानसिकता को भी न पहुँच पाई और दिन निकलने तक जागते ही बिस्तर पर पड़ी रही। फिर आँखों में थकावट महसूस करके रिवाल्वर को लाक् करके उसे दराज़ मे बंद करके सो गई।

आठ बजे आँख खुली। रसोइन पुट्टम्मा, नौकरानी महादेवम्मा आए है। उनके साथ चाची का स्नेह हुआ है। दोनों बच्चों को स्नान कराके नए कपड़े पहनाए हैं। विजय अपने बराबर नाप के कपड़े पहन कर बड़े ठाठ से खड़ा है। विकास फुदकते हुए आकर बोला, 'देखो माँ, ये शर्ट, निकर कितने अच्छे है; बापू ने भेजा है। तीन-तीन जोड़े भेजे हैं। मेरे बूट बड़े हैं, दो महीनों में ठीक आ जाएँगे।"

अमृता समझ गई कि उसने बाप की याद अकुरित ही नहीं की बल्कि उसे बढ़ाया है। जब वह घड़ी देख रही थी तब विजय बोला, "माँ, आज हम स्कूल नहीं जाएँगे। फोन पर बता दो न। तुम कालेज चली जाओ। हम घर पर ही रहेंगे। नानी हमारे साथ रहेंगी।"

"बेटे, स्कूल की नागा नहीं करनी चाहिए"—अनजाने में उसकी आवाज

कठोर हो गई थी, इसका अहसास अमृता को बाद में हुआ। खामोश रहने पर भी विजय के चेहरे पर उसके प्रति नफ़रत की झलक दिखाई पड़ी।

"माँ, आज स्कूल नहीं जाएँगे।" विकास भी ठिनठिनाने लगा। नानी बनकर आयी हुई औरत जब प्यार के रस में उन्हें घोल रही हो तब अगर वह अनुशासन का दबाव डालेगी तो बच्चों का मन इतनी दूर बह जाएगा कि शायद फिर लौटकर ही न आए। इसलिए उसने हामी भर दी। स्कूल को फोन करने के लिए जब अपने कमरे में गई तब विचार आया कि यह केवल बच्चों के साथ ही नहीं वरन्, रसोइन, नौकरानी के साथ भी स्नेह बढ़ाकर मेरे बारे में जानकारी इकट्ठी करेगी। इसे घर में छोड़कर मेरा कालेज जाना ठीक नहीं। लेकिन उसके खाते में एक दिन की भी छुट्टी नहीं है। डेढ़ महीने पहले हुई प्रिंसिपल के साथ की कड़वी बातें और मेडिकल लीव के प्रमाणपत्र का प्रसंग याद आया। बच्चों के मन में किसी और आकर्षण का मोह उत्पन्न करके उन्हें भी कार में बिठाकर कालेज ले जाना कैसा रहेगा? वे आएँगे नहीं। वे चलेंगे भी तो नौकरानियों के साथ इसे छोड़ना ठीक नहीं। अब एक ही रास्ता बचा है, 'मेरे घर क्यों आईं, गेट आउट' कहकर निकाल दे। लेकिन यह करने के लिए मन तैयार नहीं था। भीतर-ही-भीतर क्रोध उफनने लगा। इतना क्रोध आया कि दराज खोलकर रिवाल्वर लिए उसे एक ही वार में शूट कर दे। इस समय उसके अनजाने में ही उसकी उँगलियों ने फोन के नंबर घुमाए। उधर से प्रिंसिपल की 'हैलो' आवाज़ सुनाई दी। "मैं अमृता हूँ। मुझ पर बहुत ही जरूरी काम आ गया है। एक दिन की वेतनरहित छुट्टी दीजिए।"

"डा० अमृता, आप जैसों को नौकरी की आवश्यकता नहीं है। नौकरी के बिना जिनका जीवन निर्वाह हो ही नहीं सकता ऐसे लोग इस तरह बार-बार छुट्टी नहीं लेते। सम्मानपूर्वक आप त्याग-पत्र क्यों नहीं दे देती?"

"आल राइट, त्याग-पत्र लिखकर रखूँगी; किसी चपरासी को घर भेज दीजिए।"

"आपके घर से त्याग-पत्र लाने के लिए कालेज वालों ने चपरासी की नियुक्ति नहीं की है। लिखकर डाक के डिब्बे में डाल दीजिए, अपने आप आ जाएगा।"

"आल राइट, डाल दूँगी, थेंक्स।" रिसीवर को उसकी जगह पटक दिया। तुरंत अपना लेटर हेड लेकर सरसर दो पंक्तियाँ घिस डालीं। उसे डाक के लिफाफे में बंद करके ऊपर पता लिखा। "महादेवम्मा, इधर आओ। इसे सड़क के उस पार वाले डाक के डिब्बे में डालकर आओ। इसी समय।" महादेवम्मा के सामने फेंक दिया। उसके बाद सारा दिन वह बच्चों और चाची को छोड़कर कहीं दूर नहीं रही। उनके नाश्ता करते समय, खेलते समय, विश्रांत और विश्वास

कुत्तों की उछलकूद की, उनकी भौंकने आदि की बातें करते समय, दोपहर के भोजन के बाद सोते समय भी वह साथ ही रही। चाची ने कहा, "क्या तुम्हारा कालेज नहीं है ? मैं घर सँभाल लूंगी, तुम कालिज हो आओ।" वह बोली, "बहुत दिन बाद आई हो। एकाध दिन रुकोगी। घर-बार छोड़कर रहना तुम्हारे लिए भी कठिन है। बिना किसी जरूरी काम के तो तुम कभी बाहर निकलती भी नही। इसलिए कालेज से छुट्टी ली है।"

चाची समझ गई। "तुम ठीक कहती हो। तुम्हारी भाभी है न जयराम की बीवी, हर काम के लिए मुझे सामने रहना पड़ता है। समझदारी से एक मामूली-सा काम भी उससे करते नहीं बनता। जहाँ कहीं भी रहूँ, कल शाम तक लौट आने का आश्वासन देकर आई हूँ।" वह बोली।

"अगर मेरा कालेज का काम न होता तो कार में छोड़ आती, क्या करूँ ? सवेरे आठ बजे सकलेशपुर के लिए एक डाइरेक्ट बस है। वह सुविधाजनक है। वरना हासन जाकर वहाँ धूप में इंतजार करो और सकलेशपुर की बस आने पर दौड़-धूप करते हुए भीड़-भाड़ में घुसो—भीड़ में फँस गईं तो हड्डी पसली एक भी साबित नहीं रहेगी। चलो रसोईघर में ही बैठो, चलो। भरवाँ बेंगन आपको बहुत पसंद हैं न ? मैं पकाऊँगी। तुम तो जाने के लिए यों उतावली हो गई हो मानो खाने के लिए भी समय नहीं।" उसे रसोईघर में ले गई। फ्रिज से बेंगन निकालकर उन्हें लंबा चीरने लगी।

खेलते-खेलते बच्चे वहाँ आ गए और बोले, "कुछ और दिन रुक जाओ, नानी।"

"अब टाइम नहीं है रे, मेरे लाड़लो। तुम्हारी छुट्टियाँ होते ही तुम्हें लाने के लिए जयराम मामा को भेज दूंगी।" कहते हुए उसने उन दोनों के गालों को चूम लिया। "कितने मीठे हो रे, मेरे शहद के छत्ते !" यह कहते चाची ने उनके गालों पर प्यार का शहद चिपका दिया।

अमृता का अंदाजा था कि इस रात बच्चों के सो जाने के बाद वह अपने से बात छेड़ेगी। अपनी इस जिज्ञासा को दबाए ही वह बच्चों के सोने तक वहीं रही; फिर बोली, "जल्दी सो जाओ चाची। सवेरे जल्दी उठकर नहा-धोकर नाश्ता करके तैयार होना है। यात्रा में खाने के लिए थोड़ा-सा दलिया और थोड़ी-सी उपमा बनवा दूंगी।" इतना कहकर वह उठकर अपने कमरे में आ गई।

उसका अंदाजा ठीक निकला। दस मिनट बाद खुद चाची ही उठकर आई। आकर उसका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलकर अमृता बीच में ही खड़ी हो गई ताकि चाची भीतर न आ सके और बोली, "नींद नहीं आयी चाची ? मच्छरदानी ठीक कर देती हूँ। बच्चों के साथ सोने से वे नींद में लात मार-मार कर हटा देते हैं और मच्छर अंदर घुस जाते हैं। चलो मैं ठीक कर देती हूँ।"

मानो धक्के देने के अंदाज में बोली।

"तुम्हारे साथ बोलना हुआ ही नहीं। बच्चों के सामने कैसे बात करें ? इस-लिए चुप रही।" झेंपते हुए चाची ने बात शुरू की।

"क्या बात है बताओ। संकोच कैसा ! चलो, उधर बैठेंगे।" अमृता ने उसे अपने कमरे में नहीं आने दिया और खुद बाहर निकली। कमरे का दरवाज़ा बंद करके चाची को लाउंज में ले गई। उसे सोफ़े पर बैठाकर बच्चो के कमरे का दरवाज़ा बंद करके उसके सामने वाले सोफ़े पर बैठते हुए बोली, "कहो।"

बातों की शुरुआत कहाँ से करे इस पसोपेश में चाची को कोई बात सूझी, "शहर के बाहर इतना बड़ा घर, बड़ा कंपाउंड। ऐस्टेट की बात कुछ और होती है। यहाँ पता नही अकेली कैसे रहती हो ?"

"दो कुत्ते हैं। कोई छिपकली या गिरगिट भी अगर भीतर घुस आए तो भौंकने लगते हैं। मेरी पलंग की बगल में ही भरी हुई रिवाल्वर रहती है। निशानेबाजी में ट्रेनिंग ली है, डर किस बात का ? जिनकी जान-पहचान न हो उन्हें घुसने देना, चौकीदारी के बहाने किसी को चबूतरे पर रहने का मौका देना मुझे पसंद नहीं।" तपाक् से वह इस तरह बोली कि अब इस मामले में चर्चा करने की कोई गुंजाइश नहीं रही।

चाची पुनः पसोपेश में पड़ गई। लेकिन, वह भी हारने वाली औरत नहीं थी। दो पल बाद उठकर इसकी बगल में आ बैठी। दुलार जताते हुए पीठ पर अपना दाहिना हाथ फेरते हुए बोली, "देखो बेटी, सीधी बात पर आती हूँ। जानती हूँ कि मेरी बातो से तुम्हें क्रोध आता है। लेकिन, माँ बनकर मेरे सिवा कौन भला तुमसे चार बात कहेगा। अगर तुम्हारे पिता आज जीवित रहते तो मुझ पर यह जिम्मेदारी नहीं रहती। तुम गुस्से में होगी कि तुम्हारी जायदाद हड़पने की नीयत से मैने तुम्हारा ब्याह अपने भाई से कराया। मेरे मन में क्या था वह भगवान जानते हैं। हमारे दुर्भाग्य से क्या वह सच निकले ? जानती हो लीला का क्या हुआ ? सुना है कि उसका पति क्लब जाता है; रोज पीता है; दूकान में हिसाब-किताब, टाइप वगैरह करने वाली किसी लड़की के साथ प्यार करता है। लीला आकर रो रही थी। हम क्या कर सकते हैं भला ? जो अपनी बीवी की बात नहीं सुनता वह ससुरालवालों की क्या बात सुनेगा ? इस बात का जिक्र भी हम कैसे कर सकते हैं ? सब उसकी किस्मत। मैं तो कहती हूँ, तुम्हे जहाँ रहना चाहिए वहाँ रहो, तुम्हारी जगह वहाँ है। इसी तरह दो-चार साल बीत जाने पर जब बच्चे बड़े हो जाएँगे तब उसे अक्ल आएगी—हमने लीला को समझाकर भेज दिया। तुम्हारे चाचा नाराज हो उठे थे। कहने लगे कि जाकर उसकी अक्ल ठिकाने लगाऊँगा, पकड़कर दो-चार झापड़ जमा दूंगा। मैंने उन्हें समझाकर रोक लिया, अगर ऐसा कुछ करोगे तो वह कह देगा कि तुम्हारी बेटी

ही नहीं चाहिए—फिर पूरी तरह छोड़ देगा तो आगे क्या होगा ? मैंने ठीक किया या नहीं ? तुम्हीं बताओ।" बात खत्म करके अमृता का चेहरा ताकने लगी। लीला के प्रति अमृता के मन में करुणा जागी। चाची की बातों का निशाना क्या है इसका पता तुरंत नहीं चला। चाची ने आँखें पोंछ लीं। वास्तव में आँखों में आँसू छलक उठे। अमृता धीरज की कोई बात कहे बिना खामोश बैठी रही। चाची ने बात जारी रखी, "पता है जयराम ने क्या कहा ? कहा, ग़लती तुम्हारी ही है। अगर इसका ब्याह रंगण्णा से कराया होता तो अपने ही घर का लड़का इस तरह अगर भटक भी जाता तो हम उसे समझा-बुझा सकते थे। अमृता बड़ी हिम्मतवाली है। कोई और पुरुष भी होता तो डाँट-फटकार कर सँभाल लेती। मैंने कहा, औरत चाहे कितनी ही हिम्मत वाली क्यों न हो, अपने रास्ते से भटक जाने वाले पुरुष का कुछ भी नहीं किया जा सकया। ज्यादा-से-ज्यादा छोड़ा जा सकता है। हमारे घर की बेटियाँ कोई भी इस तरह पति को छोड़कर नहीं आतीं। अगर छोड़कर आएँगी तो दुनिया क्या कहेगी ? एक बात ध्यान में रखो, मेरी दीदी मरते समय अमृता को मेरी गोद में छोड़ गई है। अपनी सगी बेटी की भलाई चाहना बड़ी बात नहीं है; हर कोई करता है। कल के दिन अमृता के साथ ऐसा न हो इसी इरादे से उसका ब्याह रंगण्णा से करवाया। बेटा होकर अगर तू अपनी माँ के दिल को नहीं पहचानता तो तू कैसा लायक आदमी है ? तब वह चुप हो गया। तुम्हें वह चाहता नहीं, ऐसी बात नहीं। लेकिन, लीला से भी तुम बड़ी हिम्मत वाली हो, यही उसका कहना था।"

चाची की बातों का निशाना अब वह समझ गई। उसका दाहिना हाथ पुनः अमृता की पीठ सहलाने लगा है। आँसू पोंछी हुई आँखें लाल हो गई थीं। कुछ समय बाद चाची ने बात फिर शुरू की, "तुम समझती हो कि तुम्हारी जायदाद के लिए तुम्हारा ब्याह मैंने अपने भाई से कराया। तुम्हारी जायदाद लेकर वह क्या करेगा ? जो भी है वह तुम्हारे बच्चों के लिए है। अब नई नहर निर्माण के काम पर है। एक साल में पाँच लाख ऊपर से कमाया है। गाँव आया था। कह रहा था : 'दीदी, देखा कितना कमाया है ! तुम्हारी बेटी क्या चाहती है पूछकर आ। हीरे का हार ? मोतियों की पेंच ? सोने की बाहुबंद ? केवल यही एक साल नहीं, कम-से-कम अभी दो साल तक तो नहर के काम पर रहूँगा। आगे, यहाँ से कहीं और स्थानांतरण होकर चला भी जाऊँगा तो इतना न सही इससे आधा तो कमा लेने का हौसला मुझमें है। लेकिन तेरी बेटी मुझ पर जहर उगलती है। मैंने कौन-सा ऐसा अपराध किया था कि तूने उसे मेरे गले में बाँधकर मेरा जीवन बर्बाद कर दिया ? इतनी कमाई करके भी मैं क्यों अकेला रहूँ ? मैं क्या कोई सिगरेट पीता हूँ ? बीअर, व्हिस्की पीता हूँ ? कौन-सी बुरी आदत है मुझमें ? मेरे बच्चों को भी मुझसे दूर रखा है उसने ?' बचपन में ही माँ के

प्यार से वंचित उस लड़के ने आँखों में आँसू भरकर कहा था। उधर मैं उसकी भी माँ लगती हूँ और इधर तुम्हारी भी माँ हूँ। दोनों के हिल-मिलकर रहने में क्या आपत्ति है ? लीला की गृहस्थी देखकर भी गम खाना मेरी किस्मत में लिखा है।" वह फिर रोने लगी।

अमृता को कसमसाहट हुई, फिर भी वह खामोश बैठी रही। चाचा ने अपने आँसू खुद पोंछ लिए। अमृता की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते दस मिनट बैठी रही। फिर उसकी ओर मुड़कर उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर बोली, "पति वहाँ और तुम यहाँ। खैर, तुम्हारी कालेज की नौकरी है, नौकरी छोड़ना तुम्हें पसंद नहीं, छोड़ो मत ! अपने विभाग के बड़े अधिकारियों से उसकी अच्छी बनती है। चाहेगा तो मैसूर को ही स्थानांतरण करा देंगे। मैसूर न सही पास में ही नंजनगूडु, श्रीरंगपट्टण या के० आर० नगर, मंड्या जहाँ कार में घंटे-भर में आ-जा सको ऐसी किसी जगह तबादला हो सकता है। तुम्हारा यहाँ अकेले रहना क्या ठीक लगता है ? लोग कैसी-कैसी ही बातें करने लगते हैं। सुनती हूँ तुम्हारे घर की मरम्मत कराने वाला कोई आर्किटेक्ट है। लोगों में बातें होती हैं कि जब खुद पति इंजीनियर हो तब घर की मरम्मत, कम्पाउण्ड के काम के लिए हर रोज आर्किटेक्ट यहाँ क्यों आता है भला ? चील उड़े तो बाघ उड़ा कहने वाले लोग। उनकी औकात ही इतनी होती है। लेक्चरर है तो परीक्षा का काम भी रहेगा ही। उस काम के सिलसिले में कभी बेंगलूर जाकर आई तो बस अफवाह फैला देते हैं कि किसी और काम के लिए गई थी। लोग चाहे लाख कह लें, मैं विश्वास नहीं करती। तुम्हारा पति तो बिलकुल नहीं करता। वह कहता है कि मेरी बीवी के बारे में ऐसी-वैसी बात करने वालों की जबान खींच लूंगा। इतना विश्वास है पत्नी पर। वह चाहे भगवान की कसम खाकर भी कह सकता है कि उसकी दीदी की बेटी हर्गिज ऐसा कुछ नहीं कर सकती। इस बारे में तुम्हें तनिक भी डरने की आवश्यकता नहीं। लेकिन, लोग कभी सामने बोलते नहीं, पीछे ही बोलते हैं ! कल के दिन बढ़ने वाले बच्चों के कानो में अगर यह बात पड़ी तो क्या उनके मन में माँ के प्रति सम्मान रहेगा ? यह सारा बखेड़ा क्यों ? इसलिए कि वह दूर है। अगर वही स्थानांतरण लेकर यहाँ आ जाएगा, तो इस घर का जो-जो काम तुम करवाना चाहती हो उसे वह खुद करवाएगा। जगमगाती हुई नई इमारत खड़ी कर देगा। बाहर के आर्किटेक्ट की क्या जरूरत है ? बच्चों के लिए भी एक आनन्द हो जाएगा। माँ चाहे जितना भी करे, क्या वह बाप का स्थान ले सकती है ? माँ-बाप दोनों मिलकर परवरिश करेंगे तभी बच्चे ठीक ढंग से बढ़ेंगे न ? वरना, मन में कुछ ऊल-जलूल बातें बैठ गईं, कुछ का कुछ हो गया, तो भुगतने वाले हम ही होंगे न ?"

इतना कहकर चाची उठकर खड़ी हुई। अमृता बैठी ही रही। उसका चेहरा झुक गया था। मन इतना सिमट गया था कि चाची का उठकर खड़ा होना उसके

ध्यान में नहीं आया। दो मिनट चाची उसी तरह खड़ी रही; फिर निकट कदम बढ़ाकर अपने दोनों हाथों से अमृता का माथा सँभालकर उसे अपने पेट से चिपका लिया। अमृता ने छूटने की चेष्टा की, फिर भी उसने छोड़ा नहीं। चिपकाए हुए ही बोली, "तुम पढ़ी-लिखी हो, विद्वान हो, बुद्धिमान हो, तुम चाहे जितना भी क्रोध करो आखिर मेरी बेटी हो। मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। कोई स्त्री हो या पुरुष, अगर कोई उल्टी-सीधी बात करेगा तो मैं उसकी ज़बान खींच लूँगी।" अपना दाहिना हाथ अमृता के सिर पर यों रखा मानो क़सम खा रही हो, अभय-दान दे रही हो। फिर बोली, "तुम भी जाओ, सो जाओ। सवेरे से काम कर-करके थक गई हो।" अमृता के गाल सहलाकर, चिकौटी भरकर बच्चों के कमरे में जाकर सो गई।

लाउंज के सोफे पर अमृता अकेली रह गई। उसके संपूर्ण मस्तिष्क-कोश में खामोशी छा गई। मानो सारी संवेदनाएँ मर गई हों। जाकर सोने का बिचार बड़ी देर तक मन में आया ही नहीं। आखिर जब मस्तिष्क-तंतु क्रियाशील हो गए तब अहसास हुआ कि मरने के लिए इससे आसान क्षण कोई दूसरा नहीं हो सकता। सीधा अपने कमरे में चली जाए, चटकनी लगा ले और रिवाल्वर पकड़ कर ट्रिगर दबा ले—बस। लगा कि किसी सोच-विचार की, परिणामों के बारे में तुलना करने की, एक कागज पर मौत के बारे मे नोट लिख रखने की आवश्यकता ही नहीं है। वह उठी। लेकिन आदत उसे अगाड़ी-पिछाड़ी के दरवाज़ो के बोल्ट, चटकनी, ताला जाँचने के लिए खींच ले गई। जब अपने कमरे में जाकर दरवाज़ा बंद कर लिया तब लगा कि यह अपने जीवन के घोरतम पराभव की घड़ी है। हार गई हूँ। जवाब न सूझकर, जवाब न पाकर, सिर झुकाकर हार गई हूँ। झुके हुए सिर को पेट में रख लेने के लिए उसने धर लिया था। इस बात की याद हो आते ही उसने रिवाल्वर निकाला और रिवाल्वर लेकर सोफे पर बैठ गई। मुड़-कर देखा कि कहीं वह खामोश कदमो से किवाड़ खोलकर भीतर न आ जाए। मारे बोल्ट लगा लिए हैं। लेकिन, रिवाल्वर को उठाकर उसकी नली कान या मुँह में रख लेने की संकल्प-शक्ति खोकर वह चुपचाप उसे जांघ पर रखे बैठी रही। आँखें खुली रहेंगी तो थका देंगी। इसलिए पलकों को अपने आप बंद होने का मौका दिया। बड़ी देर बाद उठी। अपनी पलंग का पाँयेंता और सिरहाने की दिशा भी भूलकर तकिए पर पाँव टिकाकर पायँते में सिर रखकर लेट गई। आँखें अपने-आप खिचती रहीं।

सवेरे जागने के लिए चाची को दरवाजा खटखटाकर जगाना पड़ा। झटपट उठी, उसके लिए उपमा बनाकर दी और वही बच्चों को भी खिलाया। इतने में काम वाले आ गए। बच्चे और चाची को कार में बैठाकर पहले बच्चों को स्कूल छोड़ने गई। उन्हें छोड़कर बस स्टेंड आई। चाची को बस में बैठाया। उनके साथ

अधिक बातें नहीं कीं। चाची ही कहती रही, बच्चों का ख्याल रखना, घर के काम-काज के लिए एक नौकरानी और रख लो। चाहो तो हमेशा घर में ही रहने वाली किसी औरत को भेज दूंगी। उसे बस में बैठाकर नीचे उतरते ही कालेज के लिए देर होने का बहाना बताकर मुड़ पड़ी, किंतु, चाची पास बुलाकर फुसफुसाहट के अंदाज में बोली, "तुम एक चिट्ठी लिख दो। रंगण्णा आ जाएगा। कहता था कि जब तक वह आने के लिए नहीं लिखेगी, मैं नहीं जाऊँगा।" किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त किए बिना वह सरपट नीचे उतरी। कार चढ़कर सीधा घर की ओर निकली।

इसके बाद वह कई दिनों तक अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। सवेरे बच्चों को स्कूल के लिए छोड़ने और शाम को वापस लाने के लिए ही कार में जाकर आती जाती थी। बाकी समय चुपचाप पड़ी रहती थी। किसी काम में उत्साह नहीं था। आत्महत्या का दबाव भी उत्पन्न नहीं होता था। लॉक करके रिवाल्वर जो दराज में रखा था उसे छुआ तक नहीं। निर्वेद की अवस्था। जीवन और मौत मे अगर फर्क होता तो मौत का आकर्षण रहता। लेकिन अब मौत की आकांक्षा भी उत्पन्न नहीं होती थी। जीवन का तो कोई अर्थ नहीं बचा था। पराभव। सारा जीवन संपूर्ण पराभव का केंद्र बन गया है। हर किसी में, हर पहलू में पराभव ही पराभाव है। आत्महत्या नहीं की। क्या उसके लिए आवश्यक इच्छाशक्ति का अभाव है या भीतर की कोई और प्रेरणा है?—कई बार यह विचार मन में उठता है। अगर मै मर जाऊँ तो बच्चों का क्या होगा? लेकिन बच्चों के प्रति प्रेम अपात्र प्रेम है। मैं चाहे कितना ही प्रेम करूँ, कुछ भी करूँ, उनकी रक्तवाहिनी की नसें केवल उसी ओर रूपायित हुई हैं। मेरी ओर हैं ही नहीं। हृदय जो कुछ पंप करता है उसका हर रक्त-बिंदु वहीं जाकर मिल जाता है। इनकी खातिर जीने में कोई अर्थ नहीं। अगर मैं बच भी जाऊँ तो ऐस्टेट को बचा नहीं पाऊँगी।

लगभग आठ दिनों तक अपने त्याग-पत्र के परिणाम का अहसास नहीं हुआ। यही अस्पष्ट भावना थी कि वह एक भार था जो उतर गया। पढ़ाने का उत्साह तो कभी का चुक गया था। अगली पढ़ाई जारी नहीं रख सकी। जब ये दोनों नहीं रहे तब अध्यापन वृत्ति से लटके रहने की अपेक्षा त्याग-पत्र दे देना एक प्रकार का छुटकारा ही है। लेकिन जब मन को पहली तारीख के दिन वेतन न मिलने की वास्तविकता का अहसास हुआ तब बच्चों को बाँहों में भरकर विश्वेश्वरय्या नहर के मुहाने में कूद पड़ना ही एकमात्र रास्ता लगा। एक सारा दिन जीवन-निर्वाह की चिंता में डूबी रही। तब विचार आया कि क्या वह औरत मुझसे त्याग-पत्र दिलवाने के लिए ही आई थी? क्या उसने यही सोचा था कि मैं कुतिया की तरह जाकर उसके भाई के पाँव चाटते पड़ी रहूँगी? उसे अपनी जल्दबाजी का अहसास

नहीं हुआ।

उसी रात साढ़े दस बजे फोन की घण्टी बजी। वह पहचान गई कि सोमशेखर का ही है। बच्चे सोए थे। हाँ, उसी का है। "अमू, तुमसे मिलने को जी कर रहा है। दो जरूरी बातें करनी हैं। चाची हैं?" तुरन्त अमृता ने कोई जवाब नहीं दिया।

"सुनती हो?" जब उसने दुबारा पूछा तब बोली, "मुझसे किसी के मिलने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन, मुझसे न मिलने से आपका क्या बिगड़ता है?"

"पागलपन होता है। अभी आया।" उसकी यह बात सुनकर घबरा गई। इस समय उसका घर आना; अचानक विजय का जाग जाना, उसे पता चलना, फिर वह बात नानी से कहना। अमृता को पसीना छूटा। वह बोली, "कृपा करके अब मत आइए।"

"क्यों? चाची हैं?" उसने पुनः पूछा।

"बेकार की बातें मत कीजिए। आपको मुझसे बातें करनी हैं न; मैं खुद वहाँ आऊँगी। कहाँ, घर मे बोल रहे हैं न?" सोमशेखर ने 'हाँ' कहा। "दो मिनट में निकलती हूँ" अमृता ने फोन नीचे रख दिया।

जब कार सोमशेखर के दरवाजे पर पहुँची तब सारा जयलक्ष्मीपुर खर्राटे भर रहा था। केवल सोमशेखर के घर में बत्ती जल रही थी। ज़ीना चढ़कर दरवाज़ा खटखटाने से पहले ही उसने किवाड़ खोले। भीतर जाकर एक कुर्सी पर बैठते हुए व्यापारिक अंदाज में अमृता ने पूछा, "क्या बात है?" सोमशेखर ने उसका चेहरा देखा। वहाँ शून्य भाव था या अपने से इतने दिनों के अलगाव का भाव था, वह पहचान न सका। किवाड़ बन्द करके सामने आकर खड़ा हुआ। उसके चेहरे को अपने पेट में खोंस लेने के अन्दाज में उसके सिर को चिपकाकर पकड़ लिया। आधा पल अमृता चुप रही। फिर उससे छूटते हुए बोली, "यह सब नाटक रहने दीजिए। कहा था कि दो बातें करनी हैं; कीजिए।"

सोमशेखरके चेहरे पर वेदना जागी, "विश्वास की भावना ही नहीं जताओगी तो बात कैसे करूँ?"

"जो सच्चा विश्वास रखते हैं वे लोग भावनाओं का ढोंग किये बिना बातें करते हैं। ढोंग चाहने वालों की बात मैं नहीं करती।"—वह बोली।

सोमशेखर खामोश हो गया। दो मिनट अमृता को ही देखते खड़ा रहा। अमृता दीवार पर नज़र टिकाये थी। अमृता के सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए वह बोला, "कालेज को फोन किया था। पता चला कि तुमने त्याग-पत्र दे दिया है। तुमने मुझे बताया नहीं कि त्याग-पत्र क्यों दिया। देने से पहले मुझसे एक बार पूछ लिया होता। तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा इसकी चिंता···" झट बीच में ही बात काटकर अमृता बोली, "आपके सामने गुजारे के लिए हाथ नहीं फैलाऊँगी।"

उसकी परवाह न करते हुए सोमशेखर ने बात जारी रखी, "मैं केवल गुजारे की बात नहीं करता। मन-शरीर को व्यस्त रखने के लिए कोई क्षेत्र चाहिए। उसी को नहीं खोना चाहिए। सोचो कि त्याग-पत्र वापस लेने का क्या अब भी कोई मार्ग है? अगर चाहती ही नहीं हो तो एक व्यवहार की बात बताता हूँ। शहर के बाहर वाले उस पुराने बँगले को बेचोगी तो सात-आठ लाख मिल ही जाएँगे। उसे बैंक में रखकर शहर में अगर कोई किराये का घर लोगी तो चैन से रह पाओगी। दो-तीन लाख में एक छोटा-सा घर खरीदकर भी बाकी पैसे के ब्याज में गुज़ारा किया जा सकता है अथवा ऐस्टेट का कर्जा भी अगर चुकाया जाएगा उस हद तक उसका ब्याज तो बच जाएगा और उसी को गुजारे के काम में लाया जा सकेगा।···" सोमशेखर ने उसका मुँह देखा। अस्वीकृति ही नहीं बल्कि तिरस्कार का भाव भी उसके चेहरे पर दिखाई दे रहा था। फिर भी सोमशेखर ने बात जारी रखी: "उस दिन जब तुम्हारी चाची चोर की तरह आकर खड़ी हुई थी और तुमने मुझे खामोशी के साथ भेज दिया था न, उसी रात मुझे एक रास्ता दिखाई दिया। उन्होंने तुम्हारे ऐस्टेट पर किस वर्ष कर्जा उठाया, तुम किस वर्ष वयस्क हुई, क्या उन्होंने तुम्हारी वयस्कता के बाद कर्जा उठाया है? बैंक वालों ने कर्जा कैसे दिया? इस तरह के अनेक मुद्दे हैं। तुम अगर एक अच्छे वकील से मिलकर सारी स्थिति बता दोगी तो वह तुम्हारी चाची, उनका ऐस्टेट और बैंक इन तीनों पर नालिश कर देगा। तुम्हारा ब्याज भरना भी बन्द हो जाएगा, असल भी नहीं देना पड़ेगा। यह मेरा अनुमान है। निश्चित बात तो वकील ही बता सकेंगे। सोचकर देखो।" इतना कहकर वह चुप बैठ गया।

संकोच की खामोशी फैल गई। दो मिनट बीत गये। पाँच मिनट बीते, दस मिनट बीते। अमृता केवल दीवार पर टकटकी लगाए बैठी रही। आखिर सोमशेखर ने ही उसे बातों के लिए प्रेरित करने की चेष्टा में पूछा "समझी?" सहसा अमृता साँप की तरह झट उसकी ओर मुड़कर फुत्कार उठी, "मेरे पिताजी जब कभी मैसूर आते थे तब अपने ठहरने के लिए उन्होंने वह घर खरीदा था। उसके बारे में मुझ में जो यादों का भण्डार भरा हुआ है, वह कितना अमूल्य है उसकी कल्पना ईंट, सीमेंट, लोहे के हिसाब-किताब में जीवन बिताने वाले आर्किटेक्ट को नहीं हो सकती। अब रही बात ऐस्टेट के कर्जे के मामले में नालिश करने की; यानी अपनी चाची को अदालत के कटघरे में ले जाकर खड़ा करने की। उसने चाहे कुछ भी किया हो; जब मेरी माँ मरी थी तब उसी ने आकर मुझे अपने गले लगाया था। मेरे मुँह को अपने पेट में आसरा देकर चैन से रखने का प्रयत्न किया था। अभी-अभी यात्रा करके आयी थी, उसके बदन के पसीने की याद मुझे आज भी है। परसों जब आयी थी तब भी उसी तरह बाँहों में भर लिया था। वही पसीना। उसी तीखी गंध की याद दिलाने वाला पसीना। आपने भी अब मुझे अपने

पेट से चिपकाकर दबा लिया था। पसीने की बू से ही पता चलता है कि वह सारा ढोंग था। आप में पसीना ही नहीं है। ऐसी चाची पर नालिश करके उसे अदालत के कटघरे में ले जाने की सलाह आपकी ज़बान से कैसे निकली? आखिर आप बाहर के ठहरे। अगर भीतर के होते तो आप समझ पाते।" इतना कहकर वह साँप की तरह सोमशेखर का चेहरा ताकते बैठ गई। सोमशेखर की दृष्टि ही नहीं वरन् धृति भी ढह गई। दो मिनट बाद अमृता उठकर खड़ी हो गई। नज़र झुकाये बैठा सोमशेखर बैठा ही रहा। दरवाज़ा खोलकर जीना उतरकर अमृता चली गई। इंजन के स्टार्ट होने की फिर कार के चले जाने की आवाज़ सुनाई दी। फिर भी वह गर्दन लटकाये बैठा ही रहा।

घर पहुँचने के बाद अमृता को अपना त्याग-पत्र वापस लेने का रास्ता दिखाई देने लगा। फिर लगा कि अब तक प्रिंसिपल ने उसे ऊपर भेज भी दिया होगा और जल्दबाजी में उसे मंजूर भी करवा लिया होगा। कुछ भी हो, एक बार प्रयत्न करने का विचार उसके मन में आया। लेकिन प्रिंसिपल के सामने जाकर गिड़गिड़ाने की कल्पना से ही उसने फैसला किया कि प्रयत्न नहीं करेगी। अगर भूखे मरने की नौबत आ गई तो ठीक होगा, आत्महत्या दोष के बिना ही मरा जा सकता है।

एक सप्ताह बीत गया। एक दिन दोपहर सवा बारह बजे फोन की घण्टी बजने लगी। किसका होगा इस जिज्ञासा या उत्साह के बिना उठाकर 'हैलो' बोली। इधर उसे फोन-कॉल आना बहुत कम हो गया था। 'मैं' की आवाज़ से पहचान गई कि सोमशेखर है। इसने जवाब नहीं दिया। एक मिनट की प्रतीक्षा के बाद वह बोला, "चाची हैं?" अमृता ने इसका भी जवाब नहीं दिया। कुछ और प्रतीक्षा के बाद उसने पुनः पूछा, "अमू, चाची हैं या चली गई हैं, उस दिन भी नहीं बताया। एक फोन तक नहीं किया, क्यों भला?"

"हैं या चली गई हैं इससे आपका कोई मतलब नहीं।"

"मैं अब तुम्हारे यहाँ आने के लिए निकला हूँ। इसीलिए पूछा।" वह बोला। अमृता को तुरन्त जवाब नहीं सूझा। "क्यों पूछा, जानती हो?" उसने दुबारा पूछा।

"आपकी मर्ज़ी," वह बोली।

"यानी तुम्हारा मतलब हुआ कि तुम्हारी चाची शायद हैं?" बात का स्पष्टीकरण चाहते हुए उसने पूछा।

"हर बात का पत्रा बाँचने के लिए मेरे पास टाइम नहीं। जो आना चाहते हैं वे आ सकते हैं।" वह बोली।

"पन्द्रह मिनट में पहुँच जाऊँगा।" कहकर सोमशेखर ने फोन रख दिया। अमृता गेट के पास जाकर खड़ी नहीं हुई। सोमशेखर के आकर दरवाजे की घण्टी

बजाने तक बाहर का दरवाज़ा भी नहीं खोला। उपेक्षा की अपेक्षा निरुत्साहित थी। भीतर आकर किवाड़ बन्द करके सोमशेखर ने ही उसे अपने आगोश में भर लिया। "क्यों, मुझे फोन क्यों नहीं किया ?" उसने पूछा। बिना प्रतिक्रिया के वह सिर झुकाये खड़ी रही। "चाची कब गईं ?"

"दूसरे दिन ही पिंड छुड़ा लिया।" वह बोली।

"फिर, इतने दिनों तक मुझे क्यों प्रतीक्षा में रखा ? बताया तक नहीं ? फोन तक नहीं किया ? हर रात तुम्हारे फोन का इन्तजार करते-करते सारी रात" कहने लगा तो अमृता ने उसका चेहरा देखा। वह काफ़ी दुबला पड़ गया था। चेहरे और सीने की हड्डियाँ निकल आई थीं। इसका भी अमृता पर कोई असर नहीं हुआ; वेदना, हमदर्दी, आत्मभर्त्सना आदि कोई भावना व्यक्त नही हुई। सोमशेखर उससे लिपटकर उसे बेडरूम में ले गया। उसे पलंग पर बैठाकर खुद बगल में बैठ गया। अमृता खामोश ही रही। सोमशेखर ने उसका चेहरा अंजली में भरकर अपनी ओर घुमा लिया और उसके होंठों का गहरा चुंबन लिया। अमृता ने विरोध नहीं किया; मुँह नही मोड़ लिया। लेकिन स्पंदित भी नहीं हुई। सोमशेखर को निर्जीव रबड़ को चूमने का-सा अनुभव हुआ। तिरस्कार की अपेक्षा अपमान का अहसास हुआ। लगा कि अमृता अपने को गला पकड़कर बाहर धक्के देकर निकाल रही है। विचार आया कि क्यों न चुपचाप उठकर वापस चला जाये। केवल विचार ही, उठकर जाने की शक्ति नहीं थी या अपेक्षित शक्ति नहीं थी। उतावली ठीक नहीं, उसकी मानसिक स्थिति को समझ लेना चाहिए।—सोमशेखर ने अपने आपसे कह लिया। मुझे इसने बाहर वाला कहा है; उसने निश्चय किया कि अब भीतर वाला बनकर उसे समझ लेना चाहिए। बैठे रहना असुविधा-जनक महसूस करके जूते उतारकर वहीं छोड़ दिये; जुर्राबों के [illegible] ही बिस्तर पर लुढ़क गया। अमृता खिड़की की ओर देखते बैठी रही। वह भी दुबली पड़ गई है। रक्त की कमी के कारण पीली पड़ गई है।

कुछ समय खामोशी में बीता। किसी ने कुछ कहा नहीं। अमृता सहसा दहशत खाकर इसकी ओर मुड़ी। चेहरे पर आतंक, घबराहट थी। सोमशेखर ने पूछा, "क्या बात है ?"

"कुत्तों का भौंकना नहीं सुना ?" सारा ध्यान बाहर की ओर केन्द्रित करके वह बोली।

सुनने की चेष्टा करके वह बोला, "नहीं तो।"

"स्कूटर कहाँ छोड़ा है ?"

"पोर्टिको की छाया में।"

वह उठकर कमरे के बाहर चली। कमरे का दरवाज़ा बन्द करके मोहार के दरवाज़े के पास जाकर खिड़की से बाहर झाँककर देखा। फिर दरवाज़ा खोलकर

गेट तक जाकर देखा। लौटकर दरवाज़ा बन्द करके भीतर आई। उसके चेहरे पर पीड़ा और अन्याय का शिकार होने का भाव दिखाई दे रहा था। मानो बड़ी सबूरी के साथ बोली, "पूरी तरह मेरी आबरू का नीलाम किये बिना आपको चैन नहीं आयेगा न ? क्या स्कूटर कहीं और आड़ में नहीं रखा जा सकता था ? गराज का दरवाजा खोलकर उसके भीतर रखकर दरवाजा बन्द किया जा सकता था।"

चाची के आने के दिन जो दिक्कत हुई थी उसकी याद करके वह बोला, "सॉरी, छोड़कर आऊँगा, गराज़ की चाभी दो।" उठकर वह जूते पहनने लगा।

"अब कितनी देर के लिए भीतर रखेंगे ? वहीं रहने दीजिए" वह बोली।

सोमशेखर समझ गया कि जल्दी निकल जाने के लिए इशारा कर रही है। "अमू, ऐसा क्यों कहती हो ? डर किसका है ? क्यों डरें ? तुम्हारी चाची ने क्या-क्या कहा, तुमने बताया नहीं। इतने दिनों में मैंने सोच लिया है। विजय और विकास दोनों मेरे बच्चे हैं। हम दोनों चुपचाप ब्याह कर लेंगे। यह दहशत, आतंक, चोरी का भाव कुछ नहीं रहेगा।"

वह साँप की तरह एकदम उसकी ओर मुड़ी। आँखें पलकें रहित साँप की आँखों की तरह अविश्वास प्रकट कर रही थीं। "ब्याह ?" वह बोली। फिर आँचल में हाथ डालकर गले का मंगलसूत्र बाहर निकालकर बताते हुए बोली, "मैं बिगड़ गई हूँ। पराए पुरुष का सम्पर्क करके पतिता हो गई हूँ। मैंने इसकी पवित्रता को बिगाड़ लिया है। ऐसी औरत से आप ब्याह करेंगे ?"

सोमशेखर से रहा नहीं गया, "मैंने तुम्हें बिगाड़ा है। सम्पर्क के लिए प्रेरित करके पतिता बनाया है। तुम्हारे सुहाग की पवित्रता को बिगाड़ दिया है—यही है न तुम्हारे कहने का मतलब ?"

"मैंने कब ऐसा कहा। जो अवस्था बनी है उसी का जिक्र किया। आप अनुभवी हैं। आपके लिए यह कोई नया अनुभव नहीं है। मुझे भी आपने अपनी पहले वाली सहेली की तरह समझ लिया। इसलिए आप में दोष-प्रज्ञा पनपने का कोई कारण नहीं; सम्भव भी नहीं।"

"अब तुम उसे पनपाने लगी हो।"

"यानी कि मान गये कि अब तक वह नहीं थी।" मानो बाद की एक बाज़ी जीतने के आवेश में तपाक से बोली। सोमशेखर समझ नहीं पाया कि इसमें अपना क्या अपराध है। "विवाहित है, दो बच्चों की माँ है। छूना नहीं चाहिए, उसके मन को विचलित नहीं करना चाहिए—ऐसी भावना क्या उसके लिए अपेक्षित नहीं थी ? मैं दावा नहीं करती कि उसमें मेरा कोई हाथ नहीं था। अपने हिस्से की दोष-प्रज्ञा मुझ में भी है। आपका हिस्सा चाहे थोड़ा ही हो, उस हद तक तो आपको भी अहसास होना ही चाहिए न ! अगर ऐसा अहसास आपको न हो तो

आप जानवर के समान हैं। उनमें ऐसा कोई भेद नहीं रहता।"

इस प्रकार के पाप या दोष को इन्जेक्शन की तरह भरकर खुद कराहते रहती है और चाहती है कि मैं भी कराहता रहूँ। अब इसको जवाब देना ही होगा; इस विचार से बोला, "जहाँ प्यार होता है वहाँ पाप-दोष आदि नहीं होते।"

"यानी आपका मतलब हुआ कि मुझे आपसे प्यार नहीं। हाँ, मुझे आपसे प्यार नहीं है। व्यामोह था। वह भी अब निकल गया। मैं सच बोल रही हूँ। लेकिन आप झूठ बोल रहे हैं। वास्तव में आपको भी प्यार नहीं।" चरम सत्य की अभिव्यक्ति करती हुई-सी वह बोली।

सोमशेखर को गुस्सा आया। "नान्सेंस बातें मत करो। तुम्हें मुझसे प्यार नहीं है तो न सही। लेकिन मुझे तुमसे है।"

नफ़रत की हँसी के साथ वह बोली, "क्या सबूत है इसका ?"

"सबूत ? देखो, जब हनुमान जी ने सीना चीरकर दिखाया था तो भीतर श्रीराम का चित्र ही दिखाई दिया था। उसी तरह मेरा सीना भी चीरने पर तुम ही निकलोगी। उठते-बैठते निद्राहीन होकर तड़पते समय भी। अब मैं क्या बन गया हूँ उसे कह लेना उचित नहीं। उसे समझ लेने का प्रयत्न तुम्हें करना होगा। तुम्हारी कसम, तुमसे प्यार करता हूँ। तुमसे बढ़कर प्यारा, मूल्यवान मेरा और दूसरा कौन है, इसीलिए तुम्हारी कसम खाकर कह रहा हूँ।"—उसके सिर पर अपनी हथेली रखकर उसने कहा।

अमृता को विश्वास नहीं आया। "मेरे प्यार के लिए क्या मैं ही कसम की वस्तु बनूं ! आपकी धूर्तता प्रशंसनीय है। अगर आपकी कसम झूठी होगी तो उसका असर मुझ पर ही हो इसी इरादे से ऐसी धूर्त बात करते हो न ?" वह खिल-खिलाकर तिरस्कारपूर्ण ढंग से हँसने लगी।

"तुम्हारी कसम न सही। भगवान् की कसम खाकर कहता हूँ।" दिग्भ्रांत होकर बात की अन्तिम सम्भावना के रूप में लाचारी से बड़बड़ाने लगा।

तुरन्त अमृता ने बात काटी, "आपने ही बताया था कि आपको भगवान् के अस्तित्व में पूरा विश्वास नहीं है। जिस पर विश्वास नहीं उस भगवान् की कसम खाना यह सिद्ध करता है कि आप जान-बूझकर झूठ बोल रहे हैं। सुनिए, स्त्री जितना नकारती जाती है पुरुष की ज़िद उतनी ही बढ़ती जाती है कि वह प्यार करता है। आप में केवल वही ज़िद है। उसे छोड़कर सच्चाई को स्वीकार कर लीजिए। मेरे सामने नहीं; स्वयं अपने सामने। अपने लायक किसी औरत को ढूंढकर ब्याह करके चैन से रहिए। इतवार की पत्रिकाओं में मेट्रियोनियल् कालम् देखते रहिए। आपको अपनी पसन्द की लड़की मिल जाएगी। मुझे बच्चों को लेने जाना है। गुड बाइ। कृपा करके फिर कभी यहाँ मत आइए।" कार और घर की चाभियाँ लेकर वह खड़ी हो गई।

सोमशेखर ने घड़ी देख ली। अभी सवा दो बजा था। बच्चों को लाने का समय नहीं हुआ था। वह समझ गया कि उसने अपने को बिदा करने की ठानी है। इसके बाद भी उस तिरस्कार का निराकरण करते हुए वहाँ बैठे रहना लज्जाजनक लगा। किस तरह वहाँ से निकले, समझ नहीं पाया। कुछ देर असमंजस में बैठा रहा। फिर उठ खड़ा हुआ। मन में जो 'आल् राइट' शब्द उभरा था उसे गले में ही निगलकर अपना हेल्मेट उठा लिया। अमृता खिड़की की ओर मुँह किए खड़ी थी। सोमशेखर कमरे के दरवाज़े तक गया। अमृता वैसी ही खड़ी रही। उसने बाहर निकलकर स्कूटर स्टार्ट किया। कुत्ते भौंकने लगे। सहसा उसने इंजन बन्द कर दिया, गाड़ी को स्टैंड पर लगाकर भीतर आया। सामने वाला दरवाज़ा बन्द करके कमरे में घुसा। अमृता पहले की तरह ही खड़ी थी। हेल्मेट को पलंग पर फेंक दिया। अमृता के सामने जाकर खड़ा हुआ। हाथ उठाकर उसकी बाँह पर फट् के साथ मारा। बायाँ हाथ उठाकर दाहिनी भुजा पर भी एक थप्पड़ जड़ दिया।

अमृता की आँखों में क्रोध भड़क उठा। "रैस्कल, तुम क्या समझती हो कि मुझे मनमानी नाच नचाओगी ?" कहते हुए उसने एक और थप्पड़ अमृता के जड़ दिया।

"नाच तो आप नचा रहे हैं।" अमृता चिल्लाई।

"भगवान् की कसम खाकर भी बात करता हूँ तो तुम उसका मज़ाक उड़ाती है ?" उसने पुनः हाथ उठाया। बिजली की तरह अमृता ने इतनी तेज़ी से हाथ उठाकर उसके गाल पर थप्पड़ मारा कि सोमशेखर उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। उसने बायाँ हाथ भी उठाया। अब उसकी मार से बचाव करना जरूरी जानकर सोमशेखर ने अमृता के दोनों हाथों को पकड़ने की कोशिश की। पहली पकड़ में वे हाथ काबू में नहीं आ सके; उसके सीने पर बाँहों पर वार करते रहे। उन हाथों को बिलकुल निष्क्रिय बनाने की चेष्टा में उसने अमृता को पूरी तरह कसकर पकड़ लिया। तुरन्त अमृता ने उसकी बायीं बाँह में काट लिया। छुड़ा लेने का कोई दूसरा मार्ग न पाकर जूते पहने पाँव से उसने अमृता की बायीं पिंडली पर ठोकर मारी। दर्द के मारे ढीली पड़ी दाहिनी बाँह को हटाकर अमृता ने पलँग के नीचे से दोनों हाथों में एक-एक चप्पल उठा ली, "बूट से लात मारता है ?" कहते हुए आगे बढ़कर चप्पलों से चटाचट मारने लगी। इतने में सोमशेखर को अपनी गलती का अहसास हुआ। स्कूटर जो स्टार्ट किया था—उसे बन्द करके भीतर आकर मार-पीट मैंने ही शुरू की थी। अब आगे बढ़कर उस पर हमला करके नीचे गिराया जा सकता है, बूटों से लात मार-मारकर, लेकिन उसमें कौन-सी फतह होगी ! इस विचार से अमृता के प्रहार को सिर देकर वह चुप खड़ा रहा। अमृता भी चप्पलों से आठ, दस, बारह मारती ही चली गई। आगे क्या किया जाये

इस उलझन में हाँफते हुए खड़ी रही। अगला मोरचा सोमशेखर का था जो शर्म से जमीन में धँस गया था; तुरन्त बोला, "सॉरी, गुस्से का शिकार हो गया था। अब कभी इस घर की देहलीज पर पाँव नहीं रखूँगा।" हेल्मेट लेकर लम्बे डग भरते हुए चला गया।

क्या घटना घटी इसे याद कर लेने में सोमशेखर को तीन दिन लगे। यह पहला मौका नहीं था जब अमृता ने उसे मारा था। लेकिन, इससे पहले जो मारा था वह उसने खुद रोष में आकर मारा था। मैं रोष का शिकार न होकर केवल मार सहा करता था। उस समय नैतिक जीत मेरी थी। लेकिन, अब मैंने खुद क्रोध को मौका दिया; लौटकर घर में गया और उसे मारा। साधारण क्रोध से नहीं, पागलों की तरह। उसने उसी स्तर की प्रतिक्रिया व्यक्त की। उसमें भी मैं हार गया। बीच में ही हार गया। शारीरिक रूप से जीतना कोई कठिन नहीं था। टाँग मारकर नीचे गिराकर अगर दबोच लिया होता तो काफ़ी था। ऐसी हरकत को हैवानियत समझकर तुरन्त शर्माकर निष्क्रिय हो गया। उसने रोष आगे बढ़ाया। दरअसल मैंने ही अपने आपको इस सजा के काबिल बना लिया। वह भीतर-ही-भीतर खौलने लगा।

इसी उधेड़बुन में दो दिन बीत गये तब उसके मन में एक और विचार आने लगा। मैसूर छोड़कर बम्बई क्यों न लौट जाए? क्या है इस शहर में बँधे रहने के लिए? दफ्तर बेचकर सारा कर्जा अदा कर दे। बची रकम लेकर पहले की तरह बम्बई में नये सिरे से जीवन शुरू कर दे, रहना कहीं, काम कहीं, पसीना बहाकर हैवानों से भी बदतर होकर रेल के डिब्बों में घुसते रहो; फिर भी वही जगह अच्छी लगने लगी। मैसूर का खुला आकाश, शान्त सड़कें, कुक्करहल्ली का तालाब, गंगोत्री, पहाड़, किसी में भी अब आकर्षण नहीं दिखाई देने लगा। ललित-महल की दिशा तो अपने लिए है ही नहीं। चामुंडी पहाड़ भी नहीं है। पहाड़ से कटे हुए मैसूर शहर का ठिकाना कहाँ है? इस लावारिस शहर में रहे भी क्यों भला? यह तर्क मन में जोर पकड़ने लगा। रात में सोते ही तुरन्त नींद तो आ जाती है। लेकिन डेढ़-दो के बाद आँख खुल जाती है; फिर नींद हराम हो जाती है। सदा उसी की याद मन में भरी रहती है। आखिरी दिन जब उसने अपने आपको क्रोध का शिकार होने दिया था उस घटना को छोड़कर हमेशा उसके साथ अच्छा सलूक ही किया है। फिर भी जो मेरा तिरस्कार ही करती रही है, उसके पीछे पड़कर मैं क्यों परेशान होऊँ? इस तरह उसने अपने आप को तसल्ली दी। मन में न जाने कैसी-कैसी ही तस्वीरें, यादें उभरने लगीं, उससे सम्बन्ध न रखने वाली। फिर भी नींद नहीं आई। एक रात मन का धीरज बँध गया: इस पागल औरत के संबंध की इस अवस्था के लिए मैं क्यों शहर छोड़कर जाऊँ? यह शहर क्या उसी पर

टिका है ? इसी तरह दो-चार दिन, दो-चार महीने बीत जाएँगे तो उसकी याद अपने आप धूमिल होने लगेगी। मैसूर फिर से पहले की तरह दिखाई देने लगेगा। मन धीरे-धीरे सहज होने की चेष्टा कर रहा था फिर भी नींद कहीं उड़ गई थी। भिनसारे के समय इस अहसास से वह दिग्भ्रांत हो गया कि इस धैर्य की जड़ में भी अमृता ही है। पहले भी कई बार साफ शब्दों में कह चुकी है कि वह मुझसे प्यार नहीं करती। फिर भी लताड़ खाया हुआ कुत्ता जिस तरह अपने मालिक के पीछे-पीछे लार टपकाता रहता है, उसी तरह मेरा मन भी क्यों उसके ही पीछे दौड़ता है ? अपने आपको कितनी ही घिनौनी उपमाओं से चित्रित कर लेने पर भी उसकी यादों से छूट पाना असम्भव लगा।

मन में एक उपाय आया : हर रोज सोते समय एक छोटी-सी नींद की गोली लेने से कैसा रहेगा ? सिर्फ पन्द्रह-बीस दिनों के लिए। जल्दी सोकर दिन निकलने तक गहरी नीद सोने की एक बार आदत हो जाए तो बस; फिर बिना गोली के ही अपने आप नींद आ जाएगी। बम्बई में न जाने कितने लोग हर रात नींद की गोली खाते हैं या थोड़ी-सी व्हिस्की पीते हैं। अपने को कभी व्हिस्की की लत नहीं पड़ी। पुरानी भावना पुन: जाग गई कि व्हिस्की की शरण में जाना पराभव को स्वीकार करना है। उसी तरह नींद की गोली खाना क्या पराभव को स्वीकार करना नहीं है ? जब यह प्रश्न सामने आया तब लगा कि दोनों में काफ़ी फ़र्क है। फिर भी किसी डाक्टर की सलाह लेने का मन हुआ। डाक्टर भी क्या खाक कहेंगे भला ? यही कहेंगे कि गोली खाओ। या मनोचिकित्सक के पास भेज देगा। क्या मुझे मनोरोग है ? ऐसा अनुभव कितने लोगों को नहीं होता, इसे रोग भी कैसे कहें ? अपनी अवस्था को रोगिल मानना ही चारों खाने चित होना है। इसके भले-बुरे को खुद पहचानकर इसकी जड़ पकड़नी होगी।

एक रात उसकी नींद खुल गयी तब वह सोचने लगा : औरत के लिए प्यार बड़ा होता है या संतान ? संतान के लिए जो माँ हर त्याग करने के लिए तैयार रहती है वह प्रेम का भी त्याग कर सकती है। चाची ने धोखा किया; पति ने धोखा किया; लेकिन पति बिलकुल नालायक तो नहीं था। भले ही इसके पैसे से पढ़ा है, लेकिन इंजीनियर बना है। दो बच्चे हैं। मैं प्यार जता सकूँगा। क्या वे बच्चे मुझे बाप मान लेंगे ? भविष्य में जीवन-भर उनका खिचाव उसी ओर रहेगा। इन सारी बातों को सोच-समझकर ही उसने दूर रहने का निर्णय लिया होगा। नाहक अपना मन खट्टा कर लेने के बदले उसकी दृष्टि से विचार करके परिस्थिति को स्वीकार करना समझदारी होगी। अगर इससे उसका भला हो सकता है तो—त्याग ही तो प्यार की प्रकृति है। अचानक मन में उदात्त भाव जागा। उसकी खातिर मेरे पीछे हटने में ही बड़प्पन है। फिर विचार आया कि क्यों न चुपचाप बम्बई चला जाऊँ ? जाने से पहले उसे बताये या नहीं ? इसी क्षण क्यों

न इसकी सूचना दे डाले ? तुरन्त उसने स्विच् दबाकर बत्ती जलाई; बगलवाला फोन उठा लिया। तीन नम्बर घुमा पाया था कि तभी मन में विचार आया, इस बहाने पुन: चिपकाव शुरू करना ठीक नहीं; अगले नम्बर न घुमाकर रिसीवर को वापस रख दिया। उसकी खातिर दस हज़ार खर्च करके फोन लगवाया था। अब फोन वापस लौटाना भी चाहूँ तो डिपार्टमेंट वाले पैसा लौटायेंगे नहीं। अगर फोन करना था तो वह खुद करती। जब उसने अपना अन्तिम फैसला कर लिया है तब कुत्ते की तरह उसके साथ व्यवहार करना हिंसा होगी और मेरे पल्ले निराशा पड़ेगी। आवेश में आकर मैं लौटकर गया और उसे मारा सो तो ठीक है; लेकिन भविष्य में कभी देहलीज पर पाँव न रखने की बात नही कहनी चाहिए थी। इसी बात पर कही उसने फोन करना छोड़ दिया हो। क्या मैं खुद फोन पर बता दूं कि गुस्से में आकर मैंने ऐसी बात कही, वह कोई मायने नहीं रखती ? लेकिन इस पर अगर उसने कोई तीखा व्यग्य कस दिया तो ? जब गुस्सा चढ़ता है तब बड़ी तेजी से साथ अर्थ को चौपट करके चुभती बातें करना उसकी आदत है। इस आदत से घबराकर वह चुप रह गया।

एक और रोज़ आधी रात के समय उसकी नीद खुल गई। उसने घड़ी देखी। ठीक बारह बजे थे। सहसा उसकी याद हो आई। पता नहीं घर में होगी या रिवाल्वर लिए पहाड़ की चोटी पर मौत की तैयारी में होगी ? वह डर गया, आतंकित हुआ। कोई दूसरा विचार किए बिना परदे के बाहर हाथ बढ़ाकर फोन उठा लिया। सर्-सर् नम्बर घुमाया। उधर घंटी बजने लगी। वह प्रतीक्षा में चोंगा पकड़े ही रहा कि अब उठा लेगी, पाँच सेकंड में उठा लेगी, उठाना ही होगा। दो मिनट बजते रहने पर भी उठाया नहीं। क्या अब तक पहाड़ पर चली गई होगी ? या ट्रिगर दबाकर पूरा खेल खत्म कर लिया होगा ? सो॰॰ खर का गला भर आया। इतनी देर बजनेवाली घंटी मेरी ही हो सकती है इस विचार से कहीं उठाना ही न चाहती हो ? इस आशंका के साथ अवज्ञा की भावना से मन को पीड़ा हुई, फिर भी मन ने कहा कि किसी तरह बची रह। इतने में फोन उठाए जाने की सूचना मिली, 'अलो, अलो' किसी पुरुष की आवाज़, शायद नौकर की। उस नौकर से क्या बात करे—इस उलझन में पड़ गया। "कौन हैं साब ?" उधर से आवाज़ आई।

पाँच सेकेंड में अपने आपको सँभालकर बोला, "मैडम हैं"

"गाँव गई हैं; आप कौन हैं ?"

"कब गईं ?"

"वे क्या; जाती रहती हैं, आती रहती हैं।"

"कब आएँगी ?"

"कह रही थीं कि अब की बार चार-पाँच दिन लगेंगे।"

"ठीक है, उनके आने के बाद बात करूँगा।" सोमशेखर ने फोन नीचे रख दिया। अपना परिचय नहीं दिया। अब बात साफ़ हो गई। चाची का प्रभाव काम कर गया है। पति-पत्नी एक हुए हैं। विवाहित है, दो बच्चों की माँ है। छूना नहीं चाहिए, उसके मन को विचलित नहीं करना चाहिए—ऐसी सूझ क्या आपके लिए जरूरी नहीं थी? उस दिन उसने पूछा था। अब उसकी पृष्ठभूमि समझ में आ गई। इस बात की तसल्ली भी हुई कि चलो, आखिर वह अपने ठिकाने पहुँचकर द्वन्द्वों से मुक्त हो गई। इसके साथ ही उससे सम्बन्ध टूट जाने की भावना भी जागी। पहले कभी उसी ने कई बार कहा था, 'चाची और पति से धोखा खाने के बाद मुझमें मरने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। तुम्हारा स्नेह बढ़ने के बाद वह भारी दबाव बनकर विकसित हुई।' अब वह दबाव शायद भारी परिमाण में नहीं रहा होगा; कम हुआ होगा। इस सारे मामले में क्या ग़लती मेरी थी? उसका आग्रह, उत्साह क्या मुझसे अधिक नहीं था?—इन यादों की परतें सोमशेखर के मन में उघड़ने लगीं।

बाहर कौओं के बोलने के समय नींद आई। साढ़े सात बजे आँखें खुलीं। नित्य कर्मों से मुक्त होकर नौ बजे स्कूटर पर सवार हो गया। होटल में नाश्ता करके जब पौने दस बजे दफ्तर पहुँचा तब नीलकंठप्पा ने बताया, "जलजा मैडम का आपके लिए फोन आया था। आते ही फोन करने के लिए कहा है। वे आपसे अर्जंट मिलना चाहती हैं।"

जलजा ने क्यों फोन किया था, वह जानता था। अमरीका के डॉ॰ राममूर्ति का काम अपने से ढीला पड़ गया है। ठेकेदार ने नींव के गड्ढे खुदवाकर रखे हैं। सारी इमारत की तौल खंभों पर टिकती है। जब तक उसे गड्ढों की गहराई, नीचे कंक्रीट का बेड् और लोहे की मात्रा और डिजाइन नहीं मिलता, वह काम आगे नहीं बढ़ा सकता। इससे पहले मिट्टी की परीक्षा करवानी थी। वह अपनी जिम्मेदारी है। पहले ही काम दो महीने पिछड़ गया है। डॉ॰ राममूर्ति ने अमरीका से उसको दो बार फोन किया था। जब कभी उन्होंने फोन किया था तब मैं दफ्तर में फोन पर नहीं मिला था। मेरे साथ जो दो बार संपर्क हो पाया था उसके लिए उन्हें सात बार प्रयत्न करना पड़ा था। एक बार ऊबकर नीलकंठप्पा द्वारा 'कलेक्ट कॉल' करने के लिए मुझे कहलवाया था। ग़लती मेरी है। ये सारे काम नीलकंठप्पा के नहीं थे। इस इमारत के काम की निगरानी तो हर दिन खुद मुझे करनी थी। लेकिन मुझमें अपेक्षित तन्मयता नहीं आ रही है। उधर ध्यान देते नहीं बन पा रहा है। सारा ध्यान इसी पर केन्द्रित है। जो लोग प्रेम-व्यवहार में उलझ जाते हैं वे विद्या और वृत्ति में रुचि खोकर बरबाद हो जाते हैं—यह बात मेरे लिए अपरिचित नहीं है। मैं खुद भी इसी तरह उलझता जा रहा हूँ। राजशेखर शेट्टी का काम भी इसी वजह से खो दिया था।

अब जलजा को फोन करना प्रधान बात नहीं है। अब तक जो देर हो गई उसके लिए माफ़ कीजिए। आज से मुझसे देर नहीं होगी। अभी तीन दिनों में खंभों का डिजाइन बना दूंगा—यह आश्वासन देकर काम शुरू कर देना चाहिए। वरना, विश्वास और भी टूट जाएगा। इतने में फोन की घंटी बजी। उठाया तो जलजा थी। "समझ गया; मैं खुद फोन करने वाला था, इतने में आपका फोन आया"—वह बोला।

"दस मिनट आपसे बात करनी थी। कब आऊँ?" वह बोली। "आप क्यों कष्ट करती हैं? मैं खुद आऊँगा" उसने कहा। फिर भी वह बोली, "नहीं, मैं कालेज से बोल रही हूँ। आपका दफ्तर निकट पड़ता है। मैं ही आऊँगी। कोई क्लास भी नहीं है।" इसने बताया, 'अभी आइए।' जलजा के मन में इसके प्रति पहले से ही आदर भाव था। जब से उनका घर बनवा दिया है तब से यह आदर-भाव और बढ़ गया था। जब जलजा आकर सामने बैठ गई तब से खुद को अहसास हुआ कि बातों की शुरुआत के लिए वह अपने आपको टटोलने लगा है। वह बोला, "मुझे मेरी ग़लती का अहसास है, झिझकिए नहीं, बताइए।" आवाज़ में क्षमा-याचना भरी थी। तब जलजा ने अपनी बैग से विदेशी डाक का एक लिफाफ़ा बाहर निकाला। सोमशेखर समझ गया कि वह डॉ० राममूर्ति का पत्र है। लिफाफे से तीन-चार पतले कागज़ निकालकर पहला पन्ना अपने पास रख लिया। बाकी पन्ने आगे बढ़ाती हुई बोली, "दूसरे पैरा से पढ़िए, राममूर्ति की है।" कागज़ हाथ में लेकर सोमशेखर पढ़ने लगा :

> "तुमने कितने विश्वास के साथ आर्किटेक्ट सोमशेखर की सिफारिश की थी, उसके बारे में मुझे भी आश्चर्य होने लगा है। लेकिन पाँच मिलियन पूंजी लगाकर बनाई जाने वाली इमारत है; इसलिए आश्चर्य के साथ गुस्सा भी आया है। वह निष्ठावान हो सकता है; लेकिन आलसी है, कामचोर है। मेरे सामने कितनी निष्ठा के साथ जिम्मेदारी जताकर भलेमानुस की तरह सारी जिम्मेदारी खुद ढोने का वचन दिया था। और अब मेरे इधर चले आने के बाद इस तरह करना क्या धोखेबाजी नहीं? झूठ बोलना, पैसा हड़पना ही बेईमानी नहीं कहलाती वचन देकर जिम्मेदारी से मुकर जाना भी बेईमानी है। इस देश के न्याय की यही कल्पना है। यह इस तरह गैर जिम्मेदारी से काम करेगा और काम में ढील होगी तब अगर मेटीरियल के दाम बढ़ जाएँगे तो कौन भरेगा? इंडिया में जिस तेजी के साथ दाम बढ़ते हैं उस तेजी से किसी और देश में नहीं बढ़ते। इस बीच जब सरकार बजट पेश करेगी तब लोहा, सीमेंट, इमारती लकड़ी, रंग, बिजली के तार आदि के टैक्स बढ़ाएगी; मौका पाकर व्यापारी लोग उसे और बढ़ा देंगे

और सारांशत: मेरी इमारत की एस्टिमेट पाँच से छह या सात तक चली जाएगी तो कौन भरपाई करेगा ? अमरीका की बात कुछ और है। जिसके कारण देरी होती है उसी की जिम्मेदारी होती है। अगर भरपाई नहीं करेगा तो उसे जेल भेज देते हैं। लेकिन इण्डिया की हालत कुछ और ही है।

" काम, कल्पना, जिम्मेदारी और ईमानदारी में उसे उत्तम दर्जे का आदमी मानकर तुम्हारी सिफारिश पर मैं मैसूर आया था। वरना, बेंगलूर के किसी आर्किटेक्ट से यहीं से संपर्क कर सकता था। कृपा करके तुम ग़लत न समझना कि मैं तुम पर आरोप लगा रहा हूँ। वहाँ आने के बाद उसके कामों से मैं भी खुश हुआ था। चार पर्सेंट माँगने पर भी मैंने अपनी ओर से छह पर्सेंट तय करके उस पर अधिक जिम्मेदारी सौंप दी थी। और अब ऐसे पैंतरे दिखा रहा है। मैंने फोन पर बातें कीं। तुम्हारे कथनानुसार उसकी कुछ भावनात्मक उलझनें हो सकती हैं। वह उसका निजी मामला है। उन बातों पर सहानुभूति दिखाते हुए बैठे रहेंगे तो हमारा नुकसान कौन भरेगा ? तुम खुद उससे मिलकर कोई आखिरी फैसला कर लेना। ठीक मन लगाकर अगर काम नहीं करता हो तो उसे डिस्मिस् करके मुझे फोन पर बता देना। मैं खुद आकर बेंगलूर के आर्किटेक्ट को तैनात कर दूंगा। बेंगलूर के आर्किटेक्ट को मेरी कल्पनाएँ, जरूरतें आदि समझाने के लिए कम-से-कम दस दिन का समय तो देना पड़ेगा ही। फिर यात्रा की अवधि, खर्च अलग। इतने दिनों का यहाँ मेरे कारोबार में होने वाला नुकसान भी है। मैं केवल पैसों की ही बात कर रहा हूँ, ऐसा मत समझना। जिम्मेदार व्यक्ति के लिए समझने की बात यह है कि यह एक नैतिक प्रश्न है··· "

—इसके आगे उन्होंने अपने परिवार से संबंधित बातें लिखी थीं। सोमशेखर कागज को मोड़कर जलजा के सामने रखकर चुप बैठा रहा। जलजा प्रश्नवाचक दृष्टि से उसका मुँह देखने लगी। सोमशेखर को संकोच हुआ, लज्जा भी हुई। वह समझ गया कि इस पत्र के बारे में बात करते हुए जलजा को भी हिचक होने लगी है।

"सुनिए, मुझे दो दिन का टाइम दीजिए। सोचकर बताऊँगा कि क्या मैं यह काम कर सकूँगा या नहीं। मैं खुद आपको फोन करूँगा।"—वह बोला।

अब जलजा को बात चलाने में सुविधा हुई, "कर सकेंगे या नहीं का क्या मतलब ? सारी तैयारियाँ तो कर ही ली हैं। अब जो कुछ बचा है वह केवल समय-समय पर ठेकेदार को डीटेल्स देते जाने का काम है। आप बड़े मेधावी हैं, यह

बात खुद रामू ने कही है।"

"काम की लगन," गर्दन झुकाकर वह बोला।

"रामू के पत्र में ही एक सूचना है। आपके वैयक्तिक मामले में अनुमान करके मैंने उससे बात लिखी थी। शायद कहना गलत हो। लेकिन, आप कोई एकदम पराए तो नहीं हैं, इसलिए कह रही हूँ। किसी अपने आत्मीय व्यक्ति के साथ कह लेने से समस्या का परिहार हो सकता है। फिर काम में लगन अपने आप उत्पन्न होती है।"

सोमशेखर ने गर्दन उठाकर जलजा का चेहरा नहीं देखा। वे अपना हित चाहने वाली हैं इसमें कोई शक नहीं। इसीलिए इतना संकोच कर रही हैं। "परसों इतवार है। आपके कालेज की छुट्टी रहती है। सवेरे नौ बजे जरूर आपके घर आऊँगा। तब तक का समय दीजिए।" वह किंचित् आश्वस्त आवाज़ में बोला। जलजा उठ गई। वह उसे नीचे तक पहुँचाकर आया।

दफ्तर में कोई खास काम नहीं था। राजशेखर शेट्टी के घर का काम खुद छोड़ देने के बाद कोई दूसरा काम स्वीकार किया ही नहीं था। अब मुड़कर पीछे की बातें सोचने लगा : इधर मैं दफ्तर में बराबर बैठता ही नहीं हूँ। नये ग्राहक आए होंगे। दो-चार चक्कर काटे होंगे। मेरे न मिल पाने पर कहीं और चले गये होंगे। या मेरे असिस्टेंटों ने ही उन्हें कहीं और भेज दिया होगा। छोटे-मोटे कामों का वे खुद प्लान बनाकर अलग कमाई करते होंगे। कारोबार में मौक़ा मिलने पर असिस्टेंट लोग यही तो करते हैं। नीलकंठप्पा और नंजुंडेगौड ने अगर ऐसा किया हो तो सारी ग़लती उनकी नहीं है। कुछ समय बाद दफ्तर में अकेला बैठा रहना बोझिल सा हुआ। हेल्मेट लेकर बाहर आया। नीलकंठप्पा से कहकर निकला कि थोड़ी देर में लौटकर आता हूँ।

समझ नहीं पाया कि कहाँ जाये। दस मिनट स्कूटर के पास खड़ा रहा। शहर से बाहर कहीं हरियाली के साये में बैठने का मन हुआ। स्मरण हुआ कि हरियाली, साया, पानी, पहाड़ के एकांत में ही मूलभूत बातें साफ़ होने लगती हैं। जब खडाला के जंगली पहाड़ों में बैठा था तभी बम्बई छोड़कर मैसूर आने का विचार आया था, वह विचार ठोस बना था। स्कूटर में पेट्रोल कितना है देख लिया। पेट्रोल और हवा लेकर बृंदावन की ओर गाड़ी भगाई। दिन के समय वहाँ का साया, पानी की घर्राहट, तनहाई कितनी सुहानी होती है। होटल के सामने स्कूटर खड़ा किया। जहाँ पानी भयावह तेज गति से बहकर फेन और बौछारों के मायालोक का सृजन कर रहा था वहाँ जाकर खड़ा हुआ। इसमें कूद पड़ूं ! मन में आकर्षण हुआ। चाहे कैसा ही तैराक हो, पल-भर में डुबोकर, घुमा-घुमाकर नीचे दो फलांग की दूरी पर लाश को तैराने वाला तेज भँवर है। इसकी जानकारी रहते हुए भी उसमें कूदने का दुर्दमनीय व्यामोह बढ़ने लगा है। धूप को चीरकर सात

रंगों की सृष्टि करने वाली परत अपना अलग आकर्षण फैला रही थी। बड़ी देर तक सुध-बुध खोए उसी को निहारते खड़ा रहा। धूप की तेजी से जब सिर दुखने लगा तब वहाँ से लौटकर होटल गया। दहीभात खाकर कॉफी पी। नीचे उतरकर शीतल लताकुंज में पत्थर की बेंच पर लेट गया। देह और मन को आराम मिला। 'जो भी बात हो मुझसे कहिए,' जलजा की बात याद आई।

मैसूर आए इतने वर्ष बीत गए लेकिन अभी तक एक भी मित्र नहीं बनाया। अगर अमृता से सम्पर्क न हुआ होता तो शायद कोई मित्र बन गया होता। किसी का कहा याद आया : जो प्यार में डूबा रहता है उसका किसी और से स्नेह नहीं होता। जो आदमी अपना मन, बुद्धि, सारा समय प्रेमी के निकट या उसकी यादों में खोया रहता है उसका दूसरों से स्नेह होगा भी कैसे ? अगर स्नेह होगा भी तो वह टिकेगा नहीं। लगा कि प्यार सब कुछ अपनी ओर खींच लेने वाली तानाशाही शक्ति होता है। मन ने कहा कि अब तो सब कुछ बीत गया; कम-से-कम अब ही सही किसी से सम्पर्क बनाकर किसी अच्छे क्लब का सदस्य बन जाना चाहिए। कुछ समय तक यही ठीक मार्ग लगा। फिर एक और विचार आया कि आज शाम जलजा के घर जाकर अमृता और अपने सम्बन्धों की सारी बातें बताकर जी हलका करके उसकी सलाह लेनी चाहिए। बीच में ही सम्बन्ध टूट गया; निकट का स्नेह बना नहीं। छात्रावस्था से जानती है, गुरु की बेटी है—इन सभी बातों ने उसके विचार का समर्थन किया। एक औरत दूसरी औरत का विश्लेषण करके देख सकती है। पुरुष के लिए तो औरत हमेशा पहेली ही बनी रहती है; अँधेरे में कुश्ती लड़ने के समान। जलजा यह जानती है। वरना क्यों सूचना देती ? कालेज में और भी कई लोग जानते होंगे। मेरे दफ्तर के भीतरी अलंकरण का काम उसने खुद अपनी निगरानी में करवाया था न ! कारीगर, नीलकंठप्पा और उनके द्वारा और भी कितने ही लोगों को उनके निकट सम्बन्धों का पता चल गया है। जलजा से कह लेने में क्या हर्ज है ? जब यह विचार ठोस रूप लेने लगा था तभी एक अन्य प्रश्न ने जन्म लिया : दूसरों से, खासकर उसके सहकर्मियों की सहायता के बिना क्या मैं अपने आप कोई फैसला नहीं कर सकता ? बम्बई का स्नेह किसी और को कभी बताया नहीं था। जब वह टूट गया था तब भी नहीं बताया था। अमृता को भी तब बताया था जब आत्मशुद्धि के क्षण में सत्य को कहे बिना आगे बढ़ना उचित नहीं समझा था। फिर भी उसका नाम, पता-वता कुछ नहीं बताया था। अब अमृता की अनुमति के बिना इसके सम्बन्ध के बारे में जलजा से क्यों कहूँ ? इसी फैसले की जीत हुई।

परसों सवेरे तक उनको कोई फैसला सुनाना होगा। इसमें सोचने की गुंजाइश अधिक नहीं थी। इस काम को पूरा कर देने पर तीन लाख की कमाई होगी। एक साल में या तीन महीने और अधिक लगेंगे। मैसूर के लिए ही एक नये आकार

और नई सुविधाओं से लैस इमारत। आगे निर्माण करवाने वाले मेरी ही खोज में आएँगे। अमरीका में रहकर जो लोग बेंगलूर या मैसूर लौटना चाहते हैं उनसे डॉ० राममूर्ति मेरी ही सिफारिश करेंगे। बेंगलूर में भी मेरा नाम होगा। साल-भर मे आठ-दस लाख आमदनी की गारन्टी। अगर इस काम को छोड़ दूँगा तो बदनामी होगी। नए काम मिलना कठिन हो जाएगा। प्रोफेशन में एकदम नीचे गिर जाऊँगा। छुटपुट घरों का रेखांकन करने की अपेक्षा ऐसी इमारत बनवाने में ही तृप्ति और सफलता का भाव होता है। तराजू के दोनों पलड़े जब सामने साफ़ दिखाई दे रहे थे तब सहसा मन को वैराग्य भावना ने व्याप लिया कि सफलता प्राप्त करने, इतनी मेहनत करने का क्या प्रयोजन? पेशे में अगर ढह भी जाए तो क्या फर्क पडने वाला है? जब सारे जीवन में पराभव को स्वीकार कर लिया है तब अपने पेशे में पराभव को स्वीकार न करने की बात एक पागल की ज़िद मात्र है।

वह शाम तक वहीं लेटा रहा। दूर नहर के पानी का घहराना, उधर विश्वैश्वरय्या नहर का मौत का कुआँ, बीच में बहती एक और जलधार, ये सभी उद्वेग का शमन करने वाले थे। लेकिन उसके फैसले में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ा। अभी परसों सवेरे तक समय है, इस विचार से उठकर होटल की ओर चला। अब तक रात की राशनी देखने के लिए लोगों की भीड़भाड़ शुरू हो गई थी। उसने कॉफ़ी भी नहीं पी; स्कूटर पर सवार होकर चल पड़ा।

साफ़ जाहिर था कि वह हार गया है। लेकिन क्यों और कैसे? समझ नहीं पाया। लगाव रखने वाली किसी औरत का तिरस्कार करने मात्र से जीवन हार क्यों मान ले?—प्रश्न सताने लगा। मैसूर पहुँचकर ओंटी कोप्पल में जो होटल मिला वहाँ जो कुछ मिला खाकर घर आया। लेटते ही जल्दी नींद आ गई। कल की तरह ठीक बारह बजे आँख खुली। हाथ अपने आप परदे के बाहर बढ़ा और फोन उठा लिया। वह गाँव गई है इस बात की याद आई तो पुन: फोन वहीं छोड़कर हाथ अन्दर ले लिया। परदे को ठीक करके लेट गया। नींद नहीं आएगी इसका पूरा विश्वास था; इसलिए नींद का निष्फल प्रयत्न नहीं किया।

पूर्व निर्णय के अनुसार इतवार के सवेरे नौ बजे जलजा को फ़ोन किया। "डॉ० राममूर्ति जी को बता दीजिए। उन्हें दूसरा आर्किटेक्ट तैनात कर लेने दें। इसके लिए पुन: एक बार उनको आना होगा। अब तक मैंने जो डिजाइन और प्लान तैयार किए हैं, उन्हें दे दूंगा। नगर-निगम का लाइसेंस भी मिला है। अब तक जो काम बना है वह एक चौथाई से भी ज्यादा है। इसके लिए उनसे अभी मैंने एक पैसा भी नहीं लिया। अब उनके आने-जाने में जो नुकसान उठाना पड़ेगा उसके एवज में वे मेरा मेहनताना काट लें। वास्तव में मुझे काम में रुचि नहीं है। जब वे आएँगे तब जैसा वे चाहेंगे वैसा लिखा-पढ़ी कर दूँगा।" "मेरा मतलब

है···" बीच में जलजा ने बोलने की चेष्टा की। बात काटकर उसने बात जारी रखी, "बस, इस मामले में यही फैसला है। वास्तव में काम से मेरा जी उचट गया है। फिर कभी मिलूंगा।"

इतना कह देने के बाद एक प्रकार की छुटकारे की भावना उसके मन में आई। उसे गहरी अर्थहीनता नज़र आई। काम में कोई अर्थ दिखाई नहीं देता; बिना काम के जीने में भी अर्थ नहीं है। इससे अलग कोई और अवस्था दिखाई नहीं देती। शेव, स्नान आदि करने का उत्साह नहीं है। बाहर जाकर नाश्ता-कॉफी के लिए क्या जल्दी है; कुछ और समय बीतने दे—एक-एक घण्टा टालता गया। दोपहर के दो बजे बदन में सुस्ती दिखाई देने लगी। स्कूटर चढ़कर जाकर खाना खा लिया। कल की तरह वृंदावन जाकर हरियाली की छाया में जलधारा की कलकल सुनते हुए सोने का मन हुआ। लेकिन याद आया कि इतवार के दिन दोपहर से ही वहाँ भीड़-भाड़ शुरू होने लगती है। और कहाँ जाए? कुछ निर्णय नहीं कर पाया। घर आकर लेट गया। कुछ नींद आई। पाँच बजे पैदल घूमते हुए कुक्करहल्ली तालाब के बाँध पर जाकर दो घण्टे से भी अधिक समय तक बैठा रहा। फिर पैदल ही शहर में जाकर खाना खा लिया; ऑटो चढ़कर घर आया। दस के लगभग पलकें भारी होने लगीं। सोते समय विचार आता रहा कि बारह-साढ़े बारह बजे आँख तो खुलने वाली ही है। सोचता रहा कि चाहे कोई और कारण नहीं भी हो, मेरा मन ही शायद आराम चाहता होगा। इसीलिए काम की रुचि उड़ गई होगी। इस अस्पष्ट विचार के साथ नींद आ गई।

फोन की घण्टी से जाग गया। तपाक से परदे के बाहर हाथ बढ़ाकर उसे उठा लिया। उठाने से पहले ही अंत:प्रेरणा से ज्ञात हुआ कि यह उसी का है। लेकिन रिसीवर कान पर रखते ही सम्पर्क टूट गया। गहरी निराशा हुई। लगा कि रोंग नम्बर होगा; किसी का नम्बर अपने नम्बर से जुड़ गया होगा। अभी कुछ समय तक और नींद आती। कम्बख्त फोन की व्यवस्था; कुढ़ते हुए लेट गया। सवा बारह बजे थे। क्या वास्तव में मन विश्रान्ति चाहता है या जीवन की निरर्थक भावना के व्याप्त होने के कारण काम की रुचि उड़ गई है? नींद आने से पहले जो प्रश्न उठा था वह पुन: सामने आ गया। प्रश्न नया नहीं था। चार-पाँच महीनों से जो भावना सता रही है वही भावना अलग-अलग रूप में प्रश्न बनकर उठने लगी है। फिर विश्वास के साथ अहसास हुआ कि किसी रोंग नम्बर का गलत सम्पर्क नहीं हुआ था; यह उसी का फोन था। उसी ने किया है। मेरे उठाने तक उसने अपना इरादा बदल लिया है, उलझन में पड़ी है। इस विचार के साथ झट उठा, बत्ती जलाकर, सर-सर उसका नम्बर घुमाया। एंगेज की आवाज़ आई। काट कर पुन: मिलाया। एंगेज है।

रात के इस समय भला किससे फोन पर बात करती होगी? कौन भला उससे

करेगा ? झट वह उठा, पेंट-शर्ट और जूते पहन लिए। हेल्मेट लेकर दरवाज़े पर ताला लगाया। नीचे उतरकर स्कूटर पर सवार होकर दौड़ाने लगा। मन में विचार आया कि अचानक उसका पति या गाँव से कोई और आ गया हो ! मैं इस आधी रात के समय जाऊँगा, गेट की आवाज़ होगी, कुत्ते भौंकेंगे अथवा गेट लाँघकर बैल बजाने जाऊँगा, गलतफहमी होगी। फिर सोचा कि यह सब झूठ है; वह रिवाल्वर लेकर बैठी है अथवा अब तक कार लेकर पहाड़ चढ़ने लगी होगी। यही विचार ठोस बना और उसने रफ्तार बढ़ाई। उसके घर के सामने गति कम की, लेकिन गाड़ी रोकी नहीं। सब कुछ एकदम शान्त दिखाई पड़ा। फिर गति बढ़ाकर पहाड़ की ओर दौड़ाया। इतनी तेज गति में उसने पहले कभी स्कूटर नहीं भगाया था। उसे अहसास हुआ कि यह रफ्तार खतरे से खाली नहीं है। लेकिन देर करने से अनहोनी होने के डर से—जहाँ चढ़ाव शुरू हुआ वहाँ तुरन्त वेगवर्धक को और भी घुमाया। रास्ता मुड़कर पहाड़ की ढलान को काटकर बनाई गई सड़क शुरू हुई। उसकी दिशा बदल गई। कुछ और ऊपर चढ़ने के बाद दिशा पुनः मुड़ गई। बायी ओर अन्धेरे की बड़ी तराई का छोर जब शुरू हुआ तब वहाँ दूर, हाँ, लाल सितारे की तरह उसी की कार के पिछले बल्ब पर अपनी स्कूटर की रोशनी प्रतिफलित हो रही है। वेगवर्धक को और घुमाया। निराश हुआ : स्कूटर के इंजन की बस इतनी ही शक्ति है, इससे अधिक वेग सम्भव नही। रोशनी दिखाई दी होगी, सन्नाटे में आवाज़ भी सुनाई दी होगी, मैं ही हूँ इसका पूरा विश्वास हो गया होगा—इस विश्वास के साथ इंजन की गहन शक्ति का प्रयोग किया। धीरे-धीरे लाल रिफ्लेक्टर बड़े हो गए। पुरानी मलाई रंग की कार साफ़ दिखाई देने लगी। वही नम्बर। अन्दर स्टियरिंग के सामने बैठी है। पीछे की ओर होने के कारण अगर वह सामने वाली बत्ती जलाएगी तो साफ दिखाई देगी। इसीलिए जलाई नहीं। इसी सोच में वह खुद कार की बगल में पहुँच गया। स्कूटर रोककर इंजन बन्द किया। घबराहट से हाँफते हुए पूछा :

"तुरन्त फोन क्यों काट दिया ? फिर रिसीवर क्यों उठाकर रख दिया ?" अमृता उसकी ओर मुड़ी नहीं। उस अंधेरे में भी सोमशेखर जान गया कि सामने वाली दुर्गम सड़क और बायीं ओर वाली घाटी की ओर मुडकर आँखों ही आँखों में उसे देख रही है। "क्यों काट दिया ? जवाब दो !" खुली खिड़की के अन्दर हाथ बढ़ाकर उसकी गर्दन के पीछे पकड़कर अपनी ओर मुँह घुमा लिया।

"तुम पागल बनकर दौड़ते आओ इसलिए। तुम क्यों यहां आए ? जवाब दो।" वह चिढ़कर चिल्लाई। सोमशेखर के जवाब देने से पहले ही, "मैंने किसी को फोन नहीं किया। तुम्हारी किसी और गर्ल फ्रेंड ने किया होगा। उधर जाना छोड़कर यहाँ क्यों आए—मेरे पिछले जन्म की पीड़ा बनकर ?" वह पुनः चिल्लाई।

"बताता हूँ, क्यों आया। यहाँ बैठकर बातें करना ठीक नहीं। वापस चलो; अपने घर या मेरे घर चलो। सब बता दूँगा।" वह शान्त स्वर में बोला।

"मैं नहीं आऊँगी। यहीं बताना होगा।" उसके शिथिल हाथों से छुड़ाकर उसने अपनी गर्दन दूसरी ओर घुमा ली।

"यह बैठकर बातें करने लायक जगह नहीं है।" वह बोला।

इस जगह पर जो काम करना है वह मुझे करना होगा। आप जाइए मैं कर लूँगी।" वह बोली।

"उसे रोकने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ।"

"कंटक, विघ्न, पापी, मेरी किस्मत, मैं कुछ भी करने जाती हूँ तो उस पर पानी फेरने के लिए जन्मे तुम एक शनि हो।" फटाफट गालियाँ देती हुई इस ओर मुड़ पड़ी।

सोमशेखर दो पल के लिए चुप रहा। पहाड़ की तराई में हल्की सी साँय-साँय करती हुई हवा सन्नाटे की गहनता सूचित कर रही थी। "कार वापस घुमाओ।" आदेश के अंदाज में बोला। फिर कहा, "सीधे मेरे घर चलो। मैं आगे निकलूँगा।"

"तुम्हारा घर तुम्हारा है। क्या मेरा घर तुम्हारा नहीं ?" उसकी आवाज़ में अब भी चिढ़ थी।

"घर में बच्चे रहेंगे। बात करने में दिक्कत होगी। इसलिए कहा।" उसने स्पष्टीकरण दिया।

"यही बात थी तो जयलक्ष्मीपुर वाला घर, ललित महल वाला घर कहना चाहिए था। यह दूसरी बार तुमने मेरा घर कहा है। मुझे ठीक तरह याद है।" असल बात की जीत के अन्दाज में बोली।

"सॉरी। जयलक्ष्मीपुर वाले घर को चलो।"

"किसी बच्चे से मुझे डरना नहीं है। इधर ही चलो।" कहते हुए उसने कार स्टार्ट की। कार घुमाने के लिए सड़क की चौड़ाई तक उसे आगे जाना था। सोमशेखर ने रास्ते से स्कूटर हटाकर उसकी प्रतीक्षा में खड़ा रहा। उसके लौटकर आने के बाद कार के पीछे चला। गराज का दरवाज़ा खोलकर कार भीतर छोड़ने के बाद बोली, "स्कूटर भी गराज में ही छोड़ो। हमारी बातें खत्म होने तक पौ फटने लगेगी। फिर कुछ देर सो लेना।" कोई जवाब न देकर उसने चुपचाप अमृता का कहा माना।

दोनों भीतर आए। अमृता ने सोमशेखर के लिए लंगी लाकर दी। अगर बच्चे जाग गए तो उनके उठकर बाहर आने की आहट सुन सके इस इरादे से उनके कमरे का दरवाज़ा बन्द करके आधी सिटकनी चढ़ा दी। गेस्ट-रूम के बेंत के पुराने सोफे पर उसकी बगल में बैठती हुई हाथ पकड़ कर हलकी आवाज़ में बोली, "शुरू में ही एक बात कह देती हूँ। क्षमायाचना के रूप में नहीं। जब एक गलती

को पुन: नहीं दुहराने की गारण्टी रहती है तब क्षमायाचना कोई अर्थ रखती है। मुझ जैसी की यह बात कोई मायने नहीं रखती। तुम्हारे चले जाने के बाद मैं समझ गई कि उस दिन क्या हुआ। मैं तुम्हारी बाँह काट रही थी। दर्द सहा न जाकर छुड़ा लेने के लिए तुमने मेरी पिंडली पर लात मारी। संयोग से ही उस समय तुम्हारे पाँव में जूते थे। उस अवस्था में मैं यह फर्क कैसे जान सकती थी भला? मैंने चप्पल उठाकर तुम्हें मारा, कुल तेरह बार। मेरा विवेक जब पूरी तरह नष्ट हो जाता है उस अवस्था में भी मेरी स्मृति चुस्त रहती है। उस दिन तुमने क्या गलती की थी, जानते हो? बताओ तो सही।"

"अपनी बुद्धि को आक्रोश का शिकार बनाकर तुम्हें पीटा था।"

"नहीं। जब मारना शुरू किया तो बीच में ही अधीर होकर रोक दिया। जब पीटना शुरू किया था तो यों पिटाई करते कि पूरी तरह बस में आ जाऊँ। मैं कोई मरती नहीं थी। तुम्हारे हाथों पिटकर मरने का मेरा भाग्य कहाँ! अपने ही हाथों खुद मर जाना अपनी किस्मत में बदा है। बीच में तुम हारकर क्यों चुप हो गए? बताओ।" उसके जवाब की प्रतीक्षा करते हुए चुप हो गई। कुछ समय बाद, "जो तुम्हारा नहीं था उस रास्ते पर उतर जाने के कारण हारना पड़ा। हैवानियत मेरे मुन्ने के लिए सम्भव ही नहीं। मुझ अकेली का ही वह सुगम मार्ग है।"—कहती हुई सोमशेखर की पाँचों बायीं उँगलियों में अपनी दाहिनी पाँचों उँगलियाँ उलझाकर मजबूती से पकड़ लीं। फिर उसके सीने पर सिर टिकाकर आँखें बन्द करके टेक लगाकर बैठ गई। सोमशेखर ने अपनी दाहिनी बाँह में उसका माथा पकड़ लिया। दोनों खामोश थे।

अपने जीवन के अर्थ को लेकर आज तक जो प्रश्न सताता रहा था वह अब उसकी प्रज्ञा से पूरी तरह गायब हो गया था। फिर पूछा, "मेरे चले जाने के बाद तुमने क्या किया?"

"तुम्हारे जाने के बाद क्या किया?" याद करती हुए पल-भर के लिए अन्त-र्मुखी बन गई, "तुम्हारे आने से पहले क्या हुआ था वही नहीं बताया। उस पृष्ठ-भूमि को जाने बिना मैंने जो किया वह कैसे समझ में आ सकेगा? रुको, सुनाती हूँ। खाना खा लिया? तुम्हारा चेहरा देखने से ही पता चलता है कि इन दिनों तो बड़ा पौष्टिक आहार सेवन करते हो, दिन में तीन-तीन बार।" उसकी गर्दन में निकले हड्डी के ढाँचे पर उँगलियाँ फेरती हुई बोली।

"लगता है तुम छह:-छह बार खाती हो।" कहते हुए सोमशेखर मुस्कराया।

"ठहरो, खाने के लिए कुछ लाती हूँ। बोलने के लिए शक्ति चाहिए।" वह उठकर रसोईघर में गई। कुछ समय में एक ट्रे में दस-बारह नारंगी बिस्किट, दो कटे सेब, दो बड़े गिलासों में बोर्नविटा, पीने का पानी लेकर आई। सोमशेखर लाउंज से टी-पाय उठाकर लाया। पहले की तरह उसकी बगल में बैठ गई। खुद

अपने हाथों से उसे बिस्किट खिलाकर खुद भी दो बिस्किट, सेब के दो टुकडे खा लिए। फिर चाची के आने के बाद क्या-क्या हुआ सारी बातें बता दीं। खाने की सारी चीज़ें खत्म होने तक उसने वे सारी बातें बता दीं कि चाची ने बच्चों का मन जीतने के लिए क्या चाल चली; खुद घर में ही रुक कर बच्चों के मन को बचाने की खातिर कालेज को त्याग-पत्र दिया, फिर चाची को दूसरे ही दिन रवाना कर देने के लिए क्या चाल चली; उसकी पिछली रात चाची ने अपने से क्या-क्या बातें कहीं वगैरह-वगैरह।

"प्रिंसिपल के ऐसा कहने मात्र से तुम्हें त्याग-पत्र नहीं देना चाहिए था। अभी दो दिन के लिए सिक-लीव ही भेज सकती थीं। तुमने जल्दबाजी की। वेतन महत्त्व का नहीं है। मैंने उसी दिन कहा था कि वह तुम्हारे मन की रिक्तता को किसी हद तक दूर रखने का साधन था।" सोमशेखर बोला।

"वह रिक्तता कालेज ही क्यों भरे ? उसे भी तुम ही भरो; इस इरादे से त्याग-पत्र दे दिया।" अमृता सहसा खुशी की लहर में मुस्काती रही, "यह बला कम-से-कम दिन के चार घण्टे तक तो कालेज चली जाए; उस अवधि तक तो अपना पिंड छूटा रहेगा—यही उद्देश्य है न तुम्हारा ?" सोमशेखर के गाल पर एक बनावटी चपत मार कर बोली, "सच बात यह है कि पूरी तरह मन लगाकर पढ़ा पाना मुझसे सम्भव ही नहीं हो पा रहा था। दूसरे दर्जे का काम करके मेहनताना पाना मुझे मंजूर नहीं था। वरना क्या तुम समझते हो कि उस प्रिंसिपल को उल्टी पट्टी पढ़ाना मेरे बस का काम नहीं था ?"

सोमशेखर को यह पूर्णतः उचित कारण लगा। उसे काम से रुचि उठ गई है। अपना भी वही हाल है, फिर भी डॉ० राममूर्ति का काम हाथ से निकल जाने की बात नहीं कही। उसने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"चाची के चले जाने के बाद कैसे सुन्न होकर बैठी थी, पता है ? इसीलिए तुम्हें फोन तक नहीं किया। चाची की बातों में आ गई थी। झूठ मानते हुए भी विश्वास किए जाने की स्थिति थी। तुम आकर चले गए न, मेरे मुन्ने, मैंने तुम पर कितना जुल्म किया है, कितने ही पाप किए हैं, उनमें से एक महान पाप को क्या माफ़ कर सकोगे ? माफ़ करोगे तो ही आगे बात करने मे मुझे आसानी होगी।" सोमशेखर के चेहरे को अपनी अंजुली में भरकर बोली, "उस दिन दोपहर के समय तुम भूखे पेट आए थे। मेरा लड़ पड़ना तो मामूली बात थी। लेकिन खाना खिलाए बिना भगा दिया। तुमने तो माफ कर दिया; लेकिन भगवान माफ़ नहीं करेंगे; मेरी आत्मा मुझे कभी माफ़ नहीं करेगी।"

सोमशेखर ने तुरन्त उसके मुंह पर हाथ रख दिया, और कहा, "मेरे और तुम्हारे बीच क्षमा, क्षमा-याचना जैसी बात कभी नहीं होनी चाहिए। फिर क्या हुआ बताओ।"

"माफ़ी नहीं माँगूँगी। लेकिन लगता है कि तुम्हें अपना मुन्ना कहने का अधिकार मैंने खो दिया है। मारने दे, पीटने दे, डाँट फटकारने दे, लेकिन भूखे पेट की परवाह न करके घर से निकाल देने वाली वह कैसी माँ हो सकती है? कैसे मैं मुन्ना कहकर पुकारूँ?" वह सुबक-सुबककर रोने लगी।

अमृता के रोते चेहरे को सोमशेखर खामोशी के साथ बैठा देखता रहा। इस गहरी संवेदना के योग्य सांत्वना की कोई बात सूझी ही नहीं। कुछ समय बाद उसके मुँह को बाँहों में भरकर आँसू पोंछते हुए पूछा, "फिर क्या हुआ?"

"फिर···फिर···" याद करते हुए धीरे से बोलना शुरू किया। "'मारी की आँख बकरे पर' वाली कहावत हर गाँव में है। अपना सारा गुस्सा तुम पर उतार लिया। इसके बाद बुद्धि कुछ तेज हो गई। पहले से ही जानती थी कि यह चाची बड़ी चालबाज है, फरेबी है, झूठी है। इसलिए उसकी हर बात को परखने की इच्छा हुई। उसने कहा था कि उसकी बेटी लीला ससुराल में सुखी नहीं है, पति पियक्कड़ है, दफ्तर की टाइपिस्ट को ही रख लिया है; इसलिए तुम्हें कहीं बाहर न देकर अपने भाई से ही ब्याह करावाकर रक्षा की। लीला की आप्त सहेली चन्द्रकला के घर गई। उसके चेहरे पर अपराधी मनोभाव था, सीधे मुँह बात नहीं कर रही थी। मैंने ही स्नेह जताकर बात की। उस पर कोई आरोप न लगाते हुए लीला की बात छेड़ी। लीला कैसी है? उसके पति का कारोबार कैसा चल रहा है?—इसी तरह आम बातें पूछीं। तब वह अपनी सहेली के भाग्य की सराहना करने लगी। सुना है उसके पति ने हीरे का नया नेकलेस बनवाया है। हर गर्मी में लीला को हिल स्टेशन ले जाता है। कभी-कभी ससुराल यानी चाची के ऐस्टेट दोनों आते हैं; अब एक माह पहले कश्मीर गये थे। कश्मीर में ली गई तस्वीरें उसने इसे भेजी थी। उसने मुझे बताया। दोनों के चेहरे से अन्यान्य भाव टपक रहा था। चाची की बातों का आधार-स्तम्भ ही सरासर झूठ साबित हुआ। मुझे विश्वास हो चुका था कि चाची पहले इसके घर आकर एक दिन रही थी; दूसरे दिन दोपहर में ठीक समय देखकर हमारे घर आई थी। इसकी जाँच-पड़ताल करके और अधिक यकीन कर लेने की आवश्यकता नहीं थी। मेरा और तुम्हारा साथ-साथ घूमना कम ही है, नहीं के बराबर ही। तुम्हारा यहाँ आना ही अधिक रहता है, है न? इस बात की किसने उसे खबर कर दी होगी? मुझे आशंका हुई कि चन्द्रकला ने ही की होगी। इसका पता कैसे लगाए? मन-ही-मन सोचते हुए कुछ देर और चन्द्रकला के साथ प्यार और विश्वास की बातें करती रही। लौटते समय रास्ते में एक अनुमान जागा; मेरे बच्चों का इसके साथ सम्पर्क रहा होगा; खेलते समय उसकी बेटी के साथ ये उसके घर जाते होंगे, वहाँ इनके अनजाने में कभी-कभी एकाध प्रश्न पूछकर विषय का संग्रह किया होगा। हम जब बेंगलूर गए थे तब बच्चों को सुशीलम्मा के घर छोड़ा था न! तब इसने बच्चों से पूछा होगा कि

तुम्हारी माँ कहाँ है; इन्होंने बताया होगा बेंगलूर गई है, परीक्षा के काम पर; तब उसने कालेज को फोन किया होगा, परीक्षा का काम होगा तो ओफ़िशल ड्यूटी पर जाएगी, सी० एल० डाला है तो परीक्षा की बात झूठी है—उसने तर्क किया। फिर तुम्हारे दफ्तर को फोन किया, पूछ-ताछ की कि 'क्या मि० सोमशेखर हैं ?' पता चला कि तुम भी तीन दिन के लिए शहर से बाहर गये हो। मैं जानती थी चन्द्रकला यह सब कर सकती है। घर आकर अकेले छोटे को पिछवाड़े में ले जाकर पूछ-ताछ करने पर मेरा अनुमान सही निकला। छोटे ने बताया कि वह हमेशा पूछा करती थी कि तुम्हारी माँ कैसी है ? क्या अंकल आते रहते हैं ? तुम्हारी माँ का कालेज कब खत्म होता है, तुम्हें पता है ? परीक्षा के काम के बहाने बेंगलूर जाने की बात भी पूछी थी। इससे मुझे यकीन हो गया था। बेंगलूर जाने से पहले उसने मुझे देखा नहीं था। हर रोज देखने वाली सुशीलम्मा ही थी। मुझे अहसास होने लगा कि सूक्ष्म बुद्धि वाली औरत के लिए मुझे देखते ही अनुमान करना सम्भव था कि मुझे गर्भ ठहरा है। कहीं सुशीलम्मा ने ऐसा अनुमान करके चन्द्रकला से तो नहीं कहा होगा ? बेंगलूर से लौटने के बाद मेरे चेहरे के किसी परिवर्तन को पहचानकर क्या उसका भी जिक्र किया होगा ? इस बात का निर्णय करने के लिए सबूत नहीं है। जहाँ तक मैं जानती हूँ सुशीलम्मा योग्य महिला है। लेकिन भीतर से कैसी है क्या पता ? दरअसल चाची पूरी तैयारी के साथ ही आई थी; फिर बड़ी सतर्कता से ही सोच-समझकर मुझसे बात की थी। सीधा मेरे ऊपर कोई आरोप न लगाते हुए फिर भी वह सब कुछ जानती है इस बात का अहसास दिलाते हुए, यह विश्वास भी दिलाया था कि इनमें से कोई भी बात तुम्हारे पति के कानों तक नहीं पहुँचाएगी। पलभर के लिए मैंने चाची को शाबाशी दी। इसके साथ ही दो ही दिनों में बच्चों को मुझसे दूर करके उनके मन को बाप की ओर और अपनी ओर खींच लेने का सफल प्रयत्न किया है। एक सप्ताह तक इसी चिन्ता में डूबी रही। इस चाची के साथ उसी के स्तर पर झूठ और कुतन्त्र का व्यूह रचाने बैठूं ? या एक ही दम में उसे दूर कर दूं ? दूर करने का मार्ग कौन-सा है ? सोच-सोचकर मैं इस फैसले पर आ गई कि उसने मेरे साथ जो धोखा किया है उस धोखे की जड़ से ही युद्ध आरम्भ करना होगा; केवल आरम्भ ही नहीं उसे काट देना होगा। आगे मैंने क्या किया होगा, बताओ।" ट्रे में रखी नागपुरी नारंगी लेकर छीलते हुए बोली, "घर में इस तरह भरपूर फल रखने की सुविधा मुझे कब प्राप्त थी ? अब प्राप्त हुई है। कैसे ? कल्पना कर सकते हो ?" कहते हुए सोमशेखर का चेहरा देखा। वह समझा नहीं। "कुछ और टाइम देती हूँ; सोचो।"

उसने सोचकर बताया, "अपनी सहेली के पिता से मिलकर चाची पर नालिश कर दी ?"

"सोमु, तुम बड़े चालाक हो। उस दिन तुमने यही सलाह दी थी तो मैं चिढ़

गई थी। उसके बाद एक दिन लगा कि तुम्हारा कहना ठीक था। वीरप्पागौड़ ने बहुत पहले ही कहा था न कि नालिश करने की गुंजाइश है। दोनों बच्चों को लेकर मैं खुद ड्राइव करती हुई सकलेशपुर होते हुए उनके जेनुकल ऐस्टेट गई। इन दिनों श्वेता अमरीका में है। उसके पति वहाँ डाक्टर हैं। वह उनकी इकलौती बेटी है। मुझे देखकर उनको अपनी बेटी को पाने की-सी खुशी हुई। आवभगत, कुशल समाचार और श्वेता के बारे में पूछ-ताछ के बाद मैंने अपने साथ हुए अन्याय के लिए नालिश करने का विचार सुनाया। मैंने कहा कि अदालत-वदालत का चक्कर मैं नहीं जानती, आपको ही मार्गदर्शन करना होगा। उन्होंने कहा, 'हासन में मल्ली वेंकटेशय्या नामक एक नामी वकील हैं, इधर के ही, सकलेशपुर की ओर के। वकील क्या हैं शेर-बब्बर हैं, शेर बब्बर। फीस ज्यादा लेंगे। प्रतिपक्षवालों की जूठन की लालच रखनेवाला आदमी नहीं। एक करोड की रकम सामने रखकर लालच दिखाने की चेष्टा भी करोगे तो वे ऐसे नीयत के आदमी हैं कि बाएँ पाँव के बूट से ठोकर मारकर आगे निकल जाएँगे। उनके पास ले चलना हूँ चलो।' वीरप्पागौड़ के साथ मैं अकेली हासन गई। वकील साहब मिल गए। उन्होंने कहा, 'और कुछ देर करते तो टाइम-बार हो जाता। अभी मुकद्दमा दायर किया जा सकता है। पहले मुझे आवश्यक दस्तावेज वगैरह लाकर देने पड़ेंगे।' उन्होंने अपने एक असिस्टेंट को भी भेजा। सकलेशपुर के सब-रजिस्ट्रार के दफ्तर से चाची द्वारा अपने दोनों बेटों के नाम खरीदी गई ऐस्टेट के क्रय-पत्र की नकल लेने में तीन दिन लग गए। हासन के तल्लभ वेंकटरमण शेट्टी की दूकान पर गए। पहले तो उन्होंने उड़ती बातें कहीं लेकिन जब वीरप्पागौड़ ने धमकी दी, 'देखिए, अदालत का मामला है; मल्ली वेंकटेशय्या जी जब जिरह करने लगेंगे तब सारी पोल खुल जाएगी।' तब उन्होंने मुँह खोला। पुराने बही-खाते छान बीनकर बताया। कि सुगूर ऐस्टेट की जयलक्ष्मम्मा ने कुल आठ सेर सोना खरीदा है, सो सच है। उन्होंने हर वर्ष की सोने की कीमत भी बता दी। लीला के ब्याह का ब्यौरा तो मैं जानती ही थी। वकील साहब ने कहा कि वे सारी बातें जिरह के समय ही उगलवाई जाएँगी। फिर कहा कि आप अपने घर जाइए; मैं मुद्दालहों के नाम नोटिस जारी करवाता हूँ। मैं कुल पाँच दिन वीरप्पागौड़ के यहाँ रही। बच्चे मंगलम्मा जी के साथ रहते थे। मैं और गौडाजी सकलेशपुर, हासन घूमते रहते थे। वहाँ से बच्चों को लेकर अपनी ऐस्टेट चली गई। यहाँ तक आई हूँ, एक बार हिसाब-किताब देखने का मन हुआ; मैनेजर और अन्य लोगों पर कुछ डर रहेगा इस इरादे से गई। वहाँ दो दिन रुककर मैसूर चली आई। मन में आया कि मैसूर में क्या रखा है; क्यों न अपने ऐस्टेट में जाकर रहूँ? समझ गए?" अमृता ने उसका चेहरा देखा।

सोमशेखर ने 'हाँ' कहा।

"देखो, मुझे जब रिक्तता की भावना आती है तब कुछ भी बोल सकती हूँ

गाली भी दे सकती हूँ। कसमें-वादे भी कर सकती हूँ। तुम्हें मार सकती हूँ, पीट सकती हूँ। उसकी कोई कीमत नहीं। लेकिन तुम सोचे बिना बोलने वाले आदमी नहीं हो; फिर बोलने के बाद भूलने वाले व्यक्ति भी नहीं हो। दुबारा इस देहलीज पर कदम न रखने की बात करके जब तुम चले गए तब तुमसे बातें करने का साहस मुझमें कहाँ से आता भला? मैंने नौकरी तो छोड़ ही दी थी, और तुमने देहलीज पर कदम न रखने की बात कही थी, अब मैसूर में किसलिए रहूँ? अगर ऐस्टेट में रहूँ तो निगरानी में समय भी कट जाएगा और जहाँ कहीं चुआव होगा उसे रोका भी जा सकेगा। लेकिन, मैसूर छोड़ना सम्भव नहीं हो सका। क्यों, जानते हो? बताओ तो सही।"

सोमशेखर ने सोचा। समझ नही पाया। बोला, "नहीं सोच पाता।"

"अरे, तुम्हें घमंड है। प्रशंसा करवा लेने की चाह है। तुम एक-न-एक दिन लौटकर जरूर आओगे; इसी भरोसे से मैं यहाँ रही। अगर इस शहर को ही छोड़कर चली जाऊँ तो तुमसे भेंट होने की सम्भावना ही नहीं रहेगी। जानते हो, तुम्हें फोन करने के लिए मैं कितने दिनों से तड़पती रही थी! लेकिन, तुम कैसे पेश आओगे इस डर के कारण हाथ में उठाया हुआ चोंगा नीचे रख देती थी। नौकर जो रात में सोने के लिए आता था उसने आज आते ही बताया कि किसी दिन आधी रात के समय किसी साहब ने फोन किया था; कहा कि माँ जी के आने के बाद पुनः करेंगे; नाम नहीं बताया। मै समझ गई कि तुम्हारे सिवा कोई और नही हो सकता। लेकिन, इतने मे मैं शून्य भाव का शिकार हो चुकी थी। आज जब मैं लौटी तब दिन के ग्यारह बजे थे। उसने मुझे साढ़े ग्यारह बजे बताया।

"इस बार कार लेकर नहीं गई थी। अकेली ड्राइव करने से ऊब गई थी। बस में लौटते समय से ही मन में रिक्तता छा गयी। मर जाने की आकाक्षा। सामने से किसी बस या ट्रक को आते देखकर मन करता कि उसके पहिए के नीचे गिरकर कुचल जाऊँ। सारी दोपहर यही भाव रहा। मौत का खिचाव। साधारणतः मुझमे यह भाव शाम के समय आने लगता है। जैसे-जैसे रात बढ़ती है, सन्नाटा छाने लगता है, निष्क्रियता व्याप जाती है, तब यह भाव तीव्र होने लगता है। आज मुझे रिवाल्वर की घोड़ी दबाकर मर ही जाना था। लेकिन एक बार तुम्हे फोन करके तुम्हारी आवाज सुनने की कामना हुई। आधी रात के समय तुम्हारे फोन किए जान की बात का अगर मुझे पता नहीं चलता तो तुम्हें फोन करने का साहस मुझे कभी न होता, समझ लो। इसीलिए मैं तुमसे प्रार्थना कर रही हूँ: मै तुम्हें जाने के लिए कह सकती हूँ, मुंह काला करने के लिए कह सकती हूँ, मार सकती हूँ, और यह भी कह सकती हूँ कि मेरा-तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं; लेकिन तुम कभी मुझे जाने के लिए नही कहोगे। ऐसी बातें हरगिज नहीं करोगे कि मैं जाता हूँ, मेरा तुम्हारा कोई नाता नहीं, जो था वह टूट गया, उसका अन्त हो गया।

तुम्हारी बातों से मुझे बड़ा डर लगता है।"

सोमशेखर का जी भर आया; मन भारी हुआ। अमृता का हाथ कसकर पकड़ लिया और बोला, "कभी नहीं कहूँगा।"

"बड़े होशियार बनते हो।" तुरन्त उसने ताना कसा, "नहीं कहूँगा का मतलब मुँह खोलकर नहीं कहूँगा; मन में छिपाकर रखूँगा, यही अर्थ है न?"

"यह बाल की खाल उतारना छोड़ दो। अब की बार अकेली क्यों गई थीं?" उसने बात को मूल विषय की ओर मोड़ा।

"नाहक बच्चों को यात्रा की दिक्कत क्यों और फिर उन्हें स्कूल भी जाना था, इसलिए सुशीलम्मा के घर छोड़ दिया था। एक और बात : वीरप्पागौड़ की पत्नी मगलम्मा जो है वह बहुत ही दयालु है। बड़ी सहृदय, तनिक भी खोट नहीं। बच्चों को उनके साथ छोड़कर मैं गौड़ा जी के साथ बाहर जब घूमती रहती थी, तब बच्चे उनसे बहुत हिल गए थे। मंगला नानी का नाम सुनते ही खिल उठते हैं। सुना कि एक दिन विकास ने उनसे पूछा कि माँ हर दिन नाना के साथ सकलेशपुर क्यो जाती है? विजय भी उस समय पास ही था। मंगलम्मा ने खुलासा करके बताया कि तुम्हारी नानी ने तुम दोनों के साथ बड़ा धोखा करके ऐस्टेट का सारा पैसा हड़प लिया है। उसे वसूल करने की फिराक में तुम्हारी माँ अदालत का चक्कर काट रही है। विजय को उस नानी से बड़ा लगाव था। पहले उसने विश्वास नही किया। फिर उसने मुझसे पूछा। मैं क्यों उनके पक्ष में झूठ बोलने जाऊँ? पहले से ही जब उन्होंने मेरे बच्चों के मन को जब्त करके उनके द्वारा मुझे हराने की चाल चली है तब मैं क्यों चुप रहूँ? इस विचार से मैंने 'हाँ' कह दिया। बच्चों से यह भी कहा कि उनकी नानी चन्द्रकला आंटी के घ. पिछले ही दिन आई थी; लेकिन हमे बताया तक नहीं। मन कचोटने लगा था कि छोटे बच्चों के सामने ऐसी बातें कहने का मतलब खुद नीचे गिरने के समान है। लेकिन बता देना ही ठीक समझा। अब की बार निकलने से पहले उनको ताकाद कर दी, 'देखो बच्चो, तुम चन्द्रकला आंटी के घर मत जाना। जाओगे तो वे पूछेंगी कि तुम्हारी माँ कहाँ गई है, क्या कर रही है, वगैरह। अगर उन्हें सच्चाई का पता चल गया तो हमारे साथ बड़ा धोखा होगा।' सुशीलम्मा को भी सूचना दी कि अपने बच्चों का उस औरत के सम्पर्क मे आना मुझे पसन्द नहीं; इस बात का ध्यान रखिए।"

"बहुत अच्छा किया। नालिश का क्या हुआ? क्या नोटिस जारी हुआ? उनसे क्या जवाब आया?" सोमशेखर ने पूछा।

"बताती हूँ। हमारे वकील साहब धुन के बड़े पक्के हैं। जब तक सारे-कागजात व दस्तावेज जुड़कर तैयार नहीं होंगे तब तक मुकद्दमा आगे नहीं बढ़ाएँगे और किसी से जिक्र भी नहीं करेंगे—यह उनका उसूल है। अब चार दिन पहले उनके असिस्टेंट का फोन आया था। बताया, 'आइए। शायद तुमकूर जाना पड़े।

दो-चार दिन की फुर्सत लेकर आइए।' बच्चों को छोड़कर अकेली बस में हासन गई। चाची ने अपने भाई रंगनाथ को तुमकूर के इंजीनियरिंग कालेज में डोनेशन देकर पढ़वाया था न; उसका पता लगाना था। क्लर्कों के स्तर पर ही हाथ गरम करके काम साधने में शिवरामय्या बड़ा चालाक है। जरूरत पड़ने पर ऊपर वालों से मिलने के लिए मुझे साथ भेजा था। बीस हजार डोनेशन की राशि सकलेशपुर के स्टेट बैंक में डी० डी० द्वारा जमा कराई थी। फिर प्रवेश-शुल्क कुल एक हजार तीन-सौ से कुछ ऊपर। उनकी रसीद के नम्बरों का पता लगाया। रंगनाथ हास्टेल में रहता था। उन दिनों हास्टेल के पास कौन-सी बैंक थी ? उसमें रंगनाथ ने क्या कोई खाता खोला था ? इसका पता लगाया। उसने खाता खोला था। सकलेशपुर की शाखा से समय-समय पर उसके खाते में रकम ट्रांस्फर होती रही थी। उनका सारा ब्यौरा नोट कर लिया। वहाँ से निकलकर हासन होते हुए सकलेशपुर आए। यहाँ के स्टेट बैंक के एक क्लर्क से पता लगाया गया तो मालूम हुआ वह सारी रकम चाची के खाते से ही भेजी गई थी। मेरे ऐस्टेट का जमा-खर्च भी इसी खाते में है। जब से खाता खोला गया था उस दिन से लेकर जिस दिन तक ऐस्टेट मुझे सौंपा गया था उस दिन तक के हिसाब पर शिवरामय्या ने एक नजर दौड़ाई। जिस दिन उधर उन्होंने ऐस्टेट खरीदा था उससे मेल खाता हुआ खर्च इस खाते में दर्ज था। वहाँ से निकलकर हम दोनों हासन आए। मैं एक होटल में ठहरी। रात में वकील साहब से मिल कर उन्हें सारा ब्यौरा दे दिया।

"तब तक वकील साहब ने बैंक के कर्ज से सम्बन्धित सारे रेकार्डों की जाँच-पड़ताल कर ली थी। वे बोले : 'अब हमें केवल तुम्हारी चाची और उनके बच्चो पर ही नालिश नहीं करनी है बल्कि बैंक पर भी नालिश करनी होगी। जब ऐस्टेट की वारिस आप हैं तब आपके आवेदन के बिना चाची को उन्होंने कर्जा कैसे दिया ? आपके मेजारटी को प्राप्त होने के बाद भी उन्होंने एक बार कर्जा दिया है। घूस लेकर जब तक बैंक के मैनेजर ने इसमें हाथ नहीं मिलाया होगा तब तक यह सम्भव नहीं था। आप इसी क्षण से बैंक को ब्याज की अदायगी बन्द कीजिए। अब तक जो भरा है उसे ब्याज के साथ उगलवाऊँगा। अब आपके लिए कोई काम नहीं है। जब हम बुलाएँगे तब आती रहना। समझ लीजिए कि वे दोनों ऐस्टेट आपको मिल गए। अदालत का काम कुछ धीरे चलता है। लेकिन अदालती फैसला होने तक उन दोनों ऐस्टेट की देखरेख अदालत से मान्य किसी मैनेजर के जिम्मे सौंपनी होगी। वे लोग उस जगह नहीं रहेंगे; फैसले की सुनवाई होने तक उनके गुजारे के लिए अदालत कोई रकम तय कर देगी। उनके बैंक का हिसाब-किताब भी उनके अधीन नही होना चाहिए—इस आशय का एक और मुकद्दमा दायर कर दूंगा। जिस दिन वे ऐस्टेट खरीदे गए हैं उस दिन से आज तक उनसे प्राप्त सारी आमदनी हमें मिलनी चाहिए, उनका क्या हिसाब बनता है ?— यह

अदालत के सामने हमारा केस होगा। आपके मुकद्दमे का मुद्दा क्या है इसकी जानकारी आपको रहे इसलिए बता रहा हूँ। यहाँ एक हस्ताक्षर करके जाइए।' उन्होंने एक और हस्ताक्षर करवा लिया।

"जब मैं निकली तब उन्होंने बताया : 'इस मुकद्दमे के लिए आप पैसा खर्च कर रही हैं, मैं बुद्धि खर्च कर रहा हूँ। जीत जाने पर आपको तीस-चालीस लाख की रकम मिलेगी। मुझे खुशी होगी। आप जीतें या हारें, लेकिन, मेरी फीस तो आप देंगी ही। फिर भी एक बात कहता हूँ, सुनिए। ऐसे पारिवारिक फसाद का जब मुकद्दमा दायर हो जाता है तब प्रतिवादी आकर धमकी देते हैं; पाँव पड़ते हैं; बीच के लोगों द्वारा दबाव लाते है; भगवान-वगवान का हवाला देते हैं—ऐसी बातों से आपको डिगना नहीं चाहिए। अगर आप डिग गई और बीच में ही आप सुलह करके मुकद्दमा वापस लेना चाहेंगी तो आपके लिए इतनी सारी तैयारी करके परिश्रम उठाने वाले वकील का क्या सम्मान रहेगा? मुकद्दमा पूरी तरह जीतना होगा। चाहे जिला-अदालत हो, हाइकोर्ट हो या सुप्रीम कोर्ट, जीतने तक छोड़ना नही चाहिए। जीतने के बाद अगर चाहो, कि रक्त का सम्बन्ध है, तो सारी मिल्कियत उनके नाम दान कर दीजिए। जिस प्रकार बाहुबली ने भरत को दान में दिया था उस तरह। उस दिन तक अगर आप मन को अटल नहीं रख पाएँगी तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा। मल्ली वेंकटेशय्या कोई शिकारी कुत्ता नहीं है जो दौड़ने के लिए कहा जाए तो दौड़ पड़े और रुकने के लिए सीटी बजाई जाए तो रुक जाए। अब भी सोचकर बताइए।' बैंक का कारोबार देखने के बाद चाची के प्रति मेरा खून खौलने लगा था। मैं बोली, 'सर, मेरा निश्चय अटल है। चाहे सुप्रीम कोर्ट भी क्यों न जाना पड़े, जीतने तक छोड़ूँगी नहीं।'

"मलली वेंकटेशय्या को तुम एक बार देखना, सोमु। कैसा श... जैसा आदमी है। दुश्मन को मार गिराए बिना छोड़ेगा नहीं। मुझे इस बात का इशारा मिला कि बीचबचाव करने वालों पर ही पंजा दे मारेगा। वहाँ से बाहर निकली। मेरे साथ शिवरामय्या ने जो लगातार दौड़-धूप की थी उसे नकद एक हजार का इनाम दिया; आगे भी उसकी खैर-खबर लेते रहने का आश्वासन देकर होटल आकर लेट गई। वकील साहब ने बता ही दिया था कि अब बैंक को ब्याज भरना बन्द कर दूँ। साल में साढ़े तीन लाख मेरे हाथ में बचेगा। धीरज हुआ कि अब पैसे की परेशानी नहीं रही। ऐस्टेट के खर्च का पैसा इसके लिए निकाल लिया था। लगभग तीन बजे जाग गई। कुल साढ़े चार घण्टे की नींद ली थी। जागते समय ही मन में घनघोर शून्य-भाव छाया हुआ था। मेरे लिए कोई नई बात तो नहीं थी न! चुपचाप लेटी रही। दिन निकलने के बाद उठकर नहा-धो लिया। दो इडली खाकर कॉफ़ी पी ली। बस स्टैंड आकर आठ बजे वाली बस में बैठ गई। जब बस तेज रफ्तार से भागने लगी तब शून्य-भाव ने अपना असर दिखाना शुरू किया। सोमु,

अगर सच बता दूँ तो गलत तो नहीं समझोगे न ? मन में जो कुछ बातें उठती हैं उन्हें तुम्हारे सामने कह लेने से जी हल्का हो जाता है।" उसने सोमशेखर का मुँह देखा।

"कोई बात छिपाओ नहीं, कहो।" उसने दिलासा दिया।

"तुम्हें बुरा लगेगा, इसलिए।"

"नहीं लगेगा।"

"बात क्या है, जाने बिना अगर कहोगे नहीं लगेगा तो वह झूठ हो जाएगा। फिर भी सच कहो कि सह लोगे।" डाँटने के अन्दाज में कुछ तेज आवाज में वह बोली।

"ठीक है। चाहे कितनी ही पीड़ा हो, सह लूँगा, कहो। कोई बात अनकही मत रखो।" उसने नरमी से आग्रह किया।

"चोरी से पाए गए मेरे ही पैसे से रंगनाथ पढ़कर आगे आया था। कह नहीं सकती कि ब्याह के समय मेरी जायदाद पर केवल उसकी दीदी की ही नजर थी; उसकी नहीं थी। भाई-बहन दोनों में एक ही खून है। आगे चलकर दीदी के कुतंत्र की सूचना पर उसने मुझे धोखे से दूसरी बार गर्भ ठहराया। फिर भी वह मेरा पति है। मैंने उससे मंगलसूत्र बँधवाया है। उससे पैदा बच्चों की माँ बनी हूँ। उन बच्चों से प्यार करती हूँ। ऐसी हालत में उसकी पढ़ाई के लिए दी गई रकम का हिसाब-किताब अदालत में पेश करना पड़ेगा। एक-न-एक सन्दर्भ में उसे भी अदालत के कटघरे में खड़ा करके मल्ली वेंकटेशय्या के जिरह के पंजे का शिकार बनाऊँगी। मैं भी कैसी औरत हूँ? केवल करुण भावना ही नहीं; अनजाने में मैं उससे प्यार करती थी; लगा कि अब भी प्यार करती हूँ। जब होलेनरसीपुर में बस रुकी तब मन में दबाव शुरू हुआ कि बस से उतरकर हासन चली जाऊँ और वकील साहब से कह दूँ। अब बताओ; क्या तुम्हें इस बात से खेद नहीं हुआ?" उसने सोमशेखर का मुँह देखा।

अगर 'ना' कह दूँ तो बात तो झूठ होगी ही और मेरे चेहरे को ही अन्वेषक दृष्टि से देखने वाली उसकी आँखों से बचना सम्भव नहीं; इस विचार से वह बोला, "फिर भी मैं तुम्हारी भावनाओं की सूक्ष्मता की प्रशंसा करता हूँ।"

"सोमु," वह झिड़काकर बोली, "सवाल की दिशा बदलने की चालाकी मत करो। तुम्हारी टिप्पणी का अर्थ होगा कि तुम मुझसे प्यार नहीं करते हो।" सोमशेख हक्का-बक्का हो गया। फिर अमृता ने ही पूछा, "सच बताओ, इससे तुम्हारे मन में जलन हुई है या नहीं।"

"हुई है।" सोमशेखर का चेहरा संकोच के मारे सिमट गया था।

"संकोच क्यों करते हो? तुम्हारा जवाब इस कदर सीधा होना चाहिए कि 'अरी, तू मेरी है, किसी और से प्यार करेगी तो तुझे चीर डालूँगा।' यों कहने के

बदले सीधा-साफ़ जैंटलमैन बनकर मान लिया कि जलन हुई है। खैर, इस समय के लिए इतना काफ़ी है।" कहते हुए वह पास आई। दोनों बाँहें गले में डालकर गहरी संवेदना में होंठों को चूम लिया। सोमशेखर ने भी उतनी ही गहरी संवेदना से स्पंदित होकर तरंगों का अहसास कराया। तब अमृता को अपनी होने का जब पूरा विश्वास हुआ तब उसे लगा कि ईर्ष्या, जलन जैसी छोटी भावनाओं के लिए वहाँ गुंजाइश नहीं है।

अमृता कहती गई : "लेकिन उतरी नहीं। उतरना संभव नहीं हो सका। बस आगे निकली; दौड़ने लगी। लगा कि उतरने या मुड़ने की आजादी मैं नहीं रखती। शून्य गहराता गया। तेज रफ्तार से दौड़ती हुई यह बस किसी पेड़ से टकराकर या किसी पुल के नीचे गिरकर कोई दुर्घटना हो जाए और मैं उसमें मर जाऊँ तो कितना अच्छा हो ! सड़क की बगलवाला कोई भी बड़ा पेड़ दिखाई देता तो मैं उत्सुकता से देखने लगती कि यह जाकर उससे टकराएगी। के० आर० नगर से पहले जब कावेरी नदी का पुल आया तब तो यों उत्सुकता बढ़ी थी कि मानो पुल अब टूट ही जाएगा, पूरी बस की जल-समाधि होगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। पापी चिरायु होता है न ? अब दुबारा याद करती हूँ तो शर्म होने लगती है। इसलिए कि मेरी अकेली के मरने की आकांक्षापूर्ति के आवेश में शेष पचास लोगों के जीवन के बारे में सोचा ही नहीं था। मैसूर पहुँचने के बाद भी शून्य-भाव गहराता ही गया। रात में बच्चों को खाना खिलाकर सुलाने के बाद तो मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि यह मेरा आखिरी दिन है। उस दिन आधी रात को अगर तुमने फोन नहीं किया होता, नौकर ने अगर मुझे उसकी सूचना तुरन्त न दी होती, मेरे फोन को समझकर अगर तुम तुरन्त दौड़कर न आए होते तो अब तक, 'उसने घड़ी देख ली,' सारा खेल खत्म हुए पाँच घण्टे बीत गये होते। इन पाँच घंटों में जीव, प्राण, प्रेत या तुम उसे जिस किसी नाम से पुकारो, उसने कितनी दूर का रास्ता तय कर लिया होता ? रोशनी की गति एक सेकिंड में एक लाख छियासी हज़ार मील का हिसाब लगाया है न; प्रेत की गति क्या है ?" कहते हुए उसने सोमशेखर का मुँह देखा। फिर बोली, "मैं जानती हूँ तुम्हारे चेहरे से ही पता चल रहा है कि तुम्हें इस प्रश्न में कोई अर्थ ही नहीं दिखाई दे रहा है, लेकिन मेरे लिए यह मायने रखता है। खैर, मैंने तुम्हें इतना सताया, इतना अपमान किया, फिर भी इस घटिया औरत से तुम्हें प्यार है ? क्यों दौड़कर इसे बचाया ? बचाने से मुझे खुशी नहीं हुई ऐसा मत समझो। लेकिन मेरी मौत को रोका इस बात का मुझे प्रचंड रोष भी होता है। तुम्हें मुझसे इतना प्यार क्यों है, बताओ ? बताना ही होगा ?" जिद करके अड़ने वाली पाँच वर्ष की लड़की की तरह सोमशेखर की दोनों बाँहें कसकर पकड़े झकझोरते हुए बोली।

सोमशेखर ने अपने आपको टटोल लिया। उसे लगा कि अमृता को भाने

लायक कोई जवाब दे पाना संभव नहीं है। "मेरी हर बात का तुम तिरस्कार करती हो। खंडन करके फेंक देती हो। इसलिए कुछ नहीं बताता।" वह बोला।

"बताओ भई; तुम्हें मेरी कसम, बताना ही होगा। भले ही मैं विश्वास न कर सकूँ, तिरस्कार कर दूँ। लेकिन तुम्हारे मुँह से जब सुनती हूँ कि तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता, तुम ही मेरी जान हो, तब मुझे कितनी खुशी होती है, जानते हो? मन करता है कि जी लूँ। अगर मर जाऊँ तो, झूठी बात ही सही, लेकिन ऐसी मीठी बात कहाँ सुनने को मिलेगी?" मन में उठे खेद, निराशा के भावों को नियंत्रित करने की चेष्टा में व्यस्त सोमशेखर को ध्यान से देखते हुए वह बोली। इतने में बाहर कौए बोलने लगे। खिड़की के बाहर अच्छी रोशनी फैली थी। वह ऊपर उठी। "सो जाओ, आओ सो जाओ। तुम्हारे सोने के बाद बिस्तर के सिरे में मच्छरदानी खोंसकर खिड़की का परदा लगाकर मैं जाऊँगी। गुड् नाइट।" सोमशेखर का हाथ पकड़कर उठाया।

उस रात अंत:प्रेरणा हुई थी कि फोन की आवाज़ अमृता की ही है और वह स्कूटर चढ़कर पहाड़ के छोर तक गया था और उसे वापस लिवा लाया था। इससे उसे लगा था कि जीवन का कोई उद्देश्य है। रह-रहकर अमृता के मन से मरने का जो दबाव फूट पड़ता है उसे अगर वह मिटा सकेगा तो यह उसके जीवन की सार्थकता होगी। वरना उसे भी पराभव की भावना घेर लेगी। अब उसे स्पष्ट पता चला कि उसके जीवन का उत्साह और जीवन-निराशा, वह सब पूर्ण रूप से अमृता पर निर्भर है। वह समझ गया कि अमृता को समझ लेने के सिवा अपने जीवन का कोई और अर्थ है ही नहीं। लेकिन उसके मन में जीवन के प्रति प्यार कैसे उत्पन्न करे? कभी-कभी बहुत प्रसन्न-चित्त रहती है। प्यार के रस में सराबोर कर देती है। किन्तु, सहसा कठोर बन जाती है; निष्ठुर बन जाती है। मेरे दिल को कचोटने वाले नये-नये विधान, नई बातें बना कर उनका प्रयोग करने लगती है।

एक दिन उसी ने बताया: 'सोमू, जब शून्य-भाव का शिकार होती हूँ तब जितना तुमसे द्वेष करती हूँ उतना किसी और से नहीं; जानते हो?" सोमशेखर को आश्चर्य हुआ। वह जानता था कि अपने ऊपर जितना गुस्सा उतारती है उतना किसी और पर नहीं उतारती। लेकिन गुस्सा अलग, द्वेष अलग। उसी ने कारण भी बताया: "अगर तुम न होते तो ट्रिगर दबाकर मर जाना आसान होता। अब तक आत्महत्या किए डेढ़-दो वर्ष ही बीत गये होते। मरने की उत्कट इच्छा की अवस्था को जब पहुँचती हूँ तभी तुम्हारी याद हो आती है। अगर मैं मर जाऊँ तो तुम्हारा अपना कौन होगा! अथवा तुम्हें बताए बिना मरना नहीं चाहिए। विदा लेने की आकांक्षा उत्पन्न होती है। ऐसे ही क्षण में इस आकांक्षा, इस आतंक

के फलस्वरूप ही अगला कदम असंभव लगने लगता है। तुम पर क्रोध से प्रारम्भ होकर वह द्वेष में बदल जाता है। इतना द्वेष हो जाता है कि तुम पर भी एक गोली दाग दूं, तब मुझे आजादी मिलेगी, बेधड़क मर सकूंगी। कंबख्त, तुमने घर पर फोन क्यों लगा लिया? उसके रहने के कारण एक बार फोन पर तुम्हें सूचना देकर जाने का जो आवेग बनता है जिसे मैं रोक नहीं पाती। जब मैं फोन करना शुरू करती हूँ तब तुम उसके तार के माध्यम से मेरे दिल को उलझाकर अपनी ओर खींचते रहते हो।" अमृता का मन सोमशेखर को और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझ में आ गया। करुणा के फलस्वरूप उत्पन्न खेद-भरी दृष्टि से वह उसे देखते बैठा रहा। "शून्य-भाव इतने प्रचंड तेज के साथ मन में प्रवेश करता है कि उसे रोकने वाली किसी भी शक्ति या व्यक्ति को नाश करने की इच्छा बलवती होती है। परमाणु बांब के फटने से जो होता है उस प्रकार की विनाश शक्ति है वह। उस लहर में हो सकता है रिवाल्वर तुम्हारी ओर घुमाकर ट्रिगर दबा दूं। मन क्या उपाय सोचता है, पता है? तुम्हें मार देने के बाद मुझको एक पल भी जीना सम्भव नही हो सकेगा। उस समय अपने-आपको मार लेना पल-भर का काम होगा। कोई बाधा तो नही रहेगी। ऐसा करने का विचार कई बार आता है। सोमू, मेरे मुन्ने, अब मन साधारण अवस्था में है, इसलिए खुलकर कहती हूँ। जब मन में रिक्तता का भाव आता है और रिवाल्वर मेरे पास होती है, तब तुम मेरे पास मत आना। मेरा मन क्या करवाएगा इसका पता खुद मुझको भी नहीं रहता।" सोमशेखर का जी भर आया। अमृता और उसकी मौत के बीच वह एक ढाल बनकर खड़ा है, इस बात का उसे गर्व हुआ। अगली बात मानो वह खुद समझ गया और बोला : "उसी अवस्था में तुम कहती हो, 'मैं तुमसे तनिक भी प्यार नहीं करती। तुम्हारा भी प्यार जताना केवल भ्रम मात्र है'।" "समझदार को सारी बातें समझ में आती हैं," अमृता के चेहरे पर प्रशंसा के साथ धन्यता का भाव खिल उठा था। सोमशेखर को सहसा एक उपाय सूझा। तुरन्त बोला, "अमू, तुम किसी मनश्चिकित्सक से क्यों नहीं मिलतीं? मैं पूछ-ताछ करूंगा। यहां नहीं हो तो बेंगलूर में पता लगाऊंगा।" अमृता के चेहरे पर बेचैनी दिखाई पड़ी। सोमशेखर का ही चेहरा घूरने लगी। उस दृष्टि में सोमशेखर को लगा कि वह अपने से दूर, बहुत दूर जाने लगी है। कुछ समय बाद वह ऐसे खामोश हो गई मानो वह बहुत दूर चली गई है। दृष्टि का प्रकाश भी क्षीण होते-होते अंततः बुझ गया। "क्यों? इसमें क्या ग़लत है? जैसे देह की बीमारी होती है उसी तरह मन की भी···" वह समझाने लगा। उसकी अवज्ञा के अन्दाज में बीच में ही बात काटकर वह बोली, "इस बला की संगति से तंग आ गये हो? इसका सारा भार मनश्चिकित्सक के मत्थे मढ़कर खुद उससे छुट्टी पाना चाहते हो, यही तुम्हारा आशय है न?" अमृता की बातों के तीखेपन और उसके अंदाज की अब सोमशेखर को आदत हो गई थी।

इसलिए सब्र के साथ बोला, "मन के भीतरी स्वरूप को हमसे भी वे अधिक···" इस वाक्य को बीच में ही काटकर अमृता बोली, "उनकी अपेक्षा मैं खुद अधिक जानती हूँ। मुझे एक और बात का भी पता है। तुम एक कायर हो; जीव-चोर हो, प्यार का ढोंग रचाने वाले हो। जिस दिन तुममें सच्चा प्यार उपजेगा उस दिन मैं ठीक हो जाऊँगी। तुम यह न समझो कि मैं किसी मनश्चिकित्सक से मिली नहीं।" "क्या कहा उन्होंने ?" उत्सुकता से सोमशेखर ने पूछा। "तुम्हारे साथ प्यार का नाटक करने वाले उस महान वीर पुरुष को अपने मन से बाहर निकाल दोगी तो पूरी तरह ठीक हो जाओगी—उन्होंने कहा।" अमृता का चेहरा गंभीर हुआ था। "दुबारा कभी मनश्चिकित्सक की बात मत करना! समझे ?" वह बोली, मानो अब की बार माफ कर दिया हो।

दोपहर के बारह बजे आ जाता तो शाम के चार बजे तक सोमशेखर वहीं रहता था। सप्ताह के छह दिनों में एकाध दिन भी अगर अमृता प्रसन्नचित्त दिखाई देती तो उसे वह अपना सौभाग्य मानता था। वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि किस क्षण वह सहसा चिढ़ जाएगी, किस बात का कौन-सा बेतुका अर्थ लगाकर अपने ऊपर भद्दे आरोप लगाने लगेगी। भोजन के बाद थाली, कटोरियाँ आदि उठाकर चौके में रखकर जब वह टेबुल पोंछने लगती तब वह उसके पास ही खड़ा रहता। एक दिन बोली, "मुझसे काम करवाते हुए तुम मिस्तरी की तरह खड़े रहते हो, शरम नहीं आती ?" सोमशेखर को अपमान-सा हुआ, सह लिया। दूसरे दिन उसने खुद थाली-कटोरियाँ उठाकर रख दीं। तुरंत वह बोली, "ऐसा काम करके मेरा मन पिघलाने की युक्ति सोची है ?" सोमशेखर कुछ बोला नहीं। "मौनं सम्मति लक्षणम्" वह बोली। वह अब भी चुप रहा। "यह तिरस्कार किसलिए ? क्या तुम्हारी धारणा यही है कि उत्तर पाने की अर्हता मुझ में नहीं है ?" सोमशेखर के सामने अड़कर यों खड़ी हो गई मानो अब जवाब दिए बिना कोई चारा नहीं। वास्तव में सोमशेखर को उत्तर नहीं सूझा। "कई बार मुझे उत्तर नहीं सूझता। तुम जो समझती हो उतनी बुद्धि-शक्ति वास्तव में मुझमें नहीं है।" वह बोला। "अगर होती तो तुम्हारे हाथों में यों फँसता नहीं, तुम्हारा कहने का यही मतलब है न ?" अमृता बोली। सोमशेखर उसका मुँह ताकने लगा। हाथ बढ़ाकर उसके कंधे को पकड़कर लिपट लिया। "मैं किसी की दया नहीं चाहती।" जबरदस्ती हाथ हटाकर वह बाहर चली गई। सप्ताह के छह दिन जो वह आया करता था उनमें कम-से-कम पाँच दिन तो ऐसा प्रसंग चलता था। एक बार अड़ गई तो उसे निकालकर ही दम लिया। चले जाने के बाद उसका परिणाम सोमशेखर पर बड़ी तीव्रता से दिखाई देने लगता था। वह लाख कोशिशें करके धीरज रखने का संकल्प करता है कि अमृता का मन भारी द्वंद्व का शिकार हुआ है, पीड़ित होकर कराह रहा है, मुझे उसका बुरा नहीं मानना

चाहिए, लेकिन पीड़ा भीतर ही भीतर मन का गुबार बन जाती है। फव्वारे वाले तालाब के बाँध पर या हार्डिज चौक की बगल वाले पार्क में अकेला बैठकर मन को दिलासा दे लेता है। साधारणत: लगभग रात के ग्यारह बजे वह खुद ही फोन किया करता था। कभी-कभी सहजता-सरलता के साथ चुलबुले जवाब देती थी। सोमशेखर के साथ छेड़छाड़ करती थी। लेकिन यह जायका कब किरकिरा हो जाता, कब चुभती कड़वाहट मे बदल जाता, इसका पूर्वानुमान कर पाना संभव नहीं हो पाता था। अमृता चाहे कितना ही चिढ़े, ताना कसे लेकिन वह कभी चिढ़ेगा नहीं, इस अटल मनोदशा में रहता था। "मैं इतना बोलती हूँ फिर भी तुम्हें गुस्सा नहीं आता, यानी मेरी बातों के प्रति तुम कितने लापरवाह हो।" उसी गुण पर ताने कसने लगती है। कभी-कभी तो फोन उठाते ही तुरंत बरस पड़ती है, "यह मरी क्यों नहीं ? मरने की केवल खोखली धमकी ही देती रहेगी या अपनी बात को निभाएगी भी, इसकी जाँच के लिए ही अब फोन किया है न ?' आधा घंटा, पौन घंटा, एक या डेढ़ घंटा इसी तरह की प्राणों की जड़ काटने वाली बातें करेगी। वह बात कभी खत्म नहीं करती थी। अगर आप अपनी ओर से बंद कर देगा तो उसमें शून्य भाव भर जाने का डर रहता था। अचानक अगर बीच में संपर्क कट जाता तो तुरंत इसी को नंबर जोड़ना पड़ता था। अगर थोड़ी-सी भी देर हो गई तो वह डायल करके बोलती, "बला टालने के लिए तुमने खुद काटा है न ? सच बताओ, उस भगवान की कसम खाकर कहो जिस भगवान पर आप विश्वास नहीं करते।" कभी-कभी जब वह कोपावेश में आकर रिसीवर पटक देती है तब दो मिनट बाद वह फोन करके अनुनय करने लगता है, "अमू, अनजाने मे मुझसे कई गलतियाँ हो जाती है। अब भी वही हुआ है। माफ़ नही करोगी ?" रात के दो-ढाई से पहले फोन वार्तालाप खत्म नहीं होता था। इसके पश्चात् लेटने पर सोमशेखर को नींद नहीं आती थी। कई बार नींद, बड़बड़ाहट, उनींदी की अवस्था में ऐसी पीड़ा होने लगती थी मानो कोई हिंस्र पशु उसके मन की भित्ती को अपने पंजे से खरोंच रहा हो। किसी घड़ी में पलकें लगकर सारी नीद में पीड़ा बेचैनी, आतंक की लहरों का आघात होता रहता था और सवेरे उठाने पर थकावट, जँभाई, निरुत्साह, उँघाई दिखाई देती थी।

एक दिन सवेरे जब दफ्तर पहुंचा तो 'शाह एण्ड शेखर' छपा लिफाफा मिला। बहुत दिन बाद मित्र का पत्र आया था, पाकर वह निहाल हो उठा। मैंने भी इधर उसे कोई चिट्ठी नहीं लिखी। जो उत्कट प्रेमपाश में बँध गया हो उसके अन्य सारे स्नेह-सूत्र अपने आप कट जाते हैं। अपना प्यार तो उत्कट से उत्कट होता गया है। यही सोचते हुए उसने लिफाफा खोला। नवीन ने अपनी मीठी भाषा में लिखा था : 'नवसारी फैक्टरी का काम अंतिम चरण पर है। अब तक पूरा हो जाना चाहिए था। सीमेंट के अभाव में देर हो गई। अब एक नया टेक्सटाइल मिल का

काम हाथ में आया है। बंबई में दो बहुमंज़िली इमारतें। तुम जैसा सहयोगी रहेगा तो एक साथ अभी चार-पाँच काम लिये जा सकते हैं'—इत्यादि कारोबार से संबंध रखने वाली बातों के पश्चात् अंत में लिखा था, 'डेढ़ वर्ष पहले तुम्हारे दफ्तर की इमारत खरीदते समय जो रक़म भेजी थी वह इंदु की थी। अब उसके पीहर में कुछ तंगी आ गई है और इंदु उनकी मुसीबतों में कुछ काम आना चाहती है। लेकिन तुमसे पैसे की तलब करके तुम्हें कैसे कष्ट दे इस चिंता से वह परेशान है। क्योंकि इतनी बड़ी रकम अगर जमा हो गई होती तो तुमने खुद ही लौटा दी होती, यह बात वह जानती है। दिगंत तुम्हें बहुत याद करता है। पूछता रहता है कि शेखर अंकल क्यों नहीं आए।' पत्र समाप्त किया था।

अंतिम अंश पढ़ने के बाद सोमशेखर को भीतर-ही-भीतर ढह जाने का-सा अनुभव हुआ। इस कर्जे की बात अपनी स्मृति से निकल ही गई थी। मन को समझा लिया था कि कर्जा कभी भी लौटाया जा सकता है। और ब्याज तो देना है ही। अब जब इंदुबेन के बहाने तलब किया गया है तो मन में जिज्ञासा होने लगी कि वास्तव में वह रक़म इंदुबेन की है या नवीन की। आधा घंटे में सारी बात स्पष्ट हो गई। नवीन स्नेह के मामले में स्नेही है, लेन-देन के मामले में कारोबारी। स्नेह और लेन-देन दोनों को आपस में मिलने नहीं देता। अब तक मुझे पूरा ब्याज और असल में से चौथाई या एक तिहाई रक़म तो लौटा देनी चाहिए थी। अगर कारोबार ठीक चलाया होता तो पौना हिस्सा या पूरी की पूरी रक़म वापस की जा सकती थी। व्यापारी नवीन ने इसकी आशा की थी। समझ गया कि यह पहला स्मरण-पत्र है। क्या जवाब दे इस पत्र का? एक घंटे तक सोचता रहा। क्या लिख दूं कि अब कुछ कष्ट है, तुम खुद इंदुबेन के लिए व्यवस्था कर दो? लेकिन शर्म हुई। इतने में बारह बजने को आए। नीचे उतरकर अमृता के घर के लिए निकला। नंजुंडेगौड सरकारी नौकरी पर चला गया था। काम न रहने पर भी नीलकण्ठप्पा ज्यादातर दफ्तर में ही रहता था।

उस दिन अमृता संकुचित मनोदशा में थी। ऐसी अवस्था में चिढ़ती नहीं थी। लेकिन कुछ बोलती नहीं थी। खामोशी में ही खाना लगाती थी। दोनों खा लेते थे। उसका मन इस अवस्था में एकांत चाहता था। सोमशेखर उसके कमरे में नहीं जाता था। गेस्टरूम की पलंग पर ही लेट जाता है। अमृता खुद अपने कमरे में सोती। वह एकांत चाहती है इसलिए सोमशेखर उस घर से निकलकर आ भी नहीं सकता था। उस दिन आए बिना भी नहीं रह सकता था। वह आता रहे। लेकिन अमृता अपनी धुन में दूर रहे। अचानक अगर लहर आ गई तो खुद आकर बोलने लगेगी। तब उसकी बातों का अंदाज देखकर सोमशेखर यों स्पंदित होता मानो उस समय कुछ हुआ ही नहीं। वह मौज के साथ पेश आएगी, तो इसे भी उसी ढंग से स्पंदित होना पड़ेगा। अधिक गहराई तक जाकर श्रृंगारसूचक शब्दों का प्रयोग करके जवाब देगा तो वह चिढ़ जाती है, "पास आ गई तो पशुवृत्ति के

लिए आई समझकर धावा बोल देते हो ?" अथवा जब वह खुद शृंगारिक बातें करने लगती है तब अगर इसने साधारण मौज की बातें कीं तो अपमान से खौल उठती है, "खुद आगे बढ़कर आने वाली बेहया कुतिया समझकर लापरवाही करते हो ?" अपना मन और बुद्धि चाहे कितनी ही अवनत अवस्था में क्यों न हो, उसकी मनोदशा को तुरंत पहचान कर उसके अनुसार स्पंदित होने के लिए, बर्ताव करने के लिए, कभी-कभी दैहिक स्थिति को तैयार रखने की कर्त्तव्य भावना में सोया रहता है ।

आज जब लेट गया तो नवीन के पत्र का विचार ही मस्तिष्क में भर गया। अधिक मोहलत की माँग करना हीनता जैसी लगी । नवीन अपने कारोबार में दिन-प्रतिदिन उन्नति करने वाला है । मैं पूरी तरह चौपट हो गया हूं । बंबई और मैसूर के मान-दंड भिन्न हैं । लेकिन मैसूर के ही मान-दंड पर प्राप्त अत्युत्तम मौके का निर्वाह न कर पाकर हार गया हूं । मोहलत माँग भी लूं; लेकिन जब कारोबार में मन लगाकर कमाने की मनोदशा ही न हो तब रकम भेजूंगा भी कैसे ? मोहलत के साथ ब्याज भी बढ़ता जाएगा । बैंक-दर के ब्याज पर नवीन ने जो रक़म भेजी वह बड़ा उपकार हुआ है । इसका इतना भार बन जाता है कि उसका ब्याज ही नहीं सँभाला जा सकेगा । कारोबार में मन लगाना क्या अब भी संभव है ?— वह मन में सोचने लगा । नीलकण्ठप्पा के मार्फ़त कोई नए काम प्राप्त करना क्या संभव नहीं हो सकेगा ? इस बीच कुछ निजी कारणों के लिए धंधे की ओर ध्यान देना संभव नहीं हो सका था; अब जितना चाहो उतना काम दो—यों नीलकठण्प्पा द्वारा मैसूर और आस-पास के ठेकेदारों से कहलवाना होगा । और नीलकण्ठप्पा को यह लालच दिखानी होगी कि अमुक काम लाओगे तो इतना बोनस मिलेगा । नर्सिंग होम का काम छोड़कर बड़ी गलती की । पता नहीं उन्होंने क्या कर लिया ! डॉ० राममूर्ति आकर गए या नहीं कुछ पता नहीं चला । उसका पता लगाने की रुचि अपने में कहाँ थी !

चार के लगभग बच्चों को लिवा लाने के लिए अमृता के कार और घर की चाभियाँ लेकर चप्पल पहनकर निकलने की आहट सुनाई दी । वह भी उठा, पेंट-शर्ट पहनकर, बूट का फीता बाँधकर बाहर निकला । अमृता अभी बात करने की मनोदशा में नहीं आई थी । सोमशेखर भी उसकी मनोदशा का अनुवर्ती बनकर बाहर निकला और स्कूटर पर सवार हो गया । फव्वारे वाले तालाब के बाँध पर जा बैठा और सोचने लगा : आज रात जागते रहना होगा । फोन करने पर चिढ़ेगी कि उसके एकांत को मैंने भंग किया । फोन न करने पर शून्य-भाव गहरायेगा और रिवाल्वर उठा लेगी । आज की बातचीत के लिए कोई विषय चुन लेना चाहिए । अब तक कार में सुशीलम्मा के घर पहुँच गई होगी । बच्चों को देखते ही तुरंत अपने मन के संकोच को छिपाकर दोनों बच्चों के साथ मुंह भरकर

बातें करेगी। स्कूल की पढ़ाई-लिखाई से बात शुरू करेगी। घर आकर कहानी सुनाएगी। उनकी किताबें पढ़कर अर्थ समझाएगी। लेकिन भीतर-ही-भीतर संकुचितमना रहेगी। उनको सुलाने के बाद मन और होंठ दोनों को सीकर यों मौन हो जाती है मानो वही उसकी अवस्था या आखिरी मंजिल हो। ऐसी हालत में बातचीत का कोई ऐसा विषय खोजना होगा जिससे वह चिढ़े नहीं। लेकिन इस अवस्था में वह किस विषय से चिढ़ेगी और किससे नहीं, इसे समझ पाना आसान नहीं है।

रात में फोन करने पर अमृता सीधा सोमशेखर की शिकायत करने लगी। "आपकी अंतरात्मा लगातार चाहने लगी है कि अगर यह मर जाए तो बला टले और आप चैन से रह पाएँ। दिखावे के लिए 'तुम्हारे बिना जी नहीं सकता' वाला झूठ बोलना आपकी आदत बन गई है। आपका यह गिरगिट जैसा व्यक्तित्व किसलिए?" अनुनय-विनय, वाद-विवाद, कसमे-वादे करके इस बात को झूठ साबित करके विश्वास दिलाने में डेढ़ घंटे तक बात करनी पड़ी।

इतने में अमृता की जँभाई का स्वर सुनाई दिया। "अब सो जाओ, कल आऊँगा, बातें करेंगे"—सोमशेखर का कहा मानकर उसने रिसीवर नीचे रख दिया।

मच्छरदानी में लेटने के बाद उसका मन नवीन के पत्र का हल ढूंढ़ने में लग गया। सोचते-सोचते रात के लगभग तीन बजे उसे एक रास्ता सूझा। काम तो कुछ कर नहीं रहा है। क्यों न दफ्तर की जगह बेचकर कर्जा लौटा दे और शेष रक़म बैंक में रखकर उसके ब्याज से दो जून की रोटी का जुगाड़ कर ले? तुरंत उसे लगा कि पहाड़ जैसा भार एकदम उतर गया। नीलकण्ठप्पा विश्वासपात्र सहायक था। एक और बात सूझी कि उसे कोई पच्चीस हज़ार देकर कहीं और व्यवस्था कर लेने के लिए कह दे। इसके साथ ही चार-पाँच बार की जँभाई के साथ उसे नींद आ गई। सवेरे जब आँख खुली तो बिखरा-बिखरा शून्य-सा दिखाई पड़ा। 'कितना अच्छा पेशा छोड़कर निठल्ला हो गया है! मैं कैसा कायर हूँ।' अपने आपकी भर्त्सना करने लगा। उठकर नहा-धो लिया; लेकिन नाश्ता-कॉफ़ी के लिए जाने की चुस्ती नहीं आई। यह भावना जागी कि अगर पेशे को छोड़ देगा तो अपने गुरुत्वाकर्षण का केंद्र ही समाप्त हो जाएगा। लेकिन अब एकाएक पौने दो लाख की रक़म कहाँ से जोड़े? किससे उधार माँगे? कौन देगा? इन प्रश्नों के साथ उसे अहसास हुआ कि इस गाँव में अपना कोई मित्र नहीं है। जो भी संपर्क है वह एक अमृता के साथ ही है। उसी के संपर्क के फलस्वरूप तो पेशे की लापरवाही करके इस अवस्था को प्राप्त हुआ है। उसी से कर्ज उठाकर तो इस दफ्तर की जगह खरीदी थी। फिर रातोंरात नवीन को फोन करके दूसरे दिन दोपहर से पहले टेलेक्स द्वारा पैसा मँगवाकर इसका पैसा चुकाया था। पता नहीं मैंने जल्दबाजी की या अमृता को ठीक-ठीक पहचान नहीं पाया, दरअसल उससे

लेन-देन उचित नहीं समझा था। हर दिन दोपहर को उसके घर मुफ्त का खाना खाता है इस बात का संकोच भी कभी-कभी मन में आ ही जाता है। दाल-भात में मूसलचंद की तरह मन में ऐसी बातों के लिए जगह देगा तो अपने प्यार का स्तर कैसा होगा?—वह आत्मविश्लेषण करने लगा। नवीन का पत्र उसे दिखा दूं? वह किसी कर्ज की रक़म से व्यवस्था करके कह सकती है, 'लो, बंबई भेज दो।' जरूर कहेगी, मन ने विश्वास जताया। अब की बार बैंक के कर्ज का ब्याज न भरने के लिए वकील साहब ने कहा है। इस वर्ष की फसल पर तीन-साढ़े तीन लाख की रक़म उसके हाथ में बची रहेगी। क्यों न ऐसा करे? इसी सोच में आधा घंटे से भी अधिक समय बीत गया। फिर फैसला किया कि यह ठीक नहीं। क्यों? किसलिए? वह कारण नहीं समझ पाया।

घड़ी देख ली; बारह बजकर पांच मिनट हुए थे। उसका फोन घुमाया। दफ्तर से बोल रहा है या घर से उसने यह नहीं बताया। उसने भी नहीं पूछा। "अमू, एक जरूरी काम आ पड़ा है। तुम खा लो। चार से पहले अगर काम निपट गया तो आ जाऊंगा। वरना इंतज़ार मत करना। ग्राहकों के साथ ही नाश्ते के लिए बाहर चला जाऊंगा। रख दूं?" ज्यादा बात बढ़ाने का मौका न देते हुए वह बोला। तुरंत अमृता ने कोई जवाब नहीं दिया। सोमशेखर ने फोन रख दिया।

स्कूटर चढ़कर होटल जाकर भोजन करते समय भी मन सोचता ही रहा था। और कहीं, दफ्तर की इस जगह को गिरवी रखकर बैंक वगैरह से कर्जा उठाया जा सकता है। लेकिन उसे फेरने का मार्ग क्या होगा? दिन में जब सभी लोग कारोबारों में मग्न होकर काम करते रहते हैं तब आप हर दिन चार-चार घंटे उसके साथ बिताते हैं। लौटते समय मार खाया हुआ निकम्मा मन लेकर आता है। ऐसे मन से काम करना संभव ही नहीं। एक रात भी ढंग से नींद नहीं ले पाता। पूरी तरह उसका संपर्क छोड़ने पर ही अपनी वृत्ति चलाई जा सकेगी। लगा कि यह आंशिक रूप मे चिपकाए लिए जाने वाला संबंध नहीं है। खाना खत्म होते-होते विचार आया कि पूरी तरह इसे छोड़ देने से कैसा रहेगा? उसका मानसिक रोग कोई दुरुस्त होने वाला नहीं है। दिन-ब-दिन कुढ़ने-चिढ़ने की आदत बढ़ती ही जा रही है। मेरे कारण वह मरी नहीं है जीवित है, सच है। समझ लूं कि उसे मरने न देकर बचा रखा है। लेकिन उसके बाद? मेरा क्या हाल होगा? वह इस बात को जानता है कि सच्चा प्यार सदा निष्काम होना चाहिए, लेकिन यह आदर्श केवल सिद्ध पुरुषों के लिए ही संभव है। स्त्री-पुरुष का कोई भी प्यार जब दीर्घ काल की योजना बना लेता है तब आपसी कर्तव्य और हक़ के बारे में स्थूल रूप से ही सही समझौता करके ही आगे बढ़ता है। प्यार करने वालों का ब्याह के बंधन में बंध जाना ऐसे हक़ और कर्तव्य के दायरे में आ जाने

का लौकिक विधान ही तो है ! अमृता के संबंध के मामले में ऐसा कोई अनुबंध नहीं है । ब्याह की बात मैंने नहीं चलाई । अगर चलाता भी तो क्या ऐसी औरत के साथ एक ही छत के नीचे जीना संभव है ? पहले उसे स्वस्थ होना होगा। स्वस्थ होने के बाद शायद उसे मेरी जरूरत ही न रहे !

स्वस्थ होने के बाद शायद मेरी जरूरत ही न रहे ! इस विचार के साथ सोमशेखर पर मानो शून्य छा गया। उसके जीवन में जब मेरा कोई अर्थ और आवश्यकता नहीं रहेगी तब मेरे जीवन का क्या अर्थ बचा रह जाएगा ? यह प्रश्न सामने आया। इसका स्पष्टीकरण मिला कि जब तक उसके जीवन को कोई अर्थ दे सकूंगा तभी तक मेरे जीवन का कोई अर्थ है, वरना कुछ भी नहीं है। खाना खाते ही स्कूटर चढ़कर बृंदावन की ओर दौड़ाया । दोपहर के एकांत में पहले भी एक बार आकर जहाँ लेटा था उस लता-कुंज की बेंच पर पाँव फैलाकर लेटने के बाद पुन: वही भावना और भी अधिक साफ दिखाई पड़ी । अपने पेशे में उन्नति करके सालाना चार-पांच लाख कमाऊँ, नवीन कम-से-कम दस-पंद्रह लाख कमाता है। उसी आग्रह से काम करते हुए अगर बंबई में रह जाता तो आज मैं भी उस स्तर को पहुँच सकता था। लेकिन प्रारम्भ से ही अपनी ऐसी प्रवृत्ति नहीं है। इसीलिए बंबई छोड़कर मैसूर आया, आकर इसमें उलझ गया । उलझ गया या अर्थ खोजने का कोई बड़ा मौका पाया ? शाम तक सोचने पर भी हर पहलू में यही भावना गहरी होती गई कि उसके बिना कोई अर्थ नहीं । अँधेरा छाकर जब हजारों, लाखों दीप जगमगा उठे तब वह उठा। भीड़-भाड़ वाले छोटे-बड़े रास्तों में घूमता रहा। भूख लगने पर खोमचे वाले से ककड़ी, पापकार्न खा लिया । जब वह सात रंगों में क्रमश: घूमता हुआ फव्वारा देखते खड़ा था तब लगा कि मेरे जैसे आर्किटेक्ट कितने हज़ारों की संख्या में नहीं होंगे ? अगर मैं इस पेशे को छोड़ भी दूं तो इमारत का काम मरेगा नहीं; कोई और मिलेगा ।

फिर भी दूसरे दिन सवेरे दस बजे ब्रोकर के दफ्तर जाते समय मन टूटा हुआ था। मैं इस शहर में हार गया हूँ । मैंने पराभव को स्वीकार किया हूँ । घर-द्वार बिकवाने वाले ब्रोकर के साथ अपना वृत्ति के स्तर का परिचय था। मैं अपना पेशा बंद कर रहा हूँ, मेरे दफ्तर की जगह बिकवा दीजिए—यह बात कहते समय उसका कलेजा मुँह को आया ।

एक दिन सवेरे दस बजे अमृता कार पोंछ रही थी। भीतर पुट्टम्मा खाना पका रही थी। महादेवम्मा पीछे जगत पर कपड़े धो रही थी। गेट के भीतर अहाते में घूमने के लिए छोड़े गए कुत्ते कार पोंछती हुई अमृता के गिर्द खेल खेल रहे थे। सहसा गेट के पास वाहन की आवाज हुई; दोनों कुत्ते भौंकते हुए उधर दौड़े । अमृता ने देखा; कोई कार अपने घर के गेट के सामने आकर खड़ी हुई

है। गौर से देखा तो कार में चाची का सारा परिवार बैठा दिखाई दिया। उसका बड़ा बेटा यानी उसका हम-उम्र का जयराम कार चला रहा था। उसकी बगल में चाचा, चाचा की बगल में छोटा बेटा कृष्णमूर्ति, पीछे की सीट पर चाची, जयराम की बीवी मीनाक्षी, जयराम का पाँच वर्ष का बेटा, दो वर्ष की बेटी। तुरंत अमृता समझ गई कि वकील साहब का नोटिस पहुँच गया है। पलभर के लिए वह उलझन में पड़ गई कि अब वह उनके साथ कैसे पेश आए ? इतने में वकील साहब के क्लर्क शिवरामय्या की बात याद आई। वह खुद आगे बढ़कर बोली, "आओ, ठहरिए, कुत्तों को बाँध देती हूँ।" विक्रांत के गले की पट्टी पकड़कर उसे सामने वाली माँद में बाँध कर विश्वास को पकड़कर पिछवाड़े में ले गई।

'देखिए माँ जी; जब इस तरह जायदाद के मामले में वकील की नोटिस मिलते ही ऐरे-गैरे सभी सगे-संबंधियों को लेकर आते हैं; देवी-देवता, न्याय-धर्म आदि बातों की पुराण-पोथी पढ़ना शुरू करके सिर खाने लगते हैं; तब आप गर्म न होकर, शांति के साथ कहें कि 'ठीक है; अगर मेरी कोई गलती है तो अदालत में सबूत पेश कीजिए। आप भी वकील रख लीजिए। अदालत का फैसला कोई आज ही निकलेगा नहीं। महीनों, सालों लगेंगे। जो न्यायसंगत है वही होगा।' ऐसी ही बात करनी होगी। 'किसी के साथ भी न्याय और अन्याय की चर्चा करते नहीं बैठना चाहिए। चर्चा करने बैठेंगी तो फँसा लेंगे। सावधान रहिए।' शिवरामय्या की पूरी बात याद आ गई।

इतने में सभी लोग कार से उतर पड़े थे; लेकिन गेट खोलकर कोई भीतर नहीं आया था। अमृता ने ही आकर गेट खोलते हुए कहा, "आइए, चाचा जी ! कैसे हो किट्टू भैया ?" उसने इस अंदाज में आवभगत की मानो उसमें कोई परिवर्तन हुआ ही न हो। सभी को लाउंज वाले सोफे पर बिठाया। औरतों को लाउंज से भीतर नहीं बुलाया। वह समझ गई कि चाची के लिए भी भीतर आकर लाड़-प्यार का ढोंग रचाना कठिन हो रहा है। "शायद उठते ही निकले होंगे। ठहरिए, उपमा बनाने के लिए कहती हूँ। पहले कुछ कॉफी लेंगे ?" उसने पूछा।

"जिस काम के लिए आए हैं वह पूरा होने तक इस घर में एक घूंट पानी भी नहीं पिएँगे।" गृहस्वामी जयराम गुर्राया।

"क्यों ऐसी बात करते हो ? बिटिया के घर आकर पानी नहीं छीऊँगा, अन्न नहीं खाऊँगा, कहना ठीक नहीं होता। उसके हीरे जैसे दो बेटे हैं। उनका भी भला होना चाहिए या नहीं ? व्यवहार की बात और होती है, प्यार-मोहब्बत की बात और होती है।" चाची ने बेटे को डाँटा।

चाची की पैंतरेबाजी अमृता जान गई। उसे ज्यादा बोलने का मौका न देकर

वह खुद बोली, "किसी की जूठन से मेरे बच्चों का भला होगा, ऐसी बातों में मैं विश्वास नहीं करती। व्यवहार की बात करने आए हैं कीजिए। मेरी ओर से कहने लायक कोई बात नहीं है। मैं जो कुछ कहना चाहती थी उसे वकील साहब ने नोटिस में कह दिया है। आगे जो कुछ कहना है वह अदालत में कह देंगे। आप भी ऐसा ही कीजिए। किसी वकील के मार्फ़त अदालत में अपने न्याय का मंडन कीजिए। आखिर अदालत होती किसलिए हैं; ऐसे विवादों का फ़ैसला करने के लिए ही तो होती हैं। हम लोग आपस में विश्वास बनाए रखेंगे।"

जयराम बोला, "कानून की बात करती हो? सुप्रीम कोर्ट जाने पर भी छोड़ने वाला आदमी मैं नहीं हूँ। हमारे पक्ष में भी प्वाइंट्स हैं।"

"ठीक है भैया। अगली अदालत को जाने का हक़ कौन भला छीन सकता है? मतलब हुआ कि निचली अदालतों में तुम्हारी हार होगी, इस बात को मानते हो।" अनजाने में झगड़े को न्योता देते हुए उसके मुँह से यह बात निकल गई।

"तेरे मलली वेंकटेशय्या के दांत खट्टे करने लायक वकील को बेंगलूर से लाने की शक्ति मुझमें है, समझ ले।" जयराम चिल्लाते हुए खड़ा हो गया।

अमृता का ख्याल था कि वह आगे बढ़कर अपने ऊपर हाथ उठाएगा। लेकिन चाची ने उठकर उसकी बाँह पकड़कर बिठा दिया। "चाची, चंद्रकला कैसी है? उनके घर जाकर ही आए हो न?" छूटते ही अमृता ने पूछा।

चाची की बोलती बंद हो गई। "मैं यहाँ बैठा नहीं रहूँगा। अदालत में ही लड़ूंगा।" जयराम उठा।

कृष्णमूर्ति जो ब्याह की उम्र को पहुँच चुका था, तुरंत बीच में दखल देकर बोला, "औरत को हमेशा पति के इशारों पर चलना चाहिए; यार की बातें सुनकर पीहर पर डाका डालने निकली हो। वह यार तुम्हें पूरी तरह लूटकर आखिर तुम्हारे हाथ में खप्पर दे देगा।"

चाची सरपट उसके पास दौड़कर उसकी पीठ पर एक घूंसा जमाकर बोली, "छोटा मुँह बड़ी बात! झूठ-मूठ की बातों से तेरा क्या लेना-देना?"

अमृता कृष्णमूर्ति का चेहरा घूरते खड़ी रही। उसकी निगाह कृष्णमूर्ति में गड़ गई थी। जयराम की बीवी मीनाक्षी उठकर उसके पास आई, "तुम्हारे भैया की बुद्धि ही उतावली है। उनके साथ निभा पाना कितना कठिन है आप ही अंदाजा लगाइए। उनसे बोलने की आवश्यकता नहीं। हम आपस में बोल लेंगे चलिए।" अमृता का हाथ पकड़कर भीतर की ओर खींचने लगी।

अमृता ऐसी उलझी हुई अवस्था में थी कि कुछ समझ नहीं पा रही थी। अपना हाथ छुड़ाकर बोली, "मुझे किसी से बात नहीं करनी है। पहले ही बता दिया है जो कुछ कहना है अदालत में कह लेना। अब आप लोग जा सकते हैं।"

वह भीतर चली गई ।

बाहर उनमें आपस में फुसफुसाहट होने लगी थी। सास और बहू दोनों भाइयों को आड़े हाथों ले रही थीं—अमृता को भीतर से सुनाई दे रहा था। इतना सब चलते हुए भी चाचा ने जबान तक नहीं हिलाई। वे कभी किसी मामले में दखल देने वाले व्यक्ति नहीं थे। वे एकदम भोंदू नहीं थे। लेकिन बेहद चालाक चाची के हाथों में फँसकर उनकी बुद्धि-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। अमृता जानती थी कि किसी मामले में आगे कदम बढ़ाने का हौसला वे खो चुके थे। "आप चुप क्यों बैठे हैं ? कुछ बोलिए।" चाची का अपने पति को उकसाते रहने की आवाज़ अमृता को सुनाई दी। "मेरी समझ में क्या आता है। जयण्णा ने कहा न अदालत में लड़कर जीतेंगे।" वे ऊँची आवाज़ में ही बोले।

अमृता डायनिंग टेबुल के सामने बैठी थी। करीब पाँच मिनट बाद चाची वहाँ आई। उसके पीछे जयराम की बीवी मीनाक्षी थी। लगा कि वह भी सास की तरह बातों में बड़ी चतुर है। अमृता समझ गई कि चाची के संदेश के बिना कृष्णमूर्ति को पति और यार वाली बात की जड़ का पता लग पाना संभव नहीं। चाची जो पास आई थी उससे अमृता बोली, "चाची, यहाँ भीतर आकर प्यार जताकर करने लायक कोई खास बात नहीं है। सारा सोच-समझकर ही मैंने नालिश की है। तुम जो भी कहना चाहती हो वह अदालत में कहना।" उठकर वह अपने कमरे में चली गई; पीछे से दरवाज़ा बंद कर लिया। आधा घंटे बाद कुत्तों की भौंक और कार स्टार्ट होने की आवाज़ सुनाई दी।

उस दोपहर को सोमशेखर खाने नहीं आया। लगभग तीन बजे अमृता के मन में अपने और उसके संबंध के प्रति घिन होने लगी। यह वास्तव में ज्ञानी संबंध है। प्यार-व्यार जैसी कवि-कल्पना की बातों का यहाँ लागू करना गलत है। जहाँ शारीरिक संपर्क न हो, परस्पर हाथ का भी स्पर्श न हो, लिंग भेद द्वारा निर्माण होने वाली भावनाओं का स्पर्श न हो, ऐसे स्नेह को ही शुद्ध प्रेम कहा जा सकता था। दरअसल मैं पतिता हूँ। नैतिक बल और अधिकार मैंने खो दिया है। इस अहसास के साथ वह फूट-फूटकर रोने लगी। घर में कोई नहीं था। इसलिए आवाज़ को नियंत्रित करने की आवश्यकता नहीं थी। रोने की आवाज कमरे से बाहर निकलकर सारे घर में घुमड़ रही है, इस बात का अहसास होते हुए भी वह बेपनाह रोती रही। बीच में दो बार सिर को पलंग के सिरे पर पीटकर अपनी सज़ा को गम्भीर बना लिया। जब गुबार निकल गया, आवाज़ थम गई, तो वह रीते मन से लेट गई और सोचने लगी, हाथ से जायदाद छूट जाने के क्रोध में ही सही उसकी बात के किसी अंश को भी क्या झुठलाया जा सकता है ? कुछ भी हो, रंगनाथ आखिर पति ही है। इसे यार के सिवा और क्या

कहेंगे ? स्नेही, मित्र, प्रेमी जैसे शब्दों का प्रयोग हम करना चाहते हैं। व्यभिचार के सिवा इस संबंध की कोई और संज्ञा नहीं हो सकती—पुनः उसे रोना आया। उसके बाद आक्रोश उत्पन्न हुआ। इसके लिए किसी की शिकायत नहीं करनी चाहिए। अपनी सज़ा आप भुगतनी चाहिए। उसने फैसला किया कि अग्नि को साक्षी मानकर जिस पति ने मंगलसूत्र बांधा था उसे छोड़कर उस मंगलसूत्र वाले गले को यार की बाँहों में उलझाए रही। ऐसी मुझ पतिता को खुद द्वारा अपने-आप सजा देनी चाहिए। दीवार से सिर पीट लेने जैसी औपचारिक सज़ा नहीं, सच्ची सज़ा—इस विचार के साथ रिवाल्वर की याद हो आई। तुरन्त दराज़ खोलकर उसे हाथ में उठा लिया। हाथ में लेकर ही बैठी रही। कुछ समय बाद और भी अधिक घिन होने लगी। इतना सब कुछ होने पर भी इस पापी जीव के लिए ट्रिगर दबा लेने की घड़ी नहीं आ रही है। पाँच बजे जब बच्चों को लेने गई तब उनका चेहरा देखते ही व्यभिचार से गर्भवती होने की और उसे निकलवाने की बात याद हो आई। उसी क्षण रुलाई फूटने को हुई। किसी तरह रोक लिया। भीतर दुःख को दबाकर ही बच्चों के साथ शट्लकॉक् खेला। कहानी कही, प्यार किया। रात के भोजन के बाद एक विचार आया : इतनी हीन भावना के आने पर भी मैं मरी क्यों नहीं ? क्या बच्चों की खातिर ? मैं मर भी जाऊँ तो वे लोग उनका पालन-पोषण करके जरूर लिखाएँगे-पढ़ाएँगे। वह दूसरा ब्याह अवश्य करेगा। क्या वह बच्चों का पक्ष लेकर ऐस्टेट का मुकद्दमा आगे बढ़ाएगा ? रिश्वत की कमाई से तृप्त होकर क्या अपना दायरा उसी में सीमित कर लेगा ? विचारक्रम ने करवट ली, और वह सोचने लगी : मेरे साथ जिसने धोखा किया है उसी चाची को अदालत द्वारा जब तक सजा नहीं दिलवा लेती, तब तक मरूँगी नहीं, मन में ऐसा कोई संकल्प तो नहीं है ? वह इस सोच में डूबी थी तभी फोन की घंटी बजी। घड़ी देख ली। पौने बारह बजे थे। रिसीवर उठाकर बोली, "सुनिए, मैं ठीक हूँ, लेन-देन का कुछ हिसाब-किताब करना है। टाइम नहीं है। कल से जब तक मैं फोन न करूँ आप मत कीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं अपने प्राणों को कुछ नहीं करूँगी, प्लीज !" तुरंत उसने चोंगा रख दिया। कुछ समय बाद एक विचार आया। उठकर कोने में रखी अपनी टेबुल के सामने बैठकर अपने लेटर-पैड पर लिखने लगी : 'हम अपने संबंध के लिए अपने-आपको धोखा देने की खातिर कोई भी उदात्त संज्ञा दे सकते हैं। वास्तव में यह व्यभिचार का संबंध है। आप भाँड़ हैं, मैं रंडी हूँ। इससे भिन्न और कोई वास्तविकता नहीं है। यही वास्तविकता मेरे दुःखों का मूल कारण है। जब तक इसका निवारण नहीं कर लूंगी तब तक मैं चैन से नहीं रह पाऊँगी। इसलिए आपसे सविनय प्रार्थना करती हूँ कि मुझसे दूर रहने की कृपा करें। अब फिर कभी फोन आदि के द्वारा अपनी व्यभिचारी मनोदशा को उद्दीप्त करने की चेष्टा मत कीजिए,

नमस्कार।' इतना लिखकर डाक के लिफाफे में बंद करके ऊपर उसके घर का पता लिखा। उसी क्षण घर पर ताला लगाकर सामने वाली मांद से विक्रांत को अपने साथ लिए बाहर निकली और सड़क पर बने डाक के डिब्बे में डाल आई।

आकर जब लेटी तो उसका क्रोध कृष्णमूर्ति की ओर मुड़ा। उसकी उम्र क्या है, उसके मुँह से कैसी बात निकली है ? उसी समय आगे बढ़कर मुझे उसकी चप्पलों से पिटाई करनी चाहिए थी। लेकिन उसने फैसला किया है कि किसी भी हालत में वह गुस्सा नहीं करेगी। पिटाई नहीं की यही अच्छा हुआ। ये बातें वह कैसे जानता होगा ? यहाँ से लौटने के बाद उसकी माँ ने सभी के सामने बताया होगा। अब क्रोध चाची की ओर मुड़ा। सुप्रीम कोर्ट की बात कही न, बड़े बेटे ने ! मैं भी पहुँचाऊँगी, छोड़ूँगी नहीं। उसने निश्चय किया। लगभग तीन बजे आँख लगी। अगले दिन दोपहर को वह आया नहीं। अपनी चिट्ठी अभी पहुँची नहीं होगी। फिर भी क्यों नहीं आया ? सोचते हुए उसने एक घंटा बिताया। शायद काम मे व्यस्त होगा। अमृता ने खाना खा लिया। रात के बारह के लगभग फोन की घंटी बजी। आठ-दस बार बजने तक चुप रही, फिर उठा लिया, "सो रही थी। ठीक हूँ। थैंक्यू।" कहकर नीचे रख दिया। फोन पुन. नहीं बजा। सोचा कि उसकी भी छुट्टी हुई अपनी भी छुट्टी हुई। साथ ही विचार आया। औरतों के मामले में बड़ा अनुभवी है; मुझ जैसी औरतों से मज़ा मिलता था वह एक ही ढंग का नहीं रहता था। अब छुटकारा देकर निश्चिंत होकर किसी और से परिचय पाकर मजे में रहने दे। इस कल्पना से वह बेचैन हो उठी। अगले दिन दोपहर भी वह नहीं आया। लेकिन फोन किया। बोला, "तुम्हारी चिट्ठी आज सवेरे मिली। तुम्हारे दिल को भारी लगने वाला कोई काम मैं नहीं करूँगा। लेकिन रात में जब भी मन चाहे फोन कर लेना। मैं जागता रहूँगा। दोपहर के समय कभी फोन मत करना। मैं दफ्तर में नहीं रहता। अगर तुम एक वादा करोगी तो मैं तुम्हारी बात का पालना करूँगा।" क्या बात है ? पूछूं तो वार्तालाप बढ़ेगा। अगर पूछूंगी नहीं तो वह बात खत्म नहीं करेगा। इसने धीरे से 'हूँ' कहा। "आत्म-हत्या कभी मत करना। कराहती रहो, पीड़ा सहो, लेकिन जीवित रहो। इतना करोगी तो तुम्हारी हर इच्छा पूर्ण करने के लिए मैं तैयार हूँ। फोन भी नहीं करूँगा।" वह बोला। अमृता कुछ बोली नहीं। उसने पुनः पूछा. "सुनती हो ?" वह खामोश रही। फोन नीचे रखने की आवाज सुनाई दी। अमृता को अपने-आप पर गुस्सा आया। मुझ पर मरने न देने का बंधन लादने वाला यह कौन होता है ? गुस्सा उसकी ओर मुड़ गया।

एक सप्ताह बाद अमृता की इच्छा हुई कि एक बार हासन हो आए। शिव-रामय्या ने कहा था कि मुकद्दमे की अगर थोड़ी-सी भी प्रगति होगी तो वे पत्र

या फोन द्वारा सूचित करेंगे। फिर खुद जाकर मिलने की उतावली थी। अब कोई और काम भी नहीं है। जीवन में कोई और उद्देश्य भी नहीं है। अब तो इस मुकद्दमे को जीतना ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन गया है। बच्चों को सुशी-लम्मा के यहाँ छोड़कर कार में निकल पड़ी। प्रतिपक्ष वालों ने वकील किया है। आपने जो-जो अभियोग लगाए थे उन्हें पूर्णतः अस्वीकार किया है। उनका जवाब अमृता को बताकर शिवरामय्या ने कहा, "वह वकील भोंदू है। अदालत में सिर्फ चिल्लाता रहता है, विरोधी पक्ष ने क्या-क्या तैयारियाँ की हैं, उनका अगला क़दम क्या होगा, इसकी कल्पना कर पाना उसके बूते के बाहर है। उसने लिखा है कि तुम्हारे मुवक्किलों की एक दमड़ी भी मेरे मुवक्किलों ने नहीं छुई है। ऐस्टेट खरीदने के लिए उनके पास आमदनी का अलग ज़रिया था। उसमें इतनी भी अक्ल नहीं कि कल के दिन अदालत में सबूत के साथ तलब किया जाएगा कि इतनी बड़ी रकम कहाँ से आई। हमारी जीत सौ फीसदी पक्की है।"

अमृता ने मन में ही कह लिया, ठीक है, रंडी को मजा चखाऊँगी। "अब मुकद्दमा अदालत में दायर हो चुका है। अब जो न्यायाधीश आए हैं बिना देरी के फटाफट फैसला सुना देते हैं। कोई भी पक्ष अगर टालमटोल करता है तो चिढ़ जाते हैं।" शिवरामय्या की बात सुनकर वह खुश हुई। मलली वेंकटेशय्याजी से एक बार मिलकर उनका अभिवादन करके अपने ऐस्टेट को चली गई। हिसाब-किताब जाँचकर मैनेजर के साथ ऐस्टेट का एक चक्कर लगाकर उस रात वहीं रही। दूसरे दिन सवेरे कार द्वारा जेनुकल के लिए निकल गई। मुकद्दमे की प्रगति उनको सुनाए बिना चैन नहीं था। गौडाजी गाँव में नहीं थे। कुछ ही समय पहले चिक्कमगलूरु चले गए थे। मंगलम्मा थीं। बात तो अच्छी की; लेकिन अमृता को लगा कि उनके मन में अपने प्रति कोई शंका झाँक रही है।

वह जानती थी कि मन की बात को बड़ी देर तक मन में ही रख लेना मंगलम्मा से संभव नहीं है। इसने खुद पूछा, "आंटी, लगता है कि मेरे बारे में शायद आपका मन खट्टा हुआ है। जी खोलकर बता दीजिए। अगर गलती हुई हो तो सुधार लूंगी।"

मंगलम्मा को बात करना कठिन हुआ। फिर भी अपने बेडरूम में ले गई; दरवाजा बंद करके बोली, "सुना है तुमने किसी को रख लिया है, क्या यह सच है?"

अमृता को मानो साँप सूंघ गया। पल-भर के लिए मन डावाँडोल हो गया। दूसरे ही क्षण यह बात इन तक कैसे पहुँची होगी, इस विचार के साथ बुद्धि तेज हो गई। "यह बात आपसे किसने कही है या किसने आपके कानों तक पहुँचायी है, मैं बता दूं?" अमृता ने कहा।

"तुम जैसी होशियार औरत को समझते क्या देर लगेगी कि तुम्हारी चाची

ने ।" तुरन्त मंगलम्मा ने जवाब दिया ।

"क्या वे खुद आई थीं ?"

"सारा परिवार आया था, गौड़ाजी के पास। कह रहे थे कि आप सुलह करवा दीजिए, चाहो तो पाँच लाख तक देंगे। उनको पता लग गया है कि अपने गौडाजी ने ही पहल लेकर सकलेशपुर में रेकार्ड वगैरह ढुँढ़वाया है। गौडाजी ने कहा, 'इसमें अपना कुछ नहीं। सकलेशपुर को निकले थे। तुम्हारी लड़की ने आकर कहा, गौडाजी, सब रजिस्ट्रार दफ्तर में मेरा एक काम अड़ा है, मैं किसी को नहीं जानती। हमारी लड़की के साथ पढ़ी है न ? मैंने कहा, चलो बेटी, मैं परिचय करा दूंगा। अपने साथ ले गया। बाकी बातें मैं नहीं जानता। तुम्हारी चाची मुझे भीतर ले आई; इसी जगह बैठकर बताया ऐसी बात है।"

"ऐसी बात यानी क्या कहा ?"

"तुमने पूछा है कि तुम्हारे पति की पढ़ाई का पैसा कहाँ से आया ? क्या एक सती-साध्वी द्वारा पूछी जाने वाली बात है, यह ? इसकी सारी जड़ में एक मर्द जिसे उसने रख लिया है, वह पट्टी पढ़ाकर यह काम करवाता है। उसकी संगति में पड़कर पति को छोड़कर बैठी है। अगर आप उसे ठीक रास्ते पर ला सकेंगी तो एक परिवार को बचाने का पुण्य मिलेगा।"

तुरंत अमृता ने जवाब दिया, "आप खुद जान गई होंगी कि जब अदालत में मुकद्दमा दायर किया गया तब इनके मुँह से निकली हुई बात है यह। इसी से आप समझ लीजिए कि मेरी चाची कैसी औरत है।"

"सुना कि तुम्हें पति से मिले सात साल हो गए ?"

"अच्छा, यह भी बता दिया है ? उसने कैसा धोखा किया है उसके बारे में कुछ नहीं कहा ? वे सारी बातें आपके सामने कहते हुए मुझे शर्म आती है। श्वेता होती तो उसके सामने कह सकती थी। वह मेरी उम्रवाली है," इतना कहकर अमृता ने बात खत्म की, बाल की खाल उतारने बैठना मंगलम्मा की आदत नहीं। बात यहीं खत्म हो गई।

खाना खाकर पुनः मैसूर की ओर अकेली कार चलाते निकली तब उसके मन में यह भावना भर गई कि वह एक छिनाल है, पापिष्ठा है। यह संपर्क न रखते हुए अगर नालिश करती तो अधिक जोश-खरोश के साथ लड़ सकती थी। खेद से भरे बोझिल मन से किलोमीटर के पत्थरों की संख्या गिनती हुई अमृता कार तेजी से भगा रही थी। उस दिन से शून्य-भाव की उत्कटता बहुत बढ़ गई। लगा कि जीवन का कोई अर्थ नहीं है, मर जाना ही एक मात्र अर्थपूर्ण क्रिया है। अब ट्रिगर दबा लेना बहुत आसान लगा। उस दिन से हर रात रिवाल्वर लेकर बैठती है। बीच में कभी-कभी पहाड़ के छोर तक भी जाती है। लेकिन उसे फोन न करने का निश्चय किया था। कितनी ही याद आती रहे, बस यों ही एक बार

नंबर घुमाकर उधर घंटी बजते ही चोंगा नीचे रखने का मन होता है; फिर भी उस विचार को कुचलकर फोन रख देती है। क्यों संभव नहीं हो पा रहा है? विश्लेषण करके देखने पर यही उत्तर मिलता है कि शायद जब तक मुकद्दमा जीतती नहीं तब तक मन में मरने की चाह नहीं।

हर बरसात से पहले छत पर डामर पुतवाना होता था। इस बार सोमशेखर के बिना सीधा मिस्तरी को बुलवाकर काम करवाने की ठानी। वह जानती थी कि मिस्तरी का घर गणेश टाकीज के पास है। एक दोपहर वहाँ जाकर नारायण शास्त्री मार्ग से लौट रही थी। आधा रास्ता तय कर चुकी थी कि मरम्मत के कारण सड़क पर रोक लगाया गया था। बायीं ओर लक्ष्मीपुर के छोटे रास्ते से जाने का निर्देश दिया गया था। छोटे रास्ते से मुड़कर आगे बढ़ते समय एक बड़ी लंबी-चौड़ी इमारत के निर्माण स्थान पर जलजा खड़ी थी। कार धीमी गति से जा रही थी इसलिए आपस में एक-दूसरे की दृष्टि मिली। इसने कार रोककर पूछा, "इधर कैसे?"

"जानती नहीं? मेरे कज़िन की इमारत है।" कहती हुई जलजा पास आई। उसके चेहरे पर आश्चर्य-भाव था।

इसे याद आया। बहुत दिन पुरानी बात है, डेढ़ साल बीत गए होंगे। अभी पहली मंजिल का काम हुआ है। बहुत दिनों बाद जब पुरानी सहकर्मी मिली हो तब तुरंत आगे निकल जाना मन को ठीक नहीं लगा। दूसरे वाहनों के लिए रास्ता छोड़कर अपनी कार इमारत की खाली जगह मे लाकर रोक दी। तभी नीलकंठप्पा दिखाई पड़े। इसे देखते ही वे भी 'नमस्कार मैडम' कहते हुए पास आए।

आपसी कुशल समाचार के बाद उसने पूछा, "यह अभी इसी अवस्था मे है!"

"जानती नहीं अमृता? इसकी बड़ी रामकहानी है। इसमें फंसकर मेरा बी०पी० मुझे तंग करने लगा है," कहते हुए तुरंत उसने जबान काट ली। अमृता अनुमान करने लगी कि सोमशेखर के बारे मे शायद कोई शिकायत है। इतने में जलजा बोली, "आप उधर ख्याल रखिए, नीलकण्ठप्पा; मैं अभी आई।" इशारा समझकर नीलकण्ठप्पा चले गए। "आप बड़ी मुद्दत के बाद मिली है, और वह भी अचानक। पता नहीं आपसे कुछ कहूं या न कहूं! मैं जिस दिक्कत में फंस गई हूँ वह मेरे दुश्मन को भी न आए। इसीलिए एकदम मुंह से निकल गया कि रामकहानी है। सॉरी।" कहती हुई जलजा कार की बगल में आ खड़ी हुई।

"कोई बात नहीं बताइए। मुझे इस बारे में कुछ पता नहीं।" सहजता से उसने जवाब दिया, "आइए बैठिए; कहीं कार रोककर बातें करेंगे।" इसने दरवाजा खोला।

क्राफर्ड भवन के सामने एक पेड़ के नीचे कार रोकने के बाद जलजा ने सारी बातें बता दीं। सोमशेखर का काम से रुचि हट जाना, राममूर्ति का पत्र, फिर अपने और सोमशेखर के बीच हुई बातें बताने के बाद वह बोली, "पता नहीं उन्हें क्या हुआ है; दफ्तर पूरा बंद करके जगह बेच दी है। बंबई के किसी आदमी का कर्जा भरना था। अगर हमारा यह नर्सिंग-होम पूरा कर देते तो तीन लाख मिल गए होते। चाहते तो मैं पेशगी भी दे देती। अपने हिस्से का आधा काम भी पूरा कर दिया था। चेक पर हस्ताक्षर करने का पूरा अधिकार मुझे है। उन जैसे ईमानदार आदमी को पेशगी देने में मुझे कोई डर नहीं था। लेकिन उनको रुचि ही नहीं थी। बस इसीके लिए राममूर्ति अमरीका से आकर बेंगलूर के एक आर्किटेक्ट को तैनात करके गया है। लेकिन वे ठीक निगरानी नहीं कर रहे हैं। सोमशेखर का दफ्तर बंद होने के बाद नीलकण्ठप्पा बेकार ही था। मैसूर में ही उसका छोटा-सा घर है। स्कूल जाने वाले बच्चे हैं। यह जगह छोड़कर बाहर जाने के लिए तैयार नहीं था। अब उस बेंगलूर के आर्किटेक्ट के मातहत माहवारी पर टेक्नीकल मिस्तरी के रूप में काम कर रहा है। अचानक सोमशेखर यों करके खुद भी बर्बाद हुए और हमें भी परेशान कर दिया। अपने पिताजी के छात्र, बचपन में हमारे घर आते रहने वाले इस सोमशेखर ने ऐसी हालत बना ली, इसका मुझे बड़ा खेद होता है।"

बातें करते समय जलजा उसी का मुंह देख रही है, समझ रही है कि क्या अमृता यह बात बिलकुल नहीं जानती? अमृता को आशंका हुई कि जलजा की बातों में कहीं यह ध्वनि तो नहीं है, कि अमृता को भीतरी सदमा पहुँचा होगा और सोमशेखर के अधःपतन का असली कारण वह जानती होगी। वह बोली, "मुझे कुछ पता नहीं मैडम।"

"कुछ भी पता नहीं?" जब जलजा ने आश्चर्य व्यक्त किया तो अमृता के दिल को छुरा भोंकने जैसा दर्द हुआ। "बंबई के कर्ज वगैरह का पता मुझे कैसे चलता? नीलकण्ठप्पा ने बताया।" फिर उसने बात बदलकर कहा, "आप कैसी हैं अमृता? आप जैसों के लिए नौकरी करने की अनिवार्यता नहीं है। हम जैसों के लिए उसके बिना चारा नहीं।"

मैं कार में कालेज जाती थी। आज भी कार में घूमती हूँ। इन्होंने मुझे बड़ी ऐस्टेट की मालकिन समझा है। लेकिन ऐस्टेट की बराबरी का कर्जा, उसके उत्पादन से बढ़कर ब्याज की परेशानी ये लोग नहीं जानते। अमृता ने ये सारी बातें बताई नहीं। याद आया कि नौकरी छोड़ने के बाद पहली बार मिली हैं। इसलिए त्याग-पत्र देने की मजबूरी क्या थी, बताने का मन हुआ। लेकिन कहने बैठूं तो उसकी पार्श्व-भूमि भी समझानी पड़ेगी; केवल प्रिंसिपल के दर्प की बात कहकर शायद रुकना संभव नहीं हो पाएगा। अगर कह दूंगी कि उनके दर्प के

कारण नौकरी छोड़नी पड़ी तो शायद कहेंगी, आप जैसे मालदार लोग ऐसा कर सकते हैं, लेकिन हम जैसों को किसी भी तरह निभाना ही पड़ता है। इस साव-धानी के कारण अमृता ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। घड़ी देख ली, डेढ़ बजा था। "चलिए आपके घर तक छोड़ देती हूँ।" उसने कार स्टार्ट की।

अकेली बैठकर घर जाते समय उसे तिरस्कृत होकर नीचे गिर जाने का-सा आभास हुआ। तीन लाख की आमदनी वाले नर्सिंग होम का यह काम छोड़ दिया, इतना सब कुछ हुआ है तो सात-आठ माह तो बीत गए होंगे। दफ्तर की जगह बेचकर, पता नहीं, दो-तीन माह तो हुए होंगे। 'कोई संपर्क नहीं चाहिए, दूर रहिए' मैंने चिट्ठी इधर लिखी थी। हर दोपहर आता था, कभी अपने कारोबार के ठप्प हो जाने की बात नहीं कही। अमृता को गुस्सा आया। जब मेरी चिट्ठी मिली थी उस दोपहर को खुद उसने फोन पर बताया था, 'दोपहर के समय कभी फोन मत करना, मैं दफ्तर में नहीं रहूँगा।' अमृता को अब यह बात याद आई। आज पूरे बीस दिन हो गए। तब तक बेच चुका था। इसीलिए यह बात कही थी अब समझ गई। घर जाने के बाद इतनी पीड़ा होने लगी कि मानो कुचली गई हो। काम में रुचि न होने का बहाना करके तीन लाख की आमदनी वाला काम अधूरा छोड़ दिया है। दफ्तर की जगह को बेचकर—इस सोच के साथ वह बात याद आ गई, मेरा कर्जा चुकाने के लिए रात में फोन करके दूसरे दिन सवेरे ग्यारह से पहले बंबई से टेलेक्स द्वारा रक़म मँगवाई थी, ऐसा आदमी बंबई का कर्जा चुकाने के लिए मुझे कैसे सूचना देता भला ? ज़िद, मुझसे ज़िद है। मेरे साथ वाला प्यार भी ज़िद ही है। किसी लहर में आकर किसी उत्कट क्षण में उसने कहा था कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ। उसी को ज़िद बनाकर उससे बँध गया। भीतर वास्तव में प्यार नहीं है। अगर होता तो दफ्तर बेचने से पहले मुझसे पूछे बिना, सूचना तक दिए बिना···बड़ा गुस्सा आया। अभी उसके घर जाकर बाल नोचकर पूछने का मन हुआ। लेकिन अपनी ही चिट्ठी की याद से ठोकर खा गई। थाली में एक कौर खाना लेकर खाकर लेट गई। जानती थी कि नींद तो आएगी नहीं। एक ही करवट लेटे-लेटे दर्द महसूस करके चित, बायीं करवट, दायीं करवट, पाँव फैलाकर, घुटने मोड़कर बेचैनी से करवटें बदलती रही। उसने पहले ही दूर किया था। शायद इसी ताक में था कि मैं खुद दूर हो जाऊँ !—यही अर्थ बार-बार निकल रहा था।

चार के लगभग एक विचार आया। वहाँ जाऊँ तो नीलकण्ठप्पा मिलेंगे। उनके जरिए उसके सारे कारोबारों की जानकारी पाकर, पूछने पर क्या वे बताएँगे ही ? दफ्तर के भीतरी अलंकरण के संदर्भ में कितने स्नेह और शालीनता से पेश आते थे, जरूर बता देंगे। तुरंत उठी, कपड़े बदल लिए, बालों में कंघी फेर-कर निकली। जलजा नहीं थी। मजदूर लोग काम कर रहे थे। नीलकण्ठप्पा ठेके-

दार के मिस्तरी नहीं थे। बेंगलूर के आर्किटेक्ट के प्रतिनिधि बनकर तकनीकी बारीकियों की निगरानी करते थे। अत: बारहों घंटे सामने रहने की आवश्यकता नहीं थी। "नीलकण्ठप्पा जी, आपसे कुछ बातें करनी थीं। अब फुर्सत है ? अथवा···?" नीलकण्ठप्पा ने तुरंत कहा, "मैं भी अब निकलने वाला ही था मैडम, फुर्सत है।"

"आइए" अपनी बगल वाली सीट का दरवाजा खोला। वे झिझकने लगे। "पीछे बैठिए" पीछे झुककर वहाँ का दरवाज़ा खोला। उन्होंने भीतर बैठकर दरवाज़ा बंद कर लिया। क्राफर्ड भवन के सामने वाले पेड़ के नीचे जहाँ दोपहर मे आई थी, कार रोककर अमृता ने पूछा, "मैं एक बात पूछूंगी। बिना किसी दुराव-छिपाव के आप जो कुछ जानते हैं, बता दीजिए। माँ चामुंडेश्वरी की कसम। मैं आपका जिक्र किसी से नहीं करूंगी। आप भी कोई बात छिपाइएगा नहीं।"

यह क्या पूछना चाहती है इसका अंदाजा नीलकण्ठप्पा को था। उन्होने तुरत जवाब नहीं दिया। दुबारा अनुरोध करने पर बोला, "कौन-सी बात आप से छिपी है, मैडम ?"

वह स्टियरिंग के सामने ही बैठी थी। पीछे मुड़कर उसका चेहरा देखने से झिझक के मारे खुलकर बातें नहीं कर पाएगा इस आशंका से अमृता सामने देखते हुए ही बोली, "शायद आपका ख्याल है कि मैं सब कुछ जानती हूँ। वास्तव में मैं कुछ नहीं जानती। अमरीका वालों का काम क्यों छोड़ दिया ? दफ्तर कब बेचा ? सारी बातें बताइए।"

नीलकण्ठप्पा को आश्चर्य हुआ। अमृता ने पुन: अनुरोध किया, जो बात है बेझिझक कहिए। तब वह बोला, "मेरा ख्याल था कि आपके स्नेह मे पड़कर उनको जीवन में किसी बात की रुचि नहीं है। काम में भी रुचि नहीं है। अकेला ही नहीं, जलजा मैडम तथा बाकी लोगों ने भी यही समझा है। दफ्तर के अड़ोस-पड़ोस के व्यापारियों में भी यही बात होती है। कहते हैं कि देखो, प्यार आदमी को किस हद तक ले जाता है।"

"क्या आप इन पर विश्वास करते हैं ?" अमृता ने मुड़कर पूछा।

अब तक नीलकण्ठप्पा की झिझक जाती रही थी। वह बोल पड़ा "हर रोज दोपहर के बारह से लेकर शाम के पाँच तक क्या वे आपके घर नहीं जाते थे ? उनके मातहत काम करने वाले हम लोग चुप रहते थे। इसका मतलब यह नहीं था कि हम जानते नहीं थे।" अमृता को यह बात मानो भर्त्सना-सी लगी। दो पल मुंह से बात नहीं निकली। थोड़ी देर रुककर नीलकण्ठप्पा ने ही कहा, "उनकी तरह काम की जानकारी रखने वाला कोई नहीं है। यों ही अगर आइडिया देकर बता देते कि क्या-क्या करना है, मैं खुद ड्राफ्टिंग कर देता। ये बेंगलूर वाले अरबी घोड़े हैं। बहुत बड़ा बिजिनस है। सारा काम असिस्टेंटों से करवाते

हैं। इनकी तरह सारे डिटेल्स बारीकी से नहीं देखते। इन्होंने मुझे पच्चीस हज़ार रुपये दिए और कहा कि कहीं काम देख लो। उससे पहले ही, दफ्तर बेचने से पहले ही मुझे पता चल गया था। मैंने बहुत मिन्नतें कीं, 'सर, ऐसा क्यों करते हैं, यह ठीक नहीं।' वे बोले, 'जब मन लगाकर ठीक ढंग से काम करते नहीं बनता तब नाहक ग्राहकों को क्यों सताए?' अगर उनमें काम करने की धुन होती तो पौने दो लाख जोड़ पाना कोई कठिन काम नहीं था। उससे पहले ही, यानी कि आज को दस महीने हो गये जब अमरीका वालों का काम छोड़ दिया था तभी लगा था कि उनका जी उचट गया था। मैं और नंजुंडेगौड आपस में बातें करते रहे कि इतना बड़ा काम इन्होंने क्यों छोड़ा? उनमें और इनमें कैसा मनमुटाव आया? उससे पहले भी राजशेखर शेट्टी का काम भी इसी तरह छोड़ दिया था।" उसने बात पूरी की।

पूछने के लिए कोई और बात सूझी नहीं। नीलकण्ठप्पा को भी बात नहीं सूझी। शाम हो गई; कुक्करहल्ली तालाब के उस ओर कोने में सूर्य डूबने की अवस्था में था। नीम के पेड़ों को झकझोरते हुए हवा बह रही थी। नीलकण्ठप्पा पछतावे के सुर में बोला, "दफ्तर के अड़ोस-पड़ोस वालों में बातें होती रहती थीं कि आपके कारण वे बर्बाद हुए। मेरा भी यही ख्याल था। लेकिन अब पता चला कि आपको खबर भी नहीं। शायद वे आप से लव करते होंगे। आप नहीं करती होंगी। इस तरह इकतरफा प्यार करके सिर खराब कर लेने वालों को क्या हमने देखा नहीं? इसमें आपकी ग़लती नहीं भी हो सकती, मैडम।" अमृता को अहसास हुआ कि मानो किसी ने सिर पर भारी पत्थर दे मारा हो। स्टियरिंग को ही घूरते बैठी रही। "अब फिर कभी किसी ने इसका जिक्र किया तो मैं सचाई बता दूंगा। आज तक दूसरों की बातों की लापरवाही करते मैं अंजान बनकर चुप रहा करता था।" आगे वह बोला, "मुझे साइट पर जाना है। मेरी साइकिल वहीं है।" दरवाजा खोलकर वह उतर पड़ा। अमृता ऐसे चुपचाप बैठी रही मानो साँप सूंघ गया हो। उन्हें वहाँ तक ड्राप देने की भी बात नहीं सूझी। वह लंबे डग भरते हुए चला गया।

अमृता यों बैठी थी मानो मस्तिष्क में सर्द चीरता हुआ पानी भरा हो। सूर्य डूबकर अँधेरा छा गया। फिर भी वह बेखबर रही। बड़ी देर बाद कार पर टार्च की रोशनी का अहसास हुआ। उधर गर्दन मोड़कर देखा। खट्-खट् जूतों की आवाज़। जिला कचहरी की ओर से पुलिस का सिपाही था। "किसकी कार है?" कहते हुए वह पास आया। टार्च की रोशनी में अमृता को देखकर पूछा, "बड़ी देर से अकेली बैठी हैं; क्या बात है माँ जी?"

"शाम को ठंडी हवा बह रही थी, बैठी रही।" हकलाती हुई-सी वह

बोली।

"घर जाइए। यहाँ अकेला रहना ठीक नहीं।" सिपाही के कहते ही उसने कार स्टार्ट की। जिला कचहरी के सामने से ही चलकर लक्ष्मीबाई मार्ग को पार करने तक उसे ख्याल नहीं आया कि इस रास्ते से जाएगी तो आप देवराज अरसु मार्ग में प्रवेश करेगी। वहाँ प्रवेश करते ही उसे याद आया कि आगे बायीं ओर ऊपरी मंजिल पर उसका दफ्तर था; उसकी तख्ती, भीतर का अलंकरण आदि अपनी निगरानी में करवाया था; पता नहीं अब कौन-सी तख्ती लगी होगी। उस मार्ग से जाने का मन नहीं हुआ। ब्रेक लगाकर झटके के साथ गाड़ी रोकी। पीछे देखा। वाहनों की भीड़ थी। इंतजार करती रही। भीड़ छँटते ही वहीं गाड़ी को आगे-पीछे लेकर मोड़ लिया। पुन: लक्ष्मीबाई मार्ग में प्रवेश करके रमाविलास मार्ग से होते हुए अपने घर की ओर चली। बच्चों को अभी लाई नहीं थी इस बात का होश अब आया।

"माँ, इतनी देर क्यों की?" बच्चों ने पूछा। "अदालत का काम था।" उसने बताया। अपने साथ नानी-मामा द्वारा धोखा देने और उसके लिए नालिश किए जाने की बात उसने पहले ही बच्चों को बता दी थी। बच्चों के साथ ज्यादा बोली नहीं। माँ का कभी-कभी खोया-खोया-सा रहना बच्चों को भी कुछ हद तक पता चल गया था। बच्चों के सो जाने के बाद वह एक घंटे से भी अधिक समय तक लाउज के सोफे पर गर्दन झुकाए बैठी रही। तुरंत उसके मन में कोई कार्य-कारण संबंध कौंध गया। जब पता चला था कि वह बंबई से कर्जा लाया था तब मैंने ही खुद अनुरोध करके उसे लौटवाया था। खुद अपनी निगरानी में अलंकरण करवाया था। एक माह से भी अधिक समय तक अपने सामने सुंदर विन्यास में तख्ती बनवाई थी। प्रारम्भोत्सव की सारी तैयारियाँ कर के होम के समय मन बिगाड़कर तुरंत कार में कन्नंबाड़ी-बांध की मृत्यु-नहर में गिरने के लिए चली गई। प्रारम्भोत्सव वाले सारे दिन मौत और विनाश की ऊहापोह में डूबी रही। जिस काम में ऐसी मनोदशा वाली औरत ने हाथ डाला हो, उस दफ्तर का विनाश नहीं होगा तो और क्या होगा? जब तक मरूँगी नहीं तब तक मुझे ही नहीं वरन् उसे भी चैन मिल पाना संभव नहीं। उस दिन के मेरे उस आचरण के फलस्वरूप ही आज ऐसा हुआ। निश्चयपूर्वक यही कार्य-कारण संबंध है। बुद्धदेव को जैसे ज्ञानोदय हुआ था, उतने ही निश्चयात्मक रूप से इसे अहसास होने लगा। कारण के नाश के बिना कार्य का नाश संभव नहीं—यह परिहार भी सूझ गया।

पल-भर की देरी नहीं की। ऊपर उठी। घर पर ताला लगाया। कार बाहर निकालकर गेट बंद करके शहर की ओर भागने लगी। साढ़े ग्यारह बज रहे थे। मृगालय वाला मोड़ पार किया। हार्डिंज चौक, सयाजीराव मार्ग, धनवंतरी मार्ग

पार करके कन्नंबाड़ी बाँध की सड़क पर निकली। ओंटीकोप्पलु पीछे छूट गया। सैनिटोरियम, रेलवे गेट पार करने के बाद जब अँधेरा आरंभ हुआ तब विचार किया कि अब सोच-विचार का प्रश्न नहीं है। इस अँधेरे में विश्वेश्वरय्या नहर की घरघराहट मात्र सुनाई दे रही है। पानी के उफनने की तीव्रता दिखाई नहीं देगी। देखकर भी क्या करना है? आँखें बंद करने की भी आवश्यकता नहीं। चुपचाप कूद पड़ना काफी है। अधिक से अधिक पंद्रह मिनट की बात है। उसने वेगवर्धक को और भी दबाया। श्रीरंगपट्टण की ओर मुड़ने वाला दोराहा जब आया तब अनजाने में ही किर्रर्र के साथ ब्रेक दबाकर गाड़ी को नियंत्रित करना पड़ा। फिर भी कार मोड़ वाले खंबे से टकराई, बैनेट दुच गया। अमृता ने उतरकर देखा। ब्रेक नहीं लगानी चाहिए थी। यहीं कार की दुर्घटना में ही सारा खत्म हो गया होता। कंबख्त इस पाँव ने आदतन ब्रेक पर जोर लगाया। जीने के लिए आदत के सिवा कोई कारण नहीं, समर्थन नहीं।—एक नया तत्त्व समझ गई। लौटकर कार में आ बैठी। स्टार्ट करके बायीं ओर घुमाकर बाँध की दिशा में यों भगाने लगी कि बाग-बगीचे सभी पागलों की तरह पीछे की ओर भागने में लगे हैं। टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर इस रफ्तार से जाने में एक और दुर्घटना होने की संभावना है। ठीक ही होगा, दस मिनट पहले ही काम खत्म हो जाएगा। पानी में ही इहलीला समाप्त करने का ऐसा कोई पवित्र संकल्प भी नहीं है। बलगोल आया। अभी डेढ़ मील भी नहीं है। रफ्तार और भी बढ़ाकर कार दौड़ाते समय सहसा किसी याद में ब्रेक दबाकर गाड़ी रोक दी। कार किर्रर्र के साथ रुकी: रात के समय बाँध के बाहरी गेट पर ताला लगाकर रखवाली करते रहते है। कार भीतर नहीं छोड़ेंगे। किसी को नहीं। अकेली औरत को देखकर पूछ-ताछ करेंगे, आत्महत्या के लिए आई है इसका अनुमान करके···निराशा के कारण क्रोध भड़कने लगा। बायीं ओर हाथ डालकर टटोलकर देखा। रिवाल्वर लायी नहीं। नहर के मुंहाने में गिरने का एकमात्र उद्देश्य लेकर निकली थी। रिवाल्वर की याद ही नहीं आई। पापी! पापी अगर समुद्र में भी घुसेगा तो घुटने भी नहीं डूब पाएँगे। मैं डुबाऊँगी। हारूँगी नहीं। घर जाकर मुझे रिवाल्वर से ही मोक्ष मिलने वाला है। पहाड़ का छोर ही मोक्ष का स्थान बनने वाला है। इस निश्चय के साथ तुरंत कार को मोड़ लिया और पहले से भी अधिक तेज गति में दौड़ाने लगी।

दोराहा छूट गया। टीला आया। मैसूर के जगमगाते लाखों दीप सामने आए। रेलवे गेट पार करके सैनिटोरियम से गुजरते समय आगे गोकुल मार्ग पर दाहिनी ओर घूमकर जयलक्ष्मीपुर वाले सोमशेखर के घर जाने का विचार आया। गाड़ी की रफ्तार कम की। तुरंत गुस्सा आया। बेशर्म होकर उसके पास चली जाए? पाँव को प्रज्ञापूर्वक आदेश दिया। गति बढ़ाकर ओंटीकोप्पलु पार करते समय मन में आया कि देवराज अरसु मार्ग पर जाकर देखें कि उस दफ्तर की जगह

अब कौन-सी तख्ती लटक रही है। पेट्रोल बंक के पास दायीं ओर मुड़कर देवराज अरसु मार्ग में प्रवेश कर गई। जब रात शुरू हुई थी तब यहाँ तक आकर लौट जाने की बात याद आई। अब भी पांव ने ब्रेक पर जोर लगाया। मन को समझाया कि एक बार उसे देखकर अपने को खत्म कर लूंगी; डरकर मरूंगी नहीं; सचाई को जानकर ही मरूंगी। उसने ब्रेक का दबाव उठा लिया। बायीं ओर पहली मंजिल पर अपनी चिर-परिचित जगह पर 'हीरालाल फाइनान्शियर्स' का बोर्ड लटक रहा था। अगर मुझे पता चलता और मैं खटपट करके खुद खरीद लेती तो! एक काल्पनिक परिहार मन में आया।

अगर मैं खरीद भी लेती तो वह अपना दफ्तर वहाँ नहीं रखता। मेरी एक कौड़ी भी वह धूल के समान समझता है। गुस्सा चढ़ा। गति बढ़ाकर घर की ओर निकली। भीतर जाकर रिवाल्वर हाथ में लिए जब बाहर आई तब सहसा आखिरी बार फोन पर कहीं सोमशेखर की बात याद आई। अगर तुम एक वादा करोगी तो मैं तुम्हारी बात का पालन करूंगा। तुम हर्गिज आत्महत्या नहीं करोगी। कराहती रहो, पीड़ा सहती रहो, परंतु जीवित रहो। इतना निभाओगी तो तुम्हारी हर इच्छा पूर्ण करूंगा। फोन भी नहीं करूंगा। उसके बाद उसने कभी फोन किया भी नहीं। कराहते, पीड़ा सहते हुए जीवित रहने के लिए कहने वाला यह कौन होता है? जो मुझे बाहर के बाहर ही रखता है उसे क्या हक़ है? अभी पूछती हूँ कि तुम्हें क्या हक है? दरवाजा बंद करके वह भीतर अपने कमरे में गई। सोमशेखर का नंबर घुमाने लगी। अंतिम दो अंक अभी घुमाने बाकी थे तभी विचार आया कि जिसका कोई हक ही नहीं है उसे मैं फोन भी क्यों करूँ? वहीं काटकर रिसीवर वापस रख दिया। हाथ में रिवाल्वर लेकर जब पलंग पर बैठी तब अहसास हुआ कि सारी चेतना लुप्त हो गई है और इतनी दुर्बलता आई है कि हाथ-पाँव हिलाने या कुछ सोचने की भी शक्ति नहीं रही। बिस्तर पर लुढ़क गई। नींद आ गई। सवेरे काम पर आई हुई महादेवम्मा ने जब कहा, "यह क्या माँ जी, कार गैरेज में छोड़ने के बदले गेट के बाहर ही सड़क पर छोड़ी है?" तब याद आया कि कार की चाभी भी उसी में है।

सच बात यह हो सकती है कि शायद वे आपसे लव करते होंगे। आप नहीं करती होंगी। इस तरह इकतरफा प्यार करके सिर खराब कर लेने वालों को क्या हमने देखा नहीं?—बच्चों को स्कूल छोड़कर लौटते समय नीलकण्ठप्पा की बात याद आई। शायद यह बात सच ही होगी। घर आकर नहाते समय हर रोज दोपहर के बारह बजे से शाम तक यहाँ मेरी पीड़ा को सहता रहा, रात को फोन पर दो-दो घंटों तक बातों की चुभन, तानाकसी सहता रहा। अगर प्यार नहीं होता तो क्या इतना धीरज रखना संभव है?—इस विचार के साथ मानो

आँखों के सामने अँधेरा छा गया। हमाम की दीवार में मुंह खोंसकर बाँहें टिका-कर खड़ी रही। लगा कि चक्कर खाकर गिर पड़ेगी, बेहोश हो जाएगी। पल-भर के लिए सारी दुनिया के तिरोभूत होने का अहसास हुआ; फिर होश आया। भीतर से रोना फूट पड़ा। उसे रोकने की चेष्टा न करके रोने लगी। बाहर काम में लगे हुए पुट्टम्मा और मादेवम्मा को कहीं सुनाई न दे इस डर से बाल्टी में जोर से नल चालू किया जिससे पानी की आवाज में रोने की आवाज बाहर न निकल जाए। फिर खुलकर रोई; दिल का गुबार हल्का कर लिया। फिर मुंह धोते समय जी हल्का हुआ। बदन पोंछकर अपने कमरे में आते समय अपने भीतर की सारी उलझनें सुलझ कर अगला रास्ता साफ दिखाई देने का आभास होने लगा। हाथ में जो साड़ी आई वह पहन ली, बालों की कंघी की, माथे पर बिंदी लगाकर चाभियों वाला वैनिटी बैग लेकर निकली। "ज़रा बाहर जा रही हूँ। तुम लोग ताला लगाकर चली जाना।" दोनों नौकरानियों से कहकर कार चलाते निकली। चलाने का अंदाज ऐसा था कि आँखें बंद करके चलाने पर भी सही ठिकाने पर पहुँच जाए।

अमृता ने घंटी बजाई। सोमशेखर ने आकर दरवाज़ा खोला तो चौंक गया। "आओ, आओ" उसने स्वागत किया। अमृता ने उसका चेहरा देखा। दुबलाया हुआ था; लेकिन गंदा नहीं हुआ था। दाढ़ी, स्नान आदि मामले में नियमितता थी। लुंगी, बनियाइन साफ़ थीं। भीतर आकर अमृता ने किवाड़ के पीछे चप्पल छोड़ी और वह सोमशेखर के कमरे में चली। पलंग पर कोई किताब पड़ी थी। उठाकर देखा। वास्तुकार की नई कल्पनाओं का ग्रंथ था। वह पलंग पर बैठी। उसके सामने कुर्सी खींचकर सोमशेखर बैठा।

"कैसी हो?" सोमशेखर ने पूछा।

"देखने से पता नहीं चलता, कैसी हूँ?" वह मुसकुराई।

"वजन घटाने की सनक चढ़ी है औरतों को।" वह बोला।

"पुरुषों को भी।" उसने बात को उल्टा घुमाया।

"प्रकृति के अनुसार ही तो पुरुष को रहना पड़ता है।"

सोमशेखर ने हँसकर कहा। इतने में रसोई-घर से कुकर की सीटी सुनाई दी। वह जाकर स्टोव बंद करके आया।

"कितने दिनों से घर में खाना पक रहा है?" अमृता ने पूछा।

"लगभग एक महीना हुआ।" उसने जवाब दिया।

बात बढ़ाना अमृता के लिए कठिन लगा। वह इस लहर में कार भगाते आई थी कि उसके सामने अपना सारा दिल खोल लेगी, सोमशेखर से सारी बातें उगलवाएगी। अब लगा कि अपने दोनों के बीच कोई झीनी-सी पारदर्शी शीशे की दीवार खड़ी हुई है। सब कुछ दिखाई तो दे रहा है, लेकिन स्पर्श, गंध आदि निकट

संबंध से वंचित अवस्था है। अमृता को घुटन-सी हुई। इसे तुरंत तोड़ देना चाहिए। जितनी देर करेंगे उतनी शीशे की शक्ति बढ़ जाएगी। इस सोच से उसने सीधा विषय को उठा लिया, "जलजा मिली थी। नीलकण्ठप्पा मिले थे। सारी बातें बता दीं। नसिंग होम का काम छोड़ा जाना, बाकी काम भी छोड़ना, दफ्तर की बिक्री, बंबई का कर्ज़ा फेरना आदि सारी बातें। पहले ही एक बार मैंने कहा था : मैं तुम्हें बर्बाद कर रही हूँ। तुमने मुझे बताया क्यों नहीं कि बात ऐसी है? अगर बता देते कि काम से मन उचट गया है, तो मेरा बर्ताव सुधर जाता।" सोमशेखर ने जवाब नहीं दिया। अमृता की बातों के अर्थ को जानने की चेष्टा में चुप बैठा रहा। "क्यों नहीं बताया?" उसने दुबारा पूछा।

"क्या वास्तव में सुधर जाता? केवल बर्ताव सुधारने का मतलब यह नहीं कि तुम सिर्फ मेरे साथ खुश दिखाई देती रहो। मैं ऐसा सुधार नहीं चाहता था, अब भी नहीं चाहता।"

इस बात को समझने के लिए अमृता को कुछ समय लगा। उसका ठीक-ठीक जवाब नहीं सूझा। "कुल कितने में बेचा? अब गुजारे के लिए क्या करते हो?"

"साढ़े तीन लाख में। एक लाख का लाभ हुआ। बबई का कर्ज़ चुकाया। नीलकण्ठप्पा को पच्चीस हज़ार दिया। और कुछ छोटा-मोटा कर्जा था, वह चुकाया। एक लाख ब्याज में लगाया है। महावार एक हज़ार मिलता है। छह सौ घर का किराया और चार सौ में गुजारा चल रहा है। इसीलिए खाना पकाना शुरू किया है। कोई काम-धाम तो है नहीं। समय भी कट जाता है।"

अमृता से गुस्सा रोका नहीं गया। "मेरा दिल जलाने की खातिर इस गरीबी को न्यौता देकर भोग रहे हो?" वह बोली।

"तुम्हारा दिल जलाने का प्रश्न ही नही है। अपनी आर्थिक स्थिति में जैसा रहना चाहिए उस तरह गुज़ारा कर रहा हूँ। अपने देश के लोगों की परि-स्थिति से अगर तुलना की जाए तो मेरी स्थिति गरीबी की है ही नहीं। बिना कोई काम किए दो जून का खाना, रहने के लिए घर है तो यह गरीबी कैसे हुई?"

"अपने मित्र से टेलेक्स द्वारा पैसा मँगवाकर मेरे खाते में जमा करने की बात मुझे अभी याद है। फिर भी पूछती हूँ। दफ्तर बेचने की नौबत आने पर भी तुमने मुझे बताया क्यों नहीं? मैं कहीं न कहीं से बंदोबस्त कर देती। ललित-महल मार्ग वाला घर रेहन रखकर पैसा दिलवाती। दिल से मुझे दूर रखकर ऊपर से प्यार-प्यार का जप करने का क्या मतलब?"

• सोमशेखर ने तुरंत जवाब नहीं दिया। लेकिन उसके चेहरे से साफ़ जाहिर था कि उसे इस प्रश्न की प्रत्याशा थी। जवाब तलब करने के अंदाज में अमृता

उसका चेहरा घूरने लगी। "सुनो, पैसा लेने में मुझे विश्वास नहीं। मेहनत करनी चाहिए। मेहनत करने के लिए रुचि चाहिए। जब तुममें जीवन के प्रति प्यार नहीं तब मुझमें कहाँ से आ पाएगा ? जब वही नहीं रहा तब काम में रुचि कैसे उत्पन्न हो सकेगी ? मेरी गरीबी की जड़ यही है। जब तक इसका निवारण नहीं होगा तब तक तुम से ही नहीं वरन् किसी की फूटी कौड़ी भी नहीं छुऊँगा।"

"इस एक हज़ार का आना बंद हो जाए, तब क्या करोगे ? उदाहरण के लिए समझ लो कि घर के मालिक ने किराया डेढ़ हज़ार कर दिया, तब क्या करोगे ? तब तो काम में रुचि लेनी ही पड़ेगी न ?"

"अगर जीने की आकांक्षा हो तो काम शुरू करना ही पड़ेगा। वरना यह समझ कर चुप रहना होगा कि खाना भी नहीं चाहिए, जीना भी नहीं चाहिए। अब तर्क करते बैठे रहना ठीक नहीं। मेरे हाथ की रसोई का जायका देखो, चलो। साँबर बनाता हूँ।" वह उठकर रसोई-घर में गया।

अमृता उठी नहीं। कुछ समय बाद सोमशेखर ही दो थालियाँ लेकर वहाँ आया। पलंग के पास वाली टी-पाय् पर रखकर उसे पास खींच लिया। फिर जाकर पीने का पानी ले आया। थाली में भात और सब्जी लगाकर रखा। अब साँबर का बर्तन और कटोरी में दही लाकर रखा। "जायका देखकर हँसना मत," उसने औपचारिक बात कही।

अमृता ने उठकर हाथ धो लिए। फिर खाना खाने लगी। हरा धनिया, कढ़ी पत्ता वगैरह कुछ नहीं। बाजार में मिलने वाला कोई मसाला, स्वादहीन साँबर। खाना खाते समय कोई बात नहीं सूझी। वह समझ गई कि किराया भरने के बाद बचने वाले चार सौ में बिजली, कुकिंग गैस, दाल-चावल, सब्जी, दूध, कॉफी, चीनी आदि की व्यवस्था करने के बाद एक जोड़ा कपड़ा भी खरीद न सकने की स्थिति है। "दोनों जून पकाते हो ?"

"दोपहर का पका हुआ रात के लिए भी बच जाता है। पुरानी फ्रिज है न, बंबई से लायी हुई।"

"सवेरे का नाश्ता ?"

"नाश्ते के नाम से अलग कुछ नहीं। लगभग ग्यारह बजे खाना हो जाता है। पुनः रात का खाना। बस।"

"भोजन के बाद उठकर अमृता ने थालियाँ धोकर रखीं। सोमशेखर ने रसोई के बर्तन धोए। "नौकरानी नहीं है ?"

"क्या जरूरत है ? माहवार चालीस-पचास माँगती है।" सहजता से उसने कहा।

अमृता से अब अधिक देर वहाँ बैठना कठिन हुआ। "चलती हूँ। फोन करूँगी।"

"अदालत की बात नहीं बताई।" सोमशेखर ने पूछा।

"उसे लेकर किसे क्या करना है ?" अमृता ने उदासी दिखाई।

"कुछ करना-धरना न सही, लेकिन काम की प्रगति का पता लग जाए तो मुझे खुशी होगी। कहो, कहे बिना मत जाना।" सोमशेखर ने अनुरोध किया।

अमृता में बात करने की इच्छा नहीं थी। इस मामले में उससे बातें करने में झिझक हुई। "फिर कभी बताऊँगी।"

वह उठ खड़ी हुई। जब वह किवाड़ के पीछे रखे चप्पल पहनने लगी तब सोमशेखर ने शर्ट पहन ली। फिर अमृता के पीछे-पीछे नीचे उतरकर कार तक गया। हाथ हिलाकर 'बाय्-बाय्' कर विदा किया।

घर पहुँचते-पहुँचते यह भावना ठोस हो गई कि वह मानसिक रूप से दूर चला गया है। हम दोनों के बीच दूरी आ गई है। इस बात की बेचैनी हुई कि अपने लिए [illegible] का कोई आसरा ही नहीं रह गया। कुत्तों को खाना खिलाकर उन्हें घूमने के लिए खुला छोड़ दिया और वह लाउंज के सोफ़े पर आकर लेट गई। कुछ समय बाद सोमशेखर की सारी बातें याद आईं। लगा कि उसकी बातें केवल निराशाजनक नहीं थीं। जब तुममें जीवन के प्रति प्यार नहीं तब मुझमें कहाँ से आ पायेगा ? जब वही नहीं रहा तब काम में रुचि कैसे उत्पन्न हो सकेगी ? जीवन के प्रति प्यार यानी जब चाहो तब उसका आयात कर लेना क्या आसान है ? सोमू, तुम्हें मेरे भीतर की प्रेरणा और प्रवृत्तियाँ समझ में नहीं आएँगी। मैं कोई ढोंग नहीं करती। जब मौत का दबाव बढ़ जाता है तब उसे रोकने की शक्ति न पाकर मैं कैसे तड़पती रहती हूँ तुम पूरी तरह नहीं जानते। अगर जानते होते तो इस तरह मुझ पर अभियोग न लगाते। सहसा उसकी आँखों में अ[illegible] भर आए। शायद तुम्हें मुझसे प्यार होगा, लेकिन समझ लेने की हमदर्दी नहीं है। अगर होती तो इस तरह कठोर न बनते। मन में इस बात को बार-बार दुहरा लिया।

उठकर अपने कमरे में जाते समय मन मे ठान ली कि मैं भी दिन में दो ही बार खाना खाऊँगी, नाश्ता, फल, दूध आदि सभी छोड़ दूंगी। उस घटिया मसाले के बदले घर में बना साँबर का मसाला और रसम् का मसाला दे आने का विचार आया। अगर उसने स्वीकार नहीं किया तो ? डर लगा। उसके बारे में डर लगा। कपड़े बदलकर लेट गई और सोचने लगी, आज वह दूर ही [illegible]था; मैं बिस्तर पर बैठ गई। वह एक कुर्सी लाकर बैठ गया, हाथ से छुआ तक नहीं। कंधे पर हाथ डालना, लिपटना, प्यार, कोमल भावनाएं आदि की अभिव्यक्ति नहीं। तुरंत उसे अपनी चिट्ठी की बात याद आई। यह व्यभिचार का संबंध है, सारे दुःखों की यही जड़ है—ऐसे वाक्य याद हो आए। इतने दिन बीत जाने पर भी उस चिट्ठी की बातों को याद रख के मुझसे जिद करने लगा है। जहाँ प्यार होता है

वहाँ जिद नहीं होती, कठोरता नहीं होती। पुनः वह इस फैसले पर आ गई कि सोमशेखर में अब प्यार नाम की कोई चीज बची ही नहीं। शाम को बच्चों को घर लाने के बाद भी मन में यही मंथन चल रहा था। जहाँ प्यार होता है वहाँ कठोरता नहीं होती—यह बात महावाक्य बनकर मन में जमकर बैठ गई और सोमशेखर को धिक्कारने का आधार बनी।

रात में बच्चों के सो जाने के बाद मन ने अनुमान किया : मेरी चिट्ठी पढ़ने के बाद कहीं उसने शारीरिक संबंध के बिना केवल प्यार का ही संबंध रखने का फैसला तो नहीं किया ? हाथों का स्पर्श भी किए बिना शारीरिक दूरी का प्यार ! ऐसी कल्पना मेरे लिए नई नहीं है। उपन्यासों में इस ढंग की कितनी बातें पढ़ी हैं ! पसंद नहीं कीं। इसका स्मरण करके मन खिल उठा। वही ठीक है, किसी प्रकार का द्वंद्व नहीं रहेगा। वह बड़ा समझदार है। मुझसे भी आगे की बात सोचता है। फोन पर उसके इस फैसले की प्रशंसा में बात करने का मन हुआ। हर माह बचने वाले चार सौ में ही गुज़ारा करते हुए फोन के लिए कहाँ से लाता होगा ? जब अपना कारोबार ही बंद किया है तब फोन किसलिए रख लिया है ? मेरे लिए, मुझे नियंत्रित करने की खातिर ! कृतज्ञता से मन भर आया। सोमू, सोमू मुझे बचाकर तुम्हें क्या मिलने वाला है ? तुम्हारा जीवन का प्यार मेरे जीवन के प्यार पर क्यों निर्भर रहे ? उसी से पूछने की, उसकी आवाज़ को कानों में भरने की चाह हुई। रिसीवर हाथ में उठा लिया। लेकिन उसका नंबर मिलाने में डर लगा। जब वह रिसीवर उठा लेगा तब अपने से बातों की शुरुआत करना संभव नहीं हो पाएगा, यह सोच कर उसने रिसीवर को यथा-स्थान पर रख दिया। शारीरिक संपर्क के लिए ही लालायित होना पाशविक वृत्ति है। लेकिन जब मन आपस में मिल गए हों, उनमें समरसता आ गई हो, तब शरीर को बलात् दूर रखने की जिद कृत्रिम होगी, भावनाओं पर की जाने वाली क्रूरता होगी। जो फल पकने को आया हो उसे फ्रिज़ के अति शीतल खाने में रखकर उसे कसैलेपन में ही सुखाने वाली रसनाशक क्रिया के समान होगा।

एक दिन सवेरे नौ के लगभग कुत्ते भौंकने लगे। महादेवम्मा ने आकर बताया, "कोई आए हैं।" अमृता ने बाहर आकर देखा। खुले कुत्तों की जोड़ी की भौंक से डरकर रंगनाथ गेट के बाहर खड़ा है। हाथ में एक बिलकुल छोटा-सा लेदर-बैग है। अमृता को कसमसाहट हुई। वह तुरंत जान गई कि अदालत का मुकद्दमा वापस लेने का अनुरोध करने के लिए दीदी की ओर से आया है। कुत्तों को पकड़कर उनके माँदों में भेजते समय सोचने लगी, केवल छोटा-सा लेदर-बैग पकड़ा है, अटैची वगैरह कुछ नहीं। शायद रुकने का इरादा दिखाई नहीं देता। कुत्तों को बाँधने के पश्चात् अनुमति देने के अंदाज में बोली, "आइए भीतर।" गेट खोलकर

वह भीतर आया। बाल यों बिखरे थे जैसे बस यात्रा करके आया हो, चेहरा चिप-चिपाया हुआ था। उसे लाउंज में बिठाकर अमृता भीतर गई। पता नहीं क्यों, मन अधीर हुआ। न जाने क्या बात करेगा ? उसकी दीदी ने क्या-क्या कान भरे होंगे ? सारी बातें बताई होंगी। पंद्रह मिनट में मन को स्थिर किया। चाहे कोई भी बात करे, अदालत की बातें अदालत में, उस संबंध में वकील साहब बात करेंगे—बस इस एक बात में मुंह बंद कराया जा सकता है। इस संकल्प के साथ वह बाहर आई। लाउंज में उसके सामने वाले सोफे पर बैठ गई। वह समझ गई कि रंगनाथ को भी बातें करने में झिझक हो रही है। लेकिन, अपनी ओर से बातों को शुरुआत न करे, इस विचार से खामोश रही।

कुछ समय बाद रंगनाथ ने ही गला साफ़ करके कहा, "सवेरे पहली बस से बेंगलूर से आया।" अमृता ने हामी में सिर हिलाया। अगली बात न सूझकर वह टटोलता रहा। फिर दुबारा साहस बटोर कर बोला, "आफिस काम के लिए बेंगलूर आया था।" अमृता ने पुन: सिर हिलाया। पुन: वह पसोपेश में पड़ गया। आखिर हिम्मत करके बोल पड़ा, "अब जनरल ट्रांसफर का सीजन है। हमारे बड़े साहब ने कहा है. 'अगर ट्रांसफर चाहते हो तो कौन-सी जगह चाहिए, अभी बता दो, अगले महीने कर दूंगा।' तुम से एक बार पूछ कर उन्हें बताने के इरादे से आया हूँ।"

"मुझसे क्या पूछना है ?" तुरंत अमृता बोली।

रंगनाथ को घुटन-सी हुई, "पहले ही मैसूर के लिए आवेदन कर लिया था।"

मेरी अनुमति के बिना मैसूर के ट्रांसफर लेने का साहस उसमें नहीं है, इस बात को वह स्पष्ट रूप से स्वीकार कर रहा है। अमृता को यह संदर्भ बड़ा आसान लगा। "हासन की अदालत में मुकद्दमा दायर किया है,आपको पता है ?" उसका चेहरा निहारते हुए अमृता बोली।

उसकी नजर से बचने की चेष्टा में बायीं ओर मुड़कर वह बोला, "पता है।"

"कल के दिन मुकद्दमा वापस लेने के लिए अपनी दीदी की ओर से मेरे सामने घिघियाओगे तो नहीं ?"

"वह तुम्हारी पित्रार्जित जायदाद का मामला है। आगे हमारे बच्चों के भविष्य से संबंधित है। मैं दखल नहीं दूंगा। लेकिन दीदी ने जो मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया है उस कृतज्ञता भाव की खातिर अपने वेतन से हर माह पांच सौ रुपये भेजने का विचार किया है। तुम्हें इस पर एतराज तो नहीं होगा ?"

अमृता चौंक गई। उसकी परिकल्पना की सारी जड़ें टूटकर नए पात्र निरूपण की एक उलझी हुई अवस्था उपस्थित हुई। सोचने के लिए कुछ समय की आवश्यकता जान पड़ी। "नाश्ता करेंगे ?" वह बोली।

"हो चुका है।"

'कॉफी लाती हूँ।" कहकर वह उठकर भीतर गई। पुट्टम्मा से कॉफी बनवाकर कप-तश्तरी लाते समय वह संबंधों के स्वरूप का अर्थ पहचान गई। रंगनाथ धीरे-धीरे कॉफी की चुस्की ले रहा था। अमृता सामने वाले सोफे पर बैठी रही। कॉफ़ी पीने के बाद वह बोली, "आपकी दीदी ने मेरे बारे में शायद बहुत कुछ कहा होगा। निश्चय ही कहा होगा। खैर छोड़िए। आपको मेरे साथ शारीरिक संपर्क किए साढ़े सात साल हो गए। तब से क्या आप शुद्ध ब्रह्मचारी ही बने रहे हैं ? सच बताइए।"

उसके चेहरे को ही घूरते हुए पूछे गए इस अप्रत्याशित प्रश्न से वह झेंप गया। अगर जबान झूठ बोलेगी तो आँखें और चेहरे पर दरारें दिखाई देने लगेंगी। "आज तक जो कुछ हुआ है उसके बारे में मैं तुमसे कुछ नहीं पूछूंगा, तुम मुझसे कुछ मत पूछो। अब भविष्य में हिलमिलकर रहें तो सब ठीक हो जाएगा।" वह बोला।

अमृता ने तुरंत जवाब दिया, "मिस्टर रंगनाथ, आप सरकारी नौकर हैं। जहाँ कहीं ट्रांसफर होकर जाते हैं, उस हर जगह में चोरी-छिपे संबंध बना लेने से बदनामी होगी। एक ब्याह कर लीजिए। उससे रोटी का भी कोई ठिकाना हो जायगा। उसके लिए आवश्यक कागज़-पत्रों पर हस्ताक्षर करके दे दूंगी। मेरे बच्चों की परवरिश के लिए आपको एक दमड़ी भी देने की आवश्यकता नहीं है।" किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह वह अमृता का मुंह देखने लगा। "जहाँ चाहे वहाँ ट्रांसफर करवा लें। मैं जानती हूँ कि आप मेरे बच्चों से मिलने के बहाने मेरे यहाँ आकर, मेरे विरुद्ध उन्हें बहकाने आदि का घटिया काम नहीं करेंगे। अगर ऐसा कुछ करने की चेष्टा की तो अपनी दीदी से कह दीजिए कि मैं चुप नहीं रहूँगी।" अमृता उठकर खड़ी हुई। रंगनाथ के चेहरे पर उलझन दिखाई दी। आगे बोलने का कोई विषय नहीं रहा, फिर भी उठकर जाने का मन नहीं हुआ। खामोश बैठा रहा। "किसी वकील से मिलकर सारे कागजात तैयार करवा लीजिए। जिन पर मेरे हस्ताक्षरों की आवश्यकता हो उन्हें डाक द्वारा भेज दीजिए। नमस्कार !" वह बोली। खुद अमृता ही पहले उठकर भीतर चली गई। पंद्रह मिनट बाद कुत्तों की भौंक और गेट की सिटकनी खोलने की आवाज़ सुनाई दी।

अपने कमरे में जाने के बाद उसे रोना आया। किवाड़ बंद करके सोफे पर बैठकर चार-पांच बार सिसक-सिसककर रोई। बुद्धि कहती थी कि उसने जो किया वह ठीक किया। फिर भी रोना आ रहा है। बुद्धि की बात अगर मन मान लेगा तो दुःख नहीं रहेगा। दिलासा दे लेने पर भी मायूसी कम नहीं हुई। कुछ समय बाद किवाड़ खटकने की आवाज सुनाई दी। आँखें पोंछकर उसने किवाड़ खोले। रसोई का काम खत्म करके जाने की सूचना देने के लिए पुट्टम्मा खड़ी थी।

उसके जाने के कुछ समय बाद मादेवम्मा चली गई। दरवाज़ा बंद करके भीतर आने के बाद अमृता को एक विचार आया। तुरंत फोन उठाकर नंबर घुमाया। "सोमू, मैं हूँ। आवाज़ पहचानते हो ?"

सोमशेखर ने 'नहीं' कहा।

"पता नहीं किस गर्ल-फ्रेंड के सपने देख रहे हो। मेरी आवाज़ कैसे पहचानोगे ? क्या चल रहा है ?"

"अभी-अभी चूल्हा जलाने के लिए उठा हूँ।"

"तुम्हारा स्कूटर है ?"

"है। क्यों ?"

"अगर न हो तो खुद कार लेकर आने के विचार से पूछा। सुनो, चमेली के फूल मेरे जूड़े में पहनाये तुम्हें कितने दिन हुए ? बड़ी इच्छा हुई है। इसी क्षण स्कूटर लेकर मार्केट से चमेली के फूल लेकर यहाँ आओ। यहीं साथ मिलकर खा लेंगे।" सोमशेखर खामोश रहा। पाँच सेकेंड की इनजारी के बाद बोली, "सुनो, पागल की तरह मैंने कोई चिट्ठी लिख दी और तुम उसी को लेकर मन भारी करके बैठ जाओगे तो मुझमें और तुममें फर्क ही क्या रहा ? उस दिन जब मैं आई थी तब तुमने मेरा हाथ तक नहीं छुआ। मेरे मुंह से माफी के शब्द कहलवाकर ही छूने की जिद ठानी है क्या ? जल्दी आओ। बहुत सारी बातें करनी हैं। तुम्हारे बिना मैं और किसके सामने कहूँ ?"

"अभी पंद्रह मिनट में पहुँच रहा हूँ।" उसकी आवाज़ में फुर्ती थी।

उसने नाश्ता नहीं किया है, यह बात अमृता जानती थी। जब से इसे पता चला है तब से इसने भी नाश्ता छोड़ दिया है। केवल एक कप कॉफी पीती है। ग्यारह के लगभग पेट में चूहे दौड़ने लगते हैं। सुस्त होकर ढह जाने का-सा अनुभव होने लगता है। फिर भी कुछ नहीं खाती। तुरंत टेबुल पर दो थालियाँ लगा दीं। खाने की चीजें रखीं। पानी भरा लोटा, गिलास रखे। इतने में स्कूटर की आवाज़ आई। दौड़कर दरवाज़ा खोला।

"स्कूटर गैराज में रखूं ?" सोमशेखर ने पूछा। उसके चेहरे पर उत्साह था। जेब से फूलों की पुड़िया झाँक रही थी।

"पोर्टिको में ही रहने दो, आओ।" वह बोली। मोहार का दरवाज़ा बंद करते ही सोमशेखर ने पुड़िया निकाली। अमृता उसके सीने से अपनी पीठ टेककर खड़ी हुई। जूड़े में गुंथी चमेली ने उसकी समस्त भावनाओं को सुकुमार बना दिया। कोई बोला नहीं। बातों की आवश्यकता के बिना ही संगीत में संगत करने वालों की तरह सहज लास्य द्वारा एक ही कदम में दूसरा कदम मिलाकर हिल-मिलकर बढ़ते गए। दोनों खाना भूल गये। जब दोनों की भावनाएँ दही की भाँति कोमल बनकर घुल गए तब अमृता के मन ने कहा, 'आज अगर हमारा मिलन

नहीं होता तो अपने संबंध को व्यभिचार का लेप हो जाता।' काफ़ी देर बाद सोमशेखर के पेट पर हाथ फेरते हुए अमृता बोली, "मुन्ना, पेट अंदर चला गया है। खाना नहीं खाएँगे तो चक्कर आ जाएगा। उठो।"

"यहीं ले आओ।" वह बोला। फिर भी बाँहों की पकड़ ढीली नहीं की।

दोनों ने बिस्तर पर ही खाना खा लिया। जूठे बर्तन बगलवाली टी-पाय् पर रख दिये। फिर अमृता अदालत की बातें बताने लगी। क्रमशः बताते हुए अंतिम घटना रंगनाथ की भेंट के बारे में भी बतायी। इतने में साढ़े पाँच का समय हुआ। "कल दोपहर साढ़े ग्यारह बजे आ जाओ। और भी बातें करनी हैं। रुको, थोड़ा सा भात दे देती हूँ। घर जाकर रात की रसोई में खटते मत रहना।" मुँह धोकर बच्चों को लेने निकली।

बच्चों को लगा कि आज माँ बहुत खुश है। घर के गेट की ओर कार मोड़ने के बदले ललित महल होटल की ओर भगाई। आलू चिप्स, बादाम की बर्फी-आइसक्रीम खिलायी। होटल के सामने वाले विशाल उपवन में उनके साथ लुका-छिपी का खेल खेलने लगी। एक बार साड़ी के चुनट में उलझ जाने पर भी उसकी परवाह न करके, हार न मानकर विजय-विकास को पकड़ लिया। बच्चों के साथ वह भी हाँफते हुए यों दौड़ी कि गर्दन, पीठ, बगल आदि में पसीना छूट गया और शरीर चिपचिपा गया। अँधेरा हुआ, विकास ने घर चलने को कहा। फिर भी 'एक बाजी और' कहते हुए वह तब तक खेलती रही जब उसके दाएँ पाँव की चप्पल का अँगूठा टूटकर चलना मुश्किल नहीं हो गया। तब वह कार की ओर चली। "माँ, होटल में सिर्फ हमें ही खिलाया, तुमने कुछ खाया नहीं। इसीलिए तुम्हारी चप्पल टूट गई।" विजय ने जब विचित्र तर्क लड़ाया तो वह तुरंत मान गई।

लेकिन मन भीतर ही भीतर सिकुड़ने लगा। खाना पकाकर सभी के खा लेने के बाद बच्चों को सुलाने तक शून्य-भाव ने उसे पूरी तरह जकड़ लिया। भीतर-बाहर हर कहीं अँधेरा, ऐसा अंधकार जिसका कोई भविष्य ही न हो। कहाँ जा रही हूँ, क्या हो रहा है, इस बात की कसमसाहट होने लगी। यह अदालत, यह बखेड़ा, यह इतनी बड़ी ऐस्टेट, मुकद्दमे में जीत होने पर दो और ऐस्टेट, ये बच्चे, साथ-ही-साथ यह प्यार का नाता, सभी कुछ इतना बोझिल लगने लगा कि जिसको वह ढो नहीं सकती। प्यार तो दो फाँकों में टूट पड़ने वाला विरोधी कर्षण है या बीच में फँसाकर पीस डालने वाला दबाव है। जब तक परवरिश पाते रहेंगे तब तक प्यारे बच्चे कहलायेंगे। जब बड़े हो जाएँगे और अड़कर पूछने लगेंगे कि हमारे बाप को क्यों दूर किया तब शत्रु बन जाएँगे। आत्महत्या करने का मन हुआ। उस काम के लिए इससे अच्छा मुहूर्त नहीं है। इस बार जैसा ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, आठों दिशाओं में घना अँधेरा पहले कभी नहीं था। दुनिया में जितने लोगों ने प्राण

दिए हैं वे सभी इसी अवस्था को पहुँचे होंगे। लगा कि इससे बढ़कर कोई और शोचनीय स्थिति हो ही नहीं सकती। आज तय हुआ, पक्का तय हुआ। कार में बैठकर पहाड़ के छोर तक जाकर आने वाली यह केवल हवाखोरी नहीं है। जीवन की अंतिम घड़ी में क्या किया जाना चाहिए ?—इस सोच में दो मिनट खामोश बैठी रही। फिर मानो बात सूझ गई हो, उठकर हमाम में गई, हाथ-मुँह धो लिया। पूजा कक्ष में जाकर भगवान की तस्वीर पर सिंदूर चढ़ाया। अगर अपनी कोई गलती हो तो क्षमा करने की याचना की। और किसके लिए प्रार्थना करे ? बच्चों के लिए ? रंगनाथ उनकी पढ़ाई-लिखाई की ओर ध्यान देगा ही। मैं न भी रहूँ तो उनके लिए और अभिभावक मिलेगा। वे बड़े होंगे। अब रहा सोमू, मैं मर जाऊँ तो उसको भी छुटकारा मिलेगा। प्यार के जिस भावोन्माद में फँस गया है, उससे छूटकर आजाद हो जायेगा। किसी सीधी-सादी औरत से ब्याह करके···इस दिलासे के साथ ही विचार आया कि वह मेरा मुन्ना है, मेरा बच्चा। विजय-विकास को अभिभावक मिल जायेंगे और उनके सहारे वे बड़े होंगे, लेकिन सोमू का कोई नहीं है, कोई नहीं है, किसी अभिभावक के बिना अनाथ होकर मर जायेगा। "हे भगवान, मौत के इस क्षण में मेरी एक ही प्रार्थना है; उसकी रक्षा करो।" आँखें बंद करके खामोशी के साथ प्रार्थना की। पुनः एक बार प्रणाम करके अपने कमरे में आई। रिवाल्वर उठाते समय विजयी होने का आत्मविश्वास दिखाई पड़ा। कार की चाभी हाथ में लेने ही वाली थी कि तभी फोन की घंटी बजी। उसे बड़ा गुस्सा आया। उसी का है। आज अगर मैं फोन करके नहीं बुलाती तो अब वह नहीं करता, इस क्रोध के लिए खुद को कारण मान लिया। फोन न उठाने की ठानी। 'बड़ी देर तक ऐसे ही बजता रहा तो बच्चे जाग जायेंगे, वह आशंकित होकर स्कूटर चढ़कर बेतहाशा भागा चला आएगा।' इस विचार से उसने झुककर उठा लिया। लेकिन बोली कुछ नहीं।

सोमशेखर ही बोला, "अमृता, ऐस्टेट वाले मुकद्दमे की बात बताई नहीं ! मुझे एक आधारभूत हल दिखाई दे रहा है। यह केवल अदालत से संबंधित बात नहीं है। तुमसे संबंधित समस्या है मतलब यह कि मुझसे संबंधित है। अब आ रहा हूँ। सारी बाते बता दूँगा।" अमृता कुछ बोली नहीं। "सुनती हो ? क्या बात है ?" उसने ऊँची आवाज में पूछा।

"नींद आ रही है। क्या सवेरे बात नहीं की जा सकती ?" अमृता बोली।

"मेरी भी पलकें खिचने लगी है। लेकिन जब तक कह न लूं मन को चैन नहीं आएगा। मेरे पहुँचने तक दो प्याली कॉफी बनाकर रखो। दोनों पीकर बातें करेंगे। मैं अभी निकला।" उसने तुरंत फोन रख दिया। अमृता विवश होकर बैठी रही।

कुछ समय बीता। दूर स्कूटर की आवाज़ सुनाई दी। इस समय बाहर पोर्टिको

में स्कूटर छोड़ना उचित न समझकर गराज की चाभी, जो हाथ में ही थी, लेकर बाहर आई। विक्रांत गुर्राया। अमृता के निर्देश के अनुसार गराज में स्कूटर रखकर ताला लगाकर जब सोमशेखर आया तब वह उसे जलती निगाह से देख रही थी। सोमशेखर ताड़ गया। "गुस्सा किस बात का ?" उसने पूछा। अमृता ने जवाब नहीं दिया। पास आकर उसकी चोटी की जड़ में हाथ डालकर अपनी ओर उसका चेहरा घुमाकर घूरते हुए बोला, "किस बात का गुस्सा है ?" अभी अमृता की आँखों की ज्वाला बुझी नहीं थी। उसकी दृष्टि को अपनी दृष्टि से मात करने के अंदाज में जोर लगाकर देखते खड़ा रहा। कुछ समय बाद अमृता की आँखों से बूंदें फूट पड़ीं। चोटी की जड़ जो अभी हाथ में पकड़े था, उसे दबाकर अमृता का मुँह अपने कंधे से चिपका लिया।

एक मिनट बाद बोली, "पूजा-कक्ष में चलो, एक बात बताऊँगी। वहाँ चप्पल छोड़कर पाँव धो लो।" उसके निर्देशानुसार चप्पल उतारकर, पाँव धोकर अमृता के पीछे-पीछे पूजा-कक्ष में जाकर उसकी बगल में खड़ा हो गया। तब अमृता बोली, "इधर देखो; अभी-अभी भगवान् को सिंदूर चढ़ाया था। आज निश्चय ही रिवाल्वर का ट्रिगर दबा लेनी थी। ऐसी उत्कट अवस्था पहले कभी नहीं आई थी। निकलने से पहले कभी पूजा-कक्ष में आकर अंतिम प्रार्थना नहीं की थी। अब कुछ समय पहले आकर प्रार्थना करते समय क्या अहसास हुआ जानते हो ? रंगनाथ बच्चों की देखभाल करेगा। उनके बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन तुम्हारा क्या होगा ? अगर मैं मर जाऊँ तो तुम्हारा कौन है ? 'हे भगवान मेरे इस मुन्ने की रक्षा करो' मैं मन की गहराई से प्रार्थना करके, प्रणाम करके रिवाल्वर और कार की चाभी हाथ में लेकर निकलने ही वाली थी। इतने में तुम्हारा फोन आया।"

सोमशेखर जड़ीभूत हो गया। अपनी बगल में खड़ी अमृता का हाथ कसकर पकड़ लिया। अमृता ने गर्दन घुमाकर उसका चेहरा देखा। उसकी आँखों में पानी की परत इतनी गहरी हो गई थी कि उससे रोशनी प्रतिफलित हो सकती थी। कुछ देर दोनों उसी तरह खड़े रहे। फिर अमृता ने भगवान को प्रणाम किया। सोमशेखर ने भी किया। फिर भगवान के चरणों में रखे सिंदूर को चुटकी में भरकर अमृता के माथे पर लगाया। अमृता ने भी सोमशेखर के माथे पर लगाया। दोनों एक-दूसरे की बाँह थामकर गेस्ट-रूम में चले। जब सोमशेखर बेंत के सोफ़े पर बैठा तब अमृता बच्चों के कमरे के किवाड़ बंद करके चटकनी चढ़ा आई। सोमशेखर की बगल में बैठते हुए पूछा, "तुम्हारी आँखों में पानी क्यों चू पड़ा ?"

"अगर तुम मर जाओगी तो मेरा कोई नहीं रहेगा इस बात का अहसास तुम्हें हुआ है न, इसलिए।" अमृता बोली नहीं। कुछ समय बाद सोमशेखर ही

बोला, "अब आगे भी तुम्हें पीड़ा हो सकेगी, शून्य-भाव घिर सकता है; चाहे वह कितना ही उत्कट हो, तुम प्राण नहीं दोगी इस बात का आज मुझे विश्वास हो गया है। अगर वह घड़ी आ ही गई तो तुम्हें मेरे अनाथ हो जाने का अहसास जरूर होगा।"

"एक बार ऐसा हुआ है। हर बार ऐसा होगा इसका क्या भरोसा! मेरे मन की विचित्रता तुम पूरी तरह नहीं जानते।"

"उसे तुम भी पूरी तरह कहां जानती हो? तुम मुझसे कितना प्यार करती हो, उसकी गहराई जानती हो?"

"मैं तुमसे कितना द्वेष करती हूं, उसकी गहराई का पता तुम्हें है?"

"हां है। उसका कारण भी जानता हूं। खैर छोड़ो! तुम्हारे मर जाने के बाद मेरा क्या होगा, इस आशय की प्रार्थना करते ही तुम्हें फोन करके इसी क्षण निकलकर आने का मेरा मन जो हुआ, वरना मैं कल दोहपर को आता। इसे तुम क्या कहती हो?"

"मैं कहती हूं कि तुम भगवान पर विश्वास करना सीखो।" ग़लती करने वाले छात्र को जैसे अध्यापिका मारती है, उसी तरह सोमशेखर के कंधे पर उसने एक हाथ जमा दिया।

"अमू," उसने याद करके कहा, "जब शून्य-भाव की उत्कटता बढ़ती है तब तुम क्या करती हो, क्या बोलती हो वह तुम्हें भी याद होगी। मैं जिस ढंग से भी अपना प्यार जताने लगता हूं तो तुम उसे तानेबाजी में नकारात्मक जवाब देकर मेरा मुंह बंद कर देती हो। तब मेरा मन क्या कहता था जानती हो? हे भगवान इसे विश्वास दिलाने के लिए क्या किया जाए? कम-से-कम तुम्ही तो मेरी भावनाओं की सचाई इसे समझा दो। पता नहीं भगवान का अस्तित्व सच है या झूठ। लेकिन भगवान की कल्पना के बिना प्यार की उत्कटता की अभिव्यक्ति संभव नही। तुम्हारे साथ भगवान के सामने हाथ जोड़ने का मतलब मुझे अपने प्यार की भावना की अभिव्यक्ति करने का-सा अनुभव होता है।"

अमृता का चेहरा खिल उठा। आंखों में आंसू छलछला आए। दो पल दोनों खामोश रहे। आंसुओं की परत चढ़ी आंखों को अमृता ने पोछा नहीं। फिर सोफे पर घुटने मोड़कर पालथी मारकर बैठ गई। "मुन्ना, इधर आओ, मेरी जांघ पर सिर टिकाकर लेट जाओ। तुम्हें बच्चे की तरह दुलारने के लिए मन कितना तड़प रहा है, जानते हो?" वह बोली। सोमशेखर सोफे की लंबाई में पांव फैलाकर लेट गया। झुककर अमृता उसके चेहरे को अपने सीने मे दबाये बड़ी देर तक बैठी रही। फिर पूछा, "अदालती मामले में कुछ कहने वाले थे।"

"कल पर छोड़ दो। इस खामोशी में तुम्हारे सान्निध्य के अतिरिक्त और किसी चीज की इच्छा नहीं है।"

"कल तक सब्र करना मेरे लिए कठिन होगा। आज मुझे भी नींद नहीं आएगी और तुम्हें भी नहीं।" सोमशेखर चुप रहा। अमृता ने पुनः आग्रह नहीं किया। पहले की तरह ही लिपटी रही।

कुछ समय बाद वह बोला, "ठीक से बैठ जाओ। जंघा पर लेटे-लेटे ही बताऊँगा। लेकिन तुम्हारा चेहरा देखता रहूँ तो बातें करने में आसानी होगी।" अपना आँचल उसकी नज़र से हटाकर अमृता सीधी बैठ गई। वह बोलने लगा, "इससे पहले ही तुमने अदालत की बात बताई थी। मैंने सरसरी तौर पर सोचा था। आज दोपहर जब तुमने उसकी प्रगति के बारे में बताया तब मेरे मन में एक ठोस विचार आया। मेरी बात तुम सुनती जाओ। उस पर इतमीनान से सोचो। तुमने जो नालिश की है वह ठीक ही है। उस औरत को, उस बेंक को सबक सिखाना उचित ही है। मुकद्दमे में तुम्हारी जीत होगी, इसकी लगभग गारंटी है। उसके बाद क्या करोगी? ऐस्टेट का क्या करोगी? बच्चों के लिए वे क्या करेंगे? खैर, छोड़ो इस बात को। तुम्हारी वर्तमान स्थिति क्या है वह तुम खुद समझ नहीं पायी हो। तुम जो कुछ कर रही हो वह सब ठीक ही है। लेकिन उसका अर्थ किसी और ढंग से ग्रहण करना चाहिए। तुम एक ट्रस्टी हो। बच्चों को जन्म दिया है। तुम्हारी कोख से जन्म लेने के कारण उनको तुम्हारे पित्रार्जित या मातृ-मूल की जायदाद का हक़ मिल गया है। उनके बालिग होने तक जायदाद की देखभाल करना तुम्हारा कर्तव्य है। इतना काम तुम करो। इससे ज्यादा तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। मन में ठान लो कि वह तुम्हारा नहीं है। कानूनी जायदाद के एक तिहाई हिस्से पर ही तो तुम्हारा हक बनता है। उतना हक़ चाहो तो रख लो। अगर रख भी लोगी तो दान-धर्म में खर्च करने का संकल्प करके उससे भी छुटकारा पा लो। अब रही तुम्हारे गुजारे की बात, अभी-अभी भगवान के सामने तुमने कहा कि अगर तुम मर जाओगी तो मेरा ख्याल रखने वाला कोई नहीं रहेगा। मेरे जीवन में रुचि उत्पन्न करने के लिए इतना संबल काफ़ी है। मैं पुनः कमाना शुरू कर सकूंगा। उस दिन जब तुम आई थीं तब तुमने ठीक तरह देखा नहीं। भीतर आते ही दायीं ओर ढेर लगे सामान, मेरा ड्राइंग का टेबुल, डुप्लिकेटर, स्केल, टाइपराइटर, आफिस के टेबुल, कुर्सियाँ आदि कुछ भी नहीं गया है। बेंक में जो एक लाख रखा है उसमें तीस-चालीस हजार खर्च करूं तो शहर के बीच किराए की जगह लेकर दफ्तर खोला जा सकता है। इसका पता लगते ही नीलकण्ठप्पा दौड़कर आएगा। वह खुद ठेकेदारों से कहकर दस-बीस काम लाएगा। अभी एक माह के अंदर दस हज़ार की आमदनी वाला काम प्राप्त किया जा सकेगा। साल-भर में भरपूर काम मिलेगा। तुम्हारी सारी जिम्मेदारी मेरे कंधों पर होगी। तुम प्रतिज्ञा कर लो कि मेरी कमाई के सिवा ऐस्टेट के पैसे से एक दाना भी नहीं खाओगी। मेरा अकेले का

काम करना अगर तुम्हें अच्छा न लगे तो तुम भी किसी कालेज में नौकरी ढूंढ लेना। अथवा उस दफ्तर का तुमने खुद प्लान करके भीतरी अलंकरण करवाया था न, बहुत बढ़िया काम था। बंबई में उसी का एक शार्ट कोर्स है। छह मास का डिप्लोमा। मैं भेजूंगा। तुम वह कोर्स कर लेना। मैं जिन घर, दफ्तर, सिनेमा, दूकान आदि का प्लान बनाऊंगा। तुम उनका भीतरी अलंकरण करना। उसकी फीस अलग मिलेगी। एक ही दफ्तर में तुम्हारे लिए अलग कक्ष बनाएँगे। पूरे दफ्तर पर 'अमृता एण्ड शेखर आर्किटेक्ट एण्ड इंटीरियर डेकोरेटर्स' की तख्ती लगा देंगे। विजय और विकास हमारे साथ ही रहेंगे। ऐस्टेट का पैसा उनकी पढ़ाई-लिखाई, परवरिश के लिए खर्च करेंगे। जो खर्च होगा उसका हिसाब रखेंगे। हमारे बच्चे हो जाएँगे तो अपनी आमदनी में ही उनका पालन-पोषण करना होगा। विजय, विकास उचित आयु को प्राप्त होंगे तब कह देना, 'देखो भई, मेरा पूरा हक़ होते हुए भी मैंने ऐस्टेट के पैसे का एक दाना तक नहीं खाया। इस तरह मेहनत करके खाया है। भविष्य में भी मरते दम तक इसी तरह मेहनत करके खाऊँगी। तुम लोगों की खातिर केवल मैनेजमेंट देख लिया है।' तब उनके मन में तुम्हारे प्रति कैसी भावना जागेगी पता है? चाहे कोई भावना न जागे, लेकिन नैतिक भाव तो जरूर जागेगा ही।" सोमशेखर चुप हो गया। अमृता की निगाह बता रही थी कि सोमशेखर के चेहरे पर ही आँखें गड़ी रहने पर भी मन सोच में डूब गया था। कुछ समय बाद पुनः सोमशेखर बोलने लगा, "दफ्तर बेचने से पहले तुमसे कहना चाहिए था। मैं जानता था कि तुम पैसों का कोई-न-कोई बंदोबस्त करोगी ही। लेकिन, तुम्हारी चाची और रंगनाथ के बारे में सुनने के बाद न जाने क्यों इस घर को रेहन रखकर लाई ज . वाली रक़म मुझे हितकारी नहीं लगी। अगर तुम्हारी अपनी अलग की कमाई होती तो बात कुछ और थी। मैं जरूर माँग लेता।" वह कह रहा था तभी अमृता बोली, "धोखा उन लोगों ने किया है। ऐस्टेट मेरा है, यह घर मेरा है, मेरी माँ से मिला है।"

"सुनो, अब मैं कुछ भी कहूँ तुम सुनती जाओ। बीच में कुछ बोलोगी नहीं। जवाब भी नहीं दोगी। अपने आप में सोचो, इत्मीनान से सोचो। एक बात और: चाहो तो शहर के बाहर वाले इसी घर में रहेंगे। यह विजय-विका.. का घर है। उनके बालिग होने तक उनके अभिभावक के रूप में हम यहाँ रह सकते हैं। अथवा शहर में कोई किराए का घर लेकर बच्चों . . भी अपने साथ रखेंगे। कहीं भी रहें मैं साथ रहूँगा। कुत्ते भी अपने साथ रहेंगे। इससे बढ़कर और सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। रिवाल्वर का लाइसेंस लौटाकर उसे बेच डालो। अब उसकी जरूरत नहीं।" अमृता ने कुछ कहने की चेष्टा में मुँह खोलने का प्रयत्न किया। इशारे से सोमशेखर ने उसे बात करने से रोका। फिर गहरी खामोशी छा

गई। पाँच मिनट बाद वह उठकर बैठा। "जाँघ में दर्द होने लगा होगा।" अमृता का मुँह देखकर कहा। अमृता अंतर्मुखी हो गई थी। फिर सोमशेखर भी चुप हो गया। अमृता वहाँ थी ही नहीं। आधा घंटे बाद वह बोला, "मेरे लिए एक लुंगी ला दो। तुम सो जाओ। साढ़े तीन बजे हैं।"

इसके बाद अमृता ने फिर कभी उसके साथ इस मामले में बात नहीं की। सोमशेखर ने भी कोई जिक्र नहीं किया। दोपहर लगभग बारह बजे वहाँ आता था। खाना खाकर शाम के पाँच बजे तक वहाँ रहता था। जाते समय रात के खाने के लिए अमृता तोशा भरकर देती थी। उसकी बातें कम होती थीं। अपने आप में सोचते बैठी रहती थी। उसके मौन को भंग न करने के इरादे से सोमशेखर उसके अध्ययन-कक्ष में बैठकर वे सारी पुस्तकें पढ़ता रहता जिन पर अमृता ने अपने पढ़ने के लिए निशान लगाकर रखे थे।

अमृता का क्रोध कम नहीं हुआ था। "यहाँ कमरे में बैठकर पढ़ना ही है तो यहाँ तक आने की क्या जरूरत थी? पुस्तकें ही उठाकर उस घर में ले जा सकते हैं न?"—एक बार चिढ़ गई थी। सोमशेखर ने उसके कमरे में लेटे-लेटे पुस्तक खोली तो वह बोली, "मेरी सूरत से घृणा है इसलिए पुस्तक में मुँह छिपा रहे हो न?"

लेकिन उसका मन एकदम पाताल में धँसकर विलुप्त हो गया था। क्या मैं अति लालची हूँ? कंजूस हूँ? नालिश करना क्या इसको पसंद नहीं आया? वह सोचती रही। बगल में ही लेटा है; लेकिन उससे पूछूँगी नहीं। मैं खुद उत्तर ढूंढ लूँगी। इस दृढ़ संकल्प के साथ इस बात का दिलासा भी होता है कि खुद सोमशेखर ने कहा भी है कि नालिश करना ठीक ही हुआ। एक शक हुआ : अपने से अधिक धनी औरत को स्वीकार करना कहीं उसके लिए कठिन तो नहीं लग रहा है? शायद ऐसा ही हो। लेकिन दो दिन बाद लगा कि वह विचार भी ठीक नहीं। वह शाम को लौट जाता था। अमृता हमेशा की तरह रात में जागती ही रहती थी। आत्महत्या का दबाव भी कभी-कभी बढ़ जाता था। रिवाल्वर देखने से उसकी बात याद आने लगती है। उसने कहा था : मैं साथ रहूँगा। कुत्ते भी रहेंगे। रिवाल्वर का लाइसेंस लौटा दो। रिवाल्वर हाथ में उठाती है तो न जाने क्यों उसके प्रति अवज्ञा का भाव महसूस होने लगता है। कभी-कभी सोचती हूँ कि मैं उसकी आज्ञाधारक दासी बनी रहने के लिए तैयार नहीं; वह कोई मेरा मालिक नहीं है। इस सोच में क्रुद्ध होकर हाथ में रिवाल्वर लेकर खड़ी हो जाती है। एक रात उसे बगल में रखकर कार में सवार होकर पहाड़ के छोर तक भी चली गई। इस बात के जिक्र के बाद सोमशेखर रात में फोन करता नहीं। "तुम्हारा मन चाहे तो करो; मैं नहीं करूँगा। क्योंकि मुझे लगता है कि तुम सोती रहती हो।" वह बोला था। मेरे भीतरी मन की ओर इशारा करने की

चाल है । क्या मैं समझती नहीं ? चुटकी लेकर हँस पड़ी । पहाड़ के छोर पर चाँदनी बिखरी थी । अँधेरा नहीं था । शूट कर लेने वालों के लिए चांदनी और अँधेरे में क्या फर्क पड़ता है । इस विचार के साथ ही अनजाने में उसका मन ऐस्टेट के सारे हकों को स्वेच्छा से त्यागकर केवल मेहनत की रोटी खाने के बारे में कल्पना करने लगता है । उसके कहने मात्र से मैं क्यों ऐसा करूँ ? बीच में विरोधी भावना झांकने लगती है । एक घण्टे से अधिक समय तक पहाड़ के छोर पर रह कर लौटने के बाद उसे फोन करने की इच्छा होती है । सोता नहीं । यहाँ से जो पुस्तकें ले गया है उन्हें पढ़ाता पड़ता रहता है । वह नम्बर घुमाती है । "अमू" की आवाज से ही प्यार का रस चूने लगता है ।

"यों ही किया, यार !" अभी-अभी रिवाल्वर लेकर पहाड़ के छोर तक जाकर लौट आने की बात नहीं बताती, "मैं जानती हूँ कि तुम पढ़ते लेटे रहते हो । तुमने मुझे फोन किया ही नहीं । क्या तुम जानते नहीं इसी समय मेरा जी कुछ कर लेने के लिए तड़प उठता है ? या लापरवाही दिखा रहे हो कि मरती है तो मर जाने दो इस लालची औरत को ?"

"तुम मर जाओगी तो मेरा कोई नही रहेगा यह बात तुम जानती हो । फिर यह भी जानती हो कि तब मैं भी जीवित नही रहूँगा । इसलिए तुम बेचैन हो जाती हो । लेकिन अपने प्राणों को खत्म नहीं करोगी इसका मुझे पूरा विश्वास है ।"

"मुन्ना, अगर मैं मर जाऊँ तो क्या तुम भी आत्महत्या कर लोगे ? सच बताओ ।" अमृता ने सानुरोध पूछा ।

"तुम्हारी कसम, सच कहता हूँ । आत्महत्या यानी रिवाल्वर, रस्सी, पानी, जहर, रेल के पहिए आदि कुछ नही करूँगा । मैं इसे घटिया काम मानता हूँ । लेकिन तुम्हारे बिना मेरी जीने की आकांक्षा खुद मर जाएगी । तब मेरे प्राण अपने आप निकल जाएँगे —एकाध महीने में ।"

"क्या सच कहते हो ?"

"कहा न तुम्हारी क़सम ! वह काफ़ी नहीं है तो भगवान् की क़सम समझो ।" अमृता को रोना आ जाता है । फोन पर ही जोर-जोर से बिलखकर रोने लगती है । "अमू, क्यो रो रही हो ?' वह पूछता है ।

सँभलकर वह पूछती है, "एक घटिया औरत की खातिर तुम्ह क्यों मरना पड़े ? सच बताओ, तुम क्यों मुझ से प्यार करने हो पता है ?"

"पता होता तो ज्ञानी बन गया होता ।"

"यानी प्यार अज्ञान की अवस्था होती है ?"

"ज्ञानी भी प्यार करता है । बहुत प्यार करता है । जानबूझकर प्यार करता है ।"

"रे, बातें बनाकर बच निकलने की कोशिश मत करो। मेरे हाथों से बच निकलना आसान नहीं।" वह उल्टा सवाल करती है।

इसके पाँचवें दिन रात के आठ बजे फोन की घंटी बजी। सोमशेखर का तो नहीं है। वह इस समय करता नहीं। इस शंका से फोन उठाकर 'हैलो' बोली। "ऊँची आवाज़ में बोलिए। सुनाई नहीं देता। मैं शिवरामय्या हूँ, हासन से।" गला फाड़कर चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। "मैं अमृता हूँ, सुन रही हूँ, कहिए !" इसने भी ऊँची आवाज़ में कहा तब वह बोला, "परसों हुक्म निकला है। यहाँ का फोन बिगड़ गया था। इसलिए दो दिनों तक आपको सूचित नही कर सका। इस मुकद्दमे का फैसला होने तक वे लोग उन दोनों ऐस्टेट के मैनेजमेंट में नहीं रह सकेंगे। वहाँ का घर, ऐस्टेट के एक हिस्सा होने के कारण उनको वह भी खाली करना पड़ेगा। उनके बैंक के खाते भी अदालत ने अपने कब्जे में ले लिए हैं। दोनों ऐस्टेट आस-पास होने के कारण उनकी निगरानी के लिए अदालत एक मैनेजर को नियुक्त करेगी। वह मैनेजर ऐस्टेट की लाभ-हानि, विकास आदि की निगरानी करके अदालत को हिसाब-किताब पेश करेगा। हिसाब-किताब जाँचने का हक़ मुद्दई और मुद्दालेह दोनों को होगा। खर्च के बाद जो वार्षिक लाभ होगा उसे अदालत में अमानत के रूप में रखा जाएगा। इस मुकद्दमे का फैसला होने तक जयराम को, जो विवाहित है माहवार एक हज़ार रुपए, कृष्णमूर्ति को जो अविवाहित है, उसे पांच सौ रुपए और माँ-बाप जयलक्ष्मी और नरसिंहमूर्ति को कुल माहवार एक हज़ार जीवन-निर्वाह के लिए अदालत देगी। फिर मुद्दई डॉ० अमृता के सूगूर ऐस्टेट पर जो कर्जा है उसका फैसला होने तक उन्हे ब्याज भरने की आवश्यकता नहीं है। यह अदालती हुक्म निकला है। सुन रही हैं न?" अमृता के हाँ कहने के बाद वह पुनः बोलता गया, "यह हुक्म बड़ा महत्त्व का है। हम मुकद्दमा जीत जाएँगे इसका यह साफ़ सबूत है। हुक्म सुनकर माँ और दोनों बेटों को पसीना छूट गया। अब आपके और उनके मान्य एक मैनेजर की नियुक्ति अदालत को करनी है। रख दूँ फोन ? आप ठीक हैं न ?" इधर से 'ठीक हूँ' कहते ही उधर फोन रखने की आवाज़ सुनाई दी।

अमृता निहाल हो उठी। मुकद्दमे की जीत का विश्वास दिलाने वाली पहली सूचना मिली है। बेईमानी के पैसे से खरीदे गए ऐस्टेट से बेदखल होना होगा। सुप्रीम कोर्ट तक लड़ने की धमकी देता था। अब सरेदस्त सकलेशपुर या हासन में पहले एक किराए का घर ढूँढ़ लेने दे। फिर बैंक का ब्याज भरना भी बंद हो गया है। सालाना साढ़े तीन-चार लाख की रकम हाथ में आने की तसल्ली हुई। जीत की खुशी में क्या करे कुछ समझ नहीं पायी। कम-से-कम बच्चों से तो कह लेने का मन हुआ। लेकिन, वे बहुत छोटे हैं। उनके साथ ऐसी बातें करना ठीक नहीं लगा। फोन के सामने ही बिस्तर पर दस मिनट तक चुपचाप बैठी रही।

विकास आकर बोला, "माँ, भूख लगी है।"

रसोई-घर में घुसकर वह बोली, "पन्द्रह मिनट रुको। खीर पकाऊँगी।"

"क्या बात है, आज ?" विजय ने पूछा।

"अपने ऐस्टेट का मुकद्दमा चल रहा है न ! उसके पहले स्टेप् में अपनी जीत हुई है।" उसके सामने काजू और किशमिश रखकर बोली, "ज़रा इन्हें साफ़ करके दो।"

चीनी और इलायची पड़ी खीर मज़ेदार थी। बच्चों ने दो-दो गिलास पी लिए। सोमू की याद करके अमृता ने नहीं पी। अब वह कल दोपहर में ही आएगा। तब तक फ्रिज में रखकर···अब जिस आशय से बनायी है वही ठंडा हो जाएगा। या फोन करके बुला लूं ? बच्चों के सो जाने के बाद वह आकर दोनों एक साथ पी लेंगे। बच्चे क्यों सोएँ ? हम दोनों के पारस्परिक संबंधों का पता उनको भी चल गया है। आगे एक साथ ही रहना है। उनके सामने ही फोन करके क्यों न बुलाऊँ ? लेकिन तुरंत मन सोचने लगा कि अदालत के इस हुक्म को वह किस अर्थ में लेगा पता नहीं। कहता है कि सारे ऐस्टेट से ही निर्लिप्त बनी रहूँ। अब खीर खाकर खुशी मनाने के लिए क्या कहेगा ? मन में आए इस प्रश्न के साथ वह पसोपेश में पड़ गई। बच्चे खाना खाकर सो गए। उसने भी खाना खाया। लेकिन खीर खाने का निर्णय नहीं कर पायी। इतने में वह ठंडी भी पड़ गयी थी। बाहर रखेगी तो फटकर ख़राब हो जाएगी। उठाकर फ्रिज मे रखी। अपने कमरे में आई। जब खुशी अपने सामने उतरकर आई हो तब उसका अनुभव करना अपनी किस्मत मे नहीं है, कभी नही है। लगा कि मुझ जैसी दुर्दैवी कोई नहीं है। दोनों अंजलियों में मुँह ढककर सोफे पर बैठ गई। हर तरफ़ गहरा सन्नाटा महसूस हुआ। दस मिनट में शून्य-भाव घिर गया। इस जीत में भी कोई अर्थ नही, जीवन में कोई अर्थ नहीं। अर्थ अगर कहीं है तो वह केवल मौत मे है। उठकर उसने रिवाल्वर का दराज खोला। 'तुम जानती हो कि तुम मर जाओगी तो मेरा कोई नहीं है। इसीलिए मुझे विश्वास है कि तुम आत्महत्या नहीं करोगी।' उसकी बात याद आई। लगा कि उसकी बातों में भी कोई अर्थ नहीं, उसमे भी कोई अर्थ नहीं। अब ज्यादा इंतजार ठीक नहीं, जल्दी खत्म कर लेने का दबाव भीतर से बढ़ने लगा था। फिर भी रिवाल्वर छूकर हाथ में उठा लेने में कोई रुकावट-सी महसूस होने लगी। उसी को घूरते हुए दस मिनट से अधिक समय तक खडी रही। फिर बायाँ पाँव उठाकर दराज़ को धक्के देकर बंद करके सोचा, क्या यही एक रास्ता है ? दूसरा कोई रास्ता नहीं ? पिछवाड़े में कपड़े सुखाने के लिए बँधी हुई नाइलान की रस्सी काफ़ी है। इस सोच में पुनः सोफे पर बैठ गई। कुछ समय बाद विचार आया : रस्सी के लिए घर ही सुविधाजनक है। पुरानी ऊँची छत तो है ही, पंखे का आँकड़ा भी है। उस दिशा में मन तैयार होने लगा। इतने में

फोन बज उठा। बड़ा गुस्सा आया। समझ गई कि उसी का है। ठान लिया कि नहीं उठाएगी। जब कभी मरना चाहती है तब उसका फोन आता है। यह काक-तालीय विचार उसके ध्यान में आया। अथवा कहीं ऐसा तो नहीं कि ठीक उसके फोन आने के समय ही मुझ में मरने की आकांक्षा जागती है? अगर नहीं उठाएगी तो दस मिनट में वह खुद भागकर आएगा, इस डर के कारण जाकर उसने फोन उठा लिया।

"उसके 'हैलो' कहने से पहले ही वह बोल उठा, "अभी-अभी श्रीकंठय्या जी की भारतीय काव्य मीमांसा पूरी की। बढ़िया पुस्तक है। उसके कई संदर्भ मेरी समझ में नहीं आए। तुम्हें पढ़ाना होगा।" उसकी आवाज़ मे खुशी की बाढ़ उमड़ रही थी। अमृता को गुस्सा आया। वह बोली नहीं। "मेरा कहा सुनती हो?" इस अन्दाज में पूछा मानो इस दुनिया में उस पुस्तक के सिवा कुछ है ही नहीं।

"मुझे अध्यापक का काम छोड़े कई दिन हो गए। किसी और के यहाँ पढ़ लीजिए।" वह बोली।

"अरी पगली! मुझे बताए बिना नौकरी छोड़कर बैठी हो। अगर भूल गई हो तो दुबारा तैयारी करके मुझे पढ़ाओ। अभी आने को मन कर रहा है, निशान लगाए हुए अंशों को समझने के लिए।"

अमृता को अपनी हद में रहने की इच्छा हुई। बोली, "कल आते समय लेते आओ। मुझे भी दुबारा एक बार और पढ़ना है।" अदालती हुक्म के बारे में कह देने की बलवती इच्छा हुई। "हाँ सुनो तो, हासन से वकील साहब के असिस्टेंट का फोन आया था···" इसने सारी बातें बता दी।

"शाबाश! मतलब हुआ कि हमारा मुकद्दमा न्यायसंगत है इस बात को न्यायाधीश मान गए हैं। उन लोगों को वहाँ से जगह छुड़ाना ठीक रहेगा।"

अमृता को आश्चर्य हुआ। उस ऐस्टेट से मुझे दूर रहने के लिए कहने वाला यह सोमू अब ऐसा कह रहा है। एक-एक बार एक-एक ढंग की बात करता है। "इसे कैसे शाबाश कहते हो?"

"किसी को अन्याय का एक कौर भी नहीं मिलना चाहिए। तुमने जिस वकील को रखा है वे बड़े ठोस आदमी लगते हैं। उन्हें मेरा अभिवादन कहना।" इस बात पर अमृता को तसल्ली हुई। "इसमें रिआयत मत दिखाओ। तात्कालिक रूप से उनके निर्वाह के लिए अदालत ने जो रक़म दी है वह बहुत है। उस मैनेजर की नियुक्ति में कहीं वे लोग अपने आदमी को लाकर तैनात न कर दें। इस मामले में तुम चौकस रहना।" वह बोला। इस जीत की खुशी में खीर पकाए जाने की बात कहकर उसी क्षण बुलाने का मन हुआ; लेकिन इस जीत में अपना निर्लिप्त रहना वह पसंद करता है। इस विचार से आने के लिए नहीं कहा।

सवेरे साढ़े दस के लगभग कुत्ते भौंकने लगे। नौकरानी मादेवम्मा ने आकर बताया, "कोई सुब्बम्मा, आपके गाँव से आई हैं।"

अमृता को तुरंत याद नहीं आया। बाहर आकर देखा, सुब्बक्कय्या थी। चाची के पीहर की नातेदार। अपनी माँ के देहांत के बाद जब चाची ऐस्टेट में जड़ जमा चुकी थी, तब पुरानी रसोइन को निकलवाकर अपने पीहर से इसे बुलवा लिया था। फिर जब अपने को हासन में पढ़ाई के लिए छोड़ा गया था तब यही सुब्बम्मा वहाँ छोटे भाई की देखभाल किया करती थी। सुना था कि आज भी चाची और कृष्णमूर्ति की देखभाल करती है यह विधवा और कृष्णमूर्ति के अत्ती-कानु ऐस्टेट में रहती है। मन ने कहा कि शायद कुछ पता लगाने आई है। फिर भी आवभगत करते हुए बोली, "आइए सुब्बक्कय्या, आइए।" लाउंज में बिठाकर पूछा, "कैसे आईं? सवेरे कहाँ से निकलीं?" आशंकित हुई कि अपने घर का पता इसे कैसे मालूम हुआ?

"अब क्या दिक्कत है! सकलेशपुर से सीधी नई बस चलती है। मुझे एक मिनट हमाम में जाना है।" वह उठी।

"आइए" इसने रास्ता बताकर पहुँचाया। फिर अपने कमरे में चलकर फोन लगाया, "अब मत आना। रात में मैं खुद फोन करूँगी। गाँव से कोई आया है। अभी बात मालूम नहीं हुई। अभी-अभी आई हैं।"

"चाहे कोई बात क्यों न हो, डिगना नहीं।" उसने हौसला बँधाया।

हाथ-मुँह धोकर बाहर निकली हुई सुब्बक्कय्या को कॉफ़ी लाकर दी, "आधा घण्टे में खाना खाएँगे। आपको भी भूख लगी होगी।" उन्हें पुनः लाउंज में बिठा कर पूछा, "क्या बात है?" घर में चाची आदि के कुशल समाचार के बारे में सीधा कुछ नहीं पूछा।

"क्या बताऊँ बेटी। तुमसे क्या छिपा है?" सामने के ऊपर से एक और नीचे से दो दाँत गिरे अपने पोपले मुँह से सुब्बक्कय्या हँसते हुए बोलीं।

"मैं क्या जानूँ, यहाँ दूर मैसूर में बच्चों की पढ़ाई के लिए आ पड़ी हूँ।" अमृता चालाकी से खिसक गई। अब बोलने में झिझक होकर उसने पुनः एक बार दाँत निपोर कर गिरे हुए दाँतों की खुली जगह का प्रदर्शन किया। सकेशी[1] विधवा। चाची से पाँच-छह वर्ष बड़ी थी फिर भी बदन के रंग की तरह बाल भी काले थे। दोनों हाथों में मोटे-मोटे सोने के दो-दो कड़े।

"बात करेंगे, रसोइन, नौकरानी वगैरह है घर में" दबी आवाज में बोली।

"काम हो चुका है। अब दोनों निकली ।" कुछ समय बाद जब पुट्टम्मा और मादेवम्मा दोनों चली गईं तब बोली, "उठिए खाना खा लेंगे। खाली पेट

---

1. विधवा को संयासियों की तरह सिर मुंडाना पड़ता है। इसने मुंडाया नहीं था।

निकली होंगी।" थालियां लगाकर सारा खाना टेबुल पर लगा दिया।

दाल और भात से गपागप अपनी भूख मिटा लेने के बाद सुब्बक्कय्या ने बातों की शुरुआत की। "कैसे कंगाल कुत्ते जैसे वकील को रखा है! मुकद्दमे का फैसला होने तक भी सब्र नहीं है। अभी से ऐस्टेट और घर खाली करने का फरमान जारी करवाया है। रसोइन ही सही, लेकिन तुम्हारे घर की सदस्य बनकर यहां पड़ी हूं। तुम्हें पाला है, पोसा है। तुमसे एक बात करने के विचार से आई। घर से भी निकलवाकर इस तरह बेदखल करना क्या ठीक है? मुकद्दमा अपनी जगह चलता रहे। बेघर होकर मारा-मारा फिरने की अपमानजनक हालत क्यों बने?"

सुब्बक्कय्या की बात अमृता के लिए अप्रत्याशित नहीं थी। स्वाभाविक ही थी। "इतनी-सी बात के लिए आपको यहां तक भेजा?"

"वे क्यों भेजेंगे? मैं खुद चली आई। तुम्हें दो बातें कहने का क्या मुझे हक नही है?"

"है, क्यों नहीं।" सोद्देश्य ही इसने ढील छोड़ दी।

"एक बात अच्छी तरह जान लो। आखिर वे तुम्हारे भाई हैं।"

"पता नहीं भाई हैं या भागीदार?" इसने उल्टा प्रश्न पूछा फिर भी अपनी आवाज़ को कोमल ही रखा था।

"जैसा समझोगी।" दुनियादारी के अन्दाज में सुब्बक्कय्या बोली, "तुम भी जानती होगी। आखिर मैं पराई ठहरी। मैं कुछ कहूं तो ग़लत होगा। तुम खुद समझकर कदम उठाओ।" आत्मीय अन्दाज में उसने कहा।

"मेरी जानी हुई किस बात के बारे में कह रही हैं? आप कहेंगे तो कैसी गलती होगी?" निहित अर्थ के आभास से अमृता को आश्चर्य हुआ, कुतूहल भी बढ़ा।

"अगर तुम जानती नहीं हो तो मुझे नाहक दखल नहीं देना चाहिए। छोड दो इस बात को।" सुब्बक्कय्या चुपचाप गर्दन झुकाकर मुंह में दाल-भात ठूंसती रही।

"उत्सुकता बढ़ाकर इस तरह बीच में मत रोकिए। क्या बात है साफ़-साफ़ कह दीजिए। मैं किसी से जिक्र नहीं करूंगी कि आपने ऐसा कुछ कहा। चाहो तो कसम खाती हूं।"

अमृता का आश्वासन पाने के बाद उसने गर्दन उठाकर उसका मुंह ताकते हुए कहा, "जयण्णा को चाहे भागीदार कह लो। लेकिन किट्टण्णा, क्या वास्तव में तुम कुछ नहीं जानतीं?"

इस दिशा में टटोलती हुई अमृता की कल्पना सहसा साकार हो गई। उस दिन जब वे सारे लोग आए थे तब कृष्णमूर्ति ने कहा था 'यार की बातों में आकर तू ऐसा कर रही है।' उस समय मैं जब उसका चेहरा घूर रही थी तब अपने में जो अस्पष्ट भावना जागी थी मानो अब उसका अर्थ मिल गया। हां, उसका चेहरा

पिताजी की तरह ही लगता है। तुरन्त यह विचार आया था कि पिताजी और चाचा दोनों सगे भाई थे। बड़े भाई के लक्षण अगर छोटे भाई के बेटे में दिखाई देते हों तो उसका अनुचित अर्थ क्यों लगाए? "सुब्बक्कय्या, क्या आप सच कह रही हैं? आपको कैसे पता?"

"झूठ-मूठ की बातें बनाकर मैं क्यों अपना मुंह खराब करूँ, बिटिया? मैं अकेली ही नहीं; घर के नौकर-चाकर सभी जानते थे। मालिक का मामला, कौन भला मुंह खोलेगा? फिर इसमें ग़लती भी क्या है? तुम्हारे पिता की भी बीवी नही थी। बेचारे, तुम्हारी खातिर उन्होने दूसरा ब्याह भी नहीं किया था। जय-लक्ष्मम्मा को भी उस भोंदू पति से ऐसा कौन-सा लगाव था? बाहर के लोग चाहे कुछ भी समझ लें, अब कोई बाहर का आदमी जानता भी नहीं, बचपन में ही मैं जो विधवा बनी थी मुझे इसमें कोई दोष दिखाई नहीं दिया। मुझे इसलिए यह बात कहनी पड़ रही है कि उस दिन किट्टण्णा ने तुमसे कुछ भला-बुरा कहा था। उसी खुन्नस में तुमने वकील के जरिए घर खाली करवाया है। चाहे कितनी भी बुरी बात कही हो, आखिर वह तुम्हारा भाई है; भुला दो। कोर्ट का अमीन आकर घर खाली करवाए, घर पर ताला लगाए ऐसा अपमानजनक कोई काम मत करवाना, बेटी।"

अपने पिता और चाची के बीच ऐसा कोई सम्बन्ध हो सकता है ऐसी कल्पना अमृता ने कभी नहीं की थी; ऐसी बात नहीं: अपने बचपन की यादों को कुरेदकर उन्हें जोड़कर इस सम्बन्ध में काफी सोचा भी था। लेकिन ठोस आधार के बिना ऐसा निर्णय कर लेना उचित नहीं लगा था। फिर, अब बात समझ में आ रही है, अपने पिता के चित्र को कलुषित करने की इच्छा न होने के कारण इस निर्णय को कही दिल से निकाल तो नहीं दिया था? फिर भी अब मन-ही-मन घिन होने लगी। मिचली-सी आने लगी, सिंक में कै करने का मन हुआ। लेकिन इस समय कै करेगी तो सुब्बक्कय्या उसका ग़लत अर्थ लगाकर गाँव जाकर ढिंढोरा पीटने लगेगी। इस सावधानी के कारण सह लिया। इसके बाद वह कुछ नहीं बोली। "और ज़रा भात लीजिए" आतिथेय का कर्तव्य निभाने के लिए हा बात की।

भोजन के बाद सुब्बक्कय्या को पीछे के दरवाजे के पास वाला कमरा दिखा कर बोली, "कुछ देर आराम कीजिए। सुबह जल्दी निकली है।" फिर वह अपने कमरे मे चली गई। अपने पिता से घिन होने लगी। गृहकृत्य में पुरुषों का आत्म-विश्वास खो लेने जैसी साधारण बात के लिए नहीं; और भी अधिक घिनौनी बात के लिए, उस औरत को कितनी आजादी दी थी, इस बात से मन में तिरस्कार भाव उत्पन्न हुआ। विधुर आदमी ने अपने इस भाई की बीवी को न छूकर अगर घाटी के नीचे से कोई कुलीन औरत को लाकर रख लिया होता तो इतनी घिन न होती। इस चाची के प्रति जो जुगुप्सा थी वह घिन बन गई। भाव में कुहरा

छा गया। लेकिन बुद्धि चुस्ती से सोच रही थी। प्रयोजन की दृष्टि के बिना चाची में शुद्ध भावना का प्यार पाया जाना असम्भव है। इस परिप्रेक्ष्य में घृणा पेट में खौलने लगी। आधा घण्टा इसी तरह लेटे रहने के बाद एक और विचार आया। इस सम्भावना को नजरंदाज नहीं किया जा सकता; यह सोचकर वह उठकर बाहर आई। सुब्बक्कय्या यों ही करवटें बदल रही थी, सो नहीं रही थी। "क्यों, नींद नहीं आई ?"

"न बेटी; दोपहर के समय मुझे आदत नहीं।" कहती हुई वह झट उठकर बैठी।

"चलिए, कॉफी बनाती हूँ।" रसोई-घर में ले गई। कॉफी बनाकर दी। चुसकी लेते समय बोली, "रात में कहाँ, सकलेशपुर में थीं ?"

प्रश्न की भूमिका न जानते हुए वह 'नहीं' बोली। छूटते ही अमृता ने पूछा, "ऐस्टेट से किट्टण्णा ने लाकर बस में बिठाया ?" उसके 'हाँ' कहने पर यह बोली, "यहाँ जाने के लिए चाची ने भेज दिया न ?" इस प्रश्न का उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

दोनों ने कॉफी खत्म की उसके बाद, "इधर आइए" कहकर उन्हें पूजा-कक्ष मे ले गई। भगवान के सामने खड़ा करके बोली, "सुब्बक्कय्या, सच बताइए, आपको चाची ने भेजा है न ? झूठ बोलेंगी तो भगवान भी जान जाएँगे और मैं भी जान जाऊँगी।" अमृता उसका चेहरा घूरने लगी।

"कैसी बात पूछती हो, छोड़ दो बेटी !" सुब्बक्कय्या का जवाब साफ था।

"एक बात और है। किट्टण्णा मेरे बाप से पैदा हुआ है इस बात को मुझसे कहने के लिए ही चाची ने तुम्हें भेजा है न ? वरना आप अपनी ओर से ऐसी बात का जिक्र न करतीं। सच बताइए।" उसका चेहरा घूरते अमृता ने प्रश्न किया तो सुब्बक्कय्या की आँखें झुक गई। "भगवान के सामने खड़ी हैं। आपका अगला जन्म तो सुधर जाए। सच बताइए।" अनुरोध करने पर वह बोली, "ऐसी बातें अपनी ओर से कहने का साहस क्या कभी मैंने किया है ? इतनी-सी बात के लिए भगवान के सामने लाकर कसम खिलाने की क्या आवश्यकता है ?" वह अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो गई। "ठीक है, चलिए।" अमृता पूजा-कक्ष से बाहर निकली। सुब्बक्कय्या भी पीछे निकली।

दस मिनट में सुब्बक्कय्या की दुविधा असह्य हो गई। अपने लिए निर्धारित कमरे में जाकर बैठ गई। अगले दस मिनट में अपनी थैली लेकर आई, "मैं चलती हूँ, बेटी। बस चढ़ा दो। बड़ों के झंझट में पड़कर मुझे क्या करना है !" कहते हुए जब सामने आकर खड़ी हुई तब अमृता समझ गई कि वह चोट खा गई है।

"इसके लिए क्यों दिल छोटा करती हैं ? रुकिए, कल सवेरे छोड़ दूंगी।" अमृता ने धीरज बंधाया।

इसके बाद अमृता अपने कमरे में चली गई। शून्य-भाव घिर गया। जीवन में कोई अर्थ नहीं, रुचि नहीं; जीना ही एक प्रकार की हीन पीड़ा है, इस अहसास की स्थिति घिर आई। इसी अवस्था में पाँच बजे तक लेटी रही। फिर सुब्बक्कय्या को अकेली घर में छोड़कर बच्चों को ले आई। अपने मामूली ढंग पर बच्चों के साथ खेल खेला, उनकी पढ़ाई देखी। रात में सभी का भोजन होने के बाद जब बच्चे सो गए और सुब्बक्कय्या भी अपने कमरे में जाकर लेट गई तब अमृता को सहसा एक विचार आया। मन के एक कोने ने विरोध किया। दूसरे कोने ने समर्थन में ज़िद की। ग्यारह बजे जब सोमू को फोन किया तब भी अपना विचार उसे नहीं सुनाया। "कल मैं हासम जा रही हूँ। यथासम्भव रात तक लौट आऊँगी। आते ही फोन करूँगी।" उसको केवल इतनी ही सूचना दी। अचानक अगर रात तक न लौटी तो बच्चों के लिए एक जोड़ा कपड़े छोटे-से बैग मे डालकर सो गई।

सवेरे जल्दी उठते ही बच्चों को जगाकर झटपट उन्हें नहलाया। "सुब्बक्कय्या, आप भी जल्दी तैयार हो जाइए। तुम्हें कार में ऐस्टेट तक पहुँचा दूँगी। मुझे भी अदालत के काम से उधर ही चलना है।" वह बोली। सुब्बक्कय्या से उपमा बनाने के लिए कहा। सभी के खा लेने के बाद बच्चों को सुशीलम्मा के घर पहुँचा कर कपड़े का बैग दिया। मादेवम्मा के घर जाकर उससे कहा कि अगर वह रात तक लौट न सके तो वह अपने पति से घर पर सोने के लिए कह दे। कुत्तों की देख-भाल की जिम्मेदारी सौंपकर सकलेशपुर की ओर कार दौड़ाने लगी। दस बजे सकलेशपुर पहुँची। सुब्बक्कय्या को भी नाश्ता करवाया खुद भी किया। फिर पहले एलेकानु ऐस्टेट की ओर कार दौड़ाई जहाँ जयराम और उसके बीवी-बच्चे रहते थे। इसे देखकर जयराम चौक गया।

"जयण्णा, कुछ बातें करनी थीं। किट्टण्णा और तुम्हारी माँ साथ रहेंगी तो ठीक रहेगा। चलो, मीनाक्षी को भी चलने दो।" इस बात पर जयराम एकदम आज्ञाकारी बन गया। अदालत के हाली हुक्म ने उसके हौसले को ठिकाने लगा दिया था—यह साफ लग रहा था। मीनाक्षी अमृता की बगल में बैठी। वहाँ से जयराम ने ही गाड़ी चलाई।

"तुम कुछ भी बोलो अमृता दीदी। अपने ऐस्टेट की सड़कों के लिए ये पुराने मॉडल की कार ही ठीक है। यह मजबूत इंजन, मजबूत बाडी आजकल की कारों की कहाँ ?" प्यार जताने के अन्दाज में वह बोला।

एक ही कार में आए इन चारों को देखकर चाची और कृष्णमूर्ति दोनों चौंक गए। कृष्णमूर्ति के चेहरे पर अब भी आक्रोश था। चाचा मानो इन सारे व्यवहारों से अनजान थे, वे बोले, "कहाँ से आई हो बिट्टू ?" उनका कुशल-समाचार लेकर अमृता बोली, "चाची, तुम चारों से बातें करनी हैं। इसीलिए आई। यहाँ ऊपर चलो।"

चाची पहले जीना चढ़ गई। पीछे अमृता। मीनाक्षी, जयराम, कृष्णमूर्ति उनके पीछे चले। ऊपर वाला किट्टण्णा का कमरा था। जब सभी लोग भीतर आ गए तब अमृता ने किवाड़ बन्द करके सिटकनी चढ़ा दी। फिर कृष्णमूर्ति की बगल में उसके कन्धे पर हाथ रखकर पलंग पर आ बैठी। जब जयराम, मीनाक्षी और चाची सामने एक-एक कुर्सी लेकर बैठ गए, तब तुरन्त कृष्णमूर्ति की ओर देखकर बोली, "सुनो किट्टण्णा। अब मैं जो कुछ भी कहूँगी तुम बीच में नहीं बोलोगे। सब्र के साथ सुनना होगा। मेरे हाथ पर हाथ रखकर वचन दो। तभी मैं बोलूँगी। वरना चिढ़ाना, चिल्लाना, गाली-गलौज करोगे तो बातों की कोई जरूरत नहीं।" अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया।

"मान जा बेटे। तुम्हारे भले के लिए ही तुम्हारी दीदी कुछ कहने के लिए आई है।" उसकी माँ के समर्थन के बाद वह मान गया।

अमृता ने बात जारी रखी, "उस दिन तुमने कहा था कि यार की बातें सुनकर नालिश करती हूँ। तुम्हें सचाई मालूम नहीं है। तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनकर तुम पर मुझे बड़ा गुस्सा था···"

बीच में ही जयराम ने दखल देकर कहा, "उसकी बातों को क्यों मन पर लेती हो, छोड़ो दीदी। बचपना है।"

"पहले मेरा कहना पूरा सुन लो। बाद में बोल लेना।" अध्यापिका के अंदाज में उससे कहकर आगे बोली, "उस दिन मुझे गुस्सा था। कल से वह गुस्सा उतर गया है, क्योंकि मुझे कल ही पता चला कि वह मेरा सगा भाई है। यानी कि वह चाचा से पैदा नहीं हुआ है। मेरे पिता यानी तुम्हारे ताऊ से पैदा हुआ है। खुद तुम्हारी माँ ने इस बात की पुष्टि की है।"

तुरन्त कृष्णमूर्ति हाथ छुड़ाकर गर्म होकर बोला, "क्या कहती है री छिनाल?"

"किट्टण्णा, मैं झूठ नहीं बोलती। तुम्हारी माँ ने ही ऐसा कहला भेजा है। मुझे भी अन्य स्रोतों से इस बात का पहले से कुछ अनुमान था। मेरे ऐस्टेट का मैनेजमेंट हड़पने के लिए, मेरे पिताजी पर डोरे डालकर तुम्हारी माँ ने यह चाल चली। यह पुरानी बात हुई। चाची के लाख झूठों का निर्माण करने पर भी तुम्हारा नकारना सम्भव नहीं। तुम तीनों से सम्बन्ध रखने वाली बात है। मीनाक्षी, तुम बहू हो, इस बात का तुम्हें भी पता रहे इसलिए साथ ले आई। अब मैं क्या करूँगी सुनो : मुझे इस सारी जायदाद से घिन हो गई है। इसका मतलब यह नहीं कि मुकद्दमा वापस ले लूँगी। अगर वापस लूँगी तो तुम लोग ढिंढोरा पीटोगे कि मैं हार गई। जयण्णा, उस दिन तुमने कहा था, इसलिए सुप्रीम कोर्ट तक भी जाकर मैं मुकद्दमा जीतूँगी, जीतकर सब ले लूँगी। ले लेने के बाद पूरी जायदाद में कानूनन एक तिहाई हिस्सा मेरा होगा। दो तिहाई हिस्सा विजय-विकास का होगा। मेरा

हिस्सा तुम दोनों के नाम दान-पत्र लिख दूंगी। यानी जयण्णा जिस ऐस्टेट में रहता है वह ऐस्टेट जयण्णा के नाम, यह ऐस्टेट किट्टण्णा के नाम दान लिख दूंगी। दीदी का प्यार का दान। आत्मगौरव के कारण अगर तुम लोगों ने इसे अस्वीकार किया तो मैं किसी और धर्मार्थ काम के लिए लिख दूंगी। मैं इसे हर्गिज छुऊँगी नहीं। मेजारिटी को प्राप्त होने के बाद विजय-विकास क्या करेंगे यह उनकी मर्जी की बात है। मैंने तो ठान लिया है कि कल से कोई-न-कोई काम ढूंढ़कर मेहनत की रोटी खाऊँगी। अदालती फरमान के अनुसार तुम्हें इसी समय इन दोनों ऐस्टेटों और घरों को खाली करके बाहर निकलना ही होगा। रगण्णा को पहले ही दूसरा ब्याह करके मज़े में जीवन बिताने की छूट मैंने दे दी है।" इतना कहकर वह रुक गई।

बातें करते समय अन्त तक वह चाची और जयराम के चेहरे देखती रही थी। अन्त में जयराम ने सिर झुका लिया। चाची ने भी सिर झुकाया। वे तीनों यों धँस गये थे मानो सिर पर मन-मन का भार ढोया हो। बहू मीनाक्षी घूर-घूरकर अपनी सास को देखती रही।

दो मिनट बाद अमृता बोली, "किट्टण्णा मेरे बाप से पैदा हुआ है इसलिए उसे ज्यादा प्यार और चूंकि जयण्णा तथा लीला चाचा से पैदा हुए हैं इसलिए कम प्यार करती हूँ, ऐसी बात नहीं। तुम दोनों मेरे छोटे भाई हो, वह मेरी बहन है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। चलती हूँ चाची।" वह उठकर खड़ी हुई। आगे बढ़कर सिटकनी खोली, कमरे से बाहर निकली। सरपट सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आई। दरवाज़े के पास खड़ी सुब्बक्कय्या ने भयभीत होकर इसका मुँह देखा। "सुब्बक्कय्या, इस घर में रहने मे अगर आपका दम घुटता हो तो मेरे पास आइए। कुछ पैसे दूंगी। बैंक में रखकर ब्याज में गुज़ारा कर लीजिए। अब तक आपकी बचाई हुई रक़म भी होगी।" कहकर वह आगे बढ़ी।

चबूतरे पर बैठे चाचा ने कहा, "क्यों री बिट्टू! चल पड़ी? खाना भी नहीं खाया!" वे उठकर खड़े हुए।

"जरूरी काम है, चाचा!" झुककर उनके चरण छू लिए और जाकर कार में बैठ गई। स्टार्ट करके निकल पड़ी।

बिना हड़बड़ी के धीमी रफ्तार में चली। सड़क की दोनों बगल के ओक् के पेड़ों की छाया में घनी हरियाली से भरे कॉफी के बगीचे बड़े सुहावने लग रहे थे। बीच-बीच में गाड़ी रोककर तन्मयता से निहारती रही। अपने मुन्ने को साथ होना चाहिए था। उसके साथ ही इस हरियाली, पहाड, जंगल को देखने की इच्छा हुई। फिर भी रुक-रुककर देखते हुए लगभग तीन बजे सकलेशपुर पहुँची। किसी होटल में भर पेट खाया, फिर कॉफ़ी पी ली। फिर धीमी रफ्तार में कार चलाती हुई लगभग साढ़े सात बजे मैसूर पहुँची। बच्चों को घर ले आई। उन्हें खाना खिलाकर खुद खाने तक साढ़े-नौ बजे थे। बच्चे सो गये। उसके मन में अज्ञात

बेचैनी, कुछ करने का दबाव शुरू हुआ। क्या करना होगा, कुछ समझ नहीं पाई। बड़ी देर बाद विचार कौंध गया। सोमशेखर को फोन किया।

"कब आईं ?" उसने पूछा।

"साढ़े सात बजे मैसूर पहुंची। उस दिन तुमने बताया था न, इंटीरियर डेकोरेटिंग कोर्स की बात बम्बई की ! उसकी फीज, भोजन आदि का कुल कितना खर्च आएगा ?"

"छह माह के लिए कुल पन्द्रह-सोलह हज़ार तक आ जाएगा।"

"सुनो, आज से मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। मेरी कलाई की सोने की चूड़ियां भी मेरी नहीं हैं। इतनी रक़म तुम्हें जोड़नी पड़ेगी।"

सोमशेखर दो-एक पल के लिए स्तब्ध रह गया। फिर बोला, "इसी काम की कैसी धुन ? किसी कालेज में कोशिश करो, इतने सालों से पढ़ा हुआ विषय है।"

"जानते हो, तुम्हारे दफ्तर में ही मुझे भी काम क्यों करना है ? मैं कहीं और काम करूँ और तुमने अपने दफ्तर में कोई गर्ल फ्रेंड बना ली तो ! तुम चाहते हो कि मैं इतनी भी चौकस नहीं रहूँ ?" सोमशेखर जोर से हँस पड़ा। अमृता ही बोली, "छह महीनों के लिए बच्चों का हास्टेल में इंतजाम करना होगा। कल पता लगाऊँगी। कल आते समय तुम सौ रुपये लेते आना। अपने निजी खर्च के लिए एक दमड़ी भी नहीं है। अब नींद आने लगी है। सोती हूँ। गुड् नाइट।" वास्तव में उसे लम्बी जँभाई आ रही थी।